सूक्ष्म एवं व्यापक-अर्थशास्त्र

(Micro and Macro-Economics)

जीवाजी विश्वविद्यालय के बी. ए. तृतीय वर्ष हेतु
नवीन पाठ्यक्रम अनुसार

लेखक

एस. के. जैन

सहायक प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
(अर्थशास्त्र विभाग)
जैन स्नातक महाविद्यालय, भिण्ड (म. प्र.)

प्रकाशक

नीरज प्रकाशन

विक्टोरिया मार्केट, ग्वालियर-9

प्रकाशक :
नीरज प्रकाशन
ग्वालियर-१

★

वितरक :
नरेश स्टोर्स
ग्वालियर-१

★

मूल्य २०.०० रुपये

★

मुद्रक :
ओमीश्वर प्रेस,
कसेराओली, ग्वालियर-१

अनुक्रमणिका
(CONTENTS)

प्रथम खण्ड

सूक्ष्म-अर्थशास्त्र

[Micro-Economics]

व्यापक-अर्थशास्त्र
[Macro-Economics]

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक जीवाजी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के लिये लिखी गई है। यद्यपि आर्थिक विश्लेषण पर हिन्दी भाषा मे पुस्तक पर्याप्त है परन्तु विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमानुसार पुस्तको का नितान्त अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य विद्यार्थियो को एक ही स्थान पर पाठ्यक्रमानुसार सामग्री उपलब्ध कराना है।

पुस्तक की भाषा सरल एव व्यावहारिक है। विद्यार्थियो की सुविधा के लिये स्थान-स्थान पर विद्वानो के उद्धरणो को हिन्दी के साथ-साथ अग्रेजी मे भी दिया गया है। इसके साथ ही पुस्तक मे नवीन व आधुनिक प्रवृत्तियो का पूर्ण समावेश है।

पुस्तक को तैयार करते समय विभिन्न पुस्तको, सदर्भ ग्रन्थो, पत्र-पत्रिकाओ तथा लेखो से सहायता एव सामग्री प्राप्त की है। उन समस्त प्रकाशको व लेखको का हृदय से आभार व्यक्त करता हू।

विश्वास है यह पुस्तक विद्यार्थियो के लिय उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने हेतु रचनात्मक सुझावो का स्वागत करूँगा।

१८, महावीर गज,
भिण्ड (म प्र)

एस० के० जैन

जीवाजी विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)

अर्थशास्त्र
ECONOMICS

बी ए तृतीय वर्ष

Paper I—Micro Economic Theory

Nature and Significance of Micro Economic, Utility analysis and indifference curve, Consumer's equilibrium.

Production :

Production, Function and Returns to scale—Isoquant curves; Theory of value—Price determination under—Perfect, Imperfect; Monopolistic competitions and Monopoly, Price discrimination under monopoly

Factor Price Determination :

Recent Theories of Rent, Wages, Interest and Profit

Paper II—Macro-Economic Theory

Nature and Significance of Macro-Economic, Static & Dynamic Economics, National Income—Various concepts of national income

Functioning of various economic systems

Economic Growth & Palnning :

Meaning of Economic Growth Characteristics of under-developed and developed economics, Determination of Economic Growth, Planning—Definition of Planning, objective and types of planning, Study of India's Five Year Plans with special reference to employment Resources mobilisation and agriculture, Industry under Fourth Five Year Plan

Study of India's Five Year Plans with special reference to Employment, Resource Mobilisation, Agriculture and Industry

प्रथम खण्ड

सूक्ष्म-अर्थशास्त्र

(MICRO-ECONOMICS)

अध्याय १

★

सूक्ष्म एवं व्यापक अर्थशास्त्र
[Micro and Macro-Economics]

★ ★ ★

आधुनिक आर्थिक विश्लेषण अब दो भागों में विभक्त किया जाने लगा है, (a) सूक्ष्म विश्लेषण (Micro analysis); (b) व्यापक विश्लेषण (Macro analysis)। विश्लेषण के इन दो दृष्टिकोणों के आधार पर अर्थशास्त्र का अध्ययन निम्न दो भागों में किया जाता है

(अ) सूक्ष्म अर्थशास्त्र (Micro-Economics), तथा

(ब) व्यापक अर्थशास्त्र (Macro-Economics)।

आज ये दोनों शब्द आर्थिक शब्दावली (Economic Terminology) के अविभाज्य अंग बन गये हैं। इन शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम ऑस्लो विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर रेगनर फ्रिश (Regner Frisch) ने किया। इसके पश्चात् अन्य अर्थशास्त्रियों ने इसे अपनाया।

सूक्ष्म[1] (Micro) और व्यापक[2] (Macro) दोनों ही शब्द मूलतः यूनानी भाषा के हैं। 'माइक्रो' (Micro) का अर्थ है 'छोटा' तथा मैक्रो (Macro) का अर्थ है बड़ा। सूक्ष्म अर्थशास्त्र विशिष्ट इकाइयों या वैयक्तिक इकाइयों (individual units) का अध्ययन करता है, जैसे—किसी एक फर्म का उत्पादन, किसी एक वस्तु की माग आदि। व्यापक अर्थशास्त्र

---

[1] Micro-Economics—सूक्ष्म अर्थशास्त्र को आर्थिक व्यष्टिभाव, व्यष्टि विश्लेषण, विशिष्ट अर्थशास्त्र, व्यक्तिगत अर्थशास्त्र भी कहते है।

[2] Macro-Economics—व्यापक अर्थशास्त्र को आर्थिक समष्टिभाव, समष्टि विश्लेषण, सामूहिक पद्धति अर्थशास्त्र भी कहते हैं।

वैयक्तिक इकाइयों की ओर ध्यान न देकर 'समूह' (aggregate) का अध्ययन करता है अर्थात अर्थ-व्यवस्था का उसम समग्र रूप से अध्ययन करता है, जैसे—कुल आय, कुल बचत, कुल विनियोग, सामान्य मूल्य स्तर आदि ।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र
(Micro-Economics)

सूक्ष्म अर्थशास्त्र विशिष्ट इकाइयों अथवा वैयक्तिक इकाइयों का अध्ययन करता है, जैसे—किसी फर्म का उत्पादन, किसी एक वस्तु की माग इत्यादि ।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (The Historical Background of Micro Economics) —

आर्थिक विश्लेषण के दोनों दृष्टिकोणों से प्राचीन अर्थशास्त्री परिचित थ, फिर भी प्रारम्भ मे सूक्ष्म अर्थशास्त्र की ओर अधिक ध्यान दिया गया । सूक्ष्म अर्थशास्त्र के विकास का श्रेय **एडम स्मिथ** (Adam Smith) को है, जिन्होंने आर्थिक विचारों को व्यवस्था प्रदान कर उसे एक सामाजिक शास्त्र का स्वरूप प्रदान किया । प्रतिष्ठित आर्थिक विश्लेषण (classified economic analysis) में सूक्ष्म और व्यापक दृष्टिकोणों का मिश्रण पाया जाता है । उनका मत था कि व्यक्ति निजी हित से प्रभावित होकर आर्थिक सगठन को सुचारु रूप से चलाने रहते हैं । इस 'निजी हित' (self interest) के आधार पर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने यह समझाने का प्रयत्न किया कि अर्थ व्यवस्था म उत्पादन किस प्रकार होता है, किस प्रकार वस्तु का मूल्य निर्धारण होता है और किस प्रकार कुल आय का वितरण होता है ।

मार्शल (Marshall) ने सूक्ष्म और आर्थिक विश्लेषण को अधिक महत्व प्रदान किया । मार्शल तथा उसके अनक साथियों ने सामान्य आर्थिक विश्लेषण तथा **माल्थस और कार्ल मार्क्स** (Malthus and Karl Marx) जैसे प्रख्यात अर्थशास्त्रियों क लेखो की अवहेलना कर सूक्ष्म अर्थशास्त्र को चरम सीमा पर पहुँचा दिया । यद्यपि इस समय कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों ने छुटपुट रूप म व्यापक विश्लेषण का प्रयोग किया, लेकिन उनको अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई ।

१९२९-३२ की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के कारण सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई । इस स्थिति के कारण अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण मे महत्वपूर्ण परिवर्तन आया । कीन्स (Keynes) ने सूक्ष्म विश्लेषण की मान्यताओं की आधारभूत कमियों की ओर अर्थशास्त्रियों का ध्यान दिलाया और व्यापक दृष्टिकोण अपनाने पर अधिक जोर दिया । **वालरस** (Walras), **विकसेल** (Wicksell) तथा **इरविंग फिशर** (Irving Fisher)

आदि प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने भी व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। इस दृष्टिकोण में परिवर्तन के फलस्वरूप ही आज सूक्ष्म अर्थशास्त्र पृष्ठभूमि में चला गया है और व्यापक अर्थशास्त्र का महत्व बढ़ता जा रहा है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Micro Economics)

> 'सूक्ष्म अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जिसमें वैयक्तिक इकाई के आर्थिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।''[3]

यह वैयक्तिक इकाई एक फर्म, एक वस्तु का उत्पादन, एक व्यक्ति की आय, एक वस्तु का मूल्य, कुछ भी हो सकती है।

> "इसमें समूह का अध्ययन न किया जाकर विशिष्ट का अध्ययन किया जाता है।"[4]

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा मत व्यक्त किये गये। इसकी प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं —

- के ई बोल्डिंग (K E Boulding) के शब्दों में—'सूक्ष्म अर्थशास्त्र विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट परिवारों, वैयक्तिक कीमतों, मजदूरियों, आयों, वैयक्तिक उद्योगों और विशिष्ट वस्तुओं का अध्ययन करता है।''[5]
- हैण्डरसन क्वांट (Handerson Quandt) के अनुसार—सूक्ष्म अर्थशास्त्र व्यक्तियों और व्यक्तियों के सुपरिभाषित समूहों के आर्थिक कार्यों का अध्ययन है।'[6]
- विलियम फेलनर (William Fellner) के शब्दों में—'सूक्ष्म अर्थशास्त्र का सम्बन्ध वैयक्तिक निर्णय करने वाली इकाइयों से है।'[7]

---

3 "Micro Economics is the study of the economic behaviour of an individual unit"

4 'It is not aggregative but selective"

5 "Micro Economics is the study of particular firms, particular households individual prices, wages incomes, individual industries, particular commodities —K. E. Boulding

6 'Micro Economics is the study of economic actions of individuals and well defined groups of individuals" —Handerson Quandt

7 'Micro Economics relates to individual of decision making units' —William Fellner

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र मे व्यक्तिगत उपभोक्ता तथा उत्पादक के व्यवहार, आर्थिक उद्देश्य, व्यक्तिगत फर्मों एव उद्योगो के सगठन तथा सचालन के सिद्धातो का अध्ययन किया जाता है ।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र को कीमत सिद्धान्त (price theory) भी कहते है, क्योकि इसमे अध्ययन का मुख्य विषय किसी वस्तु अथवा सेवा की कीमत निर्धारित करना है ।[8]

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की दो बात महत्वपूर्ण हैं :—

(अ) सूक्ष्म अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण उपकरण सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) है । इसी विश्लेषण के आधार पर अर्थशास्त्र म अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है, जैसे —उपयोगिता, ह्रास नियम, सममीमान्त उपयोगिता नियम, उपभोक्ता की बचत आदि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के नियम सीमान्त विश्लेषण पर आधारित है ।

(ब) सूक्ष्म अर्थशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि समाज म पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है । इस मान्यता के आधार पर ही यह पता लगाया जाता है कि किस प्रकार उत्पादक या उपभोक्ता साम्य अवस्था को प्राप्त करता है ।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की उपयोगिता (Utility of Micro Economics) :

सूक्ष्म विश्लेषण आधुनिक आर्थिक विश्लेषण मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इसकी उपयोगिता निम्नलिखित तथ्यो से स्पष्ट होती है —

(अ) **आर्थिक समस्याओं को समझाने मे सहायक**—सूक्ष्म अर्थशास्त्र म वैयक्तिक तथा विशिष्ट आर्थिक समस्याओ का विश्लेषण किया जाता है, जिसके माध्यम स सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था की समस्याओ को सही रूप मे समझा जा सकता है ।

(ब) **अर्थ-व्यवस्था के विश्लेषण में सहायक**—यह विश्लेषण वैयक्तिक व्यय, बचत, आय, विनियोग, उपभोग इत्यादि पर प्रकाश डालता है और उनका सूक्ष्म रूप म विश्लेषण करता है जिससे सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था का विश्लेषण करने मे सहयोग प्राप्त होता है ।

(स) **वैयक्तिक इकाइयों के स्वभाव का अध्ययन**—यह विश्लेषण वैयक्तिक इकाइयो, जैसे—फर्म या एक उद्योग के कार्यो तथा उसके स्वभाव का अध्ययन करता है और उसकी समस्याओ का हल प्रस्तुत करता है ।

---

8 प्रो शुल्ज (Schultz) ने सूक्ष्म अर्थशास्त्र का मुख्य क्षेत्र कीमत सिद्धान्त बताया है । लेफ्टविच (Leftwich) ने कीमत सिद्धान्त को सूक्ष्म अर्थशास्त्र कहा है ।

(द) आर्थिक निर्णय लेने मे सहायक—सूक्ष्म अर्थशास्त्र के अध्ययन से व्यक्तियो, परिवारो, फर्मों इत्यादि को आर्थिक निर्णय लेने म पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है।

(य) कीमत-निर्धारण विधि का वर्णन—यह विश्लेषण वस्तुओ और सेवाओ की कीमत-निर्धारण विधि का वर्णन करता है।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमायें (Limitation of Micro Economics)

लार्ड कीन्स ने सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण को अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी और आवश्यक बताया है। इसके साथ ही उन्होंने इस विश्लेषण की कमियो की ओर भी ध्यान दिलाया है। इस विश्लेषण की सीमायें (दोष) निम्नलिखित हैं —

(अ) **सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा प्राप्त निष्कर्ष सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से कभी कभी गलत होते हैं**—कुछ अर्थशास्त्रियो का यह विचार है कि यह आवश्यक नही है कि जो निष्कर्ष वैयक्तिक इकाई के बारे म सत्य हैं वह समूह (aggregate) के बारे मे भी सत्य हो। उदाहरणार्थ बचत एक व्यक्ति की दृष्टि से उचित एव लाभदायक होती है, परन्तु यदि सम्पूर्ण समाज ही बचत करना प्रारम्भ कर दे तो वह अर्थ-व्यवस्था के लिए हानिकारक सिद्ध होती है, क्योकि जब सभी व्यक्ति बचत करेंगे तो प्रभावपूर्ण माग (effective demand कम होगी जिसके परिणामस्वरूप रोजगार की मात्रा कम हो जायगी, जो कि राष्ट्रीय आय म कमी कर देगी।

(ब) **सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा आर्थिक सगठन की कार्यप्रणाली का पूर्ण और सही चित्र प्राप्त नहीं होता**—सूक्ष्म विश्लेषण म अध्ययनकर्ता अलग-अलग इकाइयो का विश्लेषण करने म ही लगा रहता है जिसके कारण सामान्य बातें छूट जाती हैं। इसी के परिणामस्वरूप सामूहिक आधार पर अपनायी जाने वाली सामान्य नीति का परिणाम वैयक्तिक इकाइयो के योग से कभी कभी भिन्न होता है।

(स) **सूक्ष्म विश्लेषण की मान्यताएँ अवास्तविक हैं**—यह विश्लेषण निम्न दो अवास्तविक मान्यताओ पर आधारित है

(अ) अन्य बातें समान रहती है, तथा

(ब) समाज मे पूर्ण रोजगार की स्थिति पायी जाती है।

ये दोनो ही मान्यतायें अवास्तविक है, क्योकि न तो समाज मे पूर्ण रोजगार की स्थिति पायी जाती है और न ही अन्य बातें समान रहती हैं।

(द) **सभी आर्थिक समस्याओ का अध्ययन सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा किया जाना सम्भव नहीं है**—इस विश्लेषण द्वारा अनेक आर्थिक समस्याओ का अध्ययन किया जाना

सम्भव नहीं है, जैसे—राष्ट्रीय आय का वितरण, राजस्व की समस्यायें, मूल्य निर्धारण, मौद्रिक व प्रशुल्क नीति आदि।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि सूक्ष्म विश्लेषण की कुछ परिसीमायें हैं लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि यह विश्लेषण आर्थिक विश्लेषण में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता। वास्तविकता यह है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र का अध्ययन व्यापक अर्थशास्त्र पर काफी प्रकाश डालता है, जैसे—राष्ट्रीय आय, कुल उत्पादन, लाखों व्यक्तियों और हजारों फर्मों के निर्णय का परिणाम होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि वैयक्तिक फर्मों, निजी व्यक्तियों तथा वैयक्तिक उद्योगों की प्रवृत्ति का तथा वैयक्तिक इकाइयों को प्रभावित करने वाले सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाय। अतः हम यह कह सकते हैं कि बिना सूक्ष्म विश्लेषण का अध्ययन किये सभी आर्थिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।

व्यापक अर्थशास्त्र
(Macro-Economics)

व्यापक अर्थशास्त्र वैयक्तिक इकाइयों की ओर ध्यान न देकर 'समूह' का अध्ययन करता है, अर्थात् अर्थ व्यवस्था का उसके समग्र रूप में अध्ययन करता है, जैसे—कुल आय, कुल बचत, कुल विनियोग आदि।

व्यापक अर्थशास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Macro-Economics)

आर्थिक विश्लेषण के दोनों रूप—सूक्ष्म और व्यापक से प्राचीन अर्थशास्त्री [illegible] थे। सर्वप्रथम व्यापारवादी (mercantilists) लेखकों तथा प्रकृतिवादी (physiocrats) लेखकों ने व्यापक अर्थशास्त्र को पृष्ठभूमि प्रदान की। परन्तु प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने दोनों विश्लेषणों का मिश्रित प्रयोग किया। **माल्थस** (Malthus) पहला अर्थशास्त्री है जिसने समाज की कुल माग और कुल उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित किया तथा जनसंख्या की समस्या पर प्रकाश डाला। इस प्रकार यदि माल्थस को व्यापक अर्थशास्त्र का जन्मदाता कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। **सिसमांडी** (Sismondi) तथा **मार्क्स** (Marx) जैसे विद्वान अर्थशास्त्रियों ने भी अपने लेखों में व्यापक अर्थशास्त्र को महत्व प्रदान किया।

१९२९-३२ की विश्वव्यापी मन्दी के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया और उनका ध्यान सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था की समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ। व्यापक विश्लेषण को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय कीन्स को है, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'जनरल थ्योरी ऑफ एम्पलायमेण्ट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी' (General

Theory of Employment, Interest and Money) मे इस विश्लेषण को प्रमुख स्थान दिया। कीन्स से पूर्व शुम्पटर (Schumpter), बाह्म बावर्क (Bohm Bowark) तथा फिशर (Fisher) ने भी व्यापक आर्थिक विश्लेषण के विकास मे अपना योग दिया। वर्तमान मे अर्थशास्त्रियों द्वारा व्यापक विश्लेषण का प्रयोग अधिकाधिक मात्रा म किया जाता है।

प्रो एलन (Allen) के शब्दो म—"पिछले कुछ वर्षों म व्यापक अथशास्त्र का विकास इतनी तीव्र गति से हुआ है जिससे कि अर्थशास्त्र के ढाचे म उथल-पुथल हो गई है।

व्यापक अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Macro Economics)

व्यापक अथशास्त्र 'समूह' का अध्ययन करता है इसलिये इसे 'सामूहिक अर्थशास्त्र' (Aggregative Economics) भी कहते है। व्यापक अर्थशास्त्र की कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं —

प्रो के ई बोल्डिंग के शब्दो मे—'व्यापक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध वैयक्तिक मामलो से न होकर इन मात्राओ के समूह से होता है, इसका सम्बन्ध वैयक्तिक आय से न होकर राष्ट्रीय आय से होता है, वैयक्तिक मूल्यो से न होकर सामान्य मूल्य स्तर स होता है, वैयक्तिक उत्पादन से न होकर राष्ट्रीय उत्पादन से होता है।'[९]

गार्डनर एकले (Gardner Ackley) के अनुसार—'व्यापक अर्थशास्त्र आर्थिक मामलों का बडे रूप मे अध्ययन करता है। यह आर्थिक जीवन की सभी दिशाओ से सम्बन्धित है यह उन वृक्षो से पृथक् होकर जगल के वृक्षो की प्रवृत्ति का विश्लेषण करता है जो कि इसके निर्माता हैं।"[१०]

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि व्यापक अर्थशास्त्र का क्षेत्र काफी विस्तृत है, क्योंकि यह आर्थिक प्रणाली के औसतों (averages) और समूहों (aggregates) का

---

9 "Macro Economics deals not with individual quantities as such, but with aggregate of these quantities, not with individual income, but with the national income, not with individual prices but with price levels, not with the individual output but with the national output ' — Prof K E Boulding

10 "Macro-Economics deals with economic affairs in the large It concerns the over-all dimensions of economic life It studies the character of the forest independently of the trees which compose it, ' —Gardner Ackley

अध्ययन है । व्यापक अर्थशास्त्र के अध्ययन के केन्द्र-बिन्दु राष्ट्रीय आय और रोजगार हैं, इसलिये कभी कभी इसे राष्ट्रीय आय विश्लेषण (national income analysis) भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसम कुल उत्पादन, सामान्य मूल्य स्तर, मुद्रा तथा बैंकिग की समस्यायें, विदेशी व्यापार तथा राजस्व का अध्ययन किया जाता है ।

व्यापक, अर्थशास्त्र के अध्ययन मे वृद्धि करने वाले कारण

जैसा कि पूर्व म सकेत दिया गया है कि व्यापक विश्लेषण को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने का श्रेय कीन्स को है, यद्यपि कीन्स से पहले भी अर्थशास्त्रियो ने व्यापक विश्लेषण का प्रयोग किया लेकिन कीन्म की पुस्तक 'जनरल थ्योरी' ने इस विश्लेषण की नीव को अधिक मजबूत कर दिया । व्यापक विश्लेषण की अधिक लोकप्रियता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं —

(अ) **आर्थिक मन्दी** (Economic depression)—व्यापक आर्थिक विश्लेषण के प्रयोग मे तात्कालिक वृद्धि का कारण १९२९–३२ की महान् आर्थिक मन्दी थी, जिसके परिणामस्वरूप समाज म बडे पैमाने पर बेरोजगारी उत्पन्न हो गई। इस समस्या के हल करने के लिये अर्थशास्त्रियो ने व्यापक दृष्टिकोण को अपनाया ।

(ब) **राष्ट्रीय लाभाश** (National dividend)—**डॉ. मार्शल** द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय लाभाश का विचार भी व्यापक, अर्थशास्त्र के विकास का महत्वपूर्ण कारण बना । मार्शल ने एक व्यक्ति की आय के स्थान पर सामूहिक आय का अध्ययन किया । इसके पश्चात् पीगू और फिशर ने इस विश्लेषण को आगे बढाया ।

(स) **भुगतानो का चक्रीय प्रवाह** (Circular flow of payment)—प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियो (physiocrats) की इस धारणा को, कि समाज की कुल आय समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों म चक्र के रूप मे घूमती है, व्यापक विश्लेषण को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला ।

(द) **मुद्रा का सिद्धात** (Theory of money)—मुद्रा के सिद्धान्त मे किसी व्यक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण समाज पर मुद्रा के पडने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। मुद्रा के मूल्य-निर्धारण मे कुल प्रभावपूर्ण माग, कुल पूर्ति, कुल विनियोग, कुल बचत तथा उपभोग आदि का अध्ययन होता है, जिससे व्यापक अर्थशास्त्रीय विश्लेषण के विकास को सहयोग प्राप्त हुआ ।

(य) **व्यापार चक्र** (Trade cycles)—व्यापार चक्र का अध्ययन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को एक इकाई मानकर किया जाता है । इस प्रकार व्यापार चक्र भी इस विश्लेषण के विकास मे सहायक सिद्ध हुआ है ।

(र) **योजनाबद्ध आर्थिक विकास (Planned economic development)**—वर्तमान समय मे आर्थिक विकास योजनाबद्ध तरीको से किया जाता है । आर्थिक विकास म दिन-प्रतिदिन की जटिलताओ और समस्याओं को समझने के लिए सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है । अत स्वभाविक रूप से व्यापक विश्लेषण को प्रोत्साहन मिलता है ।

व्यापक अर्थशास्त्र की उपयोगिता (Utility of Macro Economics) —

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाओ तथा अन्य कारणो ने व्यापक अर्थशास्त्र का अधिक उपयोगी बना दिया है । इसकी उपयोगिता निम्नलिखित तथ्यो से स्पष्ट होती हैं —

(अ) **आर्थिक नीति के निर्माण मे सहायक**—आज सभी देशो की सरकारें (चाहे उनम किसी भी प्रकार की व्यवस्था हो) अपने नागरिको के कल्याण के लिये और सुरक्षा के लिए नीतिया निर्धारित करती हैं । इन नीतियो की सफलता के लिए व्यक्तिगत हित के स्थान पर समूह के हित को महत्व प्रदान किया जाता है ।

प्रो. बोल्डिंग (Boulding) के शब्दो म—'आर्थिक नीति के दृष्टिकोण से व्यापक अर्थशास्त्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यह इसलिए कि सरकार की आर्थिक नीतियो का सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर बड़े समूहो और व्यक्तियो के योगो (aggregates of individuals) से होता है । वास्तविकता यह है कि आर्थिक दृष्टि से राज्य स्वय व्यक्तियो का समूह है, इसलिए इसका अध्ययन व्यापक आर्थिक दृष्टि से होना चाहिए ।"[11]

(ब) **जटिल आर्थिक समस्याओ को समझने मे सहायक**—व्यापक अर्थशास्त्रीय विश्लेषण से वर्तमान जटिल अर्थ व्यवस्था का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है । व्यापक अर्थशास्त्र अर्थ-व्यवस्था के आर्थिक सगठन और सचालन का सही ज्ञान प्रदान करता है, जो कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के द्वारा सम्भव नही है ।

(स) **आर्थिक समस्याओ के समाधान मे सहायक**—यह विभिन्न आर्थिक समस्याओ का समाधान करने म सहयोग प्रदान करता है । अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओ, जैसे—

---

11 "From the point of view of economic policy, Macro-Economics is extremely important This is because the economic policies of government concern themselves of necessity not with individuals, but with large groups and aggregates of individuals Indeed, from an economic point of view the national state itself is an aggregate of individuals and must, therefore, be treated in Macro Economic terms" —Prof Boulding

राष्ट्रीय आय, जनसंख्या, रोजगार, पूंजी निर्माण, वितरण तथा राष्ट्रीय
आदि का समाधान केवल व्यापक विश्लेषण द्वारा ही किया जा सकता है।

(द) **सूक्ष्म विश्लेषण के विकास में सहायक**—व्यापक विश्लेषण सूक्ष्म विश्ले
विकास में भी सहायता प्रदान करता है, जैसे—एक फर्म से सम्बन्धित सिद्ध
निर्माण में अनेक फर्मों का सामूहिक रूप से अध्ययन करना पड़ता है।

(ध) **चल समूहों के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त करने में सहायक**—चल सम
सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त करने के लिये व्यापक अर्थशास्त्र का अ
आवश्यक है, क्योंकि यह सम्भव है कि जो बात एक व्यक्ति के लिये स
वह समूह के लिये गलत सिद्ध हो जाय, जैसे बचत एक व्यक्ति को ह
हानिकारक है।

(र) **मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकुचन की व्याख्या करने और उनके समाधान में सहाय**
मुद्रा प्रसार व संकुचन की व्याख्या करने और उनके प्रभावों को समझने में
अर्थशास्त्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन हो जाने के
समाज के विभिन्न वर्ग भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित होते हैं। व्यापक वि
संकुचन और प्रसार के दुष्परिणामों से बचने का रास्ता बताता है।

व्यापक अर्थशास्त्र की सीमायें (Limitations of Macro-Economics)

व्यापक आर्थिक विश्लेषण का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है, फिर भी
विश्लेषण की कुछ सीमायें हैं। प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं –

(अ) **वैयक्तिक इकाइयों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालना गलत है**—
विश्लेषण का खतरा यह है कि इसमें व्यक्तिगत अनुभव के निष्कर्षों को स
आर्थिक प्रणाली पर लागू करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु यह आव
नहीं है कि जो निष्कर्ष एक व्यक्ति या 'लघु समूहों' के लिए सही हो वह स
अर्थ-व्यवस्था के लिए भी सही हो।

जैसा कि कीन्स ने कहा है—"व्यक्तिगत बचत एक गुण है यदि सभी लोग बचत
करें तो एक अभिशाप बन जाती है।"

इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति बैंक से अपनी जमा राशि को निकालता है तो
प्रभाव बुरा नहीं पड़ेगा, यदि सभी व्यक्ति बैंक से अपनी जमा राशि को निकाल लें तो
फेल हो जायेगा।

इसी कारण बोल्डिंग ने कहा है—"व्यापक अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत अनुभवों
सामान्यीकृत (generalise) करने में हम सतर्क रहना चाहिए।"

(ब) व्यापक अर्थशास्त्र मे कभी कभी सजातीय समूहो (homogeneous groups) के **स्थान पर विजातीय समूहों (heterogeneous groups) का अध्ययन किया जाता है**—कभी-कभी व्यापक विश्लेषण मे निष्कर्ष निकालते समय ऐसे समूहो को सम्मिलित कर लिया जाता है जो कि समरूप या सजातीय नही होते।

प्रो० बोल्डिग के शब्दो मे—"समूहो को बनाने वाली मद परस्पर सम्बन्ध रखने वाली, महत्वपूर्ण और रोचक होनी चाहिये।"

जैसे :

(a) ६ सेव + ७ सेव = १३ सेव—यह समूह महत्व रखता है।

(b) ६ सेव + ७ नारगी = १३ फल—यह समूह कुछ महत्व रखता है।

(c) ६ सेव + ७ मकान = यह समूह निरर्थक है क्योकि सेव और मकान विजातीय हैं। अत इस प्रकार के विजातीय निरर्थक समूहो के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष व्यापक विश्लेषण के महत्व को कम कर देते हैं।

(स) **समूह की अपेक्षा समूह की रचना अधिक महत्वपूर्ण होती है**—जब अर्थशास्त्रियो द्वारा बिना समूह की प्रक्रिया को समझे ही समूह के आधार पर भविष्यवाणी की जाती है या कोई सुझाव दिया जाता है तो वह प्राय गलत होता है । अत यह आवश्यक है कि पहले समूह की भिन्न भिन्न इकाइयो का अलग अलग अध्ययन किया जाय।

प्रो बोल्डिग के शब्दो मे—"हमे समूह की भिन्न भिन्न मदो के स्वभाव पर ध्यान देना चाहिए। सभी मदो को एक ही स्वभाव की समझ लेना भयकर भूल होगी।"

उदाहरण के लिए, १९७० का सामान्य मूल्य स्तर कुछ समान है अर्थात् इसमे कोई परिवर्तन नही है। लेकिन यह सम्भव है कि इस वर्ष मे कृषि वस्तुओ के मूल्यो मे कमी आ गई हो और औद्योगिक वस्तुओ के मूल्य बढ गये हो। इस स्थिति मे कृषि और औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों म होने वाले परिवर्तन एक-दूसरे के प्रभाव को समाप्त कर देंगे तथा मूल्य स्तर पर कोई प्रभाव नही पडेगा। अत समूह के आधार पर बिना समूह की रचना समझे हुए भविष्यवाणी करना उचित नही है।

(द) **समूह (aggregate) अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो को समान रूप से प्रभावित नहीं करता**—सदैव यह आवश्यक नही है कि सामूहिक प्रवृत्ति अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रो को समान रूप से प्रभावित करे, जैसे सामान्य मूल्य स्तर मे होने वाली वृद्धि समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित नही करती। मूल्य स्तर मे

वृद्धि से निश्चित आय प्राप्त करने वाले वर्ग को हानि होती है, जबकि उत्पादक वर्ग को लाभ प्राप्त होता है।

(य) समूह की मापना कठिन है—इस विश्लेषण मे यह कठिनाई आती है कि किस प्रकार भिन्न भिन्न स्वभाव वाली वस्तुओ को एक वस्तु के रूप मे व्यक्त किया जाय।

सूक्ष्म तथा व्यापक अर्थशास्त्र की पारस्परिक निर्भरता
(Interdependence of Micro and Macro Economics)

सूक्ष्म एव व्यापक अर्थशास्त्र का अलग अलग अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनो एक दूसरे के विरोधी हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि विश्लेषण की दोनो विधियाँ एक दूसरे की पूरक है। ये दोनो विश्लेषण अपने क्षेत्र, विषय वस्तु और दृष्टिकोण की दृष्टि से अर्थशास्त्र म अपना अलग-अलग स्थान रखते हैं, परन्तु यह भिन्नता दोनो को असम्बद्ध नहीं करती। अपनी विचारधारा के अनुसार एक अर्थशास्त्री किसी एक दृष्टिकोण पर जोर देता है तो दूसरा अर्थशास्त्री दूसरे दृष्टिकोण पर। परन्तु दृष्टिकोणो की यह भिन्नता सूक्ष्म और व्यापक विश्लेषण की पारस्परिक निर्भरता को कम नहीं करती। इस स्थिति को हम निम्न उदाहरणो द्वारा स्पष्ट कर सकते है —

(अ) सूक्ष्म अर्थशास्त्र की व्यापक अर्थशास्त्र पर निर्भरता—मान लीजिए कि एक फर्म अपने फर्म मे कार्यरत श्रमिको की मजदूरी के सम्बन्ध म निर्णय लेती है, यह समस्या सूक्ष्म अर्थशास्त्र की है, क्योकि यह फर्म विशेष से ही सम्बन्धित है। यह फर्म मजदूरी निर्धारित करते समय दूसरी फर्मो म श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी को देखेगी तथा राष्ट्रीय मजदूर नीति को भी ध्यान म रखेगी। इसका कारण यह है कि एक फर्म मे दी जाने वाली मजदूरी उसी फर्म की माग पर निर्भर नहीं करती, बल्कि सम्पूर्ण आर्थिक सगठन की स्थिति से प्रभावित होती है।

(ब) यदि एक फर्म अपनी उत्पादित वस्तु का मूल्य निर्धारित करती है तो वह मूल्य निर्धारित करने से पहले दूसरी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओ के मूल्यों की ओर भी ध्यान देती है।

(स) यदि एक फर्म अपनी वस्तु के उत्पादन की मात्रा निर्धारित करना चाहती है तो वह मात्रा निर्धारित करते समय समाज की कुल माग और रोजगार की स्थिति को ध्यान मे रखती है।

अत हम यह कह सकते है कि सूक्ष्म अर्थशास्त्र को विभिन्न वैयक्तिक इकाइयो की समस्याओ का अध्ययन करने और उनको सुलझाने के लिए व्यापक अर्थशास्त्र का सहारा लेना पड़ता है।

व्यापक अर्थशास्त्र की सूक्ष्म अर्थशास्त्र पर निर्भरता

जिस प्रकार सूक्ष्म अर्थशास्त्र की समस्याओ के अध्ययन के लिए व्यापक अर्थशास्त्र का सहयोग आवश्यक है, उसी प्रकार व्यापक अर्थशास्त्र की समस्याओ के लिए सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सहयोग की आवश्यकता होती है :—

(अ) यदि एक अर्थशास्त्री सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करना चाहता है तब उसे इस अध्ययन के लिए व्यक्तियो, फर्मो, परिवारो और उद्योगो का अध्ययन करना आवश्यक होगा, क्योकि वैयक्तिक इकाइयो के स्वरूप को बिना समझे अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी प्राप्त नही हो सकेगी।

(ब) यदि सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के लिए किसी योजना का निर्माण करना है तो इसके लिए वैयक्तिक फर्मों, उद्योगो आदि की योजनाओ की ओर ध्यान देना होना होता है। इस सम्बन्ध मे प्रो डी एन गुर्टू का कथन उल्लेखनीय है—"व्यक्तिगत समस्याओ पर सूक्ष्म रूप से विचार किये बिना सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था की समस्याओ को जानना और सुलझाना उसी प्रकार अकल्पनीय है जिस प्रकार कोई बिना सीढियो को पार किये हुए कमरे की छत पर पहुँचना चाहे।"

इस प्रकार व्यापक अर्थशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए सूक्ष्म अर्थशास्त्र का सहयोग भी आवश्यक है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र एक दूसरे के परस्पर सहयोगी है। इन दोनो म कोई विश्लेषण अपने मे पूर्ण नही है। किसी भी आर्थिक समस्या के लिए दोनो दृष्टिकोणो का सहयोग लेना पडता है। इस सम्बन्ध मे प्रो सेम्यूलसन (Samuelson) का कथन सही प्रतीत होता है। उन्ही के शब्दो मे—

"वास्तव मे सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र म कोई विरोध नही है। दोनो अत्यावश्यक हैं। यदि आप एक को समझते है और दूसरे से अनभिज्ञ रहते है तो आप केवल अर्द्धशिक्षित हैं।"[१२]

---

12 "There is really no opposition between Micro and Macro-Economics. Both are absolutely vital And you are only half educated if you understand the one while being ignorant of the other"
— Prof Samuelson

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ सूक्ष्म अर्थशास्त्र एव व्यापक अर्थशास्त्र पर एक लेख लिखिए।

२ सूक्ष्म अर्थशास्त्र तथा व्यापक अर्थशास्त्र मे अन्तर बताइए तथा दोनो प्रकार के विश्लेषण की सीमाये भी समझाइए।

३ सूक्ष्म अर्थशास्त्र किसे कहते हैं। आर्थिक विश्लेषण मे सूक्ष्म अर्थशास्त्र के महत्व को समझाइये और इसकी सीमाओ की व्याख्या कीजिये।

४. व्यापक अर्थशास्त्र से क्या अभिप्राय है ? आर्थिक विश्लेषण मे व्यापक अर्थशास्त्र का महत्व समझाइये और इसकी सीमाओ की व्याख्या कीजिए।

५ "वास्तव मे सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र मे कोई विरोध नही है। दोनो अत्यावश्यक है। यदि आप एक को समझते है और दूसरे से अनभिज्ञ रहते हैं तो आप केवल अर्द्धशिक्षित हैं —सैम्यूलसन"। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

६ "अर्थशास्त्री को सूक्ष्म अर्थशास्त्र और व्यापक अर्थशास्त्र, दोनो का अध्ययन करना पडता है। दोनो विधिया एक-दूसरे की पूरक (complementary) हैं, वैकल्पिक (alternate) नहीं।" इसकी व्याख्या कीजिए।

७ सूक्ष्म और व्यापक अर्थशास्त्र की उपयोगिता बताइए और इसकी सीमाओ का वर्णन कीजिए।

अध्याय २

★

उपयोगिता-विश्लेषण

[Utility-Analysis]

★ ★ ★

उपयोगिता का अर्थ (Meaning of Utility) :

सामान्य भाषा में उपयोगिता (utility) और लाभदायकता (usefulness) को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ सामान्य अर्थ से भिन्न है। अर्थशास्त्र में उपयोगिता से अभिप्राय किसी वस्तु या सेवा की मानवीय आवश्यकता को सतुष्ट करने की शक्ति से होता है। दूसरे शब्दों में, किसी वस्तु या सेवा की वह शक्ति जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आवश्यकता को सतुष्ट करती है, उपयोगिता कहलाती है। उदाहरण के लिए पैन, में उपयोगिता है क्योंकि यह हमारी लिखने की आवश्यकता को सतुष्ट करता है।

उपयोगिता की परिभाषा को समझने के लिये निम्नांकित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) **उपयोगिता व्यक्तिगत** (Subjective) **तथा सापेक्षिक** (Relative) **होती है**—उपयोगिता का विचार सापेक्षिक है। यह व्यक्ति की आन्तरिक भावनाओं से सम्बन्धित है। उपयोगिता व्यक्तिगत और सापेक्षिक होने के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये भिन्न-भिन्न हो सकती है। यह भी सभव है कि उपयोगिता एक ही व्यक्ति के लिये भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न हो। उदाहरण के लिये, मेज A व्यक्ति के लिये उपयोगी है, आवश्यक नहीं है कि वह B व्यक्ति के लिये भी उपयोगी हो।

(२) **उपयोगिता तथा लाभदायकता में निश्चित सम्बन्ध नहीं होता**—उपयोगिता तथा लाभदायकता दोनों अलग-अलग है, एक-दूसरे से सम्बन्धित नहीं। यह सभव

है कि कोई वस्तु एक व्यक्ति के लिये लाभदायक नही हो, फिर भी वह वस्तु उस व्यक्ति के लिये उपयोगिता रखती हो। उदाहरण के लिये, शराब स्वास्थ्य के लिये लाभदायक नही है फिर भी शराबी के लिये यह अत्यधिक उपयोगिता रखती है।

(३) **उपयोगिता आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है**—जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिये हमारी इच्छा जितनी अधिक तीव्र होगी, उस वस्तु से उतनी ही अधिक उपयोगिता या सतुष्टि प्राप्त होगी। इस प्रकार उपयोगिता का वस्तु से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता।

(४) **उपयोगिता तथा नैतिकता (Morality) का सम्बन्ध नहीं होता**—उपयोगिता का सम्बन्ध नैतिकता से बिल्कुल भी नहीं है। उदाहरण के लिये, बिना लाइसेंस के पिस्तौल रखना अपराध है तथा गैर कानूनी है लेकिन उस व्यक्ति के लिये उपयोगी है जो कि स्मगलिंग का कार्य करता है।

(५) **उपयोगिता वस्तु की मात्रा पर निर्भर करती है**—जैसे-जैसे किसी एक वस्तु की पूर्ति मे वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे उसकी अगली इकाई की वृद्धि से प्राप्त उपयोगिता घटती जाती है। एक सीमा के बाद उस वस्तु की उपयोगिता शून्य रह जाती है। इस प्रकार **एडवर्ड नेविन** (Edward Navin) के शब्दो मे—"अर्थशास्त्र मे उपयोगिता से अर्थ उस सतुष्टि से है जो किसी व्यक्ति को धन या सम्पत्ति के उपयोग से प्राप्त होती हैं।"[1]

फ्रेजर ने इस धारणा को अधिक विस्तृत कर दिया है। **फ्रेजर** (Fraser) के शब्दो मे—"यह केवल इच्छा करना है।"[2]

उपयोगिता की माप (Measurement of Utility)

किसी वस्तु अथवा सेवा का वह गुण जिसमे मानवीय आवश्यकता को सतुष्ट करने की क्षमता है, उपयोगिता कहलाता है। उपयोगिता वस्तुगत न होकर उपभोक्ता की मनोवैज्ञानिक स्थिति एव दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। अत एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या उपयोगिता को मापा जा सकता है? उपयोगिता की माप के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो मे दो दृष्टिकोण हैं—

---

1 एडवर्ड नेविन ने बताया है कि अर्थशास्त्र मे उपयोगिता का अर्थ यह है कि कुछ व्यक्ति इसे चाहते हैं, किन्तु व्यक्ति इसे क्यो चाहते हैं इससे अर्थशास्त्र का कोई सम्बन्ध नही।

2 "It is simply desireness" —Fraser

(१) गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal approach), तथा

(२) क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal approach)।

गणनावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach)

मार्शल तथा पीगू आदि अर्थशास्त्रियों का यह विचार है कि उपयोगिता की माप सम्भव है। उपयोगिता की माप करने के लिये वे मुद्रा रूपी पैमाने का प्रयोग करते हैं। उनका विचार है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु के लिये कीमत उसकी उपयोगिता से अधिक नहीं देगा। अत किसी वस्तु के लिये दी जाने वाली कीमत मोटे रूप में उस वस्तु की उपयोगिता की माप है। उदाहरण के लिये, एक व्यक्ति पुस्तक के लिये १२) रुपये देने को तैयार है तो उस व्यक्ति के लिये पुस्तक की उपयोगिता १२) रुपये के बराबर है।

उपयोगिता की माप सम्भव है। इस दृष्टिकोण को गणनावाचक दृष्टिकोण कहते हैं, तथा इस दृष्टिकोण के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को गणनावाचक अर्थशास्त्री (cardinalist) कहते हैं। इनके अनुसार उपयोगिता को सीधी संख्याओं में व्यक्त किया जा सकता है, जैसे—४, ६, ८, १० इत्यादि। अत इस दृष्टिकोण के अनुसार उपयोगिता को मापना और तुलना करना सम्भव है। जैसे A व्यक्ति को सन्तरे से ३० उपयोगिता प्राप्त होती है तथा सेब से १५ इकाई उपयोगिता प्राप्त होती है। इससे स्पष्ट है कि सन्तरे से प्राप्त होने वाली उपयोगिता A व्यक्ति के लिये सेब की उपयोगिता से दुगुनी है।

इस दृष्टिकोण को गणनावाचक उपयोगिता दृष्टिकोण (cardinal utility approach) या गणनावाचक उपयोगिता (cardinal utility) भी कहते हैं।

क्रमवाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach)

मार्शल के गणनावाचक दृष्टिकोण से कुछ अर्थशास्त्री सहमत नहीं हैं। **परेटो** (Pareto), **ऐलन** (Allen) तथा **हिक्स** (Hicks) आदि ने बताया कि उपयोगिता की माप करना सम्भव नहीं है और न ही उपयोगिता को संख्या में व्यक्त किया जा सकता है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार वस्तुओं को विभिन्न संयोगों के आधार पर क्रमबद्ध रूप से रखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उपयोगिता को केवल 'क्रमवाचक संख्याएं' ही प्रदान की जा सकती हैं। जैसे यदि हम पेन और स्याही की उपयोगिता को मापना चाहें तो उसे निश्चित संख्या में प्रकट न करके केवल यह कहेंगे कि पेन की उपयोगिता स्याही से अधिक है। इस प्रकार केवल प्राथमिकता (preference) निर्धारित करते हैं।

इस दृष्टिकोण को क्रमवाचक दृष्टिकोण कहते हैं तथा इस दृष्टिकोण के मानने वाले अर्थशास्त्रियों को क्रमवाचक अर्थशास्त्री (ordinalists) कहते हैं। हिक्स के अनुसार

उपयोगिता की माप करना सभव नही है, अत उन्होने उपयोगिता विश्लेषण (utility analysis) के स्थान पर 'तटस्थता वक्र विश्लेषण (indifference curve analysis) का रीति प्रतिपादित की ।[3] परेटो तथा हिक्स ने उपयोगिता के मापन का विरोध निम्नांकित कारणो से किया —

(१) उपयोगिता मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिगत विचार है, अत इसे मापने का प्रयास करना गलत है ।

(२) उपयोगिता म परिवर्तन व्यक्ति एव परिस्थिति मे परिवर्तन होने के साथ ही हो जाते है, अत परिवर्तनशील तत्व को मापना कठिन है ।

(३) उपयोगिता को मापने के लिये कोई निश्चित तथा स्थिर पैमाना नही है ।

इस प्रकार हिक्स आदि अर्थशास्त्री न तो उपयोगिता को मापना सभव मानते है और न आवश्यक । आधुनिक अर्थशास्त्री गणनावाचक दृष्टिकोण के स्थान पर क्रमवाचक दृष्टिकोण को मान्यता प्रदान करते है ।

उपयोगिता के रूप (Forms of Utility) ·

उपयोगिता को मुख्य रूप से दो भागो मे विभाजित किया जाता है —

(१) सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) , तथा

(२) कुल उपयोगिता (Total utility) ।

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु का उपभोग करता है तो वह वस्तु की पहली, दूसरी, तीसरी इकाई का उपभोग करता जाता है । उपभोग की जाने वाली अन्तिम इकाई को सीमान्त इकाई (marginal unit) कहते हैं, तथा इस इकाई से प्राप्त उपयोगिता को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं । परन्तु इस प्रकार की परिभाषा अधिक उपयुक्त नही है । आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार—

"उपभोग की जाने वाली वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई मे वृद्धि होने से कुल उपयोगिता मे जो वृद्धि होती है, उसे सीमान्त उपयोगिता कहते है ।

यह उपयोगिता हमेशा वस्तु की अन्तिम इकाई से प्राप्त होती है । प्रो बोल्डिंग के शब्दो मे—"वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता मे वृद्धि है जो कि उपभोग मे एक और इकाई की वृद्धि के परिणामस्वरूप होती है ।"[4]

---

3 विस्तृत अध्ययन के लिये 'तटस्थता वक्र विश्लेषण' (Indifference Curve Analysis) अध्याय देखिये ।

4 'The marginal utility of any quantity of a commodity is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption " — Prof Boulding

सीमान्त उपयोगिता को निम्न उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है

सन्तरो की सख्या	सीमात उपयोगिता	कुल उपयोगिता
१	१० ⎫	१०
२	८ ⎪	१८
३	६ ⎬ घनात्मक उपयोगिता	२४
४	४ ⎪	२८
५	२ ⎭	३०
६	०]– शून्य उपयोगिता	३०—पूर्ण तृप्ति का बिन्दु
७	–२]– ऋणात्मक उपयोगिता	२८

उपर्युक्त उदाहरण म सीमान्त उपयोगिता के तीन रूप बताये गये है—(अ) घनात्मक (positive), (ब) शून्य zero) और (स) ऋणात्मक (negative)। जब उपभोक्ता सन्तरे की ५ इकाइयो तक उपभोग करता है तो उसे कुछ सतुष्टि प्राप्त होती है, यह घनात्मक उपयोगिता है। जब ६वी इकाई का उपभोग करता है तो उसे कोई सन्तुष्टि प्राप्त नही होती अर्थात् सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है। इसके बाद भी ७वी इकाई का उपभोग करता है तब अनुपयोगिता प्राप्त होती है, अर्थात् ऋणात्मक उपयोगिता मिलने लगती है। शून्य उपयोगिता की अवस्था को अर्थशास्त्र मे पूर्ण तृप्ति की अवस्था (Point of Satiety) कहते हैं। इस स्थिति को चित्र मे स्पष्ट किया गया है।
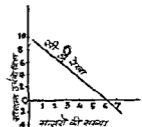
कुल उपयोगिता (Total Utility) :

किसी व्यक्ति को वस्तु की विभिन्न इकाइयो से प्राप्त उपयोगिता का योग कुल उपयोगिता है। जैसे-जैसे किसी वस्तु की इकाइयो के उपभोग मे वृद्धि करते जाते हैं, वैसे वैसे प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता बढती जाती है। जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, कुल उपयोगिता मे होने वाली वृद्धि रुक जाती है।

मेयर्स (Meyers) के अनुसार--"किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों के उपभोग के परिणामस्वरूप प्राप्त सीमान्त उपयोगिताओं का योग कुल उपयोगिता है।'[5]
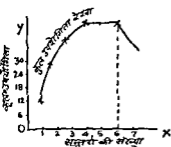
पिछले पृष्ठ पर दिये गये उदाहरण से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे सन्तरों की इकाइयों का उपभोग किया जाता है, कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है। लेकिन यह वृद्धि घटती हुई दर से होती है। ६वी इकाई से प्राप्त उपयोगिता शून्य है, उस समय कुल उपयोगिता मे वृद्धि नही होती। ७वीं इकाई के प्रयोग से ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है, अत कुल उपयोगिता बढ़ने के स्थान पर घट जाती है।

कुल उपयोगिता की इस अवस्था को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है।

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता में सम्बन्ध (Relationship between Marginal Utility and Total Utility)

किसी वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। सन्तरो के उदाहरण म यह सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इसकी प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं :—

(१) वस्तु के उपभोग की मात्रा मे वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है, तथा कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है। कुल उपयोगिता म यह वृद्धि घटते हुए अनुपात मे होती है।

(२) जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, कुल उपयोगिता की वृद्धि रुक जाती है। उस समय कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। इसी बिन्दु को अधिकतम सन्तुष्टि का बिन्दु कहते है।

(३) शून्य उपयोगिता के बाद भी यदि उपभोग का क्रम जारी रखा जाता है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप कुल उपयोगिता घटने लगती है।

---

5 "Total utility is the sum of the marginal utilities, associated with the consumption of the successive units"

—A L Meyers'

रेखाचित्र के माध्यम से भी सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता के सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा सकता है।

उपर्युक्त चित्र मे पहली इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता समान है। इसके बाद ५वीं इकाई तक सीमान्त उपयोगिता गिरती जाती है, तथा कुल उपयोगिता बढती जाती है। ६वी इकाई पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है तब कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। ७वी इकाई के उपभोग से सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है और कुल उपयोगिता गिर जाती है।
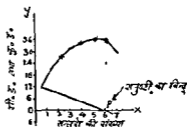
सीमान्त के विचार का महत्व
(Importance of the Concept of Margin)

सीमान्त के विचार या सीमान्त विश्लेषण (marginal analysis) का आर्थिक विश्लेषण मे महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रों म इसका प्रयोग होता है। सीमान्त विश्लेषण के इसी महत्व के कारण प्रो॰ मेहता ने कहा है—

"यह कहा जा सकता है कि लगभग सम्पूर्ण आर्थिक ढाचा सीमान्त उपयोगिता के विचार पर आधारित है।"[६]

इस विचार का महत्व निम्नांकित विवरण से स्पष्ट हो जाता है —

(१) उपभोग—उपभोग के क्षेत्र मे यह विश्लेषण सभी प्रमुख सिद्धान्तों का आधार है। समसीमान्त उपयोगिता नियम, क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम, उपभोक्ता की बचत, माग का नियम आदि सीमान्त विश्लेषण पर ही आधारित है।

(२) उत्पादन—उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह उत्पादन के विभिन्न साधनों—भूमि, श्रम, पूंजी, व्यवस्था को इस प्रकार प्रयोग म लाता है जिससे कि समस्त साधनों से प्राप्त सीमान्त उत्पादन एकसमान हो जाय। इसी स्थिति मे उसको अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। अत सीमान्त विश्लेषण का महत्व उत्पादन के क्षेत्र म भी है।

---

6 ". it can be said that almost the entire economic structure is based on the conception of marginal utility"

— Prof J K Mehta

(३) विनिमय (Exchange)—विनिमय अर्थात् मूल्य-निर्धारण के क्षेत्र मे सीमान्त विश्लेषण अत्यधिक महत्वपूर्ण है । एक व्यक्ति जब वस्तु को क्रय करता है तो वह उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को ध्यान में रखता है । वह वस्तु का मूल्य सीमान्त उपयोगिता से अधिक देने को तैयार नही होता । अत सीमान्त उपयोगिता क्रय की सीमा निर्धारित कर देती है ।

कुछ अथशास्त्रियो का यह दृष्टिकोण है कि वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है, न कि सीमान्त उपयोगिता द्वारा । इस सम्बन्ध मे जे. के मेहता का कथन उल्लेखनीय है, उन्ही के शब्दो म—

"उत्पादन व्यय स्वय उत्पत्ति के साधनों की सीमान्त उपयोगिताओ द्वारा निर्धारित होता है।"७

मूल्य निर्धारण की सन्तुलन (equilibrium) की अवस्था मे सीमान्त उपयोगिता तथा उत्पादन व्यय (सीमान्त लागत) बराबर होते हैं । दूसरे शब्दो मे, सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त लागत दोनो मूल्य निर्धारित करती है ।

(४) वितरण—प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को हिस्सा या पुरस्कार उस साधन की सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) के बराबर दिया जाता है । अत साधनो का पुरस्कार निर्धारित करने मे भी सीमान्त विश्लेषण महत्वपूर्ण है ।

(५) राजस्व (Public finance)—सरकार का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना होता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह सीमान्त उपयोगिता का सहारा लेती है । आय प्राप्त करने तथा व्यय करने, दोनो ही स्थितियो म विभिन्न व्यक्तियो तथा वर्गो के सीमान्त त्याग तथा सीमान्त उपयोगिता को ध्यान म रखती है ।

अत उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सीमान्त विश्लेषण का प्रयोग अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र मे होता है तथा यह अर्थशास्त्र म महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

सीमांत निश्लेषण की मान्यताएँ
(Assumptions of Marginal Analysis)

अर्थशास्त्र के अन्य नियमो के समान यह विश्लेषण भी कुछ मान्यताओ पर आधारित हैं । ये मान्यतायें निम्न प्रकार है —

7 " the cost of production itself is determined by marginal utilities of the factors of production " —J K Mehta

(१) वस्तु की सभी इकाइयां एकरूप (homogeneous) होती है।

(२) मूल्य में परिवर्तन होने से वस्तु की माग तथा पूर्ति मे भी परिवर्तन हो जाते है।

(३) उपभोक्ता सदैव विवेकपूर्ण (rational) तरीके से कार्य करता है।

(४) मनुष्य के पास व्यय करने के लिये निश्चित आय होती है।

(५) बाजार मे बहुत से क्रेता और विक्रेता होते हैं, लेकिन विचाराधीन व्यक्ति विशेष ही होता हैं।

सीमान्त विश्लेषण की उपर्युक्त मान्यताओ मे से अधिकाश मान्यतायें काल्पनिक तथा तथ्यहीन है, अत वास्तविकता से इनका सम्बन्ध नही होता।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. उपयोगिता से क्या अभिप्राय है ? इसकी माप किस प्रकार की जाती है।

२ क्या उपयोगिता मापनीय विचार है ? प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो द्वारा बनाये गये माप के तरीको के विरुद्ध आपत्ति क्यों उठायी जाती है ?

३ सीमात उपयोगिता और कुल उपयोगिता के विचार की व्याख्या कीजिए। इन दोनो के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

४. यह सिद्ध कीजिए कि जब एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है तो उसकी कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।

५ मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण सम्बन्धी विचार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

अध्याय ३

★

तटस्थता-वक्र विश्लेषण
[Indifference-Curve Analysis]

★ ★ ★

मार्शल एव उससे पूर्व के सभी अर्थशास्त्रियों की यह धारणा थी कि उपयोगिता को माप द्रव्य रूपी मापदण्ड के द्वारा करना सम्भव है। सर्वप्रथम अर्थशास्त्री पेरेटो (Pareto) ने १९०६ मे यह बताया कि उपयोगिता की ठीक-ठीक माप करना सम्भव नहीं है। पेरेटो ने बताया कि उपयोगिता तुलनात्मक तथा सापेक्षिक होती है, न कि निरपेक्ष। किसी वस्तु के उपभोग से वास्तविक उपयोगिता कितनी प्राप्त हुई है इसका ज्ञान केवल उपभोक्ता को ही होता है। अत उन्होंने मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण utility analysis) को अस्वीकार कर प्राथमिकता क्रम (scale of preference) के विचार का प्रयोग प्रारम्भ किया।

उपयोगिता विश्लेषण का विचार संख्यात्मक (cardinal) है जबकि 'प्राथमिकता चक्र' (preference approach or scale preference) का विचार क्रमवाचक (ordinal) है। इसमे उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं होती इसके अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तुओं को क्रय करते समय अपने 'प्राथमिकता क्रम' को ध्यान मे रखता है अर्थात् महत्व के अनुसार वस्तुओं को क्रय करता है। प्रत्येक क्रम को क्रमवाचक संख्यायें प्रदान की जाती हैं और प्रत्येक क्रम सतुष्टि के स्तर को स्पष्ट करता है।

तटस्थता वक्रो की पृष्ठभूमि (The Background of Indifference Curve)

सर्वप्रथम एजवर्थ (Edgeworth) ने १८८१ मे तटस्थता वक्र रेखाओं का प्रयोग किया। तत्पश्चात् इटलियन अर्थशास्त्री पेरेटो (Pareto) ने १९०६ मे यह स्पष्ट किया कि उपयोगिता को मापना सम्भव नहीं है अत उन्होंने उपयोगिता के विचार के स्थान पर प्राथमिकता क्रम (scale of preference) को महत्व दिया।

पेरेटो के इस विचार मे १९१३ मे जॉनसन (Johnson) ने तथा १९१५ मे स्लटस्की (Slutsky) ने कुछ सुधार किये। तत्पश्चात् ऐलन (Allen) तथा हिक्स (Hicks)

ने इस विचार की विस्तृत तथा स्पष्ट व्याख्या की । विकस्टीड (Wickstead), वीजर (Wieser) तथा चेम्बरलीन (Chamberlin) ने भी माग विश्लेषण के लिये तटस्थता वक्रो का प्रयोग किया है । इस प्रकार मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के स्थान पर तटस्थता वक्र रेखाओ का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है ।

तटस्थता वक्र की परिभाषा (Definition of Indifference Curve)

तटस्थता वक्र वह रेखा है जिस पर स्थित प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओ के ऐसे सयोगो को बताता है, जिससे किसी उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्राप्त होती है । अर्थात तटस्थता वक्र पर अकित प्रत्येक बिन्दु उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्रदान करने वाले सयोगो को प्रदर्शित करता है । सभी सयोगो से समान सतुष्टि प्राप्त होने के कारण ही उपभोक्ता सयोगो के चुनाव मे रुचि नही दिखाता, अर्थात् तटस्थ रहता है । सयोगो के चुनाव मे तटस्थता के कारण ही इसे तटस्थता वक्र कहते है । तटस्थता वक्र की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाये निम्न प्रकार हैं —

> **जे के ईस्थम** (J K Eastham) के शब्दो मे—"यह मात्राओ के उन जोडो को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओ का मार्ग होता है जिनमे व्यक्ति तटस्थ होता है इसी कारण इसे तटस्थता वक्र कहते हैं ।"[1]

> **स्टिगलर** (Stigler) के अनुसार—"यदि वस्तुयें विभाजित की जा सकती हैं तो हम X और Y वस्तुओ के ऐसे सयोग बना सकते है जो सन्तुष्टि की दृष्टि से समान हो । यदि ऐसे समान सयोगो को ग्राफ पर प्रदर्शित कर एक-दूसरे से मिला दे तो एक वक्र रेखा Io बन जाती है । Io वक्र रेखा को तटस्थता वक्र रेखा कहते है । *क्योंकि इस रेखा पर प्रदर्शित X और Y वस्तुओ के विभिन्न सयोगो मे से वह चुनाव* करने मे तटस्थ रहता है ।"[2]

---

1 It is the laws of points representing pairs of quantities between which individual is indifferent, so it is termed as indifference curve" —J. K Eastham

2 "If the commodities are divisible, we can construct an infinite number of combinations of X and Y which are equivalent If we plot on co ordinate paper all the combinations which are equi valent, we construct a continuous curve Io, the curve Io is called indifference curve because the consumer is indifferent as to which of the combinations of X and Y an Io he possesses" —Stigler

के ई बोल्डिंग के मतानुसार—"समान प्राथमिकतायें (preference) प्रदर्शित करने वाली रेखायें तटस्थता वक्र रेखायें कहलाती हैं, क्योंकि वे ऐसी मात्राओं के संयोगों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो कि एक-दूसरे से न अच्छे हैं और न बुरे, बल्कि तटस्थ हैं।"[3]

तटस्थता वक्र सामान्यतः X और Y अक्षांशों के सन्दर्भ में खींचे जाते हैं, इनमें एक अक्षांश पर एक वस्तु और दूसरे अक्षांश पर दूसरी वस्तु को मापा जाता है। जिन वस्तुओं का हम अध्ययन करते हैं वे भौतिक वस्तुयें, सेवायें अथवा मुद्रा हो सकती हैं, जिनके बीच विनिमय सम्भव होता है।

तटस्थता वक्र सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें (Some important points related to Indifference Curve) —

तटस्थता वक्रों का निर्माण करते समय कुछ बातें आवश्यक हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(१) तटस्थता तालिका (Indifference Schedule) —तटस्थता वक्र के निर्माण से पूर्व तटस्थता तालिका तैयार की जानी चाहिए। तटस्थता तालिका दो या दो से अधिक वस्तुओं के संयोगों को प्रदर्शित करती है, जिनमें प्रत्येक संयोग से उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है। इन विभिन्न संयोगों में उपभोक्ता अपने को प्राथमिकता (preference) प्रदान करने में असमर्थ पाता है। प्रो. मेयर्स (Meyers) के शब्दों में—"तटस्थता तालिका वह तालिका है जो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे कि किसी व्यक्ति को समान संतोष प्राप्त होता है।"[4]

तटस्थता तालिका को उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

तटस्थता तालिका

संयोग संख्या	काफी की संख्या	सिगरट की संख्या	प्राप्त उपयोगिता
१	२ कप	१५	समान उपयोगिता
२	३ "	१०	
३	४ "	६	
४	५ "	३	
५	६ "	१\	

3 " lines of equal preference are called indifference curves because they represent combinations of quantities which are neither better nor worse than each other but are indifferent " —K E Boulding

4 "An indifference schedule may be defined as a schedule of various combinations of goods that will be equally satisfactory to the individual concerned " — A L Meyers

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता को २ कप काफी और १५ सिगरेट (पहला सयोग) से जितनी उपयोगिता प्राप्त होती है उतनी ही उपयोगिता ६ कप काफी और १ सिगरेट (पाचवा सयोग) से प्राप्त होनी है, अर्थात् प्रत्येक सयोग समान उपयोगिता प्रदान करता है। इसीलिए उपभोक्ता विभिन्न सयोगो के चुनाव के विषय मे बिल्कुल तटस्थ रहता है।

(२) **तटस्थता वक्र (Indifference Curve)** —उपभोक्ता की इस तटस्थता को एक तटस्थता वक्र के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। सिगरेट और कॉफी के विभिन्न सयोगो के बिन्दुओ को यदि मिला दिया जाय तो वह वक्र (curve) बन जाता है। यह वक्र तटस्थता वक्र कहलाता है। मेयर्स के शब्दो मे—"यदि इसे (तटस्थता तालिका) एक रेखा के रूप मे दिखाया जाय तब हमे तटस्थता वक्र प्राप्त होता है।"[5]

तटस्था वक्र पर अंकित प्रत्येक बिन्दु समान सतुष्टि प्रदान करता है। अत. उपभोक्ता इन विभिन्न सयोगो के मध्य तटस्थ रहता है, इसीलिये तटस्थता वक्रो को 'समान उपयोगिता वक्र (Iso-utility curve) भी कहते है।
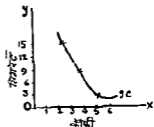
उपर्युक्त चित्र मे Ic तटस्थता वक्र है। यह वक्र कॉफी और सिगरेट के विभिन्न सयोगो के बिन्दुओ को मिलाकर बना है। इस वक्र पर स्थित प्रत्येक बिन्दु कॉफी और सिगरेट के सयोग को प्रदर्शित करता है।

तटस्थता मानचित्र
(Indifference Map)

उपर्युक्त तटस्थता तालिका तथा तटस्थता वक्र मे कॉफी और सिगरेट के ऐसे विभिन्न सयोगो को प्रदर्शित किया गया है जिनके चुनाव करने मे उपभोक्ता तटस्थ रहता है। परन्तु कॉफी और सिगरेट के ऐसे सयोग भी बनाये जा सकते है, जिससे उपभोक्ता को भिन्न-भिन्न उपयोगिता प्राप्त हो सकती है। भिन्न-भिन्न उपयोगिता प्रदान करने वाले भिन्न-भिन्न सयोगो को एक ही रेखा के द्वारा प्रदर्शित नही किया जा सकता, बल्कि इन सयोगो को अलग-अलग

---

5 "If we depict this (indifference schedule) in the form of a curve, we get an indifference curve" —A L Meyers

रेखा के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न सयोगों के लिए अलग-अलग रेखाओ का निर्माण करना होगा। इस प्रकार एक ही रेखा चित्र द्वारा, अनेक तटस्थता वक्रो का, जो कि उपभोक्ता के लिये विभिन्न सतुष्टि के स्तरो को बताते हैं, प्रदर्शित किया जाता है, तटस्थता मानचित्र कहलाता है।
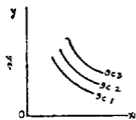
प्रो० मेयस (Meyers) के शब्दो मे तटस्थता वक्रो के परिवार को तटस्थता मानचित्र कहते हैं।[6]

उपर्युक्त रेखा चित्र म Ic_1, Ic_2, Ic_3 रेखायें उपभोक्ता के लिए विभिन्न सतुष्टि के स्तरो को प्रदर्शित करती है। प्रत्यक रेखा दो वस्तुओ के सयोगो को प्रदर्शित करती है। यहा एक बात महत्वपूर्ण है कि मूल बिन्दु (point of origin) से जितनी तटस्थता रखा दूर होगी, उतनी ही अधिक सतुष्टि (उपभोक्ता के लिये) वह प्रदर्शित करेगी। जैस-जैसे रेखा मूल बिन्दु (बायी ओर) की ओर खिसकती जायेगी, वैसे वैस कम सतुष्टि को बना दगी।

तटस्थता मानचित्र की तुलना परिधि रेखाओ (contour lines) से करते हुए स्टोनियर और हेग (Stonier and Hague) ने लिखा है—

> तटस्थता रेखाएँ मानचित्र की परिधि रेखाओ के समान है जो कि समुद्रतल से समान ऊंचाई के स्थानो को प्रदर्शित करती है। स्थानो की ऊंचाई का निरूपण करन के स्थान पर तटस्थता रेखा सन्तुष्टि के एक स्तर को ही प्रदर्शित करती है। सतुष्टि की मात्रा की माप उस विधि से करना सम्भव नही जिससे समुद्रतल की ऊचाइया मापी जाती है।"

तटस्थता वक्रों की मान्यतायें (Assumptions of Indifference Curves)—

तटस्थता वक्रो की प्रमुख मान्यतायें निम्नलिखित हैं

(१) उपभोक्ता एक वस्तु की कम माता की तुलना म अधिक मात्रा को पसन्द करता है।

(२) उपभोक्ता का व्यवहार 'विवेकपूर्ण' होता है।

(३) उपयोगिता यह जानकारी रख सकता है कि एक सयोग से प्राप्त उपयोगिता दूसरे सयोग से प्राप्त उपयोगिता से कम है या अधिक है।

---

6 "We may have a family of such curves or as we may call it an indifference map"
—A L Meyers

(४) वस्तुयें एक रूप (homogeneous) तथा विभाज्यनीय (divisivle) होनी है।

तटस्थता वक्रों की विशेषतायें (Characteristics of Indifference Curves)

तटस्थता वक्र की विशेषताओं को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न भिन्न रूपों म अभि व्यक्त किया है लेफ्टविच (Leftwhich) ने तटस्थता वक्रों की तीन मूलभूत विशेषताये बतायी हैं—

i ये वक्र नीचे, दांयी तरफ झुकते है,
ii तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर (convex) होते है,
iii तटस्थता वक्र एक दूसरे को काटते नही है।

रिचार्ड बिलास (Richard Bilas) तथा बोमल (Banmal) आदि अर्थशास्त्रियों न भी तटस्थता वक्रों की विशेषताओं का उल्लेख किया है। इनकी प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं— 1975

(१) **तटस्थता वक्र पर सभी बिन्दु समान उपयोगिता (सतुष्टि) प्रदान करने वाले वस्तुओ के सयोगो को प्रदर्शित करते हैं**—तटस्थता वक्र के सभी बिन्दु उपभोक्ता को समान करते है उपभोक्ता उन सभी सयोगो के प्रति तटस्थ रहता है।

(२) **तटस्थता वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुकते हैं**—इसका कारण यह है कि जब एक उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग को इकाईया बढा देता है तब वह दूसरी वस्तु के उपभोग की इकाईयो म कमी कर देता है। इस प्रकार एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु प्रतिस्थापित होती है। इस कारण रेखा बाय से दाये नीचे की ओर झुकती है अर्थात रेखा का ढाल ऋणात्मक (negative) होता है।

(३) **तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं**—एक तटस्थता वक्र जैसे-जैसे नीचे की ओर बढता है वैस वैसे उपभोग की गई एक वस्तु की मात्रा मे कमी होती है और दूसरी वस्तु की मात्रा म वृद्धि होती है। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र मे X वस्तु की मात्रा बढती जाती है अर्थात् X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है और Y वस्तु की मात्रा घटती जाती है अर्थात् Y वस्तु की सीमान्त उपयोगिता बढती जाती है। Y वस्तु की मात्रा म जो कमी आती है उसकी पूर्ति X वस्तु की मात्रा म वृद्धि से की जाती है। इस प्रकार रेखा का उन्नतोदर आकार प्राप्त होता है जो कि घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर (diminishing marginal rate of substitution) को बताता है। तटस्थता वक्र की इस विशेषता के सम्बन्ध मे स्टानियर और हेग (stonier and hague) न लिखा है—
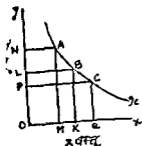
"ज्यों ज्यों हम तटस्थता वक्र पर चलते जाते है तो अपनी मान्यता के अनुसार वह मूल बिन्दु के उन्नतोदर तथा ऊपर की ओर ढालू (steep) तथा दायीं ओर चौड़ा होता है। यह इस तथ्य को बताता है कि ज्यों-ज्यों किसी वस्तु का अधिक उपभोग किया जाता है इस वस्तु की दूसरी वस्तु की अपेक्षा सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है।[7]

(४) **तटस्थता रेखायें एक दूसरे को काटती नहीं हैं**—विभिन्न तटस्थता रेखाओं द्वारा दो वस्तुओं के विभिन्न सयोगों को प्रदर्शित किया जाता है। इसलिए दो तटस्थता रेखायें न तो कभी एक दूसरे को स्पर्श करेंगी और न ही एक-दूसरे को काटेंगी। यदि एक रेखा दूसरी रेखा को किसी बिन्दु पर काटती है तो उस बिन्दु पर दोनों तटस्थता रेखायें समान सन्तुष्टि को प्रदर्शित करेंगी। परन्तु यह सभव नहीं है, क्योंकि दो रेखायें सन्तुष्टि के विभिन्न स्तरों को प्रदर्शित करती हैं।

(५) **तटस्थता रेखाओं का एक दूसरे के समानान्तर होना आवश्यक नहीं है**—दो तटस्थता रेखाओं का एक दूसरे के समानान्तर होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि (अ) सभी तटस्थता तालिकाओं (indifference curve schedules) में दो वस्तुओं के बीच समान प्रतिस्थापन दर (equal rate of substitution) का होना आवश्यक नहीं है। (ब) तटस्थता वक्र गणनात्मक सख्या (cordinal number) पर आधारित नहीं होते।

(६) **प्रत्येक उपभोक्ता के लिए एक से अधिक तटस्थता वक्र हो सकते हैं**—प्रत्येक उपभोक्ता के लिये कोई एक तटस्थता रेखा नहीं होती, अपितु वस्तुओं के विभिन्न

7 "As One moves along an indifference curve, the assumption that it is convex to the origin, that it gets flatter to the right and steeper upwards, implus that the marginal significance of the one good in terms of the other will always diminish progressively as one acquires more of the former good" —Stonier and Hague

सयोगो के लिये इन रेखाओ को एक शृंखला होनी है उपभोक्ता किसी एक रेखा पर सतुलन की स्थिति मे रहता है ।

(७) **तटस्थता रेखायें गोलाकार (circular shape) भी हो सकती हैं**—तटस्थता रेखा का गोलाकार रूप उसी स्थिति मे सभव है जबकि किसी वस्तु के अधिक मात्रा मे प्रयोग से ऋणात्मक उपयोगिता (negative utility) प्राप्त होने लगती है । सामान्यत पूर्ण सतुष्टि के बिन्दु के पश्चात् यदि उपभोक्ता वस्तु का उपभोग करता है तो ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होने लगती है । ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता को दूसरी वस्तु के उपयोग की मात्रा को घटाने के स्थान पर बढाना पडता है, जिससे कि पहली वस्तु से प्राप्त अनुपयोगिता की पूर्ति दूसरी वस्तु की उपयोगिता ले करली जाय । इस प्रकार तटस्थता वक्र का रूप गोलाकार हो जाता है । हम चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।
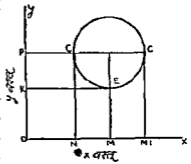
उपर्युक्त चित्र मे X वस्तु की O M मात्रा तथा Y O P मात्रा का बिना किसी ऋणात्मक उपभोगिता के उपभोग किया जा सकता है । यदि X वस्तु की O M मात्रा मे वृद्धि की जाय तो ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होती, जिसकी क्षतिपूर्ति करने के लिये Y वस्तु की मात्रा O K मे वृद्धि करनी होगी । यदि उपभोक्ता Y वस्तु की O P मात्रा से अधिक उपभोग करता है तो उसे X वस्तु की O M मात्रा मे वृद्धि करनी पडेगी । ऐसी परिस्थिति मे तटस्थता वक्र का रूप गोलाकार हो जाता है ।

(८) **तटस्थता रेखा की ऊची रेखा नीची रेखा से अधिक सतुष्टि को प्रदर्शित करती है**—तटस्थता रेखा जो मूल बिन्दु से अधिक दूर होती है वह मूल बिन्दु के पास वाली रेखा की अपेक्षा अधिक सतुष्टि को बताती है ।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर अथवा प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal Rate of Substitution)

प्रो० हिक्स तथा एलन ने मूल्य सिद्धान्त मे मार्शल की सीमान्त उपयोगिता के स्थान पर 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' शब्दो का प्रयोग किया । हिक्स के अनुसार सीमान्त प्रतिस्थापन दर एक निश्चित अर्थ रखती है ।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर एक विनिमय अनुपात है जो यह बताता है कि एक वस्तु को निश्चित मात्रा में बदले दूसरी वस्तु कितनी मात्रा म दी जायगी। दूसर शब्दो म, उपभोक्ता को सतुष्टि के उसी स्तर पर बनाये रखने के लिये एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु की कितनी मात्रा दी जा सकती है।

प्रो० हिक्स के अनुसार—"Y के लिये X की प्रतिस्थापन दर Y की वह मात्रा है *जो कि उपभोक्ता को X की सीमान्त इकाई की हानि की पूर्ति करती है।*"[8]

प्रो० बोल्डिंग न प्रतिस्थापन दर के सम्बन्ध म लिखा है, "सीमान्त प्रतिस्थापन दर द्रव्य को वह मात्रा है जिससे कि उतनी ही सतुष्टि प्राप्त होती है जितनी कि उस वस्तु की एक इकाई से प्राप्त होती है।"[9]

इस प्रकार यदि दो वस्तुओ के सयोग म यदि एक वस्तु की मात्रा बढ़ायी जाती है तो दूसरी वस्तु की मात्रा घटायी जायेगी ताकि उपभोक्ता की सतुष्टि मे न तो कमी हो और न ही वृद्धि, अर्थात सतुष्टि का स्तर समान बना रहे।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर को उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है—

सयोग	X वस्तु	Y वस्तु	Y के लिये X की प्रतिस्थापन दर
प्रथम	२	२०	
द्वितीय	३	१५	१ ५
तृतीय	४	११	१ ४
चतुर्थ	५	८	१ ३

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम सयोग म उपभोक्ता के पास X वस्तु की २ इकाइया तथा Y वस्तु की २० इकाइया हैं। द्वितीय सयोग म वह X वस्तु की एक इकाई के लिये Y वस्तु की ५ इकाईया छोड़ने को तैयार है तृतीय सयोग मे X वस्तु की एक इकाई के लिये Y वस्तु की ४ इकाईया तथा चतुर्थ सयोग म Y वस्तु की ३ इकाइया छोड़ने को तैयार है। इससे स्पष्ट है कि जैसे जैसे X वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है Y वस्तु की मात्रा घटती जाती है। X वस्तु की मात्रा की प्रत्येक वृद्धि से Y वस्तु की प्रतिस्थापन दर घटती जाती है। इन सभी सयोगो स प्राप्त उपयोगिता समान है।

8 "We may define the Marginal Rate of Substitution of X for Y as the quantity of Y which would just compensate the Consumer for the loss of marginal unit of X" —Hicks

9 "The Marginal Rate of Substitution is that sum of many which will afford the same satisfaction as one unit of the commodity in question" — Prof Boulding

प्रो० मेयर्स (Mayers) के शब्दो म—'X को Y के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर Y की वे इकाईया हैं जिनके लिये X की एक इकाई स्थानापन्न होती है।'[10]

अत प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वह दर है जिस पर उपभोक्ता दो वस्तुओ के सयोगो से प्राप्त उपयोगिता को समान रखते हुए किसी वस्तु की एक छोटी मात्रा को किसी दूसरी वस्तु की छोटी मात्रा से प्रतिस्थापित करता है।

घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त या सीमान्त प्रतिस्थापन दर ह्रास नियम (The Principle of Diminishing Marginal Rate of Substitution)

साधारणतया किन्ही दो वस्तुओ के बीच प्रतिस्थापन दर का क्रमश ह्रास होने लगता है। किन्ही दो वस्तुओ के सयोग म यदि किसी एक वस्तु की मात्रा मे वृद्धि की जाती है तो सतुष्टि के स्तर को समान बनाये रखने के लिये दूसरी वस्तु की मात्रा मे कमी करनी होती है। इसके साथ ही दूसरी वस्तु की मात्रा म कमी का अनुपात घटता जाता है यदि पहली वस्तु की मात्रा मे वृद्धि की जाती है। सीमान्त प्रतिस्थापन दर की तालिका से यह स्पष्ट होता है। जैसे-जैसे X वस्तु की मात्रा म वृद्धि की जाती है Y वस्तु की मात्रा घटती जाती है तथा X वस्तु की इकाई का सीमान्त महत्व Y वस्तु के रूप म घटता जाता है, इसी को घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त कहते है।

प्रो० हिक्स के शब्दो में —"मान लिया कि हम वस्तुओ को एक दी हुई मात्रा से प्रारम्भ करते हैं और X की मात्रा म वृद्धि और Y की मात्रा म कमी इस प्रकार म करते जाते हैं कि उपभोक्ता की स्थिति न तो पहले से अच्छी ही होती है और न बुरी ही। तब Y की मात्रा जो कि X की दूसरी इकाई को प्राप्त करने के लिये घटायी जाती है Y की उस मात्रा से कम होगी जो कि X की पहली इकाई को प्राप्त करने के लिये घटायी जाती है। दूसरे शब्दो म जितना अधिक X को Y

---
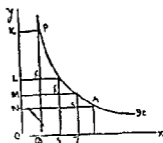
10 "The Marginal Rate of Substitution of X for Y will be the number of Y for which one unit of X is substituted"

—A L Meyers

के लिये प्रतिस्थापित किया जाता है उतनी ही X को Y के लिये सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है ।"[११]

प्रतिस्थापन दर के सिद्धान्त की व्याख्या उपरोक्त चित्र के माध्यम से भी की जा सकती है ।

उपर्युक्त चित्र म उपभोक्ता I C रेखा पर P बिन्दु से A बिन्दु पर आता है, तब वह X वस्तु की मात्रा बढाता है और Y वस्तु की मात्रा घटाता है, अर्थात् वह Y के स्थान पर X वस्तु को प्रतिस्थापित करता है, जिससे कि उसके कुल सताप मे कमी नही आये । जब उपभोक्ता X वस्तु की इकाई म वृद्धि करके O Q R का प्रयोग करता है तब उसे Y वस्तु की K L इकाई घटानी पड़ती है । यदि X वस्तु की एक और इकाई R S में वृद्धि करती है तो Y वस्तु की L M इकाइयो द्वारा प्रतिस्थापन करता है । इसी प्रकार X वस्तु की S T मात्रा म वृद्धि को Y वस्तु की M N मात्रा से प्रतिस्थापित करता है । इस प्रकार X की प्रत्येक वृद्धि को Y की घटती हुई मात्रा द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है । इसका कारण यह है कि X वस्तु के उपयोग मे वृद्धि करन पर सीमान्त उपयोगिता क्रमश घटती जाती है तथा X वस्तु की मात्रा मे कमी करने पर उसकी सीमान्त उपयोगिता क्रमश बढ़ती जाती है । इसका ही घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर कहते है ।

अपवाद
(Exaption)

साधारणतया सीमान्त प्रतिस्थापन दर दो वस्तुओ के मध्य घटती जाती है, परन्तु इसम कुछ अपवाद हैं—

(१) यदि दो वस्तुयें एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न हो तो उनम प्रतिस्थापन दर स्थिर (donstant) या समान होगी ।

(२) यदि दो वस्तुयें एक-दूसरे की पूर्ण पूरक (perfectly complementary) है तो उनके बीच प्रतिस्थापन दर घटती हुई नही होगी । इस स्थिति म प्रतिस्थापन की दर को अनन्त (infinite) कहा जाता है ।

---

11 "Suppose we start with a given quantity of goods and then go on incresing the amount of X and diminishing that of Y in such away tha' consumer is left neither better off nor worse off an balance, then the amount of Y wich has to be substracted in order to set off a second unit of X will be less than that which has to be substracted in order to set off the first unfit other words the more X is substituted for Y, the less will be the margidal rate of substitution of X for Y" —Hicks

घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर तथा उपयोगिता ह्रास नियम (Principle of Diminishing Marginal Rate of Substitution and the Law of Diminishing Utility)

राबर्टसन तथा कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार सीमान्त प्रतिस्थापन की घटती हुई दर का सिद्धान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है तथा उसका परिवर्तित रूप है। इसके दो कारण हैं :—

(१) एक वस्तु का दूसरी वस्तु से प्रतिस्थापन सीमान्त उपयोगिता के आधार पर होता है।

(२) सीमान्त उपयोगिता में समान ही प्रतिस्थापन दर भी क्रमश घटती जाती है।

प्रो. हिक्स उपर्युक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। उन्होंने इन दोनों म अन्तर बताया है —

(१) सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन पर आधारित है, जबकि प्रतिस्थापन दर के नियम मे उपयोगिता को मापने की आवश्यकता नहीं होती।

(२) उपयोगिता ह्रास नियम द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर करता है जबकि प्रतिस्थापन नियम ऐसा नहीं मानता।

(३) सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम म केवल एक ही वस्तु का अध्ययन किया जाता है तथा सम्बन्धित वस्तुओं (related goods) के प्रभाव पर ध्यान नहीं देता जबकि सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त दो सम्बद्ध वस्तुओं का अध्ययन करता है।

इस प्रकार **हिक्स** की घटती हुई प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त **मार्शल** के सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम से श्रेष्ठ है।

सीमान्त प्रतिस्थापन दर का महत्व (Significance of the Marginal Rate of Substitution)

प्रतिस्थापन दर का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के लगभग सभी क्षेत्रों में क्रियाशील होता है। गॉसिन (Gossen) का विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करना चाहता है और वह प्रतिस्थापन के नियम का प्रयोग करके कम उपयोगिता प्रदान करने वाली वस्तुओं के स्थान पर अधिकतम उपयोगिता प्रदान करने वाली वस्तुओं का प्रयोग करता है।

प्रतिस्थापन के नियम का प्रयोग व्यक्ति जाने या अनजाने मे करता रहता है । प्रो रॉबिन्स (Prof Robbins) ने इसे 'अर्थशास्त्र का आधार' बताया है।

प्रो मार्शल के शब्दो मे—"आर्थिक खोज के लगभग सभी क्षेत्रों मे प्रतिस्थापन का नियम क्रियाशील होता है।'[१२]

तटस्थता वक्रो के प्रयोग (Uses of Indifference Curves)

मार्शल की माग सम्बन्धी व्याख्या की त्रुटियों को दूर करने के लिए हिक्स (Hicks) तथा ऐलन (Allen) ने तटस्थता वक्रो का प्रयोग किया । आजकल इन रेखाओ का प्रयोग अधिक व्यापक रूप से किया जाता है। स्टिगलर (Stigler) ने तटस्थता रेखाओ के प्रयोग के तीन क्षेत्र बताये हैं—(अ) दो व्यक्तियो के मध्य विनिमय, (ब) करारोपण, (स) सूचक अंको की समस्या । इन रेखाओ के महत्वपूर्ण प्रयोगो की व्याख्या नीचे की जा रही है —

(१) **दो व्यक्तियों के मध्य विनिमय को सीमा के निर्धारण में**—एजवर्थ (Edgeworth) पहला अर्थशास्त्री था जिसने तटस्थता वक्रो का प्रयोग दो व्यक्तियो के मध्य होने वाली विनिमय की सीमा को प्रदर्शित करने के लिए किया । एजवर्थ का विचार था कि विनिमय की जाने वाली वस्तुओं के मध्य विनिमय दर का निर्धारण करना सम्भव नही है। केवल ऐसी सीमायें ही बनायी जा सकती हैं जिनके मध्य विनिमय किया जावेगा ।

(२) **करारोपण के क्षेत्र मे**—तटस्थता वक्रों की सहायता से यह ज्ञात किया जा सकता है कि विभिन्न प्रकार के करों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है। सरकार द्वारा लगाया जाने वाला प्रत्येक कर व्यक्ति की आय अथवा वस्तु के मूल्य को प्रभावित करता है, इन वक्रो से यह जाना जा सकता है कि करारोपण के प्रभाव हितकर हैं या अहितकर । अत करारोपण के क्षेत्र म इन रेखाओ का प्रयोग करारोपण की हानियों को मापने, कर की श्रेष्ठता को बताने तथा समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात करने के लिए किया जाता है।

(३) **सूचक अंकों की समस्या के सम्बन्ध में**—तटस्थता वक्रो की सहायता से यह पता लगाया जा सकता है कि समय अवधि मे परिवर्तन होने से उपभोक्ता का जीवन स्तर ऊंचा उठा है, अथवा नीचा गिरा है। उपभोक्ता की आय या वस्तुओं की कीमत म

12 'The application of the Principle of Substitution extends over almost everyfield of economic enquiry" — Marshall

परिवर्तन होने से उपभोक्ता के जीवन स्तर पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है या प्रतिकूल। इन सब प्रभावो का अध्ययन तटस्थता रेखाओ द्वारा किया जाता है।

(४) **राशनिंग के क्षेत्र मे**—युद्ध काल मे या आर्थिक सकट के समय मे राशनिंग की व्यवस्था की जाती है। राशनिंग की व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे कि न्यायोचित वितरण हो तथा उपभोक्ताओं का अपनी आवश्यकता की वस्तु प्राप्त हो सके। तटस्थता वक्रो की सहायता से उपभोक्ताओ के दृष्टिकोण से राशनिंग की समस्याओ का अध्ययन कर सकते है।

(५) **दो विकल्पो के बीच प्राथमिकता क्रम (Scale of preference) का निर्धारण**—बेनहम (Benham) के अनुसार तटस्थता वक्रो के द्वारा यह आसानी से ज्ञात किया जा सकता है कि एक उपभोक्ता आय और आराम, वर्तमान तथा भविष्य के उपयोग तरल सम्पत्ति (liquid assests) तथा आय देने वाली सम्पत्ति (income yielding assests) मे से किसको पसन्द करेगा। इन रेखाओ के द्वारा यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि मजदूरी मे वृद्धि हो जाने से श्रमिक के कार्य और अवकाश की प्रवृतियो पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(६) **उपभोक्ता की बचत की माप**—तटस्थता वक्रो द्वारा उपभोक्ता सम्बन्धी बातों का वर्णन अधिक स्पष्ट और उत्तम रीति से किया जा सकता है। इन रेखाओ द्वारा उपभोक्ता की बचत की माप आसानी से की जा सकती है।

(७) **उत्पादन के क्षेत्र मे प्रयोग**—जिस प्रकार उपभोग के क्षेत्र म समान उपयोगिता वाले वक्रो की सहायता से यह पता लगा सकते है कि एक व्यक्ति के लिए उपभोग की वस्तुओ का प्राथमिकता का क्रम क्या है उसी प्रकार से उत्पादन के क्षेत्र मे समान उत्पादन क्षमता वाले उत्पादन मे साधनो के सयोगो का भी पता लगा सकते हैं। उत्पादन के क्षेत्र मे तटस्थता वक्रो को सम-उत्पादक-वक्र (iso-product curves) कहते हैं।

तटस्थता वक्र विश्लेषण का आलोचनात्मक अध्ययन
(A Critical Study of the Indifference Curve Analysis)

हिक्स तथा ऐलन ने तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रयोग मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण के दोषो को दूर करने के लिये किया तथा अपने विचारो को अधिक वैज्ञानिक एव निश्चित रूप प्रदान किया। प्राय यह प्रश्न किया जाता है कि तटस्थता विश्लेषण

मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठ है या नही। इसके लिये हमें इसके गुण व दोषों की विवेचना करनी होगी।

तटस्थता वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता तथा गुण (Superiorty and Merits of the Indifference Curve Technique)

हिक्स तथा अन्य अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह विश्लेषण मार्शल के 'उपयोगिता विश्लेषण' से निम्नांकित आधार पर श्रेष्ठ है—

(१) मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण मापन (quantitutive measurement) पर आधारित है जो कि अस्पष्ट व अवास्तविक हैं। यह विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपयोगिता अमापनीय है जो कि उचित है। इसके अनुसार हम दो सतोलो को माप नही सकते उनकी तुलना कर सकते हैं।

> स्टोनियर एवं हेग (Stonier and Hague) ने लिखा है—"सन्तुष्टि की मात्रा को मापना उतना कठिन होता है, जितना कि समुद्र धरातल के ऊपर ऊंचाई मापना।"

(२) मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता स्थिर (constant) रहती है, जबकि तटस्थता विश्लेषण ऐसी मान्यता पर आधारित नही है।

(३) तटस्थता विश्लेषण माग पर पड़ने वाले प्रभाव—मूल्य प्रभाव (price effect), आय प्रभाव (income effect) और प्रतिस्थापन प्रभाव (substitution effect) का अध्ययन करता है, जिससे उपयोगिता के अध्ययन मे अधिक सुविधा प्राप्त हो जाती है। मार्शल ने इन 'प्रभावों' का अध्ययन नहीं किया है। इस प्रकार यह विश्लेषण मार्शल के विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

(४) तटस्थता विश्लेषण प्रतिस्पर्धात्मक वस्तुओं competitive goods) तथा पूरक वस्तुओं (complementry goods) का भी अध्ययन करता है, जबकि मार्शल केवल एक वस्तु को लेकर व्याख्या करता है।

(५) प्रो हिक्स ने सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात को एक नया नाम 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (marginal rates of substitution) दिया। यह विचार उपयोगिता के परिमाणात्मक मापन से स्वतन्त्र है।

(६) तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र मे भी किया जाता है। इस प्रकार

प्रो हिक्स ने तटस्थता विश्लेषण के रूप मे सभी क्षेत्रो के लिये एक 'एकीकृत सिद्धात (unified theory) प्रस्तुत किया है ।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर हम कह सकते हैं कि मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण की तुलना मे तटस्थता विश्लेषण श्रेष्ठ और अधिक स्पष्ट है ।

तटस्थता वक्र विश्लेषण के दोष (Defects of Indifference Curve Technique)

यद्यपि तटस्थता विश्लेषण की श्रेष्ठता असदिग्ध है फिर भी कुछ अर्थशास्त्रियो द्वारा इसकी आलोचनायें की गई है । इनमे से कुछ आलोचनायें निम्नलिखित है—

(१) प्रो नाईट (Prof Knight) के अनुसार उपभोक्ता की यह इच्छा होती है कि वह वस्तु के उपभोग से प्राप्त सतोष की गणना लिखित परिणाम म कर सके । वह दो वस्तुओ के स्थानापन्न के प्रभाव पर विशेष ध्यान नही देता । इसलिये माग क सिद्धान्त मे इन बातो का ध्यान न रखकर गलती की गई है ।

(२) तटस्थता विश्लेषण अनेक अवास्तविक मान्यताओ पर आधारित है—

(अ) उपभोक्ता पूर्ण विवेकशील होता है ।

(ब) उपभोक्ता को वस्तुओ के विभिन्न सयोगो से प्राप्त उपयोगिता की जानकारी होती है ।

(स) वस्तु प्रमाणित (standardized) होती है ।

(द) पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है ।

उपर्युक्त सभी मान्यतायें अव्यावहारिक व असगत है क्योकि न तो उपभोक्ता हमेशा व्यय करते समय विवेक का प्रयोग करता है और न ही उसे विभिन्न सयोगो से प्राप्त उपयोगिता की पूर्ण जानकारी ही होती है । पूर्ण प्रतियोगिता व्यवहार म पायी नहा जाना । वस्तु का पूर्ण प्रमाणित होना भी सम्भव नही है ।

(३) तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग केवल दो या तीन वस्तुओं के लिय ही किया जा सकता है । यदि वस्तुओ की सख्या अधिक हो जाती है तो इसका प्रयोग कठिन हो जाता है जबकि व्यवहार मे उपभोक्ता केवल दो वस्तुओ के बीच ही चयन नही करता ।

(४) यह विश्लेषण गणितीय विधि पर आधारित है तथा चित्रो का सहारा काफी बडी मात्रा म लेना पडता है । अत यह विश्लेषण काफी जटिल हो गया है ।

(५) शुम्पीटर (Schumpeter) के अनुसार इस विश्लेषण का प्रयोग अनुभव पर आधारित

अध्ययन और शोध पर नही कर सकते तथा वास्तविक तटस्थता रेखाओ का खीचना भी बहुत कठिन है ।

(६) प्रो हाले (Prof Hawley) के अनुसार—उपभोक्ता का तटस्थता मानचित्र (indifference map) एक अल्पकालीन घटना है, जिसमे लगातार परिवर्तन होते रहते हैं ।

(७) प्रो राबर्टसन (Prof Robertson) के अनुसार—तटस्थता वक्र विश्लेषण एक नयी बोतल मे पुरानी शराब मात्र है । इस विश्लेषण मे परिमाणात्मक प्रणाली के स्थान पर गुणात्मक प्रणाली, 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर', 'उपयोगिता' के स्थान पर 'पसन्दगी क्रम' (preference scale) तथा 'क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम' के स्थान पर 'घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर' का प्रयोग किया गया है । प्रो हिक्स इस दृष्टिकोण से सहमत नही है ।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त अध्ययन तथा **राबर्टसन** के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विश्लेषण पूर्ण रूप से नया नही है तथा इसमे अनेक दोष भी हैं । फिर भी यह विश्लेषण **मार्शल** के उपयोगिता विश्लेषण से अधिक श्रेष्ठ है तथा इसका आधार अधिक वैज्ञानिक है । तटस्थता विश्लेषण का प्रयोग अर्थशास्त्र म अधिकाधिक मात्रा म किया जाने लगा है । **एडवर्ड नेविन** (Edward Navin) का कथन इसके महत्व को स्पष्ट करता है । उनके अनुसार—

> "इसमे मानवीय तथ्य पर ध्यान दिये बिना ही उपभोक्ता द्वारा प्रदर्शित पसन्दगी का अध्ययन किया जाता है ।"[13]

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ तटस्थता वक्र से आप क्या समझते हैं ? तटस्थता वक्र की मान्यताओ तथा विशेषताओ को बताइये ।

२ तटस्थता वक्र की परिभाषा दीजिए । आर्थिक विश्लेषण म तटस्थता वक्रो के महत्व को समझाइये ।

---

13 'Indifference analysis does not require to attach a quantitative magnitude to the satisfaction derived by consumer from commodities but simply accepts the preferences expressed in the market place"
—Edward Navin

३. तटस्थता रेखायें क्या हैं ? चित्र की सहायता से उनकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

४ 'घटते हुए सीमान्त प्रतिस्थापन दर' principle of Diminishing Marginal Rate of Substitution) के नियम की व्याख्या कीजिये।

५. 'सीमान्त प्रतिस्थापन दर' से आप क्या समझते हैं ? क्या घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर उपयोगिता नियम का केवल रूपान्तरण है।

६. घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की व्याख्या कीजिए। क्या यह नियम सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम से श्रेष्ठ है।

अध्याय ४

★

उपभोक्ता का सन्तुलन
[Consumer's Equilibrium]

★ ★ ★

सन्तुलन से अभिप्राय उस अवस्था से होता है जिसमे कि परिवर्तन का अभाव पाया जाता है अर्थात् अपरिवर्तनशील अथवा विश्राम की अवस्था (position of rest) ही सतुलन की अवस्था है।

उपभोक्ता की आय निश्चित है और उसकी आवश्यकतायें असीमित है। उपभोक्ता का उद्देश्य अपनी आय को इन विभिन्न वस्तुओ मे इस प्रकार व्यय करने का होता है कि उसे अधिकतम सतुष्टि प्राप्त हो सके। जहा पर उसे अधिकतम सतुष्टि प्राप्त होती है वही उपभोक्ता के सतुलन की अवस्था होती है। प्रारम्भ मे मार्शल (Marshall) ने उपयोगिता के आधार पर उपभोक्ता के सन्तलन की अवस्था का वर्णन किया। मार्शल के विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता 'सम सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi marginal utility) के आधार पर अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परन्तु मार्शल के इस विश्लेषण को हिक्स, (Hicks), ऐलन (Allen) आदि अर्थशास्त्रियो ने अस्वीकार कर दिया, क्योकि इन अर्थशास्त्रियो के अनुसार उपयोगिता मापनीय नही है। इन अर्थशास्त्रियो ने उपभोक्ता के सन्तुलन, अर्थात् अधिकतम सतुष्टि की अवस्था का विश्लेषण तटस्थ वक्रो के माध्यम से किया है। इस विश्लेषण के अनुसार—

'उपभोक्ता उस समय सन्तुलन की स्थिति मे होता है जबकि उसकी कीमत रेखा (Price Line) उसकी तटस्थता रेखा को स्पर्श करती है।"

कीमत रेखा (Price Line)

कीमत रेखा[१] वह रेखा है जो दो वस्तुओ के उन विभिन्न सयोगो को व्यक्त करती

---

१ कीमत रेखा को बजट रेखा (Budget line), व्यय रेखा (outlay line) तथा उपभोग सभावना रेखा (consumption possibility line) भी कहते है।

है जो उपभोक्ता अपनी दी हुई आय एवं वस्तुओं की वर्तमान कीमत के आधार पर क्रय कर सकता है।

मान लिया कि किसी उपभोक्ता के पास ५) रुपये हैं, वह इन ५) रुपयों को चाय और सिगरेट पर व्यय करना चाहता है। यदि चाय की कीमत २५ पैसा प्रति कप है और सिगरेट की कीमत १० पैसा प्रति सिगरेट। वह इन दोनों वस्तुओं पर इस प्रकार से व्यय करेगा कि उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। यदि वह समस्त राशि को एक ही वस्तु पर व्यय करता है तो उसे अधिकतम सतुष्टि प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि एक ही वस्तु का उपभोग करने से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमश घटती जायेगी। अत उपभोक्ता दोनों वस्तुओं का उपभोग करना चाहेगा। यदि वह अपनी राशि ५) रुपयों को दोनों वस्तुओं पर व्यय करना चाहता है तो उसे दोनों वस्तुओं के विभिन्न सयोग प्राप्त होंगे—

पहला सयोग— ४ कप + ४० सिगरेट
दूसरा सयोग— ८ कप + ३० सिगरेट
तीसरा सयोग— १२ कप + २० सिगरेट

इससे अतिरिक्त भी अनेक सयोग हो सकते हैं जिन्हें उपभोक्ता ५) रुपये में क्रय कर सकता है। निम्नांकित चित्र में A B रेखा चाय और सिगरेट के विभिन्न सयोगों को प्रदर्शित करती है। A B रेखा को कीमत रेखा (price line) कहा जा सकता है। उपभोक्ता चाय और सिगरेट के केवल उन्हीं सयोगों को चुनेगा जो कि इस रेखा से व्यक्त होते हैं।
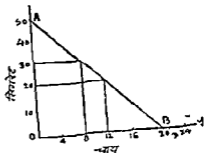
उपभोक्ता सन्तुलन की अवस्था को कैसे प्राप्त करता है, अथवा उसे अधिकतम सन्तुष्टि कैसे प्राप्त होती है, इसके लिए हम तटस्थता मानचित्र (indifference map) और कीमत रेखा (price line) का प्रयोग करते हैं। उपभोक्ता के सामने विभिन्न सयोगों से बनी अनेक तटस्थ रेखायें हो सकती हैं जो कि सतुष्टि के विभिन्न स्तरों का व्यक्त करती हैं। उपभोक्ता इन विभिन्न तटस्थता रेखाओं में से किस रेखा का चयन करे, इसके लिये कीमत रेखा की सहायता ली जाती है। उपभोक्ता उसी तटस्थता रेखा का चयन करता है, जो कि कीमत रेखा को स्पर्श करती है, क्योंकि सन्तुलन की अवस्था उसी स्थिति में प्राप्त होगी जबकि तटस्थता रेखा कीमत रेखा को स्पर्श करे। यदि उपभोक्ता अन्य किसी तटस्थता रेखा को चुनता है

तो उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होगी। इस स्थिति को रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है।
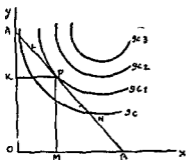
इस चित्र में उपभोक्ता की दी हुई आय तथा दोनों वस्तुओं की दी हुई कीमतों के आधार पर कीमत रेखा खींची है, तथा उपभोक्ता के लिए विभिन्न तटस्थता वक्रों को दर्शाया है। A B कीमत रेखा है जिस पर स्थित वस्तुओं के किसी भी सयोग को उपभोक्ता क्रय कर

इस चित्र में उपभोक्ता के लिए IC_3 तथा IC_2 तटस्थता वक्र महत्व नहीं रखते क्योंकि उपभोक्ता के पास इतनी आय नहीं है कि वह उन वक्रों पर स्थित वस्तुओं के सयोगों को क्रय कर सके। इन दोनों रेखाओं के विभिन्न सयोग कीमत रेखा से बाहर है। IC तटस्थता रेखा कीमत रेखा को L और N बिन्दु पर स्पर्श करती हैं, परन्तु यहा भी उपभोक्ता को अधिकतम सतुष्टि प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि इस रेखा पर विभिन्न सयोगों से प्राप्त होने वाली सतुष्टि की मात्रा IC_1 पर स्थित P बिन्दु पर प्राप्त होने वाली सतुष्टि की मात्रा से कम होगी। P बिन्दु पर स्थित चाय और सिगरेट का सयोग L और N बिन्दु की अपेक्षा उच्च स्थान पर स्थित है, अत अधिक सतुष्टि प्रदान करेगा। P बिन्दु पर उपभोक्ता O M मात्रा चाय की तथा O K मात्रा सिगरेट की क्रय करता है। P बिन्दु पर उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि इसलिए प्राप्त होगी, क्योंकि वह IC_1 वक्र के उच्चतम स्थान पर स्थित है जहा पर वह अपनी निश्चित व्यय की राशि के द्वारा पहुँच सकता है। इस बिन्दु पर ही कीमत रेखा तथा तटस्थता रेखा एक दूसरे को स्पर्श करती है।

उपभोक्ता को P बिन्दु पर ही अधिकतम सन्तुष्टि इसलिये प्राप्त होती है क्योंकि P बिन्दु पर ही कीमत रेखा का ढाल तटस्थता रेखा IC_1 के ढाल के बराबर है। दूसरे शब्दों म, P बिन्दु पर दोनों वस्तुओं के बीच की प्रतिस्थापना दर (जो तटस्थता रेखा IC_1 के ढाल द्वारा व्यक्त होती है) तथा दोनों वस्तुओं के मूल्य का अनुपात (जो कीमत रेखा AB से व्यक्त होता है) समान है। अत इसी बिन्दु पर उपभोक्ता सन्तुलन की अवस्था म होता है।

उपभोक्ता के स्थायी सन्तुलन के लिये यह भी आवश्यक है कि तटस्थता रेखा सन्तुलन बिन्दु पर मूल बिन्दु के उन्नतोदर (canvex) हो, अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर एक

वस्तु (अर्थात् चाय) की दूसरी वस्तु (अर्थात् सिगरेट) के लिए प्रतिस्थापन दर घटती हुई हो। प्रो हिक्स (Hicks) के अनुसार सन्तुलन बिन्दु पर प्रतिस्थापन दर न तो बढती हुई हो सकती है और न ही स्थिर, बल्कि घटती हुई प्रतिस्थापन दर होती है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते है कि उपभोक्ता सन्तुलन की अवस्था मे निम्नलिखित स्थितियों मे रह सकता है —

(१) जिस बिन्दु पर कीमत रेखा तटस्थता रेखा को स्पर्श करती है।

(२) जिस बिन्दु पर कीमत रेखा और तटस्थता रेखा का ढाल समान है।

(३) जिस बिन्दु पर सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती हुई है।

उपभोक्ता सन्तुलन की मान्यतायें :

उपभोक्ता सन्तुलन का अध्ययन कुछ मान्यताओ पर आधारित है। ये मान्यतायें निम्नलिखित हैं—

(१) उपभोक्ता के पास व्यय करने के लिये मुद्रा की मात्रा निश्चित तथा सीमित होती है।

(२) उपभोक्ता विवेक से कार्य करता है, अर्थात् वह अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए विवेकपूर्ण ढग से व्यय करता है।

(३) उपभोक्ता को बाजार के मूल्यो का ज्ञान होता है।

(४) सभी वस्तुयें एकरूप (homogeneous) तथा विभाज्यनीय होती है।

(५) उपभोक्ता को तटस्थता मानचित्र की जानकारी होती है।

उपभोक्ता सन्तुलन के परिवर्तनकारी तत्व (Various Factors effecting the Consumer's Equilibrium) :

अभी तक की उपभोक्ता के सन्तुलन की स्थिति मे हम यह मानकर चले है कि उपभोक्ता की आय मे तथा उसके द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तुओ के मूल्य मे कोई परिवर्तन नही होता। परन्तु वास्तविकता यह है कि उपभोक्ता की आय और वस्तु के मूल्य दोनो ही बदलते रहते हैं। हम यहा पर यह अध्ययन करेंगे कि उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन होने या वस्तु के मूल्यो मे परिवर्तन होने या दोनो मे एक साथ परिवर्तन होने से उपभोक्ताओ पर क्या प्रभाव पडता है। दूसरे शब्दो मे, हम उपभोक्ता के सन्तुलन को प्रभावित करने वाले तत्वो का अध्ययन करेंगे। उपभोक्ता के सन्तुलन को प्रभावित करने वाले तीन तत्व प्रमुख हैं—

(१) आय प्रभाव (Income effect),

(२) कीमत प्रभाव (Price effect)।

(३) प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution effect)।

यहा एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आय प्रभाव, कीमत प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव कीमत रेखा पर ही अपना प्रभाव डालते हैं, तटस्थता रेखाओ पर इनका कोई प्रभाव नही पडता, क्योंकि तटस्थता रेखाओ का निर्माण करते समय उपभोक्ता की आय और वस्तुओ के मूल्यों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

(१) आय प्रभाव (Income effect)—वस्तुओ की कीमतें यथास्थिर रहने पर उपभोक्ता की आय म परिवतन होने के फलस्वरूप उसकी माग पर पडने वाले प्रभाव को आय प्रभाव कहते है। उपभोक्ता द्वारा उपभोग की जाने वस्तुओ के मूल्य यदि स्थिर रहते ह तो उसको प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि की मात्रा उसकी आय पर निर्भर करती है। आय म कमी या वृद्धि होने से वह वस्तुओ की माग कम या अधिक करेगा जिसमें उसको प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि की मात्रा पहले से कम या अधिक हो सकती है। साधारणतया उपभोक्ता की आय म होने वाली प्रत्येक वृद्धि उपभोक्ता को ऊँचे तटस्थता वक्र पर लेजाती है तथा आय म होने वाली प्रत्येक कमी नीचे तटस्थता वक्र की ओर। दूसरे शब्दो म, (आय मे वृद्धि से उसको प्राप्त होने वाली सतुष्टि की मात्रा बढ जाती है और आय की कमी मे सतुष्टि की मात्रा घट जाती है)
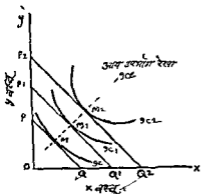
इस प्रकार उपभोक्ता की आय म वृद्धि होने से कीमत रेखा दायी ओर विवर्तित (shift) हो जाती है तथा आय म कमी होने से कीमत रेखा बायी ओर विवर्तित होती है। वस्तुओ की कीमतें यथास्थिर रहती हैं, इसलिए नयी कीमत रेखा पुरानी कीमत रेखा के समानान्तर रहती है। रेखा चित्र क द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

उपर्युक्त चित्र म P Q कीमत रेखा है, जो तटस्थता रेखा को M बिन्दु पर स्पर्श करती है, इस प्रकार M सन्तुलन बिन्दु हुआ, अर्थात् उपभोक्ता इस बिन्दु पर सन्तुलन की अवस्था है। अब यदि उसकी आय मे वृद्धि होती है जबकि X Y वस्तुओ की कीमतें स्थिर रहती हैं, तो नयी कीमत रेखा $P_1 Q_1$ हो जाती है और उपभोक्ता नये सन्तुलन बिन्दु M_1

पर पहुंच जाता है, उपभोक्ता के नये तटस्थता वक्र पर चले जाने के कारण उसकी सन्तुष्टि मे वृद्धि हो जाती है, क्योंकि यह वक्र पूर्व के वक्र से दायी ओर उच्च बिन्दु पर स्थित है। यहा पर उपभोक्ता पहले से अधिक मात्रा मे X और Y वस्तु की मात्रायें क्रय करेगा। यदि उसकी आय और अधिक बढ जाती है तो नयी कीमत रेखा P_2 Q_2 हो जाती है और उपभोक्ता नये सन्तुलन बिन्दु M_2 पर पहुच जाता है। इस प्रकार वह पहल से अधिक मात्रा मे X और Y वस्तु की मात्राये क्रय करेगा, जिससे उसको प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि की मात्रा पहले से अधिक होगी।

जैसे-जैसे उपभोक्ता की आय मे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे तटस्थता वक्र दायी ओर ऊपर को उठता चला जाता है, अर्थात् उसको प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि की मात्रा बढती जाती है। वस्तु की कीमत स्थिर रहने की दशा मे, उपभोक्ता को प्राप्त होने वाले विभिन्न सन्तुलन बिन्दुओ (equilibrium paints) को यदि जोड़ दिया जाय तो एक नयी रेखा प्राप्त होती है, जिसे आय उपभोग रेखा (income comsumption curve) कहते है। आय उपभोग रेखा यह व्यक्त करती है कि यदि दोनो वस्तुओ की कीमतें स्थिर रहे तो आय मे परिवर्तन होने से उपभोग की मात्रा मे किस प्रकार परिवर्तन होते है।

(2) कीमत प्रभाव (price effect)—वस्तु की कीमत का उपभोक्ता की माग पर पडने वाले प्रभाव को कीमत प्रभाव कहते है। "जब उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है और उपभोक्ता द्वारा क्रय की जाने वाली दो वस्तुओ म से एक वस्तु की कीमत स्थिर रहती है तथा दूसरी वस्तु की कीमत म परिवर्तन होने से उस वस्तु की माग पर जो प्रभाव पडता है, उसे कीमत प्रभाव कहते है।" आय स्थिर रहने पर वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता को पहले से अधिक या कम सन्तुष्टि प्राप्त हो सकती है। इस स्थिति को रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
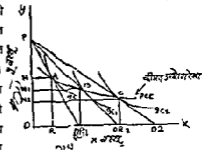
उपर्युक्त चित्र मे प्रारम्भ मे उपभोक्ता A बिन्दु पर सन्तुलन की अवस्था म है। इस बिन्दु पर कीमत रेखा P Q तटस्थता रेखा को A बिन्दु पर स्पर्श करती है। इस स्थिति मे वह X वस्तु की O R मात्रा और Y वस्तु की O N मात्रा क्रय करता है। यदि मान लिया जाय कि X वस्तु की कीमत घट जाती है और Y वस्तु की कीमत म कोई परिवर्तन नही होता (जबकि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है) तो उपभोक्ता X वस्तु को पहले से

अधिक मात्रा मे क्रय कर सकता है । X वस्तु की कीमत घटने से पूर्व यदि उपभोक्ता अपनी समस्त आय को X वस्तु पर व्यय करता तो वह उसकी O Q[1] मात्रा क्रय कर सकता था, परन्तु कीमत मे कमी आ जाने के कारण अब वह अपनी आय से O Q मात्रा क्रय कर सकता है । Y वस्तु की कीमत अप्रभावित रहने के कारण वह उस वस्तु की पूर्व की मात्रा O P का क्रय करता रहेगा । X वस्तु की कीमत मे कमी आने का प्रभाव यह होगा कि कीमत रेखा P Q से P Q[1] हो जायेगी, अर्थात् कीमत रेखा दायी ओर विवर्तित होगी। कीमत रेखा मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप नया सन्तुलन विन्दु B स्थापित हुआ । इस विन्दु पर उपभोक्ता X वस्तु की O R[1] मात्रा और Y वस्तु की O N[1] मात्रा का क्रय करता है। X वस्तु के मूल्य मे और कमी आने के परिणामस्वरूप C सन्तुलन बिन्दु स्थापित होगा, जिस पर उपभोक्ता O R_2 मात्रा X वस्तु की और O N_2 मात्रा Y वस्तु का क्रय करता है। यदि इन सन्तुलन बिन्दुओ A,B,C) को मिलाया जाय तो हमे कीमत उपभोग रेखा (price consumption curve) प्राप्त होगी । यह रेखा वस्तुओ को उन विभिन्न मात्राओ को प्रदर्शित करती है जिनको उपभोक्ता विभिन्न कीमतो पर क्रय करता है ।

(२) **प्रतिस्थापन प्रभाव** (substitution effect) वस्तु की सापेक्षिक कीमतो म परिवर्तन के कारण वस्तु के उपयोग मे परिवर्तन को प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं । यदि दो वस्तुओ की कीमतो मे इस प्रकार परिवर्तन होता है कि दोनो वस्तुओ के उपभोग मात्रा मे परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता की स्थिति न तो पहले से अच्छी होती है और न खराब, तो उसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं।—कीमतो मे परिवर्तन हो जाने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता उस वस्तु की मात्रा-अधिक उपभोग मे-लाता-है जो कि सस्ती हो जाती है तथा उस वस्तु को कम जो कि महगी हो जाती-है । इस प्रकार वह अपेक्षाकृत महगी वस्तु के स्थान पर अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु का उपभोग अधिक करता है । इस प्रतिस्थापन से उसको प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि की मात्रा मे कोई परिवर्तन नही होता, अर्थात् समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है उपभोक्ता को समान सतुष्टि उसी अवस्था मे प्राप्त होगी जबकि उपभोक्ता का तटस्थता वक्र अपरिवर्तित रहता है, यद्यपि वस्तु की माग मे परिवर्तन होन से सन्तुलन विन्दु वदल जाता है ।

स्टोनियर तथा हेग ने प्रतिस्थापन प्रभाव के सम्बन्ध मे लिखा है—"प्रतिस्थापन प्रभाव तब होता है जबकि वस्तुओ के मूल्यो मे परिवर्तन इस प्रकार का हो कि उपभोक्ता की दशा न पहले से अच्छी हो और न बुरी, लेकिन वस्तुओ के क्रेताओ

को सापेक्षिक परिवर्तनो के अनुरूप पुन प्रबन्धित re arrange करना पड़े ।[2]

प्रतिस्थापन प्रभाव की निम्नलिखित मान्यतायें हैं—

(१) दो वस्तुओ की सापेक्षिक कीमतो मे परिवर्तन होता है ।

(२) एक वस्तु सापेक्षिक रूप से सस्ती तथा दूसरी सापेक्षिक रूप से महगी हो जाती है, जिससे एक वस्तु के महगे होने के प्रभाव दूसरी वस्तु के सस्ते होने के कारण समाप्त हो जाते हैं ।

(३) उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है ।
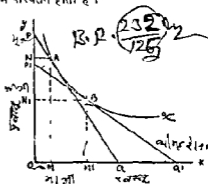
उपभोक्ता की कुल सन्तुष्टि मे यदि परिवर्तन नही होता प्रतिस्थापन प्रभाव को चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है ।

उपर्युक्त चित्र मे P Q कीमत रेखा है । यह रेखा तटस्थता रेखा को A बिन्दु पर स्पर्श करती है, अत A सन्तुलन बिन्दु है । इस स्थिति म उपभोक्ता X वस्तु की O M मात्रा तथा Y वस्तु को O N मात्रा क्रय करता है । यदि यहा यह मान लें कि X वस्तु की कीमत गिर जाती है और Y वस्तु की कीमत बढ जाती है तो दोनो वस्तुओ के मूल्य मे परिवर्तन इस प्रकार होता है कि Y वस्तु की कीमत म होने वाली वृद्धि के प्रभाव को X वस्तु की कीमत मे होने वाली कमी के द्वारा समाप्त कर दिया जाता है । दूसरे शब्दो म, X वस्तु के रूप म होने वाली उपभोक्ता की आय मे वृद्धि इस प्रकार होती है कि Y वस्तु की कीमत मे वृद्धि होने से उपभोक्ता को होने वाली क्षति को पूरा कर देती है । इस प्रकार उपभोक्ता की स्थिति म कोई परिवर्तन नही होता, अत उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, अर्थात् तटस्थता वक्र म भी कोई परिवर्तन नही होता । लेकिन कीमत मे परिवर्तन हो जाने के परिणामस्वरूप उपभोक्ता द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तुओ

2 "A Substitution effect occurs when the relative prices of goods change in such a way that the consumer in question is no better or worse off than he was before, but has to rearrange his purchases in accordance with the new relative prices"

— Stonier and Hague

की मात्राओ मे परिवर्तन हो जाता है। उपर्युक्त चित्र मे कीमत मे परिवर्तन हाने से उपभोक्ता का नया सन्तुलन बिन्दु B हो जाता है। कीमत मे परिवर्तन के कारण नयी कीमत रेखा भी बनती है जो कि $P_2 Q_2$ है। इस स्थिति मे उपभोक्ता X वस्तु को O M^1 मात्रा और Y वस्तु की O N^1 मात्रा क्रय करता है, अर्थात् X वस्तु को पहले से अधिक और Y वस्तु को पहले से कम मात्रा मे क्रय करता है। यद्यपि उपभोग की जाने वाली वस्तु की मात्रा मे परिवर्तन होता है, परन्त इस परिवर्तन से उपभोक्ता की स्थिति न तो पहले से अच्छी होती है और न ही खराब, क्योंकि उपभोक्ता उसी तटस्थता वक्र पर रहता है। इस प्रकार उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु A से हटकर B हो जाता है, यह परिवर्तन ही प्रतिस्थापन प्रभाव है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ उपभोक्ता के सन्तुलन से क्या अभिप्राय है ? उपभोक्ता के सन्तुलन की शर्तों को बताइए।

२ तटस्थता वक्र रेखा की विशेषतायें समझाइए। तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से उपभोक्ता के सन्तुलन की व्याख्या कीजिए।

३. "एक उपभोक्ता सतुलन की स्थिति मे तब होगा जबकि वस्तुओ के बीच की प्रतिस्थापन दर उनकी कीमत के अनुपात के बराबर होती है।" व्याख्या कीजिए।

("The Consumer is only in full equilibrium if the marginal rate of substitution between any two goods equals their price ratio" Explain)

४ 'आय प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन प्रभाव' का अन्तर स्पष्ट कीजिए। ये उपभोक्ता के सन्तुलन मे परिवर्तन को किस प्रकार व्यक्त करते हैं।

५. तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता के व्यवहार पर आय मे परिवर्तन होने के प्रभाव तथा कीमत मे परिवर्तन के प्रभाव को बताइए।

अध्याय ५

★

उत्पादन-फलन
[Production Function]

★ ★ ★

उत्पादन फलन (production function) या उत्पादन प्रकार्य का अर्थ समझने से पूर्व फलन या प्रकार्य शब्द को समझ लेना आवश्यक है। फलन गणित का शब्द है। जब हम कहते हैं कि P फलन X और Y का है, तो इसका अभिप्राय यह है कि P निर्भर करता है X और Y पर। गणित में इस फलनीय सम्बन्ध (functional relationship) को सूत्र रूप में इस प्रकार लिखा जाता है—

$$P=F(X, Y)$$

इस सूत्र को हम इस प्रकार पढ़ेंगे—P फलन है X और Y का, अर्थात् P निर्भर करता है X और Y पर।

उत्पादन फलन का अर्थ (Meaning of Production Function)

किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का सहयोग आवश्यक है। जिस वस्तु का उत्पादन किया जाता है उसे हम उत्पादन (output) कहते हैं, तथा जिन साधनों के सहयोग से उत्पादन किया जाता है उसे आगत (input) कहते हैं।[1] उत्पादन किसी फर्म के भौतिक उत्पादनों तथा भौतिक आगतों के बीच के सम्बन्ध को व्यक्त करता है।

---

1 output को उत्पादन, उत्पाद या प्रदा, तथा input को आगत, पडत या आन्दा कहते हैं।

दूसरे शब्दो म—"किसी फर्म के भौतिक उत्पादनो और भौतिक आगतो के सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है।"[2]

आगतो एव उत्पादन साधनो म कोई विशेष अन्तर नही है। ये दोनो एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं, किन्तु आगत' शब्द अधिक व्यापक है क्योकि इसम उन सभी वस्तुओ का सम्मिलित किया जाता है जिनका प्रयोग एक फर्म द्वारा उत्पादन कार्य के लिए किया जाता है। उत्पादन या उत्पाद (out put) शब्द से अभिप्राय उन सब वस्तुओ और सेवाओ की मात्राओ से है जिनका उत्पादन एक फर्म द्वारा विभिन्न आगतो के सहयोग से किया जाता है

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सैम्युलसन (Samuelson) ने उत्पादन फलन की परिभाषा निम्नलिखित शब्दो म दी है —

"उत्पादन फलन वह प्राविधिक सम्बन्ध है जो यह बताता है कि आगतो के विशेष समूह या उत्पादन के साधनो द्वारा कितना उत्पादन किया जा सकता है। यह किसी दी हुई प्राविधिक ज्ञान की स्थिति के लिए पारिभाषित किया जाता है।"[3]

जब कोई उत्पादक किसी वस्तु का उत्पादन करना चाहता है तो वह उत्पादन करने मे पूर्व साधनो के विभिन्न विकल्पो पर विचार करता है और यह देखता है कि किन साधनो स उसे कितना उत्पादन प्राप्त होगा। जिन साधनो के सयोग से उसे अधिकतम उत्पादन प्राप्त होने की सम्भावना दिखाई देती है उसे ही वह अपना लता है। अत उत्पादन फलन उत्पादन सम्भावनाओ की सूची है।

अर्थशास्त्र म उत्पादन फलनो (production functions) की सख्या काफी अधिक है। प्रो साइटोवस्की ने लिखा है—

"किसी भी फर्म का उत्पादन उत्पत्ति के साधनो का फलन है, यदि गणितीय रूप म रखा जाय तो इसे उत्पादन फलन कहते हैं।"

प्रो लफ्टविच (Prof Leftwich) के अनुसार—"उत्पादन फलन शब्द उस भौतिक सम्बन्ध के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो कि एक फर्म के साधनो की इकाइयों

---

2 The relationship between the physical input and physical output of a firm is generally reffered to as production function

3 "The Production Function is the technical relationship telling the amount of output capable of being produced by each and every set of specified input or factors of production It is defined for a given stole of technical knowledge" —Samuelson

(inputs) और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं (outputs) के बीच पाया जाता है।"

प्रो लेफ्टविच ने अपने उक्त कथन को गणितीय रूप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है :—

$X = F\ (a, b, c)$

इस सूत्र मे X वस्तुओ के उत्पादन की मात्रा है तथा a, b, c प्रति समय इकाई मे विभिन्न उत्पादन के साधन (inputs) हैं। किसी भी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा (output) उस फर्म द्वारा प्रयुक्त किये गये साधनो (inputs) की मात्रा और रूप पर निर्भर करती है। यदि इन साधनो की मात्राओ मे परिवर्तन हो जाता है तो उत्पादन की मात्रा मे भी परिवर्तन होता है। उत्पादन के लिए प्रयुक्त तकनीको का भी उत्पादन की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। यदि प्रयुक्त तकनीको मे कार्य कुशलता कम है तो उत्पादन की मात्रा कम प्राप्त होती है, तथा अधिक कार्यकुशल तकनीक के प्रयोग से उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है।

(उत्पादन फलन की विशेषतायें Characteristics of Production Functions)

उत्पादन फलन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) उत्पादन फलन की परिभाषा से स्पष्ट है कि उत्पादन फलन साधनो की भौतिक मात्रा (physical quantities of inputs) तथा उत्पादन की भौतिक मात्रा (physical quantities of outputs) के सम्बन्ध को व्यक्त करता है। अत उत्पादन फलन अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे नही आता अपितु उत्पादन इन्जीनियरिंग (production engineering) के क्षेत्र मे आता है। इस प्रकार उत्पादन फलन आर्थिक समस्या नही है, बल्कि इन्जीनियरिंग समस्या है।

उत्पादन फलन की कोई मौद्रिक विशेषतायें नही होती है, अर्थात् उत्पादन फलन उत्पादित वस्तु की कीमत एव साधनो की कीमत से पूर्णतया स्वतन्त्र रहता है, लेकिन ये कीमत ही एक फर्म के उत्पादन के इस निर्णय को प्रभावित करती है कि किस वस्तु का और कितनी मात्रा मे उत्पादन किया जाय। दूसरे शब्दो मे—

> "एक इन्जीनियर साधनो के भौतिक सयोगो मे रुचि रखता है जबकि एक व्यापारी ऐसे सयोगो मे मौद्रिक पक्षो मे रुचि लेता है।"[4]

---

4 "The engineer is interested in physical combinations, the businessman is interested in the monetary elements of such combinations"

(२) एक उत्पादन फलन दी हुई तकनीकी ज्ञान (technical knowledge) की स्थिति के संदर्भ मे परिभाषित किया जाता है।[5] प्रत्येक धम का उत्पादन फलन तकनीकी ज्ञान और प्रबन्ध योग्यता की स्थिति के द्वारा निर्धारित होता है। तकनीकी ज्ञान की स्थिति म सुधार होने से नया उत्पादन फलन प्राप्त होगा। इसका अभिप्राय यह है कि यदि उत्पादन की मात्रा मे परिवर्तन नही होता अर्थात् उत्पादन समान रहता है, तो पहले से कम ही साधन प्रयुक्त होगे और यदि पहले के समान ही साधन प्रयुक्त किये गये तो उत्पादन पहले से अधिक बढ जायेगा।

(३) एक उत्पादन फलन को हमेशा एक दिये हुये समय (for a given period of time) या प्रति इकाई समय (per unit of time) के रूप मे ही व्यक्त किया जाता है।

(४) एक उत्पादन फलन की प्रकृति को जानने के लिये पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि उत्पादन म परिवर्तन करने के लिये साधनो (inputs) की मात्राओ मे किस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है। किसी भी साधन की मात्रा को उसके कार्य करने के समय की लम्बाई के रूप म मापा जाता है, जैसे—श्रम घन्टो या मशीन घण्टो मे इत्यादि।

विगत कुछ वर्षों मे अर्थशास्त्रियो से भौतिक आगतो और भौतिक उत्पादन के बीच परिवर्तनो से सम्बन्ध को साख्यिकी विश्लेषण करके अनेक उत्पादन फलनो का प्रतिपादन किया है। साख्यिकी उत्पादन फलन का एक श्रेष्ठ उदाहरण **कॉब-डगलस उत्पादन फलन** (Cobb Douglas Production Function) है। इस उत्पादन फलन का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री पी एच डगलस (P H Dauglas) तथा सी डब्लू कॉब (C W Cobb) द्वारा किया गया।

अथशास्त्र इन दो प्रकार के उत्पादन फलनो से सम्बन्धित है जिनका प्रतिपादन साधनो की स्थिरता तथा परिवर्तनशीलता के आधार पर किया गया है—

(१) वह उत्पादन फलन जिसमे साधनो की कुछ मात्रायें स्थिर रहती हैं तथा कुछ परिवर्तनशील।

(२) वह उत्पादन फलन जिसम सभी साधनो की मात्रायें परिवर्तनशील होती हैं।

अर्थशास्त्रियो ने प्रथम प्रकार के उत्पादन फलन को अल्पकालीन व दूसरे प्रकार के उत्पादन फलन को दीर्घकालीन उत्पादन फलन कहा है।

---

5 "A production function is defined for a given state of technical knowledge"

यदि किसी एक साधन को स्थिर रखकर अन्य मे परिवर्तन किया जाय या अन्य साधनो को स्थिर रखकर एक साधन मे परिवर्तन किया जाय तो उत्पादन की मात्रा मे भी परिवर्तन हो जाता है। सुविधा के लिए हम यह मान लेते है कि फर्म एक साधन मे परिवर्तन करती है तथा अन्य को स्थिर रखती है। अर्थात् एक परिवर्तनशील साधन वाले उत्पादन फलन (production function with one variable input) की विवेचना करते हैं। इस प्रकार का उत्पादन फलन अल्पकालीन उत्पादन फलन होता है, क्योकि दीर्घकाल मे सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। इस प्रकार यदि एक फर्म अन्य साधनो को स्थिर रखकर किसी एक साधन मे परिवर्तन करके उत्पादन म वृद्धि करती है तो स्थिर तथा परिवर्तनशील साधनो के बीच अनुपात मे परिवर्तन हो जाता है।

'उत्पत्ति ह्रास नियम' (Law of Diminishing Returns) या परिवर्तनशील अनुपातो का नियम (Law of Variable Proportions) उत्पादन फलन की अवस्था है।

जब अन्य साधनो को स्थिर रखकर एक साधन मे परिवर्तन किया जाता है तब उत्पादन फलन (साधन उत्पादन सम्बन्ध) को तीन भागो म बाटा जाता है—

(१) जब उत्पादन के साधन मे वृद्धि करने से कुल उत्पादन घटते हुए अनुपात से बढता है, अर्थात् सीमान्त उत्पादन और औसत उत्पादन घटने लगता है। इसे उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) या 'लागत वृद्धि नियम' (The Law of Increasing Costs) कहते है।

(२) जब उत्पादन के साधन मे वृद्धि करने से कुल उत्पादन बढते हुए अनुपात से बढता है अर्थात् सीमान्त उत्पादन और औसत उत्पादन बढने लगता है। इसे उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) या लागत ह्रास नियम (Law of Diminishing Cost) कहते हैं।

(३) जब उत्पादन के साधन मे वृद्धि करने से कुल उत्पादन समान अनुपात म बढता है तो इसे उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns) या लागत समता नियम (Law of Constant Cost) कहते हैं।

अब हम द्वितीय अवस्था को लेते हैं जिसमे सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, अर्थात् कोई भी साधन स्थिर नही रहता। ऐसे उत्पादन फलन को दीर्घकालीन उत्पादन फलन कहते हैं। दूसरे शब्दों मे इसे सभी परिवर्तनशील साधनो के साथ उत्पादन फलन (Production function with all the variable inputs) कहते हैं।

जब सभी साधनो की मात्राओ मे एक साथ परिवर्तन होता है तो हम कहते हैं कि फर्म के 'प्लाट का पैमाना' (scale of plant) बदल गया है । ऐसी स्थिति म (अर्थात साधन की मात्राओ म परिवर्तन होने से) उत्पादन की मात्रा मे जो परिवर्तन होता है, उसे 'पैमाने का प्रतिफल" (return to scale) कहते है।

जब सभी साधनो को समान मात्रा मे परिवर्तित किया जाता है तब प्राप्त होने वाले उत्पादन की मात्रा की तीन स्थितियाँ देखने को मिलती है —

(१) पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था (stage of increasing returns to scale)

(२) पैमाने के समान या स्थिर प्रतिफल की अवस्था (stage of constant returns to scale)

(३) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था (scale of decreasing returns to scale)

नोट—(हम उपयुक्त तीनो स्थितियो का अध्ययन 'पैमाने के प्रतिफल (Return to Scale) अध्याय के अन्तर्गत करेंगे।)

किसी देश के उत्पादन फलन के स्वरूप को उस देश की तकनीकी ज्ञान की अवस्था प्रभावित करती है यदि तकनीकी ज्ञान म सुधार हो जाता है तो पुराना उत्पादन फलन बेकार हो जाता है और नया उत्पादन फलन प्राप्त हो जाता है। इस नये उत्पादन फलन मे पुराने साधनों (inputs) द्वारा ही अधिक उत्पादन प्राप्त होता है या पहले के बराबर उत्पादन कम साधनो या आगतो को प्रयुक्त करके प्राप्त किया जा सकता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ उत्पादन फलन की परिभाषा दीजिए। अल्पकालीन और दीर्घकालीन उत्पादन फलन म क्या अन्तर है ?

२ उत्पादन फलन से आप क्या समझते है ? इसकी विशेषताओ का उल्लेख कीजिए।

———

अध्याय ६

★

पैमाने के प्रतिफल
[Returns to Scale]

★ ★ ★

अल्पकाल मे समय इतना अधिक नही होता कि सभी साधनो की मात्राओ म परिवर्तन किया जा सके, अत फर्म का 'पैमाना' अपरिवर्तित रहता है। परन्तु दीघकाल मे सभी साधनो (आगतो) की मात्राओ मे परिवतन करके फर्म के पैमाने को परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए दीर्घकालीन उत्पादन फलन को पैमाने का प्रतिफल (Returns to Scale) कहते हैं। पैमाने का प्रतिफल केवल दीघकाल से ही सम्बन्धित है, क्योकि सभी साधनो मे परिवर्तन, दीर्घकाल म ही सम्भव है।

सभी साधनो की मात्राओ म एक साथ परिवर्तन करने से उत्पादन की मात्रा मे जो परिवर्तन होता है उसे पैमाने का प्रतिफल कहते हैं। दूसरे शब्दो मे, पैमाने के प्रतिफल मे इस विश्लेषण का अध्ययन किया जाता है कि यदि सभी साधनो म समान अनुपात से परिवर्तन किया जाय तो उत्पादन की मात्रा मे किस प्रकार से परिवतन होगा।

जब सभी साधनो म एक ही अनुपात मे वृद्धि की जाती है तो प्राप्त होने वाले उत्पादन की मात्रा म तीन स्थितिया देखने को मिलती है—

(१) पैमाने के बढते हुए प्रतिफल की स्थिति
(Stage of increasing returns to scale),

(२) पैमाने के स्थिर या समान प्रतिफल की स्थिति
(Stage of constant returns to scale),

(३) पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की स्थिति
(Stage of decreasing returns to scale)।

पमाने के बढते हुए प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

उत्पादन के साधनो की मात्रा मे जिस अनुपात म वृद्धि करते हैं उत्पादन उससे अधिक अनुपात म प्राप्त होता है उसे पैमाने म वढते हुए प्रतिफल कहते है, जैसे—यदि साधनो म वृद्धि का अनुपात १५ प्रतिशत है इस वृद्धि मे उत्पादन २० प्रतिशत बढ जाता है तो यह बढते हुए प्रतिफल की स्थिति होती है।

पैमाने के वढत हुए प्रतिफल के निम्नलिखित कारण हैं —

(१) वित्तीय बचतें (Dimensional economics)—जब उत्पादन म वृद्धि करने के लिए पू जीगत वस्तु के आकार म वृद्धि की जाती है और इस बडे आकार की पू जीगत वस्तु से प्राप्त उत्पादन लागत म हुई वृद्धि की तुलना म अधिक होता है तो इसे वित्तीय बचतें कहते है, जैसे—यदि एक तेल पाइप के आकार को दुगुना कर दिया जाय तो उस पाइप से पहले की तुलना म दुगुने मे अधिक तेल निकाला जा सकता है। अत एक सीमा तक उत्पादन क्षमता पू जीगत वस्तुओ म किये गये विनियोग की वृद्धि के अनुपात से अधिक बढती है, जिसके कारण प्रति इकाई उत्पादन लागत घट जाती है।

(२) अविभाज्यता (Indivisibility)—साधन की अविभाज्यता पैमाने के बढते हुए प्रतिफल का एक महत्वपूर्ण कारण है। अविभाज्यता से अभिप्राय है कि पू जीगत वस्तुएँ कुछ निश्चित आकारो म ही उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिए जैसे—एक वस्त्र बनाने की मशीन है, जो कि एक दिन म ५००० वस्त्र बना सकती है, लेकिन यदि इस मशीन का केवल १००० वस्त्र बनाने के लिए ही प्रयोग म लाया जाता है तो प्रति वस्त्र की उत्पादन लागत अधिक होगी, क्योकि कुल स्थिर लागत को १००० वस्त्रो पर ही विभाजित किया जायेगा। यदि यही मशीन ५००० वस्त्रो का उत्पादन करने के लिए प्रयुक्त की जाती है तो प्रति इकाई लागत कम होगी, क्योकि कुल स्थिर लागत को ५००० वस्त्रो पर विभाजित किया जायगा।

अविभाज्यताये केवल मशीनो या यन्त्रो से ही सम्बन्धित नही होतीं—श्रम, प्रबन्ध, वित्त तथा अनुसधान और विज्ञापन म भी अविभाज्यताय उत्पन्न होती हैं।

(३) उत्पादन बचतें (Production economics)—बडे पैमाने म उत्पादन की बचतें दो प्रकार की होती हैं—

(a) आन्तरिक बचतें (Internal economics),

(b) बाह्य बचतें (External economics)।

(a) **आन्तरिक बचतें**—आन्तरिक बचतें वे बचतें हैं जो किसी फर्म को उसकी आन्तरिक कुशलता और श्रेष्ठ व्यवस्था के कारण प्राप्त होती हैं। मार्शल के अनुसार ये बचतें निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं—

(१) **तकनीकी बचतें** (Technical economics)—तकनीकी बचतें बड़े पैमाने के उत्पादन म श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण उत्पादन की श्रेष्ठ तकनीक और बड़ी मशीनों के प्रयोग के कारण प्राप्त होती हैं, इसके परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम हो जाती है।

(२) **प्रबन्ध सम्बन्धी बचतें** (Manageable economics)—बड़े पैमाने के उत्पादन मे प्रबन्ध व्यवस्था का कार्य कई विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। उसमे व्यक्तियो की योग्यता के आधार पर कार्य दिया जाता है जिससे श्रमिको की कार्यक्षमता म वृद्धि होती है और उत्पादन लागत घट जाती है।

(३) **वित्तीय बचतें** (Financial economics)—बड़े पैमाने के उत्पादन मे वित्त की व्यवस्था करने मे अधिक कठिनाई नही आती, क्योंकि इन फर्मों की साख अच्छी होती है जिससे कम ब्याज की दर पर पूंजी और साख सुविधायें उपलब्ध हो जाती हैं।

(४) **विपणन बचतें** (Marketing economics)—बड़े पैमाने के उत्पादन करने से फर्मों को कच्चा माल सस्ते मूल्यो पर उपलब्ध हो जाता है। ये फर्में अपने उत्पादित माल को बाजार मे आसानी से बेच देती हैं, क्योंकि इनके पास छोटी फर्मों की तुलना म साधन अधिक होते हैं जिससे विज्ञापन और प्रचार कार्य के द्वारा आसानी से क्रेताओ को अपनी वस्तु की ओर आकर्षित कर लेती हैं। इसके साथ ही ये फर्में अपने माल को सस्ते मूल्य पर बेचती हैं क्योंकि इन फर्मों की प्रति इकाई लागत कम होती है।

(b) **बाह्य बचतें** (External economics)—जब किसी उद्योग का विकास होता है तब उसमे संलग्न सभी फर्मों को बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं।

मार्शल के अनुसार—"वाह्य बचतें उद्योग के समान विकास पर निर्भर होती हैं। जैसे जैसे किसी उद्योग विशेष का विकास हो जाता है वैसे वैसे ये बचतें भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगती हैं।"

एक स्थान पर उद्योग केन्द्रित होने के कारण श्रमिक स्वतः ही इन क्षेत्रों की ओर आकर्षित होते हैं, जिससे श्रमिकों पर कम खर्चा करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अनेक सहायक उद्योगों की स्थापना हो जाती है। ये उद्योग अनेक सहयोगी वस्तुओं की पूर्ति करते हैं। ऐसे केन्द्रों पर डाक तार, आवागमन आदि की सुविधायें उपलब्ध हो जाती हैं तथा तकनीकी प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थायें स्थापित हो जाती हैं। इससे सभी फर्में लाभ प्राप्त करती हैं और प्रति इकाई लागत घट जाती है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि पूंजीगत वस्तुओं के आकार में वृद्धि, साधनों की अविभाज्यतायें तथा उत्पादन की आतरिक वाह्य बचतों के प्राप्त होने के कारण जब किसी फर्म के सभी साधनों में वृद्धि की जाती है तो कुल उत्पादन में वृद्धि साधनों में वृद्धि के अनुपात से अधिक होती है।

बढ़ते हुए पैमाने के प्रतिफल की स्थिति उद्योग के स्वरूप पर निर्भर करती है। साधारणतया फर्म के विस्तार की अवस्था में यह क्रियाशील रहती है। लेकिन यदि फर्म में पूंजीगत वस्तुओं (capital assets) का प्रयोग कम होता है या अविभाज्यता तथा विशिष्टता का क्षेत्र सीमित है, तो बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो जाती है और इसके स्थान पर पैमाने के प्रतिफल से सम्बद्ध स्थिर अथवा ह्रास की स्थिति कार्यशील होने लगती है। यही कारण है कि कृषि में बढ़ते हुए पैमाने के प्रतिफल की स्थिति का क्षेत्र सीमित है।

२ पैमाने के स्थिर या समान प्रतिफल (Constant Returns to Scale) :

जब उत्पादन के साधनों में समान अनुपात में वृद्धि करने पर उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने का स्थिर या समान प्रतिफल कहते हैं, जैसे—यदि साधनों की इस वृद्धि का अनुपात १५ प्रतिशत है, साधनों की इस वृद्धि से उत्पादन में भी १५ प्रतिशत वृद्धि होती है, तो पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहेंगे।

साधनों म अविभाज्यता, विशिष्टीकरण तथा उत्पादन मे आतरिक और बाह्य बचत प्राप्त होने की एक सीमा होती है। इस सीमा के बाद यदि फर्म का विस्तार किया जाता है तो पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति क्रियाशील हो जाती है, क्योंकि फर्म को प्राप्त होने वाली सभी बचतें एक सीमा के बाद नि शक्त हो जाती है। दूसरे शब्दों मे, एक सीमा के बाद आतरिक व बाह्य अवचतें (internal and external dis economics प्रभावहीन (neutral) बना देती हैं।

गणितीय भाषा मे पैमाने के स्थिर प्रतिफल का रेखीय एव सजातीय (linear or homogeneous) अथवा 'प्रथम मात्रा का समरूप (homogeneous of first order) उत्पादन फलन कहते है।

३ पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

जब उत्पादन के साधनो म समान अनुपात म वृद्धि करने पर उत्पादन मे उससे कम अनुपात मे वृद्धि होती है, तो उसे पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की स्थिति कहते हैं जैसे—उत्पादन के साधनो की मात्रा म वृद्धि का अनुपात १५ प्रतिशत है, साधनो की इस वृद्धि से उत्पादन मे केवल १० प्रतिशत वृद्धि होती है तो इस पैमाने के घटते हुए प्रतिफल या ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति कहेंगे।

जब किसी फर्म का विस्तार स्थिर प्रतिफल की स्थिति के बाद भी किया जाता है तो वहा घटने हुये प्रतिफल की स्थिति क्रियाशील हो जाती है। इसका कारण यह है कि एक सीमा के बाद आन्तरिक व बाह्य बचतो के स्थान पर फर्म को उत्पादन की अवचतो या अमितव्ययताओ का सामना अधिक करना पड़ता है, जिससे प्रति इकाई लागत बढ जाती है। दूसरे शब्दो मे, विशाल स्तरीय प्रबन्धन की कठिनाईया एव जटिलतायें घटते हुये प्रतिफल की अवस्था के कार्यशील होने की प्रमुख कारण है।

उदाहरण एव रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

पैमाने के प्रतिफल से सम्बन्धित तीनो स्थितियो को अग्र पृष्ठ पर प्रस्तुत तालिका द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

क्रम संख्या	पैमाना (Scale)	कुल उत्पादन या प्रतिफल (Total Returns)	सीमान्त उत्पादन या प्रतिफल (Marginal Returns)	रिमार्क (Remark)
१	१ श्रमिक + २ एकड भूमि	१० क्विटल	१० क्विटल	बढता हुआ प्रतिफल
२	२ श्रमिक + ४ एकड भूमि	२४ ,,	१४ ,,	
३	३ श्रमिक + ६ एकड भूमि	४२ ,,	१८ ,,	
४	४ श्रमिक + ८ एकड भूमि	६४ ,,	२२ ,,	स्थिर प्रतिफल
५	५ श्रमिक + १० एकड भूमि	८६ ,,	२२ ,,	
६	६ श्रमिक + १२ एकड भूमि	१०५ ,,	१९ ,,	घटता हुआ प्रतिफल
७	७ श्रमिक + १४ एकड भूमि	१२० ,,	१५ ,,	
८	८ श्रमिक + १६ एकड भूमि	१३० ,,	१० ,,	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे जब एक श्रमिक और दो एकड भूमि है तब कुल उत्पादन १० क्विटल उत्पादन प्राप्त होता है। जब साधनो को दुगुना कर दिया जाता है, अर्थात् दो श्रमिक और चार एकड भूमि है तब उत्पादन दुगुने से अधिक बढ जाता है, अर्थात् कुल उत्पादन २४ क्विटल प्राप्त होता है। साधनो के पैमाने मे पुन समान अनुपात मे वृद्धि करने पर उत्पादन बढकर ४२ क्विटल हो जाता है। इस प्रकार पैमाने का बढता हुआ प्रतिफल प्राप्त होता है। यदि इस सीमा के बाद साधनो के अनुपात मे वृद्धि की जाती है तो उत्पादन मे वृद्धि उसी अनुपात मे होती है, अर्थात् पैमाने का स्थिर प्रतिफल होता है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल की सीमा ५ श्रमिक और १० एकड भूमि तक रहती है। इस सीमा के बाद भी यदि साधनो की मात्राओ मे वृद्धि की जाती है तो सीमान्त प्रतिफल घटता जाता है, अर्थात घटते हुए प्रतिफल की अवस्था प्राप्त होती है।

उपर्युक्त स्थिति को रेखाचित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है—

संलग्न रेखाचित्र में पहली स्थिति में पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल दूसरी स्थिति में स्थिर प्रतिफल तथा तीसरी स्थिति में पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था प्राप्त होती है।
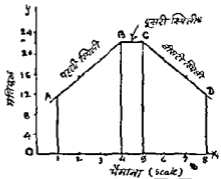
अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ 'पैमाने के प्रतिफल' से आप क्या समझते हैं ? पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल (Increasing Returns to Scale), पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) तथा पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale) की व्याख्या कीजिए।

२. 'पैमाने के प्रतिफल' से सम्बद्ध बढ़ते हुए प्रतिफल की अवस्था के कारणों की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

३ पैमाने के घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale) को समझाइए। पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल तथा घटते हुए प्रतिफल (Decreasing Returns) के अन्तर को समझाइए।

अध्याय ७

★

समोत्पाद-वक्र
[Iso-Product Curves]

★ ★ ★

किसी वस्तु के उत्पादन मे कई साधनो, जैसे—भूमि, श्रम, पू जी का सयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। दी हुई तकनीकी दशाओ के अन्तर्गत उत्पादन के साधनो के विभिन्न सयोग समान उत्पत्ति प्रदान कर सकते है। साधनो के विभिन्न सयोगो को एक रेखा के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, ऐसी रेखाओ को जो उत्पत्ति के विभिन्न साधनो के सयोगो (सुविधा की दृष्टि से केवल दो ही उत्पत्ति के स धनो का लिया जाता है) का व्यक्त करती हैं, समोत्पाद वक्र या समोत्पाद रेखायें कहते है।

हम यह कह सकते हैं कि समोत्पाद वक्र और तटस्थता-वक्र म काफी समानता पायी जाती है, क्योकि तटस्थता वक्र दो वस्तुओ के उन विभिन्न सयोगो को प्रदर्शित करते हैं जो कि उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्रदान करते है, ठीक उसी प्रकार समोत्पाद-वक्र भी दो साधनो के उन विभिन्न सयोगो को प्रदर्शित करते हैं जिनसे कि समान उत्पादन प्राप्त होता है। इस समानता के कारण ही इनको 'उत्पादन तटस्थता-वक्र (production indifference curves) भी कहा जाता है।[1] कीरस्टेड (Keirstead) ने समोत्पाद वक्र की परिभाषा इस प्रकार दी है—

> **"समोत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब सभावित सयोगो को बताती है जो कि एक समान कुल उत्पादन प्रदान करते हैं।"[2]**

---

1 समोत्पाद वक्रों को सम-उत्पाद रेखायें (Equal Product curves) या सम-उत्पादन रेखायें (Iso-quant curves) भी कहते हैं।

2 "Iso product curve represents all possible combinations of the two factors that will give the same total product" —Keirstead

समोत्पाद वक्र को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लिया कि श्रम और पूंजी दो उत्पत्ति के साधन हैं और इन साधनों के विभिन्न संयोग २०० इकाइयों के बराबर उत्पादन देते है

पूंजी की इकाइयां	श्रम की इकाइयां	कुल उत्पादन
८	४	२००
५	८	२००
३	१४	२००

इसे चित्र के द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र मे IP समोत्पाद-वक्र है जो कि श्रम तथा पूंजी के उन संयोगों को प्रदर्शित करती है जिनसे कि उत्पादक को एक समान उत्पादन (अर्थात् २०० इकाइयां) प्राप्त होता है।

समोत्पाद मानचित्र (Iso Product Map)
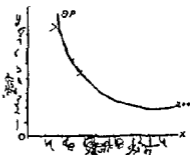
एक उत्पादक के लिए अनेक समोत्पाद-वक्र हो सकते हैं। प्रत्येक समोत्पाद वक्र उत्पादन की विभिन्न मात्रा को व्यक्त करता है। जब अनेक समोत्पाद-वक्रो को, जो कि उत्पादक के लिए उत्पादन की विभिन्न समान मात्राओं को व्यक्त करते हैं, एक ही चित्र मे प्रदर्शित किया जाता है, उसे समोत्पाद मानचित्र कहते हैं। इस मानचित्र म अंकित प्रत्येक रेखा वस्तु की विशेष मात्रा उत्पन्न करने वाले विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करती है। मूल बिन्दु से दायीं ओर स्थित समोत्पाद-वक्र अधिक उत्पादन को व्यक्त करते हैं। समोत्पाद मानचित्र को संलग्न दर्शाया गया है।
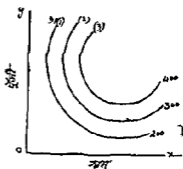
समोत्पाद-वक्रों की विशेषतायें (Characteristics of Iso Product Curves)

समोत्पाद-वक्रों की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) **समोत्पाद वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुकते हैं**—इससे अभिप्राय यह है कि जब एक साधन (input) की मात्रा म वृद्धि की जाती है तो दूसरे साधन की मात्रा मे (जो कि पहले साधन के साथ प्रयोग मे लाया जाता है) कमी करनी होनी है, जिससे कि प्राप्त उत्पादन की मात्रा स्थिर रहे, अर्थात् वक्र पर अंकित प्रत्येक बिन्दु समान उत्पादन को प्रदर्शित करे।

यदि एक साधन की मात्रा स्थिर रखकर दूसरे मे परिवर्तन किया जाय तो उत्पादक को या तो बढता हुआ प्रतिफल प्राप्त होगा या घटता हुआ प्रतिफल। इसी प्रकार यदि दोनो साधनो की मात्रा मे वृद्धि की जाय तो उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त नही होगी, जबकि समोत्पाद वक्र समान मात्रा प्रदर्शित करते हैं। अत समोत्पाद वक्र हमेशा बायें से दायें नीचे की ओर झुके हुए होते हैं, अर्थात् उनका ढाल ऋणात्मक होता है।

(२) **समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते है (Iso product curves are convex to the origin)**—इसका कारण यह है कि एक साधन का दूसरे साधन के रूप म महत्व घटता जाता है, अर्थात् सीमान्त प्रतिस्थापन दर (marginal rate of substitution) घटती जाती है। दूसरे शब्दो मे, यदि हम श्रम की मात्रा मे वृद्धि करते हैं तो पूजी की मात्रा म कमी करनी होती है। प्रारम्भ में प्रतिस्थापन की दर कम होती है तथा बाद मे यह बढ जाती है। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।
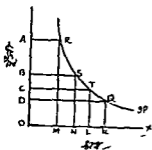
सलग्न चित्र म समोत्पाद वक्र बायें से दायें नीचे को गिरता है। श्रम की एक इकाई MN पूजी की AB इकाइयों को प्रतिस्थापित करती है। यदि श्रम की एक इकाई और बढायी जाती है तो वह पूजी की BC इकाइयों को प्रतिस्थापित करती है। इस प्रकार यदि श्रम की एक और इकाई LK बढायी जाती है तो वह पूजी की CD इकाइयो का प्रतिस्थापन करती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रम की प्रत्येक इकाई को पूजी की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित किया जाता है। यही कारण है कि समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है।

(३) **विभिन्न समोत्पाद वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तरों को बताते हैं**—समोत्पाद वक्र

उत्पादन के विभिन्न स्तरो को दर्शाते है। दायी ओर स्थित प्रत्येक समोत्पाद वक्र अधिक उत्पादन को प्रकट करता है। दूसरे शब्दो मे, समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु से जितना दूर होगा उत्पादन का स्तर उतना ही अधिक होगा।

(४) **समोत्पाद वक्र कभी भी एक दूसरे को नहीं काटते हैं**—जैसा कि पूर्व मे लिखा गया है विभिन्न समोत्पाद वक्र विभिन्न उत्पादन के स्तरो को व्यक्त करते हैं तथा मूल बिन्दु के पास वाला समोत्पाद वक्र दूर वाले समोत्पाद वक्र की तुलना मे कम उत्पादन की मात्रा को बताता है। यदि दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को काटते है, तो इसका अर्थ यह है कि उस बिन्दु पर जहा कि दोनो समोत्पाद वक्र मिलते है, या काटते है, समान उत्पादन को मात्रा को प्रदर्शित करेंगे, जो कि सम्भव नही है। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं।

सलग्न चित्र मे IP_1 तथा IP_2 वक्र एक दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं। इसका अर्थ यह है कि P बिन्दु पर उत्पादक को समान उत्पादन मिलता है, परन्तु यह सम्भव नही है क्योंकि IP_1 वक्र पर स्थित A बिन्दु IP_2 पर स्थित B बिन्दु की अपेक्षा अधिक उत्पादन को व्यक्त करता है। अत हम कह सकते हैं कि समोत्पाद वक्र एक-दूसरे को नहीं काटते।
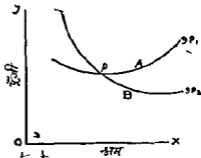
समोत्पाद वक्र एव तटस्थता वक्र मे अन्तर (Difference between Iso-product Curves and Indifference Curves)

समोत्पाद वक्र एव तटस्थता वक्र मे काफी समानता है। समोत्पाद वक्र साधनो के उन सयोगो को व्यक्त करता है, जो कि वस्तु की समान मात्रा उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार तटस्थता वक्र दो वस्तुओ के उन सयोगो को प्रदर्शित करता है जो उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्रदान करते है। इस समानता के साथ ही दोनो मे महत्वपूर्ण अन्तर है, जो कि निम्नलिखित हैं—

(१) समोत्पाद वक्रो की उत्पादन की इकाइयो को भौतिक इकाइयो (physical units) के रूप म व्यक्त कर सकते हैं, जबकि तटस्थता वक्रो को इस प्रकार व्यक्त नही किया जा सकता। दूसरे शब्दो मे, समोत्पाद वक्रो की उत्पादन की इकाइयो को संख्या के रूप में व्यक्त कर सकते हैं जबकि तटस्थता वक्रो को केवल एक क्रम (order) में ही रखा जा सकता है। इसका कारण यह है कि सन्तुष्टि को मापने की कोई भौतिक इकाई उपलब्ध

नही है, जबकि उत्पादन को मीटर, लिटर, किलोग्राम और मैट्रिक टन जैसी भौतिक इकाइयो के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है।

(२) यदि हम समोत्पाद मानचित्र (Iso product map) का निर्माण करें तो हम सरलता से यह बता सकते हैं कि एक समोत्पाद वक्र दूसरे समोत्पाद वक्र की तुलना मे कितनी कम या कितनी अधिक मात्रा को व्यक्त करता है, जबकि तटस्थता मानचित्र मे ऐसा बताना सम्भव नही है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ समोत्पाद वक्र से क्या अभिप्राय है ? समोत्पाद वक्रो की विशेषताओ को बताइए।

२ समोत्पाद वक्र की परिभाषा दीजिए। ये वक्र तटस्थता वक्र से किस प्रकार भिन्न हैं।

अध्याय ८

★

मूल्य-निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त

[General Theory of Value]

* * *

अर्थशास्त्र मे मूल्य निर्धारण की समस्या का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रारम्भ से ही इस सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो द्वारा विचार प्रस्तुत किये गये है, लेकिन प्रारम्भ मे मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विचारो मे काफी भिन्नता रही है। प्रारम्भिक विचारो को हम दो भागो म बाँट सकते हैं—

(१) उत्पादन लागत सम्बन्धी सिद्धान्त (Cost of production theory),

(२) उपयोगिता सम्बन्धी सिद्धान्त (Utility theory)।

एडम स्मिथ (Adam Smith), रिकार्डो (Ricardo) आदि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो का यह विचार था कि वस्तु का मूल्य उस वस्तु की उत्पादन लागत के द्वारा निर्धारित होता है। यद्यपि वस्तु के मूल्य निर्धारण पर अन्य बातो का भी प्रभाव पड़ता है, लेकिन महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पादन लागत का ही होता है। अत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने उत्पादन लागत सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इनके मतानुसार यदि किसी वस्तु की उत्पादन लागत दस रुपये आती है तो उस वस्तु का मूल्य भी दस रुपये होगा। इस प्रकार यह सिद्धान्त केवल पूर्ति पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित करता है।

इसके विपरीत जेवन्स (Jevons), वालरस (Walras) आदि आस्ट्रियन विचारधारा के अर्थशास्त्रियो ने बताया कि वस्तु का मूल्य उसकी उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। इस सिद्धान्त को 'सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त (marginal utility theory) कहते हैं। जेवन्स ने लिखा है —

"निरन्तर अध्ययन एव छानबीन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हू कि वस्तु का मूल्य पूर्णत उपयोगिता पर निर्भर करता है ।'[1]

जेवन्स ने बताया कि कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु के लिये मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता (marginal utility से अधिक नही देगा, जैसे—यदि एक पुस्तक से १५) रुपये के बराबर उपयोगिता प्राप्त होती है तो उपभोक्ता उसके लिये १५) रुपये से अधिक मूल्य देने के लिये तैयार नही होगा। इस प्रकार यह सिद्धान्त मूल्य-निर्धारण की माग पक्ष की ओर की व्याख्या करता है ।

उपर्युक्त दोनों सिद्धान्त अपूर्ण एव एकपक्षीय हैं, क्योंकि किसी भी वस्तु का मूल्य न तो केवल उत्पादन लागत के द्वारा ही निर्धारित होता है और न ही केवल उपयोगिता द्वारा ।

मार्शल के विचार (Marshall's Views)

मार्शल ने उपर्युक्त दोनों विरोधी विचारधाराओ को मूल्य-निर्धारण का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया । उसने बताया कि वस्तु का मूल्य न तो केवल उत्पादन लागत द्वारा (जो कि पूर्ति से सम्बन्धित है) निर्धारित होता है और न ही उपयोगिता (जो कि माग से सम्बन्धित है) द्वारा निर्धारित होता है, बल्कि वस्तु की माग व पूर्ति दोनों मिलकर मूल्य निर्धारित करती हैं। उन्होंने बताया कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे वस्तु का मूल्य उस वस्तु की माग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियो के द्वारा निश्चित होता है । इसको स्पष्ट करते हुए **मार्शल** ने लिखा है—

"जिस प्रकार हम यह नही कह सकते कि कैंची के ऊपर का ब्लेड या नीचे का ब्लेड कपडे को काटता है, इसी प्रकार हम यह नही कह सकते कि मूल्य-निर्धारण केवल माग द्वारा (जो कि उपयोगिता पर निर्भर है या केवल पूर्ति द्वारा (जो कि उत्पादन लागत पर निर्भर है होता है । जिस प्रकार काटने का कार्य उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि दोनो ब्लेड नहीं मिलते, ठीक उसी प्रकार मूल्य तब तक निर्धारित नहीं होगा जब तक माग और पूर्ति आपस मे नही मिलते । जिस बिन्दु पर ये दोनों

---

1 "Repeated reflections and enquiry have led me to the somewhat novel opinion that value depends entirely upon utility."
—Jevons

आपस मे मिलते है उसे सन्तुलन बिन्दु कहते है और उस बिन्दु पर ही मूल्य निश्चित होता है।'[2]

मार्शल के इस दृष्टिकोण को अर्थशास्त्री सिल्वरमैन (Silverman) ने निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया है—

"माग पक्ष की ओर से किसी वस्तु के मूल्य की प्रवृत्ति उसकी सीमान्त उपयोगिता अथवा सीमान्त क्रय के अनुमान (estimate of marginal purchase) के बराबर होने की रहती है, जबकि पूर्ति पक्ष की ओर से इसकी प्रवृत्ति सीमान्त उत्पादन लागत या सीमान्त फर्म की लागत के बराबर होने की होती है। सीमान्त उपयोगिता एव सीमान्त लागत के सम्मिलन का बिन्दु ही, जिसे मुद्रा द्वारा मापा जाता है, मूल्य को व्यक्त करता है।'[3]

अत हम यह कह सकते है कि वस्तु का मूल्य माग एव पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियो के द्वारा निर्धारित होता है।

माग शक्ति (Demand Force)

क्रेताओ और उपभोक्ताओ द्वारा वस्तु की माग की जाती है। माग इसलिए की जाती है क्योकि वस्तु मे उपयोगिता होती है। कोई भी उपभोक्ता या क्रेता किसी वस्तु के लिए मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से अधिक नही देता है। इस प्रकार उपभोक्ता

---

2 "Just as we cannot say whether it is the upper or lower blade of a pair of scissors that cuts a piece of cloth when the two blades operate together, so we cannot say whether demand (depending on utility) alone or supply (depending cost of production) alone determines value, and just as then can be no cutting until the two blades meet, so there can be no value until supply meets demand—the point at which they meet in order to cut, i, e, equilibrium point, is the point at which market value is fixed" —Marshall

3 "From the side of demand, the price of an article tends to equal the marginal utility or the estimate of marginal purchase, while from the side of supply it tends to equal the marginal cost of production or the cost incurred by the marginal firm The point of coincidence between the marginal cost and marginal utility both as measured in terms of money, indicate the price"
—Silverman

के लिए (माग पक्ष की ओर से) मूल्य की अधिकतम सीमा उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता होती है।

किसी वस्तु की माग, माग के नियम द्वारा नियन्त्रित होती है, अर्थात् अधिक मूल्य होने पर उपभोक्ता की माग कम होती है और कम मूल्य पर उपभोक्ता अधिक वस्तु की माग करता है। प्रत्येक क्रेता की एक माग सारणी होती है, जो यह व्यक्त करती है कि क्रेता भिन्न-भिन्न मूल्यो पर वस्तु की कितनी मात्रायें क्रय करेगा। इन व्यक्तिगत माग सारणियो को यदि मिला दिया जाय तो बाजार की माग सारणी प्राप्त हो जाती है। यदि इसे रेखा द्वारा व्यक्त किया जाय तो हमे बाजार की माग रेखा प्राप्त होती है। यह रेखा बायें से दायें नीचे की ओर झुकती हुई होती है। इस रेखा को चित्र मे प्रदर्शित किया गया है —
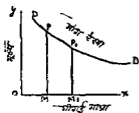
उपर्युक्त चित्र मे DD माग रेखा है। जब वस्तु का मूल्य PM है तब वस्तु की मागी गई मात्रा OM है। जब मूल्य घट कर P' M' हो जाता है तब वस्तु की माग बढ कर OM' हो जाती है।

पूर्ति शक्ति (Supply Force)

उत्पादक या विक्रेता वस्तु की पूर्ति करते है। उत्पादक या विक्रेता वस्तु का मूल्य इसलिए लेत हैं, क्योकि उस वस्तु का उत्पादन करने मे कुछ-न-कुछ लागत अवश्य आती है। कोई भी उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु के लिए कम-से कम मूल्य उस वस्तु की उत्पादन लागत के बराबर प्राप्त करेगा, अर्थात् उत्पादन लागत से कम मूल्य पर वह वस्तु को नही बेचेगा। यदि वह लागत से कम मूल्य पर वस्तु को बेचेगा तो उसे हानि होगी। इस प्रकार उत्पादन लागत वस्तु के मूल्य की न्यूनतम सीमा है।

किसी वस्तु की पूर्ति 'पूर्ति नियम' के द्वारा नियन्त्रित होती है। सामान्यत अधिक मूल्य पर वस्तु की अधिक मात्रा और कम मूल्य पर वस्तु की कम मात्रा बेची जाती है जिस प्रकार प्रत्येक क्रेता की माग सारणी होती है उसी प्रकार प्रत्येक विक्रेता की पूर्ति सारणी होती है, जो कि यह व्यक्त करती है कि एक विक्रेता विभिन्न मूल्यो पर वस्तु की कितनी मात्रायें बेचेगा। पूर्ति सारणी को यदि रेखा द्वारा व्यक्त करें तो हमे पूर्ति

रेखा प्राप्त हो जाती है। पूर्ति रेखा बायें से दायें ऊपर की ओर उठती हुई होती है। इस रेखा को चित्र द्वारा स्पष्ट किया है।

सलग्न चित्र मे SS पूर्ति रेखा है। जब वस्तु का मूल्य PM है तब वस्तु की पूर्ति OM है। जब मूल्य बढ़कर P'M' हो जाता है तो पूर्ति बढ़कर OM' हो जाती है।
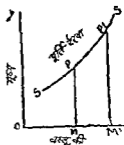
माग और पूर्ति का सन्तुलन Equlibrium of Demand and Supply)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि क्रेता वस्तु का कम-से-कम मूल्य देना चाहता है, जबकि विक्रेता अपनी वस्तु के लिए अधिकतम मूल्य प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, दूसरे शब्दों मे क्रेता सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य देने को तैयार नही होगा और विक्रेता उत्पादन लागत से कम मूल्य लेने को तैयार नही होगा। वस्तु का मूल्य इन दो सीमाओं–अधिकतम और न्यूनतम–के बीच घूमता रहता है। जिस बिन्दु पर ये दोनो मिलते हैं, अर्थात् माग और पूर्ति की शक्तिया बराबर हो जाती हैं, वही पर मूल्य निर्धारित हो जाता है। मूल्य-निर्धारण के इस बिन्दु को साम्य बिन्दु (equilibrium point) कहते है।

साम्य बिन्दु वह बिन्दु है जिस पर माग और पूर्ति की शक्तिया समान हैं। प्रो बोल्डिंग (Prof Boulding) के शब्दो में—

> "किसी वस्तु के विक्रेता किसी मूल्य पर वस्तु की जितनी मात्रा बेचना चाहते है यदि उस मूल्य पर क्रेता उस वस्तु की उतनी ही मात्रा क्रय करना चाहते है तो उसे उस वस्तु का साम्य मूल्य कहते है।"[४]

संक्षेप मे 'साम्य बिन्दु वह बिन्दु है जहा पर बाजार साफ होता है।'

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

निम्नांकित उदाहरण द्वारा मूल्य-निर्धारण की स्थिति को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है—

---

4 "The equilibrium price is the price at which the quantity of a good which the sellers are willing to offer is equal to the amount which the buyers want to purchase." —Boulding

X वस्तु का मूल्य	X वस्तु की माग	X वस्तु की पूर्ति
१० पैसे प्रति इकाई	१०० इकाई	५०० इकाई
८ पैसे ,, ,,	२०० ,, ,,	४०० ,,
६ पैसे ,, ,,	३०० ,, ,,	३०० ,,
सन्तुलन मूल्य क्योंकि माग और पूर्ति बराबर है		
४ पैसे ,, ,,	४०० ,, ,,	२०० ,,
२ पैसे ,, ,,	५०० ,, ,,	१०० ,,

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि यदि वस्तु का मूल्य १० पैसे प्रति इकाई है तो पूर्ति ५०० इकाई की है, जबकि माग केवल १०० इकाई है। इस स्थिति मे प्रत्येक विक्रेता के लिए अपनी वस्तु को बेचना सम्भव नही है, यदि सभी विक्रेता अपनी वस्तु को बेचना चाहते हैं तो वस्तु का मूल्य नीचा करना होगा। यदि वस्तु का मूल्य ८ पैसे प्रति इकाई है तो वस्तु की माग २०० इकाई और पूर्ति ४०० इकाई है, अर्थात अतिरिक्त पूर्ति २०० इकाई है। इस स्थिति म भी विक्रेताओ की पूर्ति माग की अपेक्षा अधिक है, इसलिए पुन मूल्य में कमी करनी होगी। जब वस्तु का मूल्य ६ पैसे प्रति इकाई है, उस स्थिति मे माग और पूर्ति बराबर हैं, अर्थात् इस स्थिति म न तो अतिरिक्त माग है और न ही अतिरिक्त पूर्ति, अत यह बिन्दु सन्तुलन बिन्दु है, क्योकि माग और पूर्ति की शक्तिया समान हैं। यदि मूल्य घटकर ४ पैसे प्रति इकाई हो जाता है तो वस्तु की माग ४०० इकाई की है, जबकि पूर्ति २०० इकाई है, इस प्रकार इस स्थिति मे अतिरिक्त माग २०० इकाई है। माग की अपेक्षा पूर्ति कम होने के कारण वस्तु का मूल्य बढेगा क्योकि प्रत्येक उपभोक्ता वस्तु को प्राप्त करना चाहेगा, इसलिए वह अधिक मूल्य देने के लिए तैयार हो जावेगा।

निष्कर्ष रूप मे, हम यह कह सकते हैं कि जब वस्तु का मूल्य ६ पैसे प्रति इकाई है तब माग व पूर्ति दोनो ३०० इकाई हैं, अर्थात् इस मूल्य पर सन्तुलन स्थापित हो जाता है। बाजार मे वस्तु की कीमत न इससे अधिक होगी और न इससे कम।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण.

मूल्य-निर्धारण को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है—

इस चित्र में DD माग रेखा है तथा SS पूर्ति रेखा। P साम्य बिन्दु है, क्योंकि इस बिन्दु पर माग और पूर्ति रेखायें दोनो एक-दूसरे को काटती है। इस प्रकार PM या ON मूल्य हुआ। इस मूल्य की माग व पूर्ति OM है, अर्थात् माग व पूर्ति बराबर है।
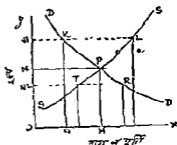
यदि बाजार में मूल्य ON के स्थान पर ON^1 हो जाता है तो इस स्थिति में माग N^1K है तथा पूर्ति N^1L अर्थात माग की अपेक्षा पूर्ति ($N^1L - NK = KL$) अधिक है। पूर्ति अधिक होने के कारण मूल्य मे कमी आयेगी और मूल्य घटकर P बिन्दु पर आ जायेगा।

यदि बाजार मे मूल्य ON^2 हो जाता है तब वस्तु की माग N^2R है तथा पूर्ति N^2T, अर्थात् पूर्ति की अपेक्षा माग ($N^2R - N^2T = TR$) अधिक है, माग अधिक होने के कारण मूल्य मे वृद्धि होगी और मूल्य बढ़कर P बिन्दु पर पहुँच जायेगा।

इस प्रकार हम यह देखते है कि माग, पूर्ति और मूल्य मे क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है। न तो केवल माग (उपयोगिता) और न केवल पूर्ति (उत्पादन लागत) ही मूल्य को निर्धारित करती है, अपितु मूल्य भी वस्तु की माग और पूर्ति को प्रभावित करता है। इस प्रकार माग, पूर्ति व मूल्य तीनो परस्पर सम्बन्धित है। मार्शल ने इन तीनो के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए इनकी तुलना एक तश्तरी मे रखे हुए तीन सगमरमर के टुकडो से की है। जिस प्रकार एक सगमरमर के टुकडे का स्थान दूसरे दो टुकडो पर निर्भर करता है, उसी प्रकार माग, पूर्ति व मूल्य परस्पर सम्बन्धित हैं।

मार्शल ने बताया कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में माग व पूर्ति की शक्तियो का यह प्रयास रहता है कि वे सन्तुलन बिन्दु को प्राप्त कर सकें। मार्शल के अनुसार—

> "मूल्य एक महराब के बीच मे पत्थर के समान होता है जो कि दोनो ओर के प्रभाव पूर्ण दबाव, अर्थात् एक ओर माग और दूसरी ओर पूर्ति की शक्तियों द्वारा साम्य बनाता है।"[5]

---

5 "The price rests like the keystone of an arch, balanced in equilibrium between the contending pressures of its two opposing sides; demand on the one side and supply on the other."
—Prof. Marshall

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ रिकार्डो के अनुसार 'वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत से निश्चित होता है' जबकि जेवन्स के मत म यह उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है।' इन दोनो म कौन सा मत सही है ?

२ मार्शल के मूल्य सिद्धात की व्याख्या कीजिए।

३ 'जिस प्रकार हम यह नही कह सकते हैं कि कपडे के टुकडे को कैंची का केवल ऊपर वाला ब्लेड या केवल नीचे वाला ब्लेड काटता है, उसी प्रकार हम यह नही कह सकते कि मूल्य केवल उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है या अकेले उपयोगिता द्वारा।' व्याख्या कीजिए।

४ 'माग म वृद्धि से मूल्य बढते है तथा माग मे कमी से मूल्य घटते हैं।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

५ सन्तुलन मूल्य से आप क्या समझते हैं ? पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म मार्शल के अनुसार मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है।

अध्याय ६

★

आगम एवं लागत के विचार
[The Concepts of Revenue and Costs]

★ ★ ★

कीमत सिद्धान्त का अध्ययन करने से पहले उन सैद्धान्तिक उपकरणों (theoretical tools) की व्याख्या करना आवश्यक है जिनकी सहायता से कीमत (मूल्य) की समस्याओं का विश्लेषण किया जाता है। इस अध्याय में इन्हीं सैद्धान्तिक उपकरणों की व्याख्या की जा रही है।

जिस प्रकार उपभोक्ता अधिकतम सतुष्टि प्राप्त कर सतुलन की अवस्था प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार एक फर्म भी उसी समय सतुलन की अवस्था में होती है जबकि वह अधिकतम मौद्रिक लाभ प्राप्त करती है। फर्म की इस सतुलनावस्था का पता दो तथ्यो को ध्यान में रखकर लगाया जाता है (१) फर्म उत्पादन की विभिन्न मात्राओं को रखकर कितनी आय (revenue) प्राप्त कर रही है, (२) उत्पादन की इन विभिन्न मात्राओं को उत्पादित करने में कितनी लागत आती है। सक्षेप म, कुल आगम (total revenue) एव कुल लागत (total cost) का पता लगाना चाहिए। कुल आगम एव कुल लागत का अन्तर ही फर्म का लाभ है। कुल लाभ जब अधिकतम होगा तब ही फर्म सतुलन की अवस्था में होगी।

कुल लागत एव कुल आगम के आधार पर सतुलन की अवस्था प्राप्त करने म कुछ त्रुटियां हैं, इन त्रुटियों के कारण आधुनिक अर्थशास्त्री इन रेखाओं का प्रयोग नहीं करते। आधुनिक अर्थशास्त्री इन रेखाओं से श्रेष्ठ रेखाओं का अध्ययन करते हैं जो कि स्थिति की श्रेष्ठ व्याख्या करती है और अधिक जानकारी प्रदान करती है। एक ओर वे औसत आगम (average revenue) और सीमान्त आगम (marginal revenue) का प्रयोग

करते है, दूसरी ओर औसत लागत (average cost) और सीमान्त लागत (marginal cost) वक्र। ये चार वक्र मूल्य निर्धारण की समस्याओ का अध्ययन करने के लिये महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक उपकरण हैं। जिस बिन्दु पर सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत बराबर होते है उसी बिन्दु पर फर्म का सतुलन स्थापित होता है, अर्थात् फर्म सतुलनावस्था मे होती है। इस बिन्दु पर ही फर्म अधिकतम मौद्रिक लाभ प्राप्त करती है।

आगम या आय का विचार
(The Concept of Revenue)

आगम से अभिप्राय विक्रेता अथवा उत्पादक की आय से होता है, अर्थात् वस्तु की बिक्री द्वारा जो कुछ विक्रेता को प्राप्त होता है वह उसकी आय या आगम कहलाती है। अर्थशास्त्री आगम शब्द को तीन अर्थों मे प्रयुक्त करते हैं—(१) कुल आगम, (२) औसत आगम तथा (३) सीमान्त आगम।

१ कुल आगम (Total Revenue)

विक्रेता को अपनी वस्तु की कुल मात्रा बेचने से जो आय प्राप्त होती है उसे कुल आगम कहते हैं, अर्थात् एक फर्म की बिक्री से प्राप्त होने वाली कुल राशि कुल आगम होती है, जैसे—एक उत्पादक को वस्तु की १००० इकाइया बेचने से ५०००) रुपये प्राप्त होते हैं, तो कुल आगम ५०००) रुपये हुआ।

कुल आगम को दूसरे प्रकार से भी परिभाषित किया जाता है। वस्तु की बेची जाने वाली इकाइयों को उसकी प्रति इकाई के मूल्य से गुणा कर दिया जाये तो कुल आगम निकल आती है। इस प्रकार—

कुल आगम = वस्तु की मात्रा × मूल्य
(T R) (Quantity) (Price)

२ औसत आगम (Average Revenue)

औसत आगम से अभिप्राय वस्तु की प्रति इकाई आय से है। कुल आगम मे वस्तु की बेची गई इकाइयो का भाग देने से औसत आगम प्राप्त होता है, अर्थात्

$$\text{औसत आगम (A R)} = \frac{\text{कुल आगम}}{\text{कुल बिक्री की मात्रा}}$$

$$\text{उपर्युक्त उदाहरण से औसत आगम} = \frac{५०००}{१०००} = ५ \text{ रुपये}$$

औसत आगम के सम्बन्ध मे निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं—

१. औसत आगम (A.R) तथा कीमत (Price) मे कोई अन्तर नही होता, अर्थात् दोनो एक हैं। औसत आगम उत्पादन के विभिन्न स्तरो पर वस्तु का मूल्य बताता है।

२. औसत आगम रेखा को माग रेखा (demand curve) भी कहते हैं। एक क्रेता किसी वस्तु के लिए जो मूल्य देता है वह फर्म की दृष्टि से औसत आगम है। औसत आगम रेखा यह बताती है कि फर्म को वस्तु की विभिन्न मात्राओ के बेचने से कितना मूल्य प्राप्त होगा, अर्थात् कितनी आय प्राप्त होगी। अत औसत आगम रेखा माग रेखा भी होती है। कुछ अर्थशास्त्री औसत आगम रेखा को विक्रय रेखा (sales curve) भी कहते हैं।

३ अपूर्ण प्रतियोगिता imperfect competition) मे औसत आगम रेखा नीचे की ओर गिरती हुई होती है। जैसा कि चित्र १ मे दर्शाया गया है। गिरती हुई औसत आगम रेखा यह बताती है कि यदि कोई फर्म अपनी वस्तु की अधिक मात्रा म बेचना चाहती है तो उसे अपनी वस्तु का मूल्य नीचा निश्चित करना होगा। यदि वस्तु का मूल्य पहले से कम नही किया जाता है तो अपूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म अपनी वस्तु अधिक मात्रा म नही बेच सकेगी।

४. पूर्ण प्रतियोगिता मे औसत आगम (A. R.) रेखा पडी हुई रेखा होती है जैसा कि चित्र २ मे दर्शाया गया है। पडी हुई रेखा यह बताती है कि एक दिये हुए मूल्य पर फर्म अपनी वस्तु की कितनी ही मात्रा बेच सकती है। अधिक मात्रा मे वस्तु बेचने के लिए मूल्य म कमी करने की आवश्यकता नही होती।

चित्र—१
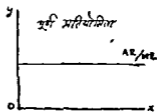
चित्र—२

३ सीमान्त आगम (Marginal Revenue) ,

किसी वस्तु की कुल मात्रा मे एक अतिरिक्त इकाई बेचने से कुल आय मे जो वृद्धि होती है उसे *सीमान्त आगम* कहते हैं, जैसे—*वस्तु की १००० इकाइया बेचने से कुल आय* ५०००) रु प्राप्त होती है, तथा १००१ इकाइया बेचने से कुल आय ५००४) रु प्राप्त होती है इस प्रकार सीमान्त आगम ४) रु है । दूसरे शब्दो मे,

सीमान्त आगम = अतिरिक्त इकाई बेचने के पश्चात कुल आगम —
(M R)   इससे बेचने के पहले की कुल आगम

सैम्युलसन (Samuelson) आदि अर्थशास्त्रियो ने इसे निम्न सूत्र ० द्वारा व्यक्त किया है—'मान लिया कि n किसी वस्तु की इकाइयो की सख्या को व्यक्त करता है, अत nवी इकाई की सीमान्त आय = (n—1) इकाई से n तक लाने म कुल आगम म अन्तर ।' किंतु व्यवहार म कोई भी फर्म अपने उत्पादन को एक समय मे केवल एक अतिरिक्त इकाई से ही नही बढाती अथवा घटाती, अत सीमान्त आगम को निम्न प्रकार से भी स्पष्ट किया जा *सकता है*—

$$\text{सीमान्त आगम (M R)} = \frac{\text{अतिरिक्त आगम}}{\text{अतिरिक्त उत्पादन}}$$

अपूर्ण प्रतियोगिता मे सीमान्त आगम (M R) गिरती हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (M R) औसत आगम से कम होती है । इसका कारण यह है कि अपूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु की अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए मूल्य म कमी करनी पडती है, अत *सीमान्त आगम औसत आगम से कम होता है* । दूसरे शब्दो म, कोई एक फर्म जब बिक्री बढाने के लिए मूल्य कम करती है तो मूल्य की यह कमी केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नही की जाती, वरन् पिछली सभी इकाइयो पर की जाती है ।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म सीमान्त आगम और औसत आगम दोनो एक ही रेखा द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं । चू कि औसत आगम रेखा पडी हुई रेखा होती है अत सीमान्त आगम रेखा भी पडी हुई रेखा होती है, जैसा कि चित्र २ से स्पष्ट है । इसका कारण यह है कि कोई एक विक्रेता वस्तु के मूल्य को प्रभावित नही कर सकता, वह *उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर कितनी ही वस्तु बेच सकता है* । अत विक्रेता को अतिरिक्त इकाई के बेचने से जो आय प्राप्त होगी वह मूल्य (A R.) के बराबर होगी । इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता म MR=AR (अर्थात् मूल्य) होगा ।

औसत आगम तथा सीमान्त आगम का पारस्परिक सम्बन्ध

औसत एवं सीमान्त आगम के सम्बन्ध को निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट किया गया है

बिक्री की गई इकाइयाँ	कुल आगम (T R)	औसत आगम (A R)	सीमान्त आगम (M R)
१	२०	२०	२०
२	३६	१८	१६
३	४८	१६	१२
४	५६	१४	८
५	६०	१२	४

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि जैसे जैसे विक्रय की गई वस्तु की इकाइयों में वृद्धि होती है वैसे-वैसे सीमान्त आगम और औसत आगम घटती जाती है परन्तु सीमान्त आगम में कमी औसत आगम की अपेक्षा अधिक तेजी से आती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में सीमान्त आगम तथा औसत आगम एक ही रेखा द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं, क्योंकि वस्तु का मूल्य बाजार में समान रहता है, अर्थात् विक्रेता को अपनी वस्तु के लिये एक मूल्य मिलता है जैसा कि चित्र २ से स्पष्ट है।

लागत का विचार

(The Concept of Cost)

किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की माग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। वस्तु की पूर्ति के पीछे उत्पादन लागत छिपी रहती है। एक दिये हुए मूल्य पर उत्पादक वस्तु विशेष का कितना उत्पादन करेगा यह उत्पादन लागत पर निर्भर करेगा। उत्पादन लागत को प्रायः तीन अर्थों में प्रयुक्त करते हैं—

(१) मौद्रिक लागत या द्राव्यिक लागत (Money cost),

(२) वास्तविक लागत (Real cost),

(३) अवसर लागत (Opportunity cost)।

१ मौद्रिक लागत (Money Cost)

लागत का सबसे महत्वपूर्ण रूप उत्पादन की मौद्रिक लागत होता है। सामान्य रूप से किसी वस्तु के उत्पादन म विभिन्न उत्पत्ति के साधनो के प्रयोग के लिए उत्पादक जो मुद्रा व्यय करता है उसे मौद्रिक लागत कहते हैं। आधुनिक अथशास्त्री मौद्रिक लागत म तीन प्रकार की मदें शामिल करत हैं—

(अ) **स्पष्ट लागतें**[1] (Explicit costs)—स्पष्ट लागतें वे लागतें हैं जो कि एक उत्पादन स्पष्ट रूप से विभिन्न साधनो को क्रय करने मे व्यय करता है। इसम तीन मदें सम्मिलित रहती हैं—

(१) **उत्पादन लागतें**—जैसे कच्चे माल की कीमत, श्रमिकों की मजदूरी, प्रबन्धको का वेतन, उधार ली गई पूजी का ब्याज, भूमि तथा भवनो का किराया इत्यादि।

(२) **विज्ञापन लागतें**—विज्ञापन पर व्यय तथा बिक्री सम्बन्धी व्यय इत्यादि।

(३) **अन्य लागतें**—जैसे सरकार को दिया जाने वाला कर, बीमा व्यय इत्यादि।

(ब) **अस्पष्ट लागतें**[2] (Implicit costs)—इसके अन्तगत उन साधनो तथा सेवाओ का मूल्य शामिल रहता है, जिन पर उत्पादक या साहसी प्रत्यक्ष रूप से व्यय नही करता। दूसरे शब्दो मे, साहसी को स्वय क साधनो पर प्राप्त पुरस्कार अस्पष्ट लागतें हैं, जैसे—निजी पूजी पर ब्याज, निजी वेतन इत्यादि। व्यावहारिक जीवन म उत्पादक अस्पष्ट लागतो को प्राय उत्पादन लागत म शामिल नही करते।

(स) **सामान्य लाभ** (Normal profit)—सामान्य लाभ, लाभ का वह स्तर है जो कि किसी उत्पादक या साहसी को उद्योग म बनाये रखने के लिये केवल पर्याप्त (just sufficient) है। यदि साहसी को दीर्घकाल म सामान्य लाभ प्राप्त नही होता तो वह दूसरे उद्योग म चला जायेगा। इस प्रकार

---

1 स्पष्ट लागतो को 'व्यय लागतें' (Expenditure costs) या 'भुगतान की गई लागतें' (Paid out costs) भी कहते हैं।

2 अस्पष्ट लागतो को निहित लागतें तथा अव्यय लागतें (Non expenditure costs) भी कहते हैं।

सामान्य लाभ साहसी को उद्योग विशेष म बनाये रखने की न्यूनतम लागत है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र मे मौद्रिक लागतो मे स्पष्ट लागतें, अस्पष्ट लागतें तथा सामान्य लाभ शामिल रहते हैं, जबकि व्यवहार म उत्पादक या एकाउन्टेण्ट केवल स्पष्ट लागतो को ही मौद्रिक लागतो म जोडते हैं।

वास्तविक लागत (Real Cost)

वास्तविक लागत के अर्थ उन प्रयासो, कष्टो तथा त्याग से है, जो उत्पादन करने मे उठाने पडते हैं। मार्शल ने वास्तविक लागत का विचार प्रस्तुत किया, उनके शब्दो मे—

"किसी वस्तु के उत्पादन मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिको द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न तथा पूजी व बचत के लिये आवश्यक त्याग और प्रतीक्षा, ये सब प्रयत्न तथा त्याग मिलकर वस्तु की वास्तविक लागत कहे जाते हैं।"[3]

इस प्रकार वास्तविक लागत मे दो बात पायी जाती हैं

(१) श्रमिको के शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्न जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन कार्य म लगे होते है

(२) पूजी सचय करने से समाज को उत्पन्न होने वाला कष्ट और त्याग।

इस प्रकार मार्शल की वास्तविक लागत की धारणा सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। मार्शल ने इसे सामाजिक लागत (social cost) की सज्ञा दी है।

वास्तविक लागत के विचार की आलोचना (Criticism of the Concept of Real Cost)

वास्तविक लागत का विचार आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार अमहत्वपूर्ण है। हेन्डरसन (Handerson) के शब्दो म—

"वास्तविक लागत का सिद्धान्त हमे सदेहात्मक विचार तथा अवास्तविक के दलदल मे फसा देता है।"[४]

---

3 The exertions of all the different kinds of labour that are directly or indirectly involved in making it, together with the abstinances or rather the waitings required for saving the capital used in making it, all these efforts and sacrifices together *will be called the real cost of production of the commodity*"
—Marshall

4 "The doctrine of real cost would lead into a quagmire of unreality and dubious hypothesis." —Handerson

इस विचार की आलोचनायें निम्नलिखित हैं—

(१) वास्तविक लागत की माप त्याग तथा कष्ट है, परन्तु त्याग तथा कष्ट व्यक्तिगत तथा मनोवैज्ञानिक विचार है, जिसकी माप करना कठिन है।

(२) यह विचार अव्यावहारिक है। व्यवहार मे हम यह देखते हैं कि एक कुली या मजदूर का कष्ट या त्याग एक शिक्षक या मैनेजर की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, फिर भी कुली या मजदूर को अपेक्षाकृत बहुत कम मजदूरी प्राप्त होती है।

अवसर लागत[5] **(Opportunity Cost)**

आधुनिक आर्थिक विश्लेषण मे 'वास्तविक लागत' (real cost) अवसर लागत के रूप मे व्यक्त की जाती है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार त्याग या कष्ट को मापना सम्भव नही हैं। साधन सीमित होते है तथा उनके अनेक प्रयोग सम्भव हैं। साधनो की सीमितता के कारण सभी प्रयोगो मे पूण रूप से साधनो को प्रयुक्त करना सम्भव नही है। समाज की दृष्टि से साधन को किसी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिये लगाने का अर्थ है उसका अन्य प्रयोगो से वचित करना। इस प्रकार किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत अन्य वस्तुओ की वह मार्षे हैं जिनका त्याग करना पडता है। किसी वस्तु A की वास्तविक उत्पादन लागत (अवसर लागत) B वस्तु की त्यागी गई माता क बराबर है। इस प्रकार अवसर लागत का अथ दूसरे सवश्रेष्ठ विकल्प (next best alternative) से होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक कृषक ५० क्विटल चावल का उत्पादन कर रहा है, इन्हीं साधनो से वह ६० क्विन्टल गेहू का उत्पादन कर सकता है, तो ५० क्विन्टल चावल की अवसर लागत ६० क्विन्टल गेहू है।

अवसर लागत को हस्तातरण आय या हस्तातरण लागत भी कहते हैं क्योंकि उत्पत्ति के साधन को उद्योग विशेष मे बनाये रखने के लिये कम से कम उतना मूल्य अवश्य देना पडेगा जितना कि उस साधन को वैकल्पिक उद्योगो मे प्राप्त होगा, अन्यथा वह साधन दूसरे उद्योग म हस्तातरित हो जायेगा। प्रो० बेनहम (Benham) ने अवसर लागत की व्याख्या इस प्रकार की है—

---

5 अवसर लागत को वैकल्पिक लागत (alternation cost), विस्थापित लागत (displaced cost), हस्तातरण आय (transfer earning) तथा हस्तातरण लागत (transfer cost) भी कहते हैं।

"द्रव्य की वह मात्रा जो कोई एक इकाई अपने सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग मे प्राप्त कर सकती है उसे कभी-कभी हस्तातरण आय भी कहते हैं।"[६]

श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs Joan Robinson) ने हस्तातरण आय के विचार को निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया है—

'वह मूल्य जो कि साधन की एक दी हुई इकाई को किसी विशेष उद्योग मे बनाये रखने के लिये आवश्यक है, हस्तातरण आय या हस्तातरण मूल्य कहा जाता है।"[७]

उदाहरण के लिये, एक सीमेन्ट उत्पादक को अपनी फर्म चलाने के लिये श्रमिको की आवश्यकता है, तो उसे श्रमिको को अपनी फर्म मे आकर्षित करने के लिये कम-से-कम इतनी मजदूरी देनी चाहिए जितनी कि श्रमिको को दूसरे व्यवसायो से प्राप्त होती है। अत सीमेन्ट उत्पादक के लिये श्रमिको की अवसर लागत वह मजदूरी है जो कि श्रमिको को अन्य व्यवसायो से प्राप्त होती है। इस प्रकार अवसर लागत से अभिप्राय उन भुगतानो से है जो कि एक व्यवसायी या उत्पादक द्वारा अपने व्यवसाय मे उत्पादन के साधनो को आकर्षित करने के लिये दिये जाते हैं।

अवसर लागत का विचार सर्वप्रथम **डी० एल० ग्रीन** ने प्रस्तुत किया, तत्पश्चात् **डेवनपोर्ट, हेबरलर तथा रॉबिन्स** आदि अर्थशास्त्रियो ने इसका प्रयोग किया।

अवसर लागत की विशेषतायें

अवसर लागत की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है—

(१) साधन जितना अधिक विशिष्ट होगा उसकी अवसर लागत उतनी ही कम होगी।

(२) अवसर लागत का सिद्धान्त सभी उत्पत्ति के साधनो मे तथा सभी व्यवसायो मे लागू होता है।

---

6 "The amount of money which any particular unit could earn in its best paid alternative use is sometimes called its transfer earnings" —Benham

7 "The price which is necessary to retain a given unit of a factor in a certain industry may be called its transfer earnings or transfer price." —Mrs. Joan Robinson

(३) अवसर लागत मे अस्पष्ट लागतें (implicit cost) तथा स्पष्ट लागत (explicit cost) दोनों होती हैं।

अवसर लागत का महत्व (Significance of Oppertunity Cost)

यह सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्तो मे से एक है। इसका महत्व निम्नलिखित बातो से स्पष्ट होता है—

(१) **उत्पत्ति के साधनो के वितरण मे सहायक**—अवसर लागत के सिद्धान्त के आधार पर उत्पत्ति के साधनो का विभिन्न उपयोगो म वितरण होता है क्योकि यह सिद्धात व्याख्या करता है कि साधन को एक प्रयोग म कम-से-कम इतना अवश्य मिलना चाहिए जितना कि उसे वैकल्पिक उपयोगो म प्राप्त होता है।

(२) **लागत मे परिवर्तन के कारणो पर प्रकाश डालता है**—प्रो० बेनहम के अनुसार यह सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश डालता है कि किसी उद्योग मे उत्पादन की लागत किस सीमा तक उसके उत्पादन के साथ साथ बदल सकती है।

(३) **लगान मापन मे सहायक**—आधनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान अवसर लागत पर आधिक्य (surplus) है, अर्थात किसी साधन का लगान उसकी वास्तविक आय और अवसर लागत का अन्तर है। उदाहरणार्थ, यदि एक श्रमिक को एक व्यवसाय मे २००) रुपये प्राप्त होत हैं, और उसकी अवसर लागत १७५) रुपये है तो उसका लगान २५) रुपये (२००—१७५=२५) होगा। इस प्रकार यह सिद्धात लगान ज्ञात करने म सहायता प्रदान करता है।

अवसर लागत की सीमाएँ व आलोचनाएँ (Limitations and Criticism of Opportunity Cost)

अवसर लागत की सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) यह विचार विशिष्ट साधनो के सम्बन्ध में लागू नहीं होता, विशिष्ट साधन वह साधन है जिसका केवल एक ही प्रयोग सम्भव है, अत विशिष्ट साधनों की अवसर लागत शून्य होती है। ऐसे साधनो के प्रयोग के लिए जो मूल्य प्राप्त होता है वह लगान होता है। व्यवहार म अधिकाश साधन आशिक रूप से विशिष्ट तथा आशिक

रूप से अवशिष्ट होते हैं। अत इनमे पुरस्कार लगान एव अवसर लागत दोनो होते हैं।

(२) यह विचार पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है, जबकि व्यवहार मे पूर्ण रोजगार की स्थिति नही पायी जाती।

(३) पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता अव्यवहारिक है।

(४) यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि उत्पत्ति के साधन किसी कार्य के लिए कोई विशेष रुचि या पसन्दगी (preference) नही रखते, किन्तु यह मान्यता गलत है।

उपर्युक्त सीमाओ के बावजूद अर्थशास्त्र मे अवसर लागत का सिद्धान्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

कुल, औसत और सीमान्त लागत (Total, Average and Marginal Cost)

(१) **कुल लागत (Total cost)**—कुल लागत से अभिप्राय कुल मौद्रिक लागत से है जो किसी के उत्पादन मे आती है। दूसरे शब्दो मे, किसी उत्पादक द्वारा किसी वस्तु के उत्पादन मे जो कुछ मौद्रिक व्यय करना पडता है उसे कुल लागत कहते है।

(२) **औसत लागत (Average cost)**—कुल लागत मे उत्पादन की इकाइयो का भाग देने पर जो लागत प्राप्त होती है उसे औसत लागत कहते है। औसत लागत किसी वस्तु की प्रति इकाई उत्पादन लागत है। दूसरे शब्दो मे—

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

उदाहरणार्थ, यदि १० इकाइयो की कुल उत्पादन लागत ५०) रु है तो औसत लागत (प्रति इकाई लागत) $= \frac{५०}{१०} = ५$ रु होगी।

(३) **सीमान्त लागत (Marginal cost)**—सीमान्त लागत अन्तिम इकाई अर्थात् सीमात इकाई के उत्पादन की लागत है। दूसरे शब्दो मे, किसी वस्तु के कुल उत्पादन मे एक इकाई की कमी या वृद्धि करने से कुल लागत मे जो कमी या वृद्धि होती है उसे सीमान्त लागत कहते हैं, जैसे—१० इकाइयों पर लागत ५०) रु आती है, यदि एक इकाई की वृद्धि करने से कुल लागत बढकर ५५) रु हो जाती है तो सीमान्त लागत ५) रु (५५—५०=५) होगी।

कुल, औसत एव सीमान्त लागतें को निम्न तालिका से भी स्पष्ट किया जा सकता है—

उत्पादन की इकाइयों की सख्या	कुल लागत (TC)	औसत लागत (AC)	सीमान्त लागत (MC)
१	१०	१०	१०
२	१८	९	८
३	२४	८	६
४	२८	७	४
५	३४	६ ८	६
६	४२	७	८
७	५२	७ ४	१०

यदि उपर्युक्त तालिका को ग्राफ पेपर पर अंकित करें तो हम कुल लागत, औसत लागत एव सीमान्त लागत वक्र प्राप्त हो जायेंगे।

मूल्य विश्लेषण मे कुल लागत की धारणा महत्वपूर्ण नही है। सीमान्त लागत और औसत लागत का विचार सीमान्त आगम तथा औसत आगम के समान महत्वपूर्ण है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जब औसत लागत घटती है तो सीमान्त लागत भी घटती है और जब औसत लागत बढती है तो सीमान्त लागत भी बढती है। परन्तु सीमान्त लागत म कमी या वृद्धि औसत लागत मे कमी या वृद्धि की अपेक्षा अधिक तेजी से होती है। सीमान्त लागत एवं औसत लागत के सम्बन्ध को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

संलग्न चित्र से स्पष्ट है कि जब औसत लागत वक्र (AC) नीचे को गिरता है तो सीमान्त लागत वक्र (MC) इसके नीचे ही रहता है, जब औसत लागत वक्र ऊपर की ओर उठता है तब सीमान्त लागत वक्र इससे भी अधिक ऊपर उठ जाता है। स्पष्ट है कि सीमान्त लागत वक्र तेजी से नीचे की ओर गिरता है और तेजी से ऊपर को ओर उठ जाता है। सामान्यतः सीमान्त लागत वक्र (MC) औसत लागत वक्र (AC) को उसके निम्नतम बिन्दु पर काटता है।
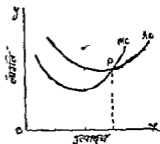
सामान्यतः सीमान्त लागत एवं औसत लागत वक्रो की आकृति अंग्रेजी के अक्षर U के समान होती है। लागत वक्रो की प्रवृत्ति उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर नीचे की ओर ही झुकने की नहीं होती अपितु ऊपर उठने की भी होती है, फलस्वरूप दोनो लागत वक्रो की आकृति U आकार की हो जाती है।

स्थिर तथा परिवर्तनशील लागत (Fixed and Variable Cost)

कुल लागत को **मार्शल** ने दो भागो मे विभाजित किया है—

(१) स्थिर लागत या पूरक लागत (Fixed cost or Supplementary cost),

(२) परिवर्तनशील लागत या प्रमुख लागत (Variable cost or Prime cost)।

(१) **स्थिर लागत या पूरक लागत**[8]—स्थिर लागत वह लागत है जो कि उत्पादन के स्थिर साधनो पर व्यय की जाती है। स्थिर साधन से अभिप्राय उन साधनो से है जिनकी मात्रा उत्पादन मे परिवर्तन होने से बहुत शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती। दूसरे शब्दो मे, वह लागत जो अल्पकाल मे उत्पादन की मात्रा मे कमी या वृद्धि होने पर घटती या बढती नहीं है, स्थिर लागत है। प्रो बेन के अनुसार—

> "स्थिर लागत वह लागत है जिसकी कुल राशि अल्पकाल मे उत्पादन की मात्रा मे परिवर्तन होने पर भी पूर्णतया अपरिवर्तित रहती है।'

---

8 स्थिर लागतो को सामान्य लागतें (general costs), पूरक लागतें (supplementary costs), अप्रत्यक्ष लागतें (indirect costs) तथा उपरिव्यय लागतें (overhead costs) भी कहते हैं।

सक्षेप मे, यदि उत्पादन की माश्रा शून्य है तब भी स्थिर लागत धनात्मक होती है, अर्थात् यदि अल्पकाल में उत्पादन बन्द भी हो जाता है फिर भी स्थिर लागत मे सामान्यत निम्नांकित व्यय सम्मिलित रहते हैं—

(a) प्रारम्भिक व्यय,
(b) स्थिर पूजी के व्यय,
(c) व्यवस्थापकों का वेतन,
(d) ऋण पत्रो पर ब्याज,
(e) घिसावट व्यय,
(f) बीमा किस्त आदि पर व्यय।

(२) **परिवर्तनशील लागत या प्रमुख लागत**[9]—परिवर्तनशील लागत वह लागत है जो कि उत्पादन के परिवर्तनशील साधनो पर व्यय की जाती है, अर्थात् वह लागत है जो कि उत्पादन की मात्रा म परिवर्तन होने के साथ-साथ घटती बढती रहती है। दूसरे शब्दो म, जब उत्पादन बढता है प्रमुख लागत बढ जाती है तथा जब उत्पादन घटता है प्रमुख लागत घट जाती है।

> **प्रो बेन** के शब्दो मे—"परिवर्तनशील लागतें वे लागतें है जो उत्पादन की मात्रा म परिवर्तन होन के साथ साथ परिवर्तित होती हैं।"[10]

सक्षेप म, जब उत्पादन शून्य होता है तो लागत भी शून्य होती है। परिवर्तनशील लागत म निम्न व्यय सम्मिलित रहते हैं—

(a) श्रमिको की मजदूरी,
(b) कच्चे माल का मूल्य,
(c) यन्त्रो की घिसावट का व्यय,
(d) ईधन पर व्यय आदि।

इस प्रकार परिवर्तनशील लागत विभाज्य साधनों (divisible factors) का व्यय है तथा स्थिर लागत अविभाज्य साधनो (indivisible factors) का व्यय। यदि स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतो को जोड दिया जाय तो कुल लागत प्राप्त हो जाती है।

---

9 परिवर्तनशील लागतो को प्रमुख लागत (prime cost) प्रत्यक्ष लागत (direct cost) अस्थिर लागत तथा विशेष लागत (special cost) भी कहते हैं।

10 "Variable costs are the costs that vary with the amount of output"
– Prof Ben

स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें

(१) उत्पादन स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के योग का परिणाम है।

(२) परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन उत्पादन में परिवर्तन होने पर होते रहते हैं जबकि स्थिर लागत का उत्पादन से सम्बन्ध नहीं होता।

(३) परिवर्तनशील तथा स्थिर लागतों के बीच अन्तर केवल अल्पकाल में ही लागू होता है। दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं।

(४) प्रो. मार्शल के अनुसार स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर किस्म का नहीं है अपितु केवल अंश (degree) का अन्तर है।

(५) स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के बीच अन्तर की कोई निश्चित तथा स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। कुछ लागतें स्थिर तथा परिवर्तनशील दोनों प्रकार की होती हैं।

मूल्य-निर्धारण में स्थिर तथा परिवर्तनशील-लागत का महत्व (Significance of Prime and Supplementary Cost in the Theory of Value)

मूल्य निर्धारण में दोनों लागतों का बहुत महत्व है। अल्पकाल में जबकि मूल्य पर माग का प्रभाव अधिक होता है, यह सम्भव है कि उत्पादक को अपनी वस्तु का मूल्य कुल लागत के बराबर प्राप्त न हो रहा हो। यदि अल्पकाल में उसे वस्तु का मूल्य परिवर्तनशील लागत के बराबर प्राप्त हो जाता है तो वह अपना उत्पादन कार्य जारी रखेगा क्योंकि उसे आशा रहती है कि भविष्य में उसकी स्थिर लागत भी निकल आयेगी। अर्थात अल्पकाल में वह स्थिर लागत की अधिक चिन्ता नहीं करता। परन्तु यदि वस्तु का मूल्य इतना गिर जाय कि उत्पादक परिवर्तनशील लागत के बराबर मूल्य प्राप्त करने में असमर्थ रहे तो उसे अपने उत्पादन को बन्द कर देना पड़ेगा। अत अल्पकाल में उत्पादक अधिक से अधिक हानि स्थिर लागत के बराबर सहन कर सकता है। दूसरे शब्दों में, अल्पकाल में वस्तु का मूल्य परिवर्तनशील लागत से कम नहीं होगा।

दीर्घकाल में उत्पादक अपनी वस्तु का मूल्य कम से कम इतना अवश्य प्राप्त करेगा कि उसकी कुल लागत (स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत) निकल आये। यदि दीर्घकाल में कुल लागत के बराबर मूल्य प्राप्त नहीं होगा तो वह उत्पादन बन्द कर देगा। अतः दीर्घकाल में स्थिर व परिवर्तनशील लागत में भेद करने का कोई महत्व नहीं है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ औसत आगम तथा सीमान्त आगम म सम्वन्ध स्पष्ट कीजिए ।

२ कुल लागत, सीमान्त लागत तथा औसत लागत का वर्णन कीजिए तथा उनके पारस्परिक मम्बन्ध को समझाइए ।

३ वास्तविक लागत तथा अवसर लागत म अन्तर समझाइए तथा अवसर लागत के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।

४ स्थिर लागत तथा परिवतनशील लागत क अन्तर को बताइए तथा समझाइए कि मूल्य निर्धारण म इनका क्या महत्व है ।

५ मौद्रिक लागत एव वास्तविक लागत की व्याख्या कीजिए ।

अध्याय १०

★

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण

[Price Determination Under Perfect Competition]

★ ★ ★

अर्थशास्त्र मे मूल्य निर्धारण का अर्थ उस मूल्य का पता लगाने से होता है जो विसाम्य की दशा मे बाजार मे प्रचलित होता है। इस प्रकार ज्ञात किया जाने वाला मूल्य साम्य मूल्य (equilibrium price) होगा। प्रो० मेहता के अनुसार—

"मूल्य-निर्धारण का उद्देश्य साम्य मूल्य का पता लगाना होता है, अर्थात् इस बात का पता लगाना कि वह कौनसा मूल्य है जो एक बार बाजार म प्रचलित होने के बाद अपने आपको बनाये रखता है।"[1]

परिभाषा (Definition)

साधारणतया पूर्ण प्रतियोगिता से अभिप्राय क्रेताओ और विक्रेताओ के बीच पूर्ण प्रतिस्पर्धा से होना है जिसके फलस्वरूप वस्तु के मूल्य म एकरूपता आती है। श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs Joan Robinson) के अनुसार—

"पूर्ण प्रतियोगिता उस स्थिति मे होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की माग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका आशय है कि प्रथम विक्रेताओ की सख्या बहुत अधिक होती है जिससे किसी एक उत्पादक की उपज कुल उपज का एक बहुत

---

1 "The object of price determination, therefore, is to find out the equilibrium price, that is, to find out which particular price would maintain itself once it rules in the market"

—Prof J K Mehta

ही थोडा भाग होती है, तथा द्वितीय क्रेता प्रतियोगी विक्रेताओ के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते हैं जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।"[2]

सक्षेप म, पूर्ण प्रतियोगिता के लिये निम्न दशाओ का पूरा होना आवश्यक है —

(१) **क्रेताओ और विक्रेताओं की अधिक सख्या** — पूर्ण प्रतियोगिता मे बाजार म क्रेताओ और विक्रेताओ की सख्या इतनी अधिक होनी चाहिए कि कोई एक क्रेता या विक्रेता वस्तु के मूल्य को प्रभावित करने म असमर्थ रहे। इसका अर्थ है कि एक विक्रेता कुल उत्पादन का छोटा सा भाग बेचता है तथा एक क्रेता कुल माग का छोटा-सा अश क्रय करता है।

(२) **समरूप (Homogeneous) वस्तु का होना तथा वस्तु विभेद की पूर्ण अनुपस्थिति** — पूर्ण प्रतियोगिता मे विक्रय की जाने वाली वस्तु की सभी इकाइया एक सी होनी चाहिए। वस्तु के आकार, रग, रूप, गुण आदि म कोई अन्तर नही होना चाहिए, जिससे क्रेता किसी भी विक्रेता से वस्तु को क्रय कर सके। विक्रेताओ द्वारा प्रमापीकृत (standardised) वस्तुयें बेची जाती हैं, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता मे गैर-मूल्य प्रतियोगिता (non price competition) नही पायी जाती। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता म विक्रय लागत (selling cost) का अभाव रहता है।

(३) **फर्मों का स्वतत्र प्रवेश तथा बहिर्गमन** — पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्मो को उद्योग म प्रवेश या बाहर जाने की पूर्ण स्वतत्रता रहती है। इसके कारण कोई भी फर्म एकाधिकार की स्थिति म नही आ पाती। साथ ही सभी फर्मों को दीर्घकाल म सामान्य लाभ प्राप्त होता है, क्योकि यदि किसी उद्योग विशेष म अधिक लाभ प्राप्त होता है तो नयी नयी फर्में उस उद्योग म प्रवेश पाने लगती हैं, जिसके कारण पूर्ति बढ जाती है और मूल्य घटकर लागत के बराबर हो जाता है।

(४) **क्रेताओं एव विक्रेताओ की पूर्ण जानकारी** — पूर्ण प्रतियोगिता म क्रेताओ और विक्रेताओ को बाजार की स्थितियो की पूर्ण जानकारी होती है। इस कारण कोई भी विक्रेता प्रचलित मूल्य से कम मूल्य पर अपनी वस्तु नही बेचता तथा कोइ क्रेता

---

2 "Perfect competition prevails when the demand for the output of each producer is perfectly elastic This entails, first, that the number of sellers is large, so that the output of any one seller is a negligibly small proportion of the total output of the commodity, and second, that the buyers are all alike in respect of their choice between rival sellers so that the market is perfect" —Mrs Joan Robinson

किसी वस्तु के लिये अधिक मूल्य नही देता। अत बाजार मे वस्तु विशेष का एक ही मूल्य प्रचलन म होता है।

(५) **उत्पत्ति के साधनो की पूर्ण गतिशीलता**—पूर्ण प्रतियोगिता म उत्पादन के साधन एक उद्योग से दूसरे उद्योग म स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सकते हैं। उद्योग पूर्ण गतिशीलता के कारण ही साधनो का हिस्सा (प्रतिफल) उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगा।

(६) **परिवहन लागतो का अभाव**—पूर्ण प्रतियोगिता मे यह मान लिया जाता है कि विभिन्न फर्में एक-दूसरे के बहुत निकट स्थित होती हैं, अत परिवहन लागत नही होती। इस प्रकार बाजार म वस्तु का मूल्य एक ही होगा। मार्शल के अनुसार यदि वस्तु की लागत म अन्तर परिवहन लागत क अन्तर के बराबर है, फिर भी बाजार पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार कहा जायेगा।

पूर्ण प्रतियोगिता की उपर्युक्त विशेषताओ के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण तत्वो का पता लगता है जो निम्न प्रकार हैं —

(१) पूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु का बाजार मे एक मूल्य होता है। इसका अर्थ है दीर्घकाल म सभी विक्रेता एक ही मूल्य पर वस्तु को बेचते है तथा क्रेता एक ही मूल्य पर वस्तु को क्रय करते हैं।

(२) पूर्ण प्रतियोगिता मे एक विक्रेता (अथवा फर्म) के लिये माग पूर्णतया लोचदार होती है। दीर्घकाल मे वस्तु का एक मूल्य होने के कारण माग रेखा OX रेखा के समानान्तर होता है, अर्थात् मूल्य का थोडा-सा परिवर्तन माग म अत्यधिक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है।

(३) पूर्ण प्रतियोगिता मे औसत आय (AR) तथा सीमान्त आय (MR) बराबर होती है क्योंकि विक्रेता वस्तु को एक ही मूल्य पर बचता है अत बिक्री की मात्रा मे कमी या वृद्धि होने पर मूल्य मे कोई परिवर्तन नही होता।

(४) पूर्ण प्रतियोगिता मे उत्पादन तथा मूल्य के विज्ञापन की आवश्यकता नही होती, क्योंकि वस्तु विभेद (product differentiation) नही होता तथा क्रेताओ और विक्रेताओ को बाजार की स्थितियो का पूर्ण ज्ञान होता है। इस प्रकार प्रतियोगिता मे बिक्री व्यय नही होता।

(५) साधनो मे पूर्ण गतिशीलता रहती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधनो की सीमान्त उत्पादकता समान रहती है।

(६) पूर्ण प्रतियोगि॰ मे एक फर्म स्वय अपने उत्पादन का मूल्य निर्धारण करने की स्थिति मे नही होती, अर्थात् उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य को ग्रहण कर लेती है।

विशुद्ध प्रतियोगिता एव पूर्ण प्रतियोगिता (Pure Competition and Perfect Competition)

प्रो चेम्बरलीन (Chamberlin) ने विशुद्ध प्रतियोगिता एव पूर्ण प्रतियोगिता मे अन्तर किया है। उनके अनुसार विशुद्ध प्रतियोगिता मे किसी भी प्रकार के एकाधिकारी तत्व का अभाव पाया जाता है। विशुद्ध प्रतियोगिता के लिये तीन बातें होनी चाहिए —

(१) क्रताओ तथा विक्रेताओ की अधिक सख्या।
(२) वस्तु की समरूपता।
(३) फर्मों को प्रवेश एव बहिर्गमन की स्वतत्रता।

विशुद्ध प्रतियोगिता मे उपर्युक्त तीन शर्तों की पूर्ति होनी चाहिए जबकि पूर्ण प्रतियोगिता मे इन तीन शर्तों के अतिरिक्त निम्न तीन बातें और सम्मिलित होनी चाहिए —

(१) क्रेताओ और विक्रेताओ को पूर्ण जानकारी होनी चाहिए,
(२) उत्पत्ति के साधनो मे पूर्ण गतिशीलता होनी चाहिए तथा
(३) परिवहन लागतें नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार 'पूर्ण प्रतियोगिता' शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ मे तथा 'विशुद्ध प्रतियोगिता' शब्द का प्रयोग सकुचित अर्थ मे किया जाता है।

अमेरिकी अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगिता' मे कम मान्यतायें होने के कारण इसी शब्द को प्राथमिकता देते हैं, जबकि ब्रिटिश अर्थशास्त्री 'पूर्ण प्रतियोगिता' शब्द को महत्व देते हैं। मूल्य निर्धारण मे प्राय 'पूर्ण प्रतियोगिता' को ही प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि इसका प्रयोग विस्तृत अर्थ मे होता है।

फर्म का साम्य (Equilibrium of the Firm)

आधुनिक अर्थशास्त्री किसी वस्तु के मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण को 'फर्म के साम्य' के शब्दो मे व्यक्त करते है।[3]

---

3 मार्शल तथा अन्य प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने उद्योग म निर्धारित मूल्य तथा उत्पादन पर ही अधिक जोर दिया है, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री व्यक्तिगत फर्म की मूल्य तथा उत्पादन नीति को ही महत्व प्रदान करते हैं तथा इसे वे 'फर्म के साम्य' के रूप मे व्यक्त करते हैं।

फर्म साम्य की अवस्था मे उस समय होती है जबकि उसको लाभ अधिकतम प्राप्त हो रहा हो। जिस मात्रा का उत्पादन करने मे लाभ अधिकतम होता है उसे साम्य उत्पादन कहते हैं। साधारणतया 'साम्य' का अर्थ 'परिवर्तन की अनुपस्थिति' से होता है। किसी फर्म मे 'परिवर्तन की अनुपस्थिति' उस अवस्था मे होगी, जबकि उत्पादन मे परिवर्तन नही होता। उत्पादन म परिवर्तन उस अवस्था मे नही होगा जबकि फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। इस प्रकार साम्यावस्था मे फर्म उस मात्रा का उत्पादन करती है जिसमे कुल लाभ अधिकतम हो।

प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। अधिकतम लाभ या अधिकतम शुद्ध आय (maximum net revenue) अथवा एक फर्म की साम्य की स्थिति को व्यक्त करने की दो रीतियां हैं—

१ कुल लागत तथा कुल आगम रेखाओ की रीति (total revenue and total cost curves approach)।

२ सीमान्त तथा औसत रेखाओ की रीति (marginal and average curves approach)।

फर्म के साम्य की मान्यतायें (Assumptions) :

दोनो ही रीतियो द्वारा व्याख्या करते समय अर्थशास्त्री कुछ मान्यतायें लेकर चलते हैं, उनम से प्रमुख मान्यतायें इस प्रकार है—

(१) प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है।

(२) प्रत्येक उत्पादक का प्रयत्न अपनी लागत को न्यूनतम करने का होता है।

(३) एक फर्म केवल एक ही वस्तु (identical commodity) का उत्पादन करती है।

(४) प्रत्येक उत्पत्ति के साधन की इकाइया समान होती है।

कुल लागत तथा कुल आगम रेखाओं की रीति (Total Revenue and Total Cost Curves Approach) :

इस रीति द्वारा एक फर्म साम्य की अवस्था मे उस समय होती है जबकि कुल लागत तथा कुल आगम का अन्तर अधिकतम होता है। दूसरे शब्दो मे, उत्पादन की जिस मात्रा पर कुल आगम और कुल लागत का अन्तर अधिकतम होगा वही पर फर्म को लाभ
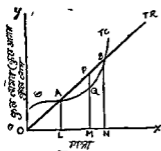
अधिकतम प्राप्त होगा, तथा वही अवस्था फर्म के लिये साम्य की अवस्था होगी। इस रीति द्वारा फर्म के साम्य की अवस्था को ज्ञात करने के लिए कुल आगम रेखा (T R Curve) तथा कुल लागत रेखा (T. C Curve) का प्रयोग किया जाता है, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है।

सलग्न चित्र मे TR रेखा कुल आगम रेखा तथा TC कुल लागत रेखा है। जब फर्म OM मात्रा का उत्पादन करती है तब TR तथा TC के बीच की दूरी PQ सबसे अधिक है, अर्थात् इस बिन्दु पर उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। इस अवस्था म फर्म साम्य की स्थिति म होगी। यदि फर्म OL मात्रा का उत्पादन करती है तो कुल लाभ शून्य होगा, क्योकि इस बिन्दु पर TC तथा TR बराबर है, इसी प्रकार ON मात्रा का उत्पादन करने पर भी शून्य लाभ ही प्राप्त होगा, अर्थात् दोनो ही स्थितियो म सामान्य लाभ की प्राप्ति होती है। इन दोनो बिन्दुओ (A तथा B) को 'Break Even Points' कहते हैं L तथा N के बीच उत्पादन के किसी भी स्तर पर फर्म को लाभ प्राप्त होगा। यदि OL से कम या ON से अधिक उत्पादन किया जाता है तो फर्म को हानि प्राप्त होगी, क्योकि दोनो ही स्थितियो म कुल लागत (TC) कुल आगम (TR) से अधिक है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने इस रीति की आलोचना की है और इसे भद्दी रीति (cumbersome approach) बताया है। इनके अनुसार

(१) कुल आगम तथा कुल लागत के बीच की दूरी को एक दृष्टि डालकर सरलतापूर्वक पता नहीं लगाया जा सकता।

(२) एक ही दृष्टि मे प्रति इकाई मूल्य ज्ञात करना भी कठिन है।

सीमान्त तथा औसत रेखाओं की रीति (Marginal and Average Curves Approach)

आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने कुल लागत तथा कुल आगम रीति मे कुछ कमिया होने के कारण उसकी आलोचना की तथा सीमान्त तथा औसत रेखाओ द्वारा फर्म के साम्य की अवस्था ज्ञात करने पर जोर दिया।

(१) **फर्म का साम्य**—आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार एक फर्म साम्य की अवस्था मे उस समय होती है जबकि उसमे न तो विस्तार की प्रवृति होती है और न ही

सन्तुलन की। यह उसी अवस्था मे सम्भव है जबकि फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो। अधिकतम लाभ उसी स्थिति मे प्राप्त होगा जबकि फ़र्म मे सीमान्त लागत (marginal cost) तथा सीमान्त आगम (marginal revenue) बराबर हो। अत फर्म के साम्य की दशा वह है जहा पर MR=MC के हो।

इसे चित्र से स्पष्ट कर सकते हैं।

संलग्न चित्र म Q बिन्दु पर MR और MC बराबर है इस बिन्दु पर OM मात्रा का उत्पादन होता है। फर्म इस बिन्दु से न तो अधिक उत्पादन करेगी और न कम, क्योंकि यदि MR अधिक है MC से। तो फर्म अपने उत्पादन म वृद्धि करके अपने कुल लाभ म वृद्धि कर सकेगी। यदि MR कम है MC से तब फर्म उत्पादन की मात्रा मे कमी कर देती है, क्योंकि इस स्थिति मे अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत इस इकाई से प्राप्त होने वाली आय की अपेक्षा अधिक होती है।
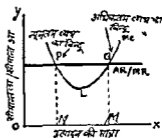
(२) **सीमान्त लागत रेखा (MC) सीमान्त आगम रेखा (MR) को नीचे से काटती है**—साम्य की अवस्था मे MC रेखा MR रेखा को नीचे से काटती है, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है। इसका कारण यह है कि यदि फर्म अपने उत्पादन को P बिन्दु से, अर्थात् ON मात्रा से आगे बढाती है तो सीमान्त लागत (MC) घटती जाती है तथा L बिन्दु के बाद पुन बढने लगती है। MC रेखा उत्पादन की मात्रा N से M तक से MR रेखा के नीचे रहती है, अर्थात N से M तक के क्षेत्र मे फर्म उत्पादन की मात्रा म वृद्धि करके अपने लाभ को अधिकतम कर सकती है। इस प्रकार Q बिन्दु पर उसे अधिकतम लाभ होगा, इसी बिन्दु पर MC रेखा MR रेखा को नीचे से काटती है।

अत साम्य की अवस्था के लिए आवश्यक है कि फर्म मे MC रेखा MR रेखा को नीचे से काटे।

(३) **पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म की मांग रेखा पडी हुई रेखा होती है**—पूर्ण प्रतियोगिता मे माग रेखा, अर्थात् AR एक पडी हुई रेखा होती है तथा सीमान्त आगम (MR) और औसत आगम (AR) बराबर होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म स्वय अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारित करने की स्थिति मे नही होती वह मूल्य ग्रहण करती है, अर्थात् उद्योग म वस्तु की कुल पूर्ति तथा कुल माग द्वारा जो मूल्य निर्धारित होता है उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है, इसीलिए AR रेखा प्रत्येक फर्म म पडी हुई रेखा होती है।

पटी हुई AR रेखा से यह भी अर्थ है कि एक दिए हुये मूल्य पर एक फर्म अपनी वस्तु को कितनी ही मात्रा मे बेच सकती है।

अल्पकाल मे फर्म का साम्य या अल्पकाल में मूल्य निर्धारण (Equilibrium of a firm *in the Short Period or Price Determination Under Short Period*)

स्टिगलर (Stigler) के अनुसार—"अर्थशास्त्री अल्पकाल का अर्थ साधारणतया उस समयावधि से लगाते हैं जिसम वर्तमान प्लान्टो से पूर्ति दर घटाई-बढाई जा सकती है परन्तु प्लान्टो की सख्या व उनके आकार ययास्थित रहते हैं।"[४]

अत अल्पकाल म इतना समय नही मिलता कि वस्तु की पूर्ति को घटा-बढाकर माग के अनुरूप किया जा सके।

पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म मूल्य निर्धारक न होकर मूल्य ग्रहण करने वाली होती है, फर्म की अपनी कोई मूल्य नीति नही होती इसीलिए फर्म को उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही अपने उत्पादन को समयाजित करना होता है। अल्पकाल मे इतना समय नही होता कि फर्म अपनी वस्तु के उत्पादन को घटा-बढाकर माग के अनुरूप कर सके, इसलिए अल्पकाल म एक फर्म का लाभ या सामान्य लाभ (शून्य लाभ) या हानि हो सकती है। इन तीनो स्थितियो की व्याख्या नीचे की जा रही है—

(१) अल्पकाल मे लाभ की स्थिति—किसी फर्म को अल्पकाल म लाभ उस स्थिति म प्राप्त होगा जबकि औसत आगम (AR) औसत लागत (AC) से अधिक हो इसे चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है।
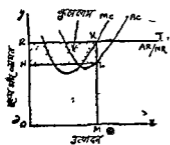
सलग्न चित्र म फर्म के लिए मूल्य रेखा RT दी हुई रेखा है, क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता म फर्म उद्योग म निर्धारित मूल्य को ग्रहण कर लेती है, स्वय मूल्य निर्धारित नही कर सकती। K बिन्दु साम्य बिन्दु है, क्योकि इस बिन्दु पर सीमान्त लागत (MC) और सीमान्त आगम (MR) बराबर है, यही पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। इस बिन्दु पर उत्पादन की मात्रा

4 "Economists generally describe the short run as the period within which the rate of supply from given plants is variable but the number and size of plants is fixed —Stigler

OM है। लाभ की स्थिति को ज्ञात करने के लिए औसत आगम (AR) और औसत लागत (AC) रेखाओ की दूरी ज्ञात करते हैं। उक्त चित्र मे KL औसत लागत व औसत आगम रेखाओ की दूरी है, जो कि प्रति इकाई लाभ को व्यक्त करती है। इस प्रकार फर्म को कुल लाभ NLKR से (LK × OM = NLKR) प्राप्त होगा।

(२) **सामान्य लाभ की स्थिति**—निम्न चित्र मे LT मूल्य रेखा है जो कि दी हुई रेखा है। फर्म K विन्दु पर साम्य की अवस्था मे है, क्योकि इस विन्दु पर MR = MC के है। इस अवस्था मे हानि या लाभ की स्थिति की जानकारी औसत रेखाओ से करते हैं। K साम्य विन्दु है अत उत्पादन की मात्रा OM होगी। इस उत्पादन पर फर्म की औसत आय (AR) की रेखा औसत लागत (AC) रेखा को K बिन्दु पर स्पर्श करती है, अत K विन्दु पर औसत आय और औसत लागत बराबर है। चूकि औसत लागत और औसत आय बराबर है इसलिए फर्म को कोई भी अतिरिक्त लाभ प्राप्त नही होगा, अर्थात् केवल सामान्य लाभ ही मिलेगा।
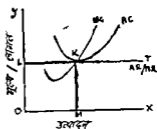
(३) **हानि की स्थिति**—अल्पकाल मे एक फर्म को हानि भी हो सकती है, हानि उस स्थिति मे होगी जबकि वस्तु की औसत लागत (AC) औसत आगम (AR) से अधिक हो। इसे चित्र से स्पष्ट किया गया है।

सलग्न चित्र मे LT मूल्य रेखा है। K विन्दु साम्य विन्दु है, क्योकि इस विन्दु पर सीमान्त आगम व सीमान्त लागत बराबर है। इस प्रकार फर्म OM मात्रा का उत्पादन करेगी। हानि का पता लगाने के लिए औसत लागत (AC) तथा औसत आगम (AR) की दूरी मापना होगा। उपर्युक्त चित्र मे औसत लागत

रेखा मूल्य रेखा से ऊपर है, अत. हानि होगी। औसत लागत व औसत आगम की दूरी PK है, अर्थात् फर्म को एक इकाई पर हानि PK के बराबर प्राप्त होगी। उसको कुल हानि LKPN (OM × PK = LKPN) होगी।
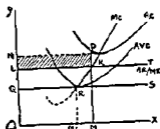
कोई भी फर्म अल्पकाल म हानि सहन करती हुई क्या उत्पादन कार्य करती रह सकती है ? इस सम्बन्ध मे हमे लागतो की प्रवृत्ति को देखना होगा। कुल लागत म दो लागतें सम्मिलित रहती हैं, (अ) स्थिर लागत, (ब) परिवर्तनशील लागत। हानि को सीमा निर्धारित करने के लिए औसत परिवतनशील लागत (AVC) का सहारा लेते हैं। दीर्घ-काल मे कोई भी उत्पादक अपनो वस्तु का मूल्य उस वस्तु की उत्पादन लागत के बराबर प्राप्त करेगा। परन्तु अल्पकाल मे, जबकि भाग के अनुसार पूर्ति को समयोजित करना सम्भव नही होता, एक उत्पादक अपनी वस्तु को कुल लागत से कम मूल्य पर भी वेच सकता है। अल्पकाल मे एक फर्म उत्पादक अपनी वस्तु के लिए मूल्य कम-से-कम परिवर्तनशील लागत के बराबर अवश्य प्राप्त करेगा, अन्यथा वह उत्पादन कार्य बन्द कर देगा। अत कोई भी उत्पादक अल्पकाल म हानि अधिक-से अधिक स्थिर लागत के बराबर सहन कर सकता है।

चित्र मे यदि मूल्य रेखा या AR रेखा QS हो जाती है तब वस्तु का मूल्य ठीक औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) के बराबर होगा, अर्थात् RM' या OQ होगा। इस मूल्य से नीचे मूल्य पर फर्म अल्पकाल म उत्पादन बन्द कर देगी। इस बिन्दू को उत्पादन बन्द होने का बिन्दु (shut down point) कहते हैं। OM' अल्पकाल म न्यूनतम उत्पादन की मात्रा है तथा R बिन्दु से नीचे वस्तु की कोई पूर्ति नही होगी।

दीर्घकाल में फर्म का साम्य (Equilibrium of a Firm in the Long Period)

दीर्घकाल मे समय इतना अधिक होता है कि वस्तु की पूर्ति म परिवर्तन पूर्णतया माग के अनुरूप किये जा सकते हैं। अत दीर्घकाल म कोई भी फर्म प्रतियोगिता के कारण अधिक लाभ नही कमा सकती और न ही कोई फर्म हानि ही उठाती है, अत पूर्ण प्रतियोगिता मे केवल सामान्य लाभ (शून्य लाभ) ही प्राप्त होता है। यदि फर्म को लाभ प्राप्त होता है, तो अन्य फर्मे लाभ से आकर्षित होकर उत्पादन कार्य प्रारम्भ करेगी, परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति म वृद्धि होगी और कीमत (AR) घटकर लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। यदि फर्म को हानि होगी तो अनेक फर्मे उत्पादन कार्य बन्द कर देंगी, परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति घट जायेगी और कीमत (AR) बढकर लागत (AC) के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार दीर्घकाल मे केवल सामान्य लाभ ही एक फर्म को प्राप्त होता है।

इस प्रकार दीर्घकाल मे साम्य बिन्दु पर (a) सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) (b) औसत आगम (AR) = औसत लागत (AC) होता है। इस स्थिति को निम्नानुसार भी व्यक्त कर सकते हैं—

$$AR = MR = MC = AC$$

या

मूल्य (Price) = सीमान्त लागत (MC) = औसत लागत (AC)

चित्र म दीघकालीन साम्य की अवस्था को स्पष्ट किया गया है—

सलग्न चित्र म मूल्य रेखा LN है LMC दीघकालीन सीमान्त लागत रेखा तथा LAC दीघकालीन औसत लागत रेखा है। P बिन्दु साम्य बिन्दु है क्योकि इस बिन्दु पर सीमान्त आगम (MR) तथा सीमान्त लागत (MC) दोनो बराबर है। उत्पादन की मात्रा OM है। इस प्रकार PM वस्तु का मूल्य हुआ। P बिन्दु पर औसत लागत (AC) तथा औसत आगम (AR) बराबर है, अत फम को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार दीर्घकाल की साम्य अवस्था म एक ही बिन्दु P पर सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) = औसत आगम (AR) = औसत लागत (AC) होता है।
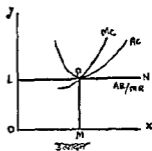
पूर्ण प्रतियोगिता मे उद्योग का साम्य (Equilibrium of an Industry Under Perfect Competition)

उद्योग एक एसी फर्मों का समूह group) है जो एक समान वस्तु (homogeneous commodity) का उत्पादन करती है।

सेम्युलसन (Samuelson) के शब्दो मे—'पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तगत बहुत-सी स्पर्धात्मक फर्मों के समूह को उद्योग कहते हैं।'

श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार—'एक उद्याग ऐसी फर्मों का समूह है जो कि केवल एक वस्तु का उत्पादन करती है।"[5]

पूण प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग म कोई भी फम इस स्थिति मे नही होती कि वह उत्पादन म परिवर्तन करके मूल्य को प्रभावित कर सके, अथात उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य ही वह ग्रहण करती है।

5 "An industry is a group of firms producing a simple commodity" —Mrs Joan Robinson

उद्योग की साम्य अवस्था

एक उद्योग उस समय साम्य की अवस्था मे होता है जबकि इसके आकार में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही होता ।

> **प्रो० बोल्डिंग** के शब्दो म—'एक उद्योग साम्य की स्थिति मे तब होता है जबकि उसके विस्तार या सकुचन की कोई प्रवृत्ति नही होती ।"[६]

दूसरे शब्दो म उद्योग साम्य की स्थिति म तब होता है जबकि इसका कुल उत्पादन न तो बढ रहा हो और न ही घट रहा हो । सक्षेप म, उद्योग साम्य की स्थिति म उस समय होगा जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की पूर्ति उसकी माग के बराबर हो ।

अल्पकाल मे साम्य उद्योग (Fquilibrium of an industry in short period) —अल्पकाल म एक उद्योग साम्य की स्थिति म उस समय होता है जबकि उद्योग म कुल उत्पादन स्थिर रहता है । उद्योग की सभी फर्में साम्य की स्थिति म होनी है, अर्थात् सभी फर्में साम्य की दशा (MR=MC) का पूरा करती हैं । अल्पकाल म यह सभव है कि एक फर्म साम्य की दशा को पूरा करती हो, फिर भी एक उद्योग व अल्पकालीन साम्य के साथ अधिक लाभ या हानि प्राप्त कर रही हो । इस प्रकार उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ लाभ और हानि का सहअस्तित्व (co-existence) हो सकता है ।

अल्पकाल म उद्योग के लिए किसी वस्तु की माग उपभोक्ताओ की व्यक्तिगत माग का कुल योग होता है । माग रेखा यह प्रदर्शित करती है कि विभिन्न मूल्यो पर वस्तु की कितनी मात्रा क्रय की जाती है ।

सभी फर्मों की पूर्ति का योग उद्योग की पूर्ति रेखा होती है । उद्योग की पूर्ति रेखा बताती है कि विभिन्न मल्यो पर सभी फर्में वस्तु की कितनी मात्रायें बेचने को तैयार हैं । इस प्रकार एक उद्योग की पूर्ति रेखा सभी फर्मों की पूर्ति रेखाओ का क्षैतिज योग है । व्यक्तिगत फर्मों की पूर्ति रेखाओ को ज्ञात करने के पश्चात् उद्योग की पूर्ति रेखा ज्ञात की जाती है ।

अल्पकाल मे मूल्य निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहा पर उद्योग की माग तथा पूर्ति वक्र एक-दूसरे को काटते हैं, अर्थात् अल्पकाल म उद्योग के साम्य क लिये माग और पूर्ति बराबर (supply=demand) होने हैं जैसा कि चित्र से स्पष्ट है ।

---

6 "An industry is said to be in equilibrium when there is no tendency for it to expend or to contract' —Prof Boulding

चित्र मे उद्योग की माग रेखा DD है तथा पूर्ति रेखा SS_1 है, ये दोनो एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं। P उद्योग के अल्पकालीन साम्य को बताता है, क्योंकि इस बिन्दु पर उद्योग
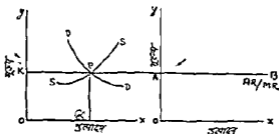
के साम्य की दशा (S=D) पूरी होती है। इस प्रकार उद्योग की वस्तु की कीमत PQ या OK है तथा उत्पादन की मात्रा OQ है।

उद्योग के साथ ही फर्म की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक फर्म उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य को ग्रहण करती है, अर्थात् प्रत्येक फर्म के लिए मूल्य रेखा दी हुई होती है। इस प्रकार AB रेखा OX के समानान्तर है, जहा पर औसत आगम (AR) और सीमान्त आगम (MR) बराबर हैं। उद्योग मे फर्मो की लागत रेखाये भिन्न-भिन्न हो सकती है, क्योंकि उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए प्रत्येक फर्म अल्पकालीन साम्य की स्थिति मे होगी, परन्तु अल्पकालीन साम्य मे लाभ या हानि का सह-अस्तित्व हो सकता है। दूसरे शब्दो मे, फर्म मे साम्य की दशा MC=MR प्राप्त होगी, परन्तु AC=AR का होना अल्पकालीन स्थिति मे आवश्यक नही है।

दीर्घकाल मे उद्योग का साम्य (Equilibrium of the Industry in the Long Period)—पूर्ण प्रतियोगिता मे दीर्घकाल मे उद्योग साम्य की अवस्था मे उस समय होगा जबकि उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर रहता है, इसमे कमी अथवा वृद्धि की प्रवृत्ति नही पाई जाती। दूसरे शब्दो म, उद्योग के साम्य की स्थिति मे प्रत्येक फर्म की साम्य की स्थिति मे होती है। पर यह उस स्थिति मे सम्भव है जबकि सीमान्त लागत (MC) और सीमान्त आगम (MR) बराबर हों तथा सीमान्त लागत रेखा सीमान्त आगम रेखा को साम्य बिन्दु के ठीक नीचे से काटे।

दीर्घकाल मे फर्मो की सख्या मे कोई परिवर्तन नही होता यह उस स्थिति मे सम्भव है जबकि औसत आगम (AR) और औसत लागत (AC) बराबर हों अर्थात् फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा हो।

इस प्रकार उद्योग के दीर्घकालीन साम्य के लिए आवश्यक है कि

(१) MR=MC (सीमान्त आगम=सीमान्त लागत),

(२) AR=AC (औसत आगम=औसत लागत),

की दशायें पूरी हो। दूसरे शब्दो म दीर्घकालीन साम्य के लिए अल्पकालीन साम्य भी स्थापित होना चाहिये।

दीर्घकालीन साम्य के लिए माग और पूर्ति (D=S) का बराबर होना भी आवश्यक है। यदि माग मे परिवर्तन होता है तो उद्योग के आकार म परिवर्तन करके पूर्ति को माग से समायोजित किया जाता है। इस समायोजन मे अर्थात् उद्योग से फर्मो के बहिर्गमन या प्रवेश से उत्पादन लागत म परिवर्तन होगे। लागत मे परिवर्तन इस बात से प्रभावित होंगे कि उद्योग बढ़ती हुई लागतो के अन्तर्गत या घटती हुई लागतो पर स्थिर लागतो के अन्तर्गत उत्पादन कार्य कर रहा है।

दीर्घकाल म उद्योग और फर्म की साम्य की स्थिति को रेखाचित्र की सहायता स अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।
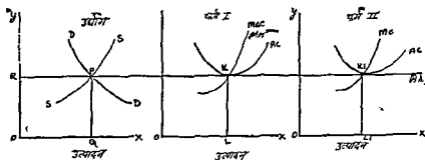
उपर्युक्त चित्र म PQ मूल्य है जो कि उद्योग म निर्धारित होता है, P बिन्दु पर कुल माँग व कुल पूर्ति बराबर है। PQ उत्पादन की मात्रा है। PQ या OR मूल्य को पहली तथा दूसरी फर्म दिया हुआ मान लेती है। फर्म इस दिए हुए मूल्य के आधार पर उत्पादन की मात्रा को समायोजित करती हैं। पहली फर्म OL मात्रा का तथा दूसरी फर्म OL' मात्रा का उत्पादन करती हैं। दोनो फर्मो द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा म अन्तर है। पहली फर्म म K तथा दूसरी फर्म म K' साम्य बिन्दु है, यह बिन्दु दीर्घकालीन साम्य की दोनो दशाय (१ MR=MC, २ AR=AC) पूरी करता है। इस प्रकार इस साम्य बिन्दु पर फर्म का आकार अनुकूलतम होता है क्योकि साम्य औसत लागत रेखा के निम्नतम बिन्दु पर स्थित है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषतायें बताइये । पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण कैसे होता है ?

२ पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे फर्म के साम्य को स्पष्ट कीजिए ।

३ फर्म के साम्य से क्या अर्थ है ? पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के साम्य की स्थिति समझाइए ।

४. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य कैसे निर्धारित होता है ।

५. 'फर्म के साम्य' एव 'उद्योग के साम्य' मे अन्तर समझाइए तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उद्योग के साम्य को समझाइए ।

६ उन स्थितियो की व्याख्या कीजिए जिनमे अल्पकाल एव दीर्घकाल मे फर्म साम्य की अवस्था मे होती है ।

७ इस कथन को स्पष्ट कीजिये कि पूर्ण प्रतियोगिता मे एक फर्म उस समय साम्य की अवस्था मे होती है जबकि उसकी सीमान्त लागत (MC) सीमान्त आगम (MR) के बराबर होती है ।

———

अध्याय ११

★

एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण
[Price Determination Under Monopoly]

★ ★ ★

एकाधिकार शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'Monopolein' से हुई है। 'Monopolein' का अर्थ है एक विक्रेता (single seller)। इस प्रकार एकाधिकार वह अवस्था है जिसमे वस्तु की पूर्ति पर किसी एक व्यक्ति अथवा फर्म का पूर्ण अधिकार रहता है। एकाधिकारी का वस्तु के मूल्य पर या पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है तथा वह दूसरे उत्पादकों को उद्योग मे प्रवेश नही करने देता। बाजार मे केवल एक ही उत्पादक या फर्म रहने के कारण एकाधिकार म 'एक फर्म एक उद्योग' की स्थिति पायी जाती है।

जब बाजार मे विक्रेताओ की सख्या दो होती है तो उसे द्वयधिकार (duopoly) कहते हैं। दो से कुछ अधिक विक्रेताओ की सख्या होने पर अल्पाधिकार (oligopoly) की स्थिति उत्पन्न होती है।

एकाधिकार की विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा परिभाषायें दी गई हैं, उनम स कुछ उल्लेखनीय परिभाषायें निम्नलिखित हैं

प्रो० टामस (S E Thomas) के अनुसार—"विस्तृत अर्थ मे एकाधिकार वस्तुओं तथा सेवाओ से प्रभावपूर्ण मूल्य नियत्रण को व्यक्त करता है, चाहे वह माग का हो या पूर्ति का समुचित रूप मे इसका अर्थ उत्पादको अथवा विक्रेताओ के एसे समूह से होता है जो कि वस्तुओ अथवा सेवाओ के पूर्ति मूल्य को नियत्रित करते हैं।"[1]

---

1 "Broadly, the term is used to cover any effective price control, whether of supply or demand, of services or of goods, narrowly it is used to mean a combination of manufacturers or merchants to control the supply price of commodities or services"
— Prof S E Thamas

प्रो० बोल्डिंग के शब्दों में—"शुद्ध एकाधिकार वह फर्म है जो किसी ऐसी वस्तु का उत्पादन करती है जिसका किसी अन्य फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं होता। 'प्रभावपूर्ण' से आशय यह है कि यद्यपि एकाधिकारी असाधारण लाभ कमा रहा है, फिर भी अन्य फर्में ऐसी स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करके, जो कि क्रेताओं को एकाधिकारी की वस्तु से दूर कर सकें, उक्त लाभों का अतिक्रमण नहीं कर सकती।"[2]

प्रो० बनहम (Benham) के अनुसार—"एकाधिकारी वस्तु का एकमात्र विक्रेता होता है—और एकाधिकारी शक्ति वस्तु में पूर्ण नियन्त्रण पर आधारित होती है।"[3]

चेम्बरलिन (Chamberlin) के अनुसार—"एकाधिकार की स्थिति जो वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है।"[4]

स्टोनियर और हेग (Stonier & Hague) के अनुसार"—एकाधिकारी वह उत्पादक है जो किसी एक वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है और उस वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता।"[5]

इस प्रकार एकाधिकार की अनेक परिभाषायें दी गई हैं। इन परिभाषाओं से एकाधिकार की विशेषतायें स्पष्ट होती है, जो कि निम्नलिखित है—

(१) एकाधिकारी अपनी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक होता है।

---

2 "A pure monopolist, therefore, is a firm producing a product, which has no effective substitutes among the products of any other firm, 'effective' in the sense that even though the monopolist may be making abnormal profit, other firms cannot encroach in these profits by producing substitutes which might entice purchasers away from the product of the monopolist" —K E Boulding

3 "A monopolist is literally a single seller and monopoly power is based entirely on control over supply" —Prof Benham

4 "Monopoly refers to the control over supply" — Prof Chamberlin

5 "The producer who controls the whole supply of a single commodity which has no close substitutes" —Stonier & Hague

(२) एकाधिकारी 'फर्म' और 'उद्योग' दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द होते हैं, इस प्रकार एकाधिकार में 'एक फर्म उद्योग' (one firm industry) की स्थिति पायी जाती है।

(३) एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती।

(४) एकाधिकारी की वस्तु की माग की लोच शून्य होती है।

(५) एकाधिकारी द्वारा दूसरी फर्मों के प्रवेश में प्रभावकारी रुकावटें डाल दी जाती हैं।

(६) एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण रहने के कारण वह पूर्ति में कमी या वृद्धि करके वस्तु के मूल्य को प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार एकाधिकारी की स्वयं की मूल्य नीति होती है।

एकाधिकारी का उद्देश्य (The Aim of the Monopolist)

प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। एकाधिकार में एकाधिकारी अपनी शक्ति का प्रयोग करके अपनी वस्तु को उत्पादन लागत से ऊंचे मूल्य पर बेचकर अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है।

प्रो० मार्शल के अनुसार—'अधिकतम सन्तुष्टि का सिद्धान्त एकाधिकारी वस्तुओं की माग और पूर्ति के सम्बन्ध में कभी लागू नहीं होता।"[६]

एकाधिकारी का उद्देश्य "अधिकतम एकाधिकारी लाभ" (maximum monopoly gain) प्राप्त करना होता है।

मार्शल के ही शब्दों में—"एकाधिकारी का उद्देश्य माग तथा पूर्ति के बीच इस प्रकार समायोजन (adjustment) करना नहीं है कि प्राप्त मूल्य से उसकी उत्पादन लागत पूरी हो जाय, अपितु इस प्रकार समायोजित करने से है कि उसे अधिकतम शुद्ध एकाधिकारी लाभ प्राप्त हो।"[७]

---

6 "The doctrine of maximum satisfaction has never been applied to the demand for and supply of monopolized commodities"
—Prof Marshall

7 "The prima facie interest of the owner of a monopoly is clearly to adjust the supply to the demand not in such a way that the price at which he can sell his commodity, shall just cover its expenses of production but in such a way as to afford him the greatest possible net revenue"
—Prof Marshall

श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs Joan Robinson) के अनुसार एकाधिकारी का उद्देश्य 'शुद्ध एकाधिकारी आय' (net monopoly gain) अधिकतम करना होता है। इस प्रकार एकाधिकारी का उद्देश्य प्रति इकाई लाभ को अधिकतम करना न होकर कुल लाभ को अधिकतम करना होता है।

मूल्य-निर्धारण (Value Determination)

एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है परन्तु क्रेताओं पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता, अर्थात् माग पर एकाधिकारी नियन्त्रण का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार एकाधिकारी मूल्य तथा पूर्ति दोनों पर एक साथ नियन्त्रण नहीं रख सकता। यदि वह पूर्ति पर नियन्त्रण रखता है तो उसे माग की स्थिति के अनुसार वस्तु का मूल्य निर्धारित करना होगा। यदि मूल्य पर नियन्त्रण रखता है तो पूर्व-निर्धारित मूल्य पर वस्तु की जितनी माग होगी उसके अनुसार पूर्ति की मात्रा निश्चित करेगा। सामान्य रूप से एकाधिकारी पूर्ति और मूल्य में से मूल्य को ही चुनता है अर्थात् वह वस्तु का मूल्य निर्धारित कर देता है, उस मूल्य पर वस्तु की जितनी माग होती है उसके अनुसार वह वस्तु की पूर्ति निश्चित कर देता है।

एकाधिकार में मूल्य-निर्धारण अथवा सतुलन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से दो विधियों का प्रयोग किया जाता है —

(१) प्रो० मार्शल की रीति (Prof Marshall's method),
(२) आधुनिक रीति (Modern method)।

प्रो० मार्शल की रीति (Prof Marshall's Method)

मार्शल के अनुसार एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारण 'जाच और भूल्य' (trial and error) सिद्धान्त के आधार पर करता है। प्रो० मार्शल ने बताया कि एकाधिकारी को यह ज्ञात नहीं होता कि किस मूल्य पर उसे लाभ सबसे अधिक प्राप्त होगा। अत वह अपनी वस्तु के भिन्न-भिन्न मूल्य निर्धारित कर प्राप्त होने वाले लाभो की तुलना करता है और जिस मूल्य पर उसे 'अधिकतम एकाधिकारी लाभ' प्राप्त होता है। उसी मूल्य पर अपनी वस्तु को बेचता है तथा उत्पादन की मात्रा निश्चित कर देता है। इस स्थिति तक पहुचने के लिए उसे अनेक बार मूल्य में परिवर्तन करना होता है इसलिए मार्शल ने इसे 'जाच और भूल' सिद्धान्त बताया है।

मार्शल के अनुसार एकाधिकारी वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय दो बातों का ध्यान रखता है :—

(१) वस्तु की माग की लोच (Elasticity of demand),
(२) उत्पत्ति के नियम (Laws of returns)।

(१) **वस्तु की माग की लोच** (Elasticity of demand)—एकाधिकारी मूल्य निर्धारित करते समय सवप्रथम वस्तु की माग की लोच की ओर ध्यान देता है।

(a) यदि एकाधिकारी द्वारा उ पादित वस्तु की माग **लोचदार** है ता वह वस्तु का मूल्य नीचा निश्चित करता है, क्योंकि वस्तु का मूल्य ऊचा निश्चित करने से वस्तु की माग म मूल्य के उत्पात से अधिक कमी आ जायगी। अत लोचदार माग की स्थिति म एकाधिकारी वस्तु का मल्य नीचा निर्धारित करके अपने कुल लाभ म वृद्धि करता है।

(b) यदि एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की माग की लोच वेलोचदार है तब मूल्य के परिवर्तन का माग पर प्रभाव नही पडता है। अत ऐसी स्थिति म एकाधिकारी अपनी वस्तु क मूल्य ऊचा निश्चिन कर अधिक लाभ प्राप्त करता है।

(c) जब वस्तु की माग मे इकाई लोच (unit elasticity) होती है, तब वस्तु के मूल्य म परिवर्तन से उपभोक्ताओ द्वारा किये जाने वाले कुल व्यय पर कोइ प्रभाव नहीं पडता है, अर्थात कुल व्यय स्थिर रहता है ऐसी स्थिति म एकाधिकारी द्वारा निर्धारित मूल्य को उत्पत्ति के नियम प्रभावित करते हैं।

(२) **उत्पत्ति के नियम** (Laws of returns)—वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय एकाधिकारी उत्पत्ति के नियमों को भी ध्यान मे रखता है।

(a) यदि वस्तु का उत्पादन 'उत्पत्ति ह्रास नियम' के अ तगत हो रहा होता है तब एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य अधिक निश्चित करता है। क्योंकि मूल्य म कमी करने स वस्तु की माग म वृद्धि होने के परिणामस्वरूप उत्पादन म वृद्धि करना आवश्यक होगी, जबकि उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत प्रत्येक अगली इकाई को उत्पन्न करने म लागत बढ जायेगी। अत इस स्थिति म एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन कम कर लाभ म वृद्धि करता है।

(b) यदि वस्तु का उत्पादन 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तब वस्तु के उत्पादन की मात्रा को बढाना एकाधिकारी के हित मे होता है, इस स्थिति मे प्रत्येक अगली इकाई का उत्पन्न करने म लागत कम आती है। अत एकाधिकारी अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए 'उत्पत्ति वृद्धि नियम' की स्थिति म अपनी उत्पादित वस्तु का मूल्य नीचा निश्चित करता है।

(c) यदि वस्तु का उत्पादन 'उत्पत्ति समता नियम' के अन्तर्गत हो रहा है, तब वस्तु की लागत स्थिर रहती है। ऐसी स्थिति मे वस्तु के मूल्य का निर्णय माग की लोच पर निर्भर करता है।

मार्शल के अनुसार एकाधिकारी वस्तु की माग की लोच और उत्पत्ति के नियमो को ध्यान मे रखकर ही मूल्य निर्धारित करता है। ऐसा करते समय वह 'जाच और मूल' (trial and eror) के सिद्धान्त को अपनाता है।

कुल लागत तथा कुल आगम की रीति (Total Cost and Total Revenue Approach) :

कुछ विद्वानो ने मार्शल की रीति 'जाच और भूल' को समझने के लिए कुल आगम तथा कुल लागत रेखाओ का सहयोग प्राप्त किया है। इस रीति के अनुसार जिस बिन्दु पर कुल आगम (TR) तथा कुल लागत (TC) की दूरी अधिकतम होगी, वही पर एकाधिकारी का लाभ अधिकतम होगा अर्थात् एकाधिकारी साम्य की स्थिति मे होगा। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

सलग्न चित्र मे TC कुल लागत वक्र है तथा TR कुल आगम वक्र। यदि एकाधिकारी OR से कम या OS से अधिक उत्पादन करता है तो उसे हानि होगी क्योकि दोनो ही स्थितियो मे उसकी कुल लागत कुल आगम से अधिक है। RS के बीच उसे धनात्मक लाभ प्राप्त होगा। यदि एकाधिकारी OM मात्रा का उत्पादन करता है तो उसका लाभ अधिकतम होगा क्योकि इस स्थिति मे TR तथा TC के बीच की दूरी अधिकतम है इस बिन्दु पर ही एकाधिकारी साम्य की अवस्था मे होगा। चित्र मे A तथा B बिन्दु शून्य लाभ प्रदर्शित करते हैं, क्योकि इन दोनो स्थितियो मे कुल लागत तथा कुल आगम बराबर हैं।
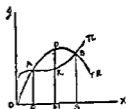
आलोचना (Criticism) :

कुल लागत तथा कुल आगम रेखाओ की रीति भद्दी है क्योकि :

(१) कुल लागत तथा कुल आगम के बीच की खड़ी दूरी को एक ही दृष्टि से नही जाना जा सकता।

(२) इससे यह ज्ञात नहीं होता कि प्रति इकाई लागत क्या है ?

(३) इस रीति द्वारा एकाधिकारी को यह ज्ञान नहीं होता कि वह किस मूल्य पर अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा।

२ आधुनिक रीति (Modern Method)

'जाच और भूल' रीति म अनेक दोष होने के कारण एकाधिकारी के साम्य निर्धारण क लिए आधुनिक रीति का प्रयोग किया गया। इस रीति को 'सीमान्त और औसत रेखाओं' की रीति (marginal and average curves approach) भी कहते हैं। श्रीमती जोन रॉबिन्सन तथा अन्य आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार एकाधिकारी के साम्य के लिए सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) का बराबर होना आवश्यक है। एकाधिकारी साम्य की स्थिति मे उस समय होगा जबकि उसका कुल उत्पादन स्थिर रहे। कुल उत्पादन मे स्थिरता उसी समय सम्भव है जबकि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा हो, अधिकतम लाभ तब तक प्राप्त होगा जबकि सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) बराबर हों।

प्रो० नाइट (Knight) ने इसे निम्नलिखित शब्दों मे व्यक्त किया है—"अधिकतम आय प्राप्त करने क लिये एकाधिकारी को अपने उत्पादन तथा बिक्री को शून्य इकाइयों से अधिक तब तक बढाते रहना चाहिये जब तक एक इकाई को बढाने से कुल आय म होने वाली वृद्धि इस इकाई के उत्पादन म आई लागत की वृद्धि के बराबर न हो जाय।'[८]

दूसरे शब्दों म, एकाधिकारी को उत्पादन तथा बिक्री उस सीमा तक बढाते रहना चाहिए जब तक कि सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत बराबर न हो जाय।

प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने प्रो नाइट के उपयुक्त कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि—यदि सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक होगी तब उत्पादन मे एक इकाई की वृद्धि कुल आय को कुल लागत से अधिक बढा देगी जिसके परिणामस्वरूप 'शुद्ध आय' म भी वृद्धि हो जायेगी। यदि सीमान्त आय सीमान्त लागत से कम हुई तो उत्पादन म एक इकाई की कमी से कुल लागत कुल आगम की तुलना म कम हो जायेगी, परिणामस्वरूप 'शुद्ध आय' बढ जायेगी। इस प्रकार 'शुद्ध एकाधिकारी आय' उसी स्थिति म अधिकतम होगी जबकि सीमान्त आगम व सीमान्त लागत बराबर हो जाते हैं।

---

८ "The monopolists should keep increasing his output and sales beyond zero unit, until the addition to the total revenue caused by adding one more unit just equals the addition to the total cost caused by adding this unit." —Prof Knight

मांग पक्ष—प्रो लर्नर के अनुसार 'एकाधिकारी का अभिप्राय उस विक्रेता से होता है जिस पर मांग वक्र गिरता हुआ होता है।' अर्थात् एकाधिकारी के लिये अपनी वस्तु की माग रेखा (AR) नीचे की ओर गिरती हुई होती है तथा सीमान्त आगम (MR) मूल्य रेखा (AR) से नीचे (या कम) रहता है।

गिरती हुई माग रेखा (AR) से अभिप्राय है कि यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु की अधिक मात्रायें बेचना चाहता है तो उसे वस्तु का मूल्य घटाना होगा।

सीमान्त आय (MR) औसत आय (AR) से कम होती है इसका कारण यह है कि एकाधिकारी को वस्तु अधिक मात्रा म बेचने के लिए कीमत घटानी पडती है परिणामस्वरूप सीमान्त आय मूल्य (A R) से कम रह जाती है। एकाधिकारी मूल्य निर्धारित करते समय माग की लोच को ध्यान म रखता है।

पूर्ति पक्ष—एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। एकाधिकार म *लागत रेखाओ की प्रवृत्ति पूर्ण प्रतियोगिता के समान* हो रहती है।

एकाधिकार मे मूल्य निर्धारण को हम दो भागो मे बाटकर अध्ययन करते हैं —

(१) अल्पकाल म मूल्य निर्धारण या अल्पकाल मे एकाधिकारी का साम्य,

(२) दीर्घकाल म मूल्य निर्धारण या दीर्घकाल मे एकाधिकारी का साम्य।

१ अल्पकाल मे मूल्य निर्धारण

अल्पकाल म एकाधिकारी की उत्पादन क्षमता निश्चित होती है। अर्थात माग म जिस अनुपात म परिवर्तन होते हैं उसी अनुपात म पूर्ति म परिवर्तन करना एकाधिकारी के लिए सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति मे एकाधिकारी को 'लाभ' या सामान्य लाभ (शून्य लाभ) प्राप्त हो सकता है तथा 'हानि' भी हो सकती है। सामान्यत एकाधिकारी को अल्पकाल म 'हानि' या सामान्य लाभ की सम्भावना कम ही रहती है परन्तु अल्पकाल म जब एकाधिकारी की वस्तु की माँग काफी कम हो जाती है तब उसकी वस्तु की कीमत इतनी कम रह सकती है कि उसे हानि प्राप्त हो।

लाभ की स्थिति—एकाधिकारी को लाभ उस स्थिति में प्राप्त होगा जबकि औसत आय (AR) औसत लागत (AC) से अधिक हो। एकाधिकारी साम्य उस बिन्दु पर स्थापित होगा जहा पर MR=MC है।
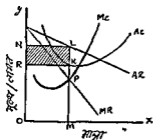
चित्र मे AR औसत आय रेखा है MC व AC क्रमश अल्पकालीन औसत लागत रेखायें है। MR सीमान्त आय रेखा है P बिन्दु साम्य बिन्दु है इस बिन्दु पर MR=MC है। इस प्रकार PM रेखा को AR रेखा (मूल्य रेखा या माग रेखा) तक बढा देते हैं। तो वह L बिन्दु पर काटती है। अत मूल्य LM हुआ तथा उत्पादन की मात्रा OM। इस मूल्य से सम्बन्धित औसत लागत KM है। अत एकाधिकारी को अपनी वस्तु बेचने से KL (LM—KM) लाभ प्राप्त होगा। कुल लाभ KLNR होगा।

सामान्य लाभ या शून्य लाभ की स्थिति

चित्र म एकाधिकारी को शून्य लाभ प्राप्त हो रहा है।
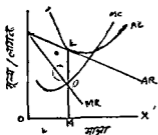
चित्र म P साम्य बिन्दु है। अत उत्पादन की मात्रा OM निश्चित हुई। PM रेखा को ऊपर बढाया जोकि AR रेखा को L बिन्दु पर काटती है। इस बिन्दु पर औसत लागत और औसत आय बराबर है। इस प्रकार मूल्य LM हुआ तथा वस्तु को बेचने स प्राप्त होने वाली आय भी LM हुई। अत एकाधिकारी को शून्य लाभ प्राप्त हुआ।

हानि की स्थिति—अल्पकाल मे एकाधिकारी मूल्य औसत लागत की अपेक्षा कम हो सकता है, लेकिन यह तभी सम्भव होगा जबकि एकाधिकारी की वस्तु की माग बहुत कमजोर हो। इस स्थिति म एकाधिकारी को हानि होगी। अल्पकाल म एकाधिकारी उस समय तक उत्पादन करता रहेगा। जब तक कि उसे औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) के बराबर मूल्य प्राप्त होता रहेगा। औसत परिवर्तनशील लागत से कम मूल्य प्राप्त होने पर एकाधिकारी उत्पादन कार्य बन्द कर देगा। अत एकाधिकारी को अधिक से अधिक हानि औसत स्थिर लागत (AFC) के बराबर प्राप्त होगी। सामान्यत अल्पकाल म भी एकाधिकारी के लिए हानि की सम्भावना कम रहती है।

चित्र में P बिन्दु पर सीमान्त लागत व सीमान्त आय बराबर हैं। इस बिन्दु से ऊपर की ओर रेखा खींचने से L बिन्दु पर औसत लागत रेखा को स्पर्श करती है अत. LM औसत लागत हुई। QM प्रति इकाई मूल्य है। इस प्रकार OM उत्पादन की मात्रा पर एक इकाई बेचने से एकाधिकारी को LQ (LM—QM=LQ) के बराबर हानि होती है। कुल हानि QLRS होगी।
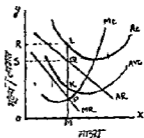
२. दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण

दीर्घकाल में एकाधिकारी को लाभ प्राप्त होता है। इस काल में एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन माग के अनुसार कर लेता है। पूर्ति में परिवर्तन वह प्लान्टो की उत्पादन क्षमता में कमी या वृद्धि करके या प्लान्टो की सख्या में कमी या वृद्धि करके करता है। दीर्घकाल में एकाधिकारी उद्योग के विस्तार या सकुचन की पूर्ण सम्भावनायें रहती हैं। इसलिए उद्योग की उत्पादन लागत पर उत्पत्ति के नियमों का प्रभाव पड़ता है। उत्पत्ति के तीनों नियमो—(i) लागत वृद्धि नियम (Law of increasing cost), (ii) लागत ह्रास नियम (Law of decreasing cost) तथा लागत स्थिरता नियम (Law of constant) cost) के अन्तर्गत एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन के निर्धारण को नीचे चित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(१) **लागत वृद्धि नियम**—निम्नांकित चित्र में एकाधिकारी लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। इसलिए लागत रेखायें नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती हुई हैं।

सलग्न चित्र में P साम्य बिन्दु है। इस बिन्दु से खींची जाने वाली खड़ी रेखा मूल्य रेखा (AR) को K बिन्दु पर स्पर्श करती है। तथा OX अक्षांश को M बिन्दु पर काटती है। अत OM उत्पादन की मात्रा तथा KM वस्तु का मूल्य होगा। प्रति इकाई लागत RM है अत एक इकाई पर लाभ KR (AR और AC का अन्तर) है तथा कुल लाभ RKTS (KR × TS = RKTS)।
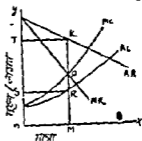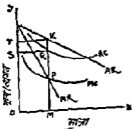
(२) लागत ह्रास नियम—इस चित्र में एकाधिकारी 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। इसलिये लागत रेखायें बायें से दायें को नीचे की ओर गिरती हुई हैं। P बिन्दु पर MR = MC है। P बिन्दु से खड़ी रेखा खींचने से AR को K बिन्दु पर काटती है। अतः KM मूल्य हुआ। AR तथा AC के बीच की दूरी प्रति इकाई लाभ को दर्शाती है। इस प्रकार प्रति इकाई लाभ KR (KM—RM=KR) है तथा कुल लाभ RKTS।
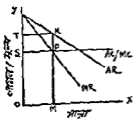
(३) लागत स्थिरता नियम—एकाधिकारी लागत स्थिरता नियम के अन्तर्गत कार्य कर रहा है इसलिए इस चित्र में लागत रेखायें पड़ी हुई रेखा के द्वारा प्रदर्शित की गई हैं। P बिन्दु साम्य बिन्दु है अतः OM उत्पादन की मात्रा और KM मूल्य है। प्रति इकाई लाभ KP है तथा कुल लाभ KPST।

क्या एकाधिकारी मूल्य सदैव प्रतियोगिता मूल्य से ऊँचा होता है (Is monopoly price always higher than competitive price)

साधारणतः एकाधिकारी अपनी वस्तु के लिए प्रतियोगिता मूल्य से ऊँचा मूल्य होता है। एकाधिकारी अपने क्षेत्र में अकेला उत्पादक रहता है तथा उसे प्रतियोगिता का भय नहीं रहता है इसलिये वह सदैव अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि एकाधिकारी मूल्य सदैव ऊँचा होगा। वास्तव में कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि एकाधिकारी मूल्य प्रतियोगी मूल्य की अपेक्षा नीचा रह जाता है।

(१) यदि एकाधिकारी की वस्तु की माँग अधिक लोचदार है तब एकाधिकारी वस्तु का मूल्य नीचा निश्चित करता है, जिससे कि वह वस्तु की अधिक मात्रायें बेचकर कुल लाभ में वृद्धि करता है।

(२) यदि वस्तु का उत्पादन 'लागत ह्रास नियम' के अन्तर्गत हो रहा है तो एकाधिकारी वस्तु का अधिक उत्पादन करके उसे नीचे मूल्य पर बेचना पसन्द करेगा।

(३) यदि एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर करता है जिसके फलस्वरूप उसे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती है तब एकाधिकारी का उत्पादन व्यय घट जायेगा और वस्तु का मूल्य भी कम हो जायेगा।

इनके अतिरिक्त एकाधिकारी शक्ति को सीमित करने वाले तत्व भी एकाधिकारी मूल्य को नीचा करने मे सहायक होते हैं।

एकाधिकारी शक्ति की सीमायें

एकाधिकारी की वृद्धि के विषय मे सामान्यत कहा जाता है—

"एकाधिकारी और मौसम मे एक समानता है, आप इनके विरुद्ध केवल असन्तोष व्यक्त कर सकते है परन्तु कुछ बिगाड नही सकते।"[9]

एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है, एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर लगभग पूर्ण नियन्त्रण होता है क्योंकि वह अपने क्षेत्र मे अकेला उत्पादक होता है। लेकिन एकाधिकारी का वस्तु की माग पर नियन्त्रण नही होता। एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य इच्छानुसार ऊचा निश्चित नही कर पाता क्योकि अनेक तत्व एकाधिकारी शक्ति को सीमित कर देते है जो निम्नलिखित है—

(१) विरोधी जनमत—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु का बहुत ऊचा मूल्य रखता है तब उपभोक्ताओ द्वारा उस वस्तु का बहिष्कार कर दिया जाता है। अत जनता द्वारा बहिष्कार के भय से वह वस्तु का मूल्य बहुत ऊचा निश्चित नही करता।

(२) स्थानापन्न वस्तुओं का भय—यदि एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य ऊचा रखकर अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है तो एकाधिकारी को इस बात का भय रहता है कि अन्य उत्पादक उसकी वस्तु के स्थान पर निकट स्थानापन्न का उत्पादन प्रारम्भ न कर दें।

(३) प्रतियोगिता का भय—यदि एकाधिकारी अधिक लाभ प्राप्त करता है तो उस लाभ से प्रभावित होकर कुछ शक्तिशाली उत्पादक प्रतिद्वन्द्वी बनकर उसके क्षेत्र मे प्रवेश कर सकते हैं, जिससे उसका एकाधिकार समाप्त हो सकता है य प्रतिद्वन्द्वी या तो विदेशी उत्पादक हो सकते हैं या देश के अन्दर ही उत्पन्न हो सकते हैं। इस भय के कारण ही एकाधिकारी मूल्य को अधिक ऊचा नहीं रख पाता है।

(४) राज्य द्वारा हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण का भय—राज्य द्वारा हस्तक्षेप व नियन्त्रण

---

9 "Monopoly has one thing common with the weather You may complain but you cannot do much about it"

किये जाने के भय से एकाधिकारी वस्तु का मूल्य अधिक ऊचा निश्चित नही करता है। क्योकि सरकार सामाजिक हित को ध्यान मे रखकर एकाधिकारी प्रवृति पर नियन्त्रण लगा सकती है या एकाधिकारी के मूल्यो पर नियन्त्रण लगा सकती है। यदि आवश्यक हो तो सरकार उस वस्तु के उत्पादन को अपने नियन्त्रण म ले लेती है।

(५) **उत्पत्ति वृद्धि नियम**— जब वस्तु की माँग लोचदार होती है और उद्योग म 'उत्पत्ति वृद्धि नियम अर्थात लागत ह्रास नियम लागू होता है तब एकाधिकारी अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से वस्तु का मूल्य निश्चित करता है।

मूल्य विभेद अथवा भेदपूर्ण एकाधिकार
(Price Discrimination or Discriminating Monopoly)

जब एकाधिकारी अपनी आय को अधिकतम करने के लिए अपनी एक ही वस्तु के लिए विभिन्न व्यक्तियो या विभिन्न स्थानो म भिन्न भिन्न मूल्य वसूल करता है तो इसे भेदपूर्ण एकाधिकार या मूल्य विभेद कहते हैं। मूल्य विभेद की परिभाषा श्रीमती जोन राबिन्सन (Mrs Joan Robinson) ने निम्नलिखित शब्दो मे प्रस्तुत की है—

"एक ही वस्तु, जिसका उत्पादन एक ही उत्पादक द्वारा किया जाता है, को भिन्न-भिन्न ग्राहको का भिन्न भिन्न मूल्यो पर बेचने की क्रिया को भेदपूर्ण एकाधिकार कहते हैं।"[१०]

प्रो० टॉमस (Prof Thomas के शब्दो मे —"एकाधिकारी नीति की एक विशेषता है कि एक ही वस्तु या सेवा की पूर्ति के लिए विभिन्न भागो के उपभोक्ता से भिन्न भिन्न मूल्य लिया जाता है। इस प्रकार का मूल्य विभेद विभिन्न व्यक्तियो, विभिन्न व्यापारो, विभिन्न क्षेत्रो एव विभिन्न वर्गो म हो सकता है।"[११]

---

10 "The act of selling the same article, produced under a single control at different prices to different buyers is known as price discrimination" —Mrs Joan Robinson

11 But a characteristic of monopolist policy is that different prices are charged for different portions of the supply of the same commodity or service Such price discrimination may be in respect of different persons, different trades or different areas in the same community or in different communities —Prof Thomas

मूल्य विभेद की शर्तें (Conditions of Price Discrimination)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तगत मूल्य विभेद सम्भव नही है। पूर्ण प्रतियोगिता मे सभी इकाइया समान होती हैं तथा उन समान इकाइयों को समान मूल्य पर ही बेचा जाता है। अत पूर्ण प्रतियोगिता और मूल्य विभेद का सह अस्तित्व सम्भव नही है। श्रीमती जोन रॉबिन्स के अनुसार 'मूल्य विभेद की नीति अपूर्ण प्रतियोगिता की कुछ विशेष स्थितियो म ही सफलता प्राप्त कर सकती है।' (एकाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का ही एक रूप है) जिस वस्तु का बाजार जितना अधिक अपूर्ण होता है मूल्य विभेद उतना ही अधिक सम्भव होता है। लेकिन मूल्य विभेद अपूर्ण प्रतियोगिता की आवश्यक शर्त नही है। स्टोनियर और हेग (Stonier and Hague) ने मूल्य विभेद की सफलता के सम्बन्ध म लिखा है—

"यदि मूल्य विभेद को सफल होना है तो एकाधिकारी बाजार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो म क्रेताओ के मध्य सम्पर्क असम्भव या अत्य त कठिन होना चाहिए। टेक्नीकल भाषा मे, विभेदात्मक एकाधिकारी के विभिन्न बाजारो म किसी प्रकार की रिसन (seepage) नही होनी चाहिए।"[12]

प्रो टामस ने मूल्य विभेद की शर्त को निम्नलिखित शब्दों म व्यक्त किया है—

"मूल्य विभेद की सफलता के लिए आवश्यक शर्त यह है कि एकाधिकारी की वस्तु या सेवा एक बाजार से दूसरे बाजार म विनिमय साध्य नही होनी चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा सम्भव हुआ तब व्यक्ति सस्ते बाजार से वस्तु खरीदकर महगे बाजार मे वस्तु को बेचना प्रारम्भ कर देंगे।"[13]

प्रो. जे के मेहता (Prof J K Mehta) ने मूल्य विभेद के लिये दो आवश्यक शर्तें बतायी हैं —

(१) भिन्न भिन्न बाजार एक दूसरे से पृथक् हो।

---

12 "So if price discrimination is to succeed, communication between buyers in different sectors of monopolist's market must be impossible, or at any rate extremely difficult In technical language there must be no 'seepage' between the discriminating monopolist's different markets" —Stonier and Hague

13 "It is an essential condition of price discrimination that the commodity or service sold should not be transferable from one market to another, for, if this were possible, people would buy in the cheap market and sell in the dear one" —Prof Thomas

(२) वस्तु की माग की लोच समाज के विभिन्न वर्गों म भिन्न भिन्न हो।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर मूल्य विभेद की आवश्यक शर्तें निम्न प्रकार हैं —

(१) मूल्य विभेद करन वाली फम एकाधिकारी की स्थिति म होनी चाहिए।

(२) एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु के लिए बाजार दो या दो स अधिक होने चाहिए। इसके अतिरिक्त एकाधिकारी द्वारा ली जान वाली कीमत पर विभिन्न बाजारो म वस्तु की मांग की लोच भी भिन्न भिन्न होना चाहिए।

(३) उपभोक्ता वस्तु को क्रय करने के बाद बेचने (resale) की स्थिति में नहीं होना चाहिए।

(४) एकाधिकारी वस्तु के विभिन्न बाजारो के क्रेताओ के मध्य सम्पर्क का अभाव होना चाहिए।

मूल्य विभेद के प्रकार या भेदपूर्ण एकाधिकार का वर्गीकरण (Types of Price Discrimination or Classification of Discriminating Monopoly):

स्टोनियर और हेग ने तीन प्रकार मूल्य विभेद बताया है —

(१) **उपभोक्ताओं की विशेषताओं के कारण**—इसम तीन प्रमुख कारण हैं —

(अ) उपभोक्ता को जब यह ज्ञात नही होता कि दूसरे बाजार म वस्तु कम मूल्य पर उपलब्ध हो रही है।

(ब) उपभोक्ता के मन मे यह गलत धारणा है कि वह वस्तु का मूल्य इस लिए अधिक दे रहा है कि उसकी वस्तु दूसर की अपना अधिक अच्छी है।

(स) वस्तु के मूल्यो म अन्तर इतना कम हो कि उपभोक्ता मूल्य के अन्तर की कोई चिन्ता न करें।

(२) **वस्तु के स्वभाव के कारण** इस प्रकार का मूल्य विभेद प्रत्यक्ष सेवाओ के सम्बन्ध मे लागू होता है। ये सेवायें विनिमय साध्य नही होतीं, अत मूल्य विभेद सरलता से किया जा सकता है, जैसे—वकील या डाक्टर की सेवा।

(३) **दूरी तथा सीमा प्रतिबन्धों के कारण** – मूल्य विभेद बाजारो की अधिक दूरी होन के कारण भी सम्भव होता है। तथा जब सीमान्त प्रतिबन्धो म दो देशों

के बाजारो को अलग कर दिया जाता है तथा उपभोक्ताओ के बीच प्रशुल्क दीवारें (tarrif of walls) खडी कर दी गई हो, तब एकाधिकारी मूल्य विभेद की नीति मे आसानी से सफलता प्राप्त कर लेता है।

प्रो पीगू ने मूल्य विभेद की तीन श्रेणिया बतायी हैं —

(१) प्रथम श्रेणी का मूल्य विभेद—इस श्रेणी के मूल्य विभेद मे एकाधिकारी उपभोक्ता की सामर्थ्य के अनुसार मूल्य लेता है। इससे उपभोक्ता को किसी प्रकार की बचत प्राप्त नही होती। डाक्टरो व वकीलो के लिए इस प्रकार का मूल्य विभेद सम्भव है।

(२) द्वितीय श्रेणी का मूल्य विभेद—इस मूल्य विभेद मे एकाधिकारी बाजार को विभिन्न वर्गों मे विभाजित करता है और प्रत्येक वर्ग के सब सदस्यो से न्यूनतम मूल्य लिया जाता है। ये निर्धारित मूल्य निम्नतम दर पर रखे जाते है जिससे कि उपभोक्ताओ को कुछ बचत प्राप्त होती है। इसका उदाहरण रेलवे के प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी के विभाजन को ले सकते हैं।

(३) तृतीय श्रेणी का मूल्य विभेद—इस श्रेणी के मूल्य विभेद मे एकाधिकारी बाजार को विभिन्न श्रेणियो मे बाट देता है और प्रत्येक बाजार मे माग की लोच के अनुसार अलग अलग मूल्य लेता है। पीगू का विचार है कि इस प्रकार का मूल्य विभेद व्यवहार मे बहुत अधिक पाया जाना है।

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने पीगू के उपर्युक्त वर्गीकरण की आलोचना की है। मूल्य विभेद का वर्गीकरण निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है—

(अ) व्यक्तिगत विभेद—इस विभेद मे विभिन्न व्यक्तियो से विभिन्न दरो म मूल्य लिये जाते है। प्रो० टामस के अनुसार इस प्रकार का मूल्य विभेद प्रत्यक्ष सेवाओ मे अधिक मिलता है।

(ब) स्थानीय विभेद—जब एकाधिकारी विभिन्न बाजारो म एक ही वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न मूल्य लेता है, तो उसे स्थानीय विभेद कहते हैं।

(स) व्यवसायिक विभेद—जब एकाधिकारी विभिन्न व्यापारो म या वस्तु के प्रयोग की प्रकृति के आधार पर मूल्य विभेद करता है तो इसे व्यावसायिक मूल्य विभेद कहते है, जैसे—विद्युत मण्डल उद्योगो के लिये कम व घरेलू उपयोग के लिये अधिक बिजली की दरें वसूल करती है।

भेदपूर्ण एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Price Under Discriminating Monopoly)

भेदपूर्ण एकाधिकारी का उद्देश्य भी अधिकतम एकाधिकारी लाभ प्राप्त करना होता है। लेकिन यह तभी सम्भव है जबकि बाजार अलग अलग होते हैं तथा उन बाजारो मे माग की लोच भी भिन्न भिन्न होती है। एकाधिकारी फर्म को अधिकतम लाभ उसी स्थिति मे प्राप्त होता है जब वह प्रत्येक बाजार की माग परिस्थितियो के अनुसार उस बाजार म उत्पादन और मूल्य को व्यवस्थित कर सकती है। भेदपूर्ण एकाधिकारी मूल्य निर्धारण नीति वही होती है जो कि एक साधारण एकाधिकारी की होती है।

श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs Joan Robinson) ने मूल्य निर्धारण की निम्न लिखित रीति बतायी है—

'यदि एक एकाधिकारी अपनी वस्तु को विभिन्न बाजारो मे बेच सकता है तो उसके लिये लाभदायक यह होगा कि वह भिन्न भिन्न बाजारो म भिन्न भिन्न मूल्य रखे। यदि उन बाजारों म माग की लोच समान न हो तो वह एकाधिकारी उन बाजारो म जिनम माग की लोच और सीमान्त आय कम है अपनी वस्तु को कम मात्रा म बेचकर तथा उन बाजारों मे जिनम माग की लोच और सीमान्त आय अधिक है, अपनी वस्तु को अधिक मात्रा म बेचकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उसे अधिकतम आय उस समय प्राप्त होगी जबकि प्रत्येक बाजार से प्राप्त होने वाली सीमान्त आय कुल उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर हो जाय।"

इस प्रकार भेदपूर्ण एकाधिकार म साम्य की दशा के लिए निम्न दशाओ का पूरा होना आवश्यक है —

(१) प्रत्येक बाजार मे सीमान्त आय कुल उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर होनी चाहिए। दूसरे शब्दो म, साम्य की सामान्य दशा $MR = MC$ यहा भी लागू होती है।

यदि एक बाजार म सीमान्त लागत सीमान्त आय स अधिक है तब एकाधिकारी फर्म बाजार म अपनी वस्तु की बिक्री को कम करके लाभ म वृद्धि कर लेगी। इसके विपरीत यदि बाजार म सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक होती है तब फर्म अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ाकर लाभ प्राप्त कर सेगी।

(२) प्रत्येक बाजार म सीमान्त आय समान होनी चाहिए तथा प्रत्येक बाजार की सीमान्त आय कुल उत्पादन के सीमान्त लागत के बराबर हो। यदि हम

दो बाजार मान कर चलें, और दोनो बाजार A और B हैं तब उसकी दशा को हम इस प्रकार लिख सकते है

$$M R (A) = M R (B) = M C$$

(A बाजार की सीमान्त आय=B बाजार की सीमान्त आय=कुल उत्पादन की लागत)

यदि A बाजार की सीमान्त आय कम है तथा B बाजार की सीमान्त आय अधिक है तो एकाधिकारी अपनी वस्तु की कुछ मात्रा A बाजार से हटाकर B बाजार मे बेच देगा, जिससे उसके लाभ मे वृद्धि होगी। ऐसी क्रिया वह उस समय तक करता रहेगा जब तक दोनो बाजारो की सीमान्त आय बराबर न हो जाय। दूसरे शब्दो म जिस बाजार म, वस्तु की माग बेलोचदार है उसम अधिक मूल्य लेगा तथा जहा माग लोचदार है उसमे नीचा मूल्य वसूल करेगा। ऐसा करते समय वह ध्यान रखेगा कि दोनो बाजारो की सीमान्त आय बराबर हो जाय।

भेदपूर्ण एकाधिकारी की सन्तुलन की स्थिति को रेखा चित्रो से व्यक्त किया जाता है
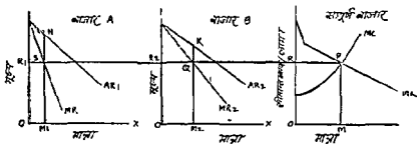
उपर्युक्त चित्रो म बाजार A व बाजार B मे औसत व सीमान्त आय के वक्रो को क्रमश प्रदर्शित किया गया है। दोनो बाजार की आय रेखाओ की भिन्नता माग की लोच की भिन्नता दर्शाती है। बाजार A की सीमान्त और औसत आय की रेखाय $M R_1$ तथा $A R_1$ है इस बाजार म माग बेलोच है। बाजार B म सीमान्त और औसत आय की रेखायें $M R_2$ तथा $A R_2$ हैं, इस बाजार म माग लोचदार है। $M R_1$ व $M R_2$ जोडकर कुल बाजार के लिये सीमान्त आय रेखा M R प्राप्त हो जाती है। एकाधिकारी के कुल उत्पादन की सीमान्त लागत रेखा M C है।

एकाधिकारी O M के बराबर कुल उत्पादन करेगा, क्योकि इस उत्पादन की मात्रा M R=M C के है। P बिन्दु पर दोनो एक दूसरे को स्पर्श करते हैं। अत O M उत्पादन साम्य उत्पादन (equilibrium output) को प्रकट करता है। एकाधिकारी इस

O M उत्पादन को दोनो बाजारो (A तथा B) म इस प्रकार बाटगा कि दोनों बाजारो म सीमान्त आय बराबर हो जाय। इस नियम का पालन करते हुए एकाधिकारी OM_1 मात्रा को बाजार A म तथा OM_2 मात्रा को बाजार B म बेचेगा। इस प्रकार के वितरण से सीमान्त आय (O R) दोनो बाजारो की सीमान्त आय OR_1 तथा OR_2 म बराबर होगी। दोनो बाजारो म माग की लोच म भिन्नता होने कारण मूल्यो म भी भिन्नता होगी। बाजार A म एकाधिकारी वस्तु को NM_1 मूल्य पर बेचता है तथा OM_1 मात्रा का उत्पादन करता है, जबकि बाजार B मे उसी वस्तु का KM_2 मूल्य पर बेचता है और OM_2 मात्रा का उत्पादन करता है। बाजार A म बाजार B की अपेक्षा मूल्य ऊचा है क्योकि बाजार B की अपेक्षा बाजार A म माग की लोच कम है।

राशिपातन (Dumping) Dumping

राशिपातन मूल्य-विभेद का महत्वपूर्ण रूप है। जब एकाधिकारी अपनी वस्तु के लिए विश्व म भिन्न-भिन्न बाजारो म अलग अलग मूल्य लेता है तो उसे राशिपातन की नीति कहते हैं राशिपातन को मूल्य विभेद के ऐसे रूप मे परिभाषित किया जाता है जिसम एकाधिकारी अपनी वस्तु को विदेशी बाजार म घरेलू बाजार की अपेक्षा सस्ते मूल्य पर बेचता है। कभी कभी मूल्य इतना कम लिया जाता है कि उस वस्तु की लागत भी नहीं निकल पाती। एकाधिकारी विदेशी बाजार म होने वाली हानि की पूर्ति स्वदेशी बाजार म अधिक ऊँचा मूल्य प्राप्त करके करता है।

प्रो टामस (Prof Thomas) ने राशिपातन की परिभाषा इस प्रकार दी है —

"राशिपातन का अर्थ साधारणत दूसरे देशो के बाजारो म स्वदेशी बाजार की अपेक्षा वस्तु को सस्ते मूल्य पर बेचना अथवा उत्पादन लागत से कम मूल्य पर बेचना होता है। इसका प्रयोग प्राय उन एकाधिकारियो द्वारा किया जाता है जो कि दूसरे देशो के बाजारो पर अधिकार जमाना चाहते हैं अथवा जो माग का गलत अनुमान लगाने के कारण अतिरिक्त उत्पादन को बेचना चाहते हैं या जो उत्पत्ति वृद्धि नियम के लाभो को प्राप्त करना चाहत हैं।[14]

14 "Dumping usually implies the selling of goods in a foreign market at a lower price than in the home market, or at a price which is below the expense of production It is a divice frequently resorted to by monopolistic undertakings, and may be adopted either to capture foreign markets, or to dispose of the surplus of goods produced as a result of an incorrect estimation of demand, or in order to obtain the benefits of increasing returns" —Prof Thomas

राशिपातन का उद्देश्य

एकाधिकारी राशिपातन को निम्नलिखित म से किसी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना सकता है —

(१) **अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए**—जब एकाधिकारी द्वारा माग का गलत अनुमान लगाय जाने के कारण उत्पादन अधिक मात्रा मे हो जाता है तो इस अतिरिक्त उत्पादन को एकाधिकारी विदेशी बाजार म कम मूल्य पर बेचना अधिक उपयुक्त समझता है। यदि एकाधिकारी अतिरिक्त उत्पादन को स्वदेशी बाजार मे ही बेचने का प्रयास करता है तो उसे कुल उत्पादन को सस्ते मूल्य पर बेचना होगा।

(२) **विदेशी बाजार मे प्रतियोगियो को कुचलने के लिए**—राशिपातन का एक उद्देश्य विदेशी बाजार मे प्रतियोगियों को हतोत्साहित करना भी होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह विदेशी बाजारो म अपनी वस्तु को लागत से भी कम मूल्य पर बेचता है। इस प्रकार विदेशी प्रतियोगी कुचल दिये जाते हैं और एकाधिकारी के लिए रास्ता साफ हो जाता है और फिर एकाधिकारी मूल्यो मे वृद्धि कर देता है।

(३) **उत्पत्ति वृद्धि नियम का लाभ उठाने के लिए**—उत्पत्ति वृद्धि नियम का लाभ उठाने के लिये एकाधिकारी राशिपातन का सहारा लेता है। इस नियम के अनुसार उत्पादन होने पर उत्पादन मे वृद्धि करने से सीमान्त लागत व औसत लागत दोनो घट जाती है। घरेलू बाजार मे माग बेलोच होती है, अत वह अधिक उत्पादन को विदेशी बाजार म बेच देता है।

(४) **विदेशी बाजारो मे वस्तु की माग का सृजन करने के लिए या वृद्धि करने के लिए**—एकाधिकारी जब विदेशो मे अपनी वस्तु की माग मे वृद्धि कराना चाहता है या नई माग उत्पन्न कराना चाहता है तो वह घरेलू बाजार की अपेक्षा विदेशी बाजार मे अपनी वस्तु को कम मूल्य पर बेचता है। जब विदेशो मे वस्तु लोकप्रिय हो जाती है तब वह उसके मूल्य म वृद्धि कर देता है।

मूल्य विभेद का औचित्य (Justification of Price Discrimination)

सामान्यत मूल्य विभेद की नीति को गलत माना जाता है तथा इसे सामाजिक न्याय की दृष्टि से उपयुक्त नही माना जाता क्योकि यह उपभोक्ताओ के बीच भेद भाव की नीति का पालन करती है। परन्तु यह मानना कि मूल्य विभेद नीति सदैव सामाजिक न्याय के विपरीत है या अनुपयुक्त है एक गलत धारणा होगी। मूल्य विभेद की नीति का मूल्यांकन करने के लिए सम्बन्धित परिस्थितियो पर विचार करना होगा। कुछ परिस्थितिया जिनम मूल्य विभेद लाभदायक होता है वे निम्नलिखित हैं —

(१) सार्वजनिक उपयोगी सेवाओ मे मूल्य विभेद को न्यायपूर्ण व उचित कहा जाता है जैसे डाकतार विभाग द्वारा पोस्टकार्ड की कीमत अपेक्षाकृत कम ली जाती है, क्योकि इसका प्रयोग निर्धन वर्ग द्वारा अधिक किया जाता है।

(२) मूल्य विभेद के कारण वस्तु का उत्पादन उस स्थिति मे भी सम्भव होता है जबकि औसत लागत सीमान्त उपयोगिता से अधिक होती है। एकाधिकारी वस्तु को बाजार म कभी कभी औसत लागत से कम मूल्य पर भी बेच सकता है।

(३) मूल्य विभेद के द्वारा देश के अतिरिक्त उत्पादन को विदेशो मे बेचा जा सकता है। मूल्य-विभेद के कारण ही एकाधिकारी अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित होता है, तथा उसे उत्पादन मे आन्तरिक व बाह्य बचतें प्राप्त होने के कारण कम लागत पर उत्पादन प्राप्त होता है। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को भी सस्ती कीमत पर वस्तु उपलब्ध हो जाती है।

सक्षेप म, मूल्य विभेद की नीति उनके लिये लाभदायक होती है जिनसे कम मूल्य प्राप्त किया जाता है, तथा उनके लिए हानिकारक है जिनको ऊंचा मूल्य देना पडता है। इस स्थिति मे अमीरो की हानि से निर्धनो को लाभ प्राप्त होता है। मूल्य विभेद न होने की दशा मे यह सम्भव है कि वस्तु का मूल्य इतना ऊँचा हो जाय कि निर्धन व्यक्ति उसके उपभोग से ही वचित रह जाये।

मूल्य विभेद के दोष गम्भीर हैं। कुछ दशायें ऐसी है जिनमे यह नीति समाज के लिए हानिकारक सिद्ध होती है।

(१) मूल्य विभेद की नीति के कारण उत्पादन म साधनों का असमान वितरण हो जाता है। जिन उद्योगो मे अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है वहा पर इन साधनो को प्रयुक्त किया जायेगा तथा कम लाभ वाले किन्तु आवश्यक उत्पादन के कार्यों मे साधनो का प्रयाग कम हो जाता है।

(२) एकाधिकारी मूल्य-विभेद की नीति के आधार पर अधिक लाभ कमाना अपना उद्देश्य बना लेता है, तथा देश के उपभोक्ताओ से ऊंचा मूल्य वसून करता है। एकाधिकारी का यह व्यवहार अन्यायपूर्ण है।

(३) मूल्य विभेद बहुधा राशिपातन को जन्म देता है, और राशिपातन से उन सभी वर्गों को हानि होती है, जिनके विरुद्ध यह किया जाता है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य-विभेद की नीति को प्रत्येक दशा मे उचित एव न्यायपूर्ण नही कहा जा सकता । प्रत्येक परिस्थिति के आधार पर इस नीति का मूल्याकन करना होगा तभी इसके औचित्य और अनौचित्य का निर्णय किया जा सकेगा ।

एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना

एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता दोनों की दशायें एक-दूसरे से भिन्न हैं, फिर भी दोनो ही स्थितियो के उत्पादको का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है । इस दृष्टि से दोनो ही साम्य की स्थिति मे उस बिन्दु पर होते है जहा सीमान्त आगम और सीमान्त लागत (MR=MC) बराबर होते है । इस समानता के होने पर भी दोनो के मूल्य तथा उत्पादन के निर्धारण मे अन्तर है, जो कि निम्नलिखित हैं :—

(१) पूर्ण प्रतियोगिता मे क्रेताओ और विक्रेताओ की सख्या बहुत अधिक होती है, तथा उनमे स्वतन्त्रतापूर्वक प्रतियोगिता होती है । वस्तु का मूल्य बाजार मे वस्तु की कुल माग व कुल पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होता है । इस प्रकार उद्योग द्वारा जो मूल्य निर्धारित होता है, उसे फर्म स्वीकार कर लेती है, अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म 'मूल्य ग्रहण करने वाली' होती है । फर्म द्वारा केवल उत्पादन की मात्रा समयोजित (adjust) की जाती है, इसीलिए किसी विशेष समय मे बाजार मे केवल एक ही मूल्य प्रचलित होता है ।

एकाधिकार म 'एक फर्म एक उद्योग' की स्थिति होती है, अर्थात् फर्म और उद्योग का अन्तर एकाधिकार मे समाप्त हो जाता है । एकाधिकारी फर्म अपनी वस्तु के लिए क्रेताओ से अलग-अलग मूल्य भी ले सकती है और एक समान मूल्य भी । फर्म के द्वारा अपनी वस्तु का मूल्य स्वय ही निर्धारित किया जाता है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता मे ऐसा नही होता ।

(२) पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म की औसत आगम रेखा (AR) या माग रेखा एक पडी हुई रेखा होती है । यह रेखा पूर्णतया लोचदार होती है, इसका अर्थ है कि एक दी हुई कीमत पर फर्म वस्तु को जितनी मात्रा बेचना चाहे बेच सकती है । लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता मे उद्योग के लिये माग रेखा (AR) बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है ।

एकाधिकार मे फर्म और उद्योग का अन्तर समाप्त हो जाता है, अत एकाधिकारी फर्म एव उद्योग की एक ही माग रेखा होती है वह रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है ।

(३) पूण प्रतियोगिता मे सीमान्त आगम (MR) और औसत आगम (AR) बराबर होते हैं। बाजार मे वस्तु का मूल्य समान रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है इसलिये सीमान्त आगम (MR) और मूल्य दोनो बराबर होते हैं। इस प्रकार पूण प्रतियोगिता म सीमान्त आगम व औसत आगम (MR=AR) बराबर होते हैं तथा दानो एक ही रेखा द्वारा व्यक्त किये जाते है।

एकाधिकार मे सीमान्त आगम (MR) औसत आगम (AR) से कम होता है। एकाधिकारी यदि अपनी वस्तु को अधिक मात्रा मे बेचना चाहता है तो उसे अपनी वस्तु का मूल्य कम करना होता है। इस प्रकार आगम रेखा को (MR) औसत आगम रेखा क नीचे की ओर गिरती हुई रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(४) पूर्ण प्रतियोगिता म वस्तु का मूल्य (AR) उसकी सीमान्त लागत (MC) के बराबर होता है अर्थात् पूण प्रतियोगिता म साम्य की स्थिति (AR=MR=MC) के होती है।

एकाधिकार के अन्तगत मूल्य (AR) और सीमान्त लागत (MC) म सामान्यत अन्तर होता है। प्राय एकाधिकारी फर्म द्वारा लिया जाने वाला मूल्य सीमान्त लागत से अधिक होता है।

(५) पूण प्रतियोगिता म फर्म तभी साम्य की स्थिति मे होती है जबकि सीमान्त लागत रेखा (MC) सीमान्त आगम रेखा (MR) को नीचे स काटे। एकाधिकारी फम की स्थिति म यह आवश्यक नही है। एकाधिकारी फम सभी प्रकार की लागत रेखाओं के साथ साम्य की स्थिति को प्राप्त कर सकती है चाहे य रेखायें नीचे गिर रही हो, या स्थिर हो या ऊपर को उठ रही हो।

(६) अल्पकाल मे पूण प्रतियोगिता एव एकाधिकार दोनो ही स्थितियो म फम को सामान्य लाभ तथा हानि प्राप्त हो सकती है, परन्तु एकाधिकारी को साधारणत हानि व सामान्य लाभ की स्थिति प्राप्त नही होती है। दीर्घकाल म पूण प्रतियोगिता की स्थिति म केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है जबकि एकाधिकारी को लाभ प्राप्त होना प्राय निश्चित ही है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१　एकाधिकारी मूल्य तथा प्रतियोगी मूल्य म अन्तर बताइए, और समझाइए कि एकाधिकार मे मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है।

२　एकाधिकारी का उद्देश्य माग तथा पूर्ति के बीच इस प्रकार का समयोजन करन

नहीं है कि प्राप्त मूल्य से उसकी उत्पादन लागत पूरी होजाय, अपितु इस प्रकार समयाजित करने से है कि उसे 'अधिकतम शुद्ध एकाधिकारी लाभ प्राप्त हो।" —मार्शल। व्याख्या कीजिये।

३ एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य का निर्धारण किस प्रकार होता है ? क्या एकाधिकारी मूल्य हमेशा प्रतिस्पर्धात्मक मूल्यों से ऊँचे होते हैं ? उन सीमाओं का उल्लेख कीजिए, जिनके कारण एकाधिकारी अपने मूल्यों को असीमित मात्रा तक बढाने में असमर्थ होता है। (दिल्ली १९६५)

४ 'एकाधिकार से क्या अभिप्राय है ? एकाधिकारी मूल्य निर्धारित करते समय किन-किन बातों को ध्यान मे रखता है।

५ एकाधिकारी साम्य से आप क्या समझते है ? एकाधिकारी दीर्घकाल म अपनी वस्तु का मूल्य किस प्रकार निर्धारित करता है ?

६ मूल्य विभेद की परिभाषा दीजिए। मूल्य-विभेद कब सम्भव, लाभदायक तथा सामाजिक दृष्टि से वाछनीय होता है ? (रविशकर, आगरा, कानपुर १९६८)

७ विभेदात्मक एकाधिकार से आप क्या समझते हैं ? विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है ?

८ राशिपातन पर टिप्पणी लिखिए।

———

अध्याय १२

★

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण

[Price Determination under Monopolistic Competition]

★ ★ ★

वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार की स्थिति का पाया जाना सम्भव नहीं है। पूर्ण प्रतियोगिता एक सिरे की स्थिति है तो एकाधिकार दूसरे सिरे की। व्यवहार में अधिकांश बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के तत्वों का मिश्रण पाया जाता है। किसी एक बाजार में एकाधिकारी तत्व अधिक प्रभावशील होते हैं तो दूसरे में प्रतियोगी तत्व। अर्थशास्त्रियों ने बाजार की इस स्थिति को अपूर्ण प्रतियोगिता (imperfect competition) या 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' (monopolistic competition) कहा है।

प्रो मेहता के अनुसार—"अब यह बात पूर्णतया स्वीकार करली गई है कि विनिमय की प्रत्येक दशा अपूर्ण एकाधिकार की दशा है, और यदि इसे दूसरी ओर से देखा जाय, तब यह अपूर्ण प्रतियोगिता ही है। ऐसी प्रत्येक दशा में प्रतियोगी तत्वों तथा एकाधिकारी तत्वों का मिश्रण पाया जाता है।"[1]

---

1 "It has since been more fully realized that the case of exchange is a case of what may be called partial monopoly And partial monopoly is looked at from other side, a case of imperfect competition There is a blending of both competition element and monopoly element in each situation"

—Prof J K Mehta

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा प्रो चेम्बरलिन (Chamberlin) ने 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' का विचार प्रस्तुत किया है। यद्यपि चेम्बरलिन ने इन दोनो म भेद किया है लेकिन ढोले रूप म दोनो को एक ही मान लेते है। एकाधिकारी प्रतियोगिता को 'समूह सन्तुलन' (Group Equilibrium) भी कहते है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता से अभिप्राय

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमे विक्रेताओ की सख्या अधिक होती है लेकिन यह सख्या पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम होती है। भिन्न भिन्न विक्रेताओ द्वारा उत्पादित वस्तु मे भिन्नता पाई जाती है, परन्तु ये वस्तुएँ एक दूसरे की निकट स्थानापन्न (close substitution) होती है। इन वस्तुओ म आपस म प्रतियोगिता पाई जाती है। **स्टोनियर और हेग** (Stonier and Hague) ने एकाधिकारी प्रतियोगिता के सम्बन्ध म लिखा है—

> "पूर्ण प्रतियोगिता मे एक समान वस्तु पाई जाती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता मे वस्तु विभेद पाया जाता है। पूर्ण प्रतियोगिता के समान न तो वस्तु की इकाइया एक सी ही होती है, और न एकाधिकार के समान निकट स्थानापन का अभाव होता है। इस सबका वास्तविक अर्थ यह है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तगत सब एकाधिकारी आपस मे प्रतियोगिता करते हैं। ये प्रतियोगी एकाधिकारी समान वस्तुओ का उत्पादन नही करते हैं और न ही ऐसी वस्तुओ का जो कि पूर्ण रूप से भिन्न होती है। वस्तु विभेद का अर्थ यही है कि वस्तुओ के उत्पादन मे किसी तरह की भिन्नता रहती है न कि वस्तुओं मे पूर्णतया विभिन्नता।'[२]

---

2 "In perfect competition there is at any rate only one homogeneous commodity In monopolistic competition there is differentiation of products Products are not homogeneous as in the perfect competitions, but neither are they only remote substitutes as in monopoly What this really means is that in monopolistic competition there are various 'monopolists' competing each other There competing 'monopolists' do not produce identical goods Neither do they produce goods which are completely different Product differentiation means the products are different in some way, but not altogether so"

—Stonier & Hague

एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषतायें .

एकाधिकारी प्रतियोगिता की मुख्य-मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) **फर्मों (या विक्रेताओं) की अधिक संख्या**—एकाधिकारी प्रतियोगिता की पहली शर्त यह है कि बाजार म फर्मों की संख्या अधिक होनी चाहिये। (लेकिन यह संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की 'बहुत अधिक संख्या' से कम होती है) लेकिन एक फर्म या विक्रेता द्वारा कुल उत्पादन का एक छोटा सा अंश ही उत्पादित किया जाता है। इस प्रकार एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्मों का आकार बहुत बडा नही होता। लेकिन प्रत्येक फर्म का वस्तु की पूर्ति पर नियन्त्रण होता है और अपनी वस्तु का मूल्य स्वय ही निर्धारित करती है।

(२) **वस्तु विभेद (Product differentation)**—एकाधिकारी प्रतियोगिता म वस्तु विभेद पाया जाता है, अर्थात् एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुयें एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं परन्तु वे पूर्ण स्थानापन्न (perfect substitutes) नहीं होती। प्रत्येक फर्म की वस्तु अन्य फर्मों की वस्तुओं से किसी न किसी रूप मे (वास्तविक या काल्पनिक) भिन्न होती है। यह वस्तु विभेद दो प्रकार का होता है—

(a) **वास्तविक वस्तु विभेद**—इस विभेद मे वस्तु की किस्म (quality) म अन्तर होता है, यह अन्तर कच्चे माल, वस्तु के टिकाऊपन, कार्यकौशल या ट्रेडमार्क आदि के द्वारा किया जा सकता है।

(b) **काल्पनिक वस्तु विभेद**—इस विभेद म वस्तु की इकाइयो के मध्य कोई अन्तर नही होता लेकिन विज्ञापन, प्रचार या प्रोपेगण्डा के द्वारा क्रेताओं की मनोवृत्ति को प्रभावित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप क्रेता यह सोचने के लिए बाध्य होता है कि इस फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु दूसरी फर्मों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

(३) **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश व बहिर्गमन**—एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी भी फर्म को उद्योग म प्रवेश करने अथवा किसी फर्म को उद्योग से बाहर जाने मे कोई कठिनाई नही होती। लेकिन वस्तु विभेद के कारण फर्मों का प्रवेश पूर्ण प्रतियोगिता के समान सुगम नही होता।

(४) **गैर मूल्य प्रतियोगिता (Non-price competition)**—एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु विभेद होने के कारण गैर-मूल्य प्रतियोगिता पाई जाती है। फर्मों

में आपस में प्रतियोगिता केवल मूल्यों पर ही आधारित नहीं होती, बल्कि वस्तु विभेदीकरण तथा विक्रय से सम्बन्धित दशाओं, विज्ञापन इत्यादि पर भी आधारित होती है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत आगम तथा लागत रेखायें

(१) **एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के लिए वस्तु की माग रेखा (AR) नीचे गिरती हुई रेखा होती है**—इसका अभिप्राय यह है कि यदि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म अपनी वस्तु की अधिक मात्रायें बेचना चाहती है तो उसे अपनी वस्तु का मूल्य कम करना होगा। लेकिन यहाँ पर औसत आगम रेखा एकाधिकारी फर्म की औसत आगम रेखा के समान ढालू या नीचे की ओर गिरती हुई (steep) नही होती। इसका कारण यह है कि एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु का कोई स्थानापन्न नही होता जबकि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु का निकट स्थानापन्न बाजार मे उपलब्ध होता है। इसके परिणामस्वरूप एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म की वस्तु की माग मूल्य में होने वाले परिवर्तनो के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। इसीलिए एकाधिकारी प्रतियोगिता में औसत आगम रेखा (AR) एकाधिकार की स्थिति की अपेक्षा अधिक लोचदार होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि मूल्य मे थोडी सी वृद्धि या कमी से फर्म की बिक्री में अत्यधिक कमी या अत्यधिक वृद्धि हो जायेगी।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत आगम रेखा (AR) मे लोच की मात्रा दो बातो पर निर्भर करती है।

(a) वस्तु विभेद का अंश
(b) समूह विशेष मे फर्मों की संख्या

यदि वस्तु विभेद का अंश अधिक है अर्थात् वस्तु का निकट स्थानापन्न बाजार में उपलब्ध नही है तो फर्म का औसत आगम वक्र कम लोचदार (या बेलोच) होगा। यदि वस्तु विभेद का अंश कम है अर्थात निकट स्थानापन्न उपलब्ध है तो औसत आगम वक्र अधिक लोचदार होगा।

एकाधिकारी प्रतियोगिता मे औसत आगम रेखा की शक्ल (shape) कार्यशील प्रतियोगी फर्मों की संख्या द्वारा भी प्रभावित होती है। बाजार मे यदि प्रतियोगी फर्मों की संख्या अधिक है तो फर्म का औसत आगम वक्र अधिक लोचदार होगा यदि बाजार मे प्रतियोगी फर्मों की संख्या कम है तो उस फर्म का औसत आगम वक्र कम लोचदार होगा।

(२) **सीमान्त आगम रेखा (MR) औसत आगम रेखा (AR) के नीचे रहती है**—इसका कारण यह है कि अतिरिक्त इकाइयो को बेचने के लिए फर्म को अपनी वस्तु का मूल्य (AR) घटाना पड़ता है। अतिरिक्त इकाई को बेचने के लिए फर्म मूल्य को केवल अतिरिक्त इकाई पर ही नही घटाती है बल्कि पिछली सभी इकाइयो पर उसे मूल्य घटाना पड़ता है। इसलिए अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली आय (अर्थात् MR) औसत आगम (AR) से कम होती है।

(३) **लागत रेखायें**—एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूरे उद्योग के लिए लागत रेखाओ का खीचना काफी कठिन है। यद्यपि विभिन्न फर्मो के द्वारा लगभग समान उत्पत्ति के साधनो का प्रयोग किया जाता है और उन साधनो का मूल्य भी लगभग समान दिया जाता है, लेकिन वस्तु विभेद के कारण विभिन्न फर्मो की लागतें भिन्न-भिन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप लागत रेखायें भी एक दूसरे से भिन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार पूरे उद्योग के लिए लागत रेखाओ का खींचना काफी कठिन होता है क्योंकि बाजार मे विभिन्न फर्मों की वस्तुओं की लागतो मे समानता नही पाई जाती। अत अध्ययन की सुविधा के लिये हम मान लेते हैं कि एकाधिकारी प्रति योगिता मे समूह की सभी फर्मो की लागत समान होती है।

(४) **विक्रय लागतें**—'गैर मूल्य प्रतियोगिता' एकाधिकारी प्रतियोगिता की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु को अधिक से अधिक मात्रा मे बेचकर अपने लाभ मे वृद्धि करने के उद्देश्य से विज्ञापन, प्रचार, प्रोपेगण्डा आदि पर बड़ी मात्रा में व्यय करती है। इस प्रकार के व्ययों को अर्थशास्त्री 'विक्रय लागतें' (selling costs) कहते हैं। ये विक्रय लागतें कुल उत्पादन लागत का एक हिस्सा होती हैं। इस प्रकार एकाधिकारी प्रतियोगिता मे लागत से अभिप्राय है

कुल लागत = स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत + विक्रय लागत

= उत्पादन लागत + विक्रय लागत

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण या फर्म का साम्य

एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति मे प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। दूसरे शब्दो मे फर्म अपनी वस्तु का मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा इस प्रकार निश्चित करेगी कि उसे लाभ अधिकतम हो। अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जबकि सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) बराबर हो। इस प्रकार

एकाधिकारी प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता एव एकाधिकार तीनो दशाओ मे साम्य उस बिन्दु पर स्थापित होता है जहा सीमान्त लागत और सीमान्त आगम बराबर होते है।

अत एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति मे एक उत्पादक अपनी वस्तु के उत्पादन मे उस सीमा तक वृद्धि करता है जब तक कि अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली आय मे वृद्धि उस वस्तु की इकाई पर आयी लागत मे वृद्धि के बराबर नही हो जाती है। इस सीमा के बाद उत्पादक वस्तु का उत्पादन बन्द कर देगा।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तगत फर्म का अल्पकालीन साम्य

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु को भेद के आधार पर बेचा जाता है। यदि कोई फम किसी नयी तथा श्रेष्ठ वस्तु का उत्पादन करके असाधारण लाभ प्राप्त करती है तो अन्य फर्मे भी उस वस्तु से मिलती-जुलती (स्थानापन्न) वस्तुओ का उत्पादन करेंगी। इस प्रकार प्रतियोगिता प्रारम्भ होगी और असाधारण लाभ स्वत ही समाप्त हो जायेंगे। परन्तु अल्पकाल मे फम असाधारण लाभ प्राप्त कर सकती है क्योकि यह अवधि इतनी कम होती है कि अन्य फर्मे स्थानापन्न वस्तुओ का उत्पादन नही कर पाती। इस प्रकार अल्पकाल म फर्म लाभ प्राप्त कर सकती है परन्तु दीर्घकाल मे लाभ प्राप्त करना सम्भव नही है। **स्टोनियर और हग के शब्दो म—**

> 'अल्पकाल मे, जबकि एकाधिकारी प्रतियोगिता है और फर्मो की सख्या निश्चित है, वे असाधारण लाभ या हानि प्राप्त कर सकती है। लेकिन दीघकाल मे उद्योग की स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता के समान ही होती है।"[3]

अत एकाधिकारी प्रतियोगिता मे भी फम की अल्पकालीन स्थिति लगभग वैसी ही होती है जैसी कि एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता मे। फर्मो की सख्या का उनकी उत्पादकता म पूण परिवतन करने के लिए 'समय' नही मिलता इसलिए फम अ) सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त कर सकती है, (ब) केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर सकती है, या (स) हानि उठा सकती है। इस स्थिति मे पूर्ण साम्य की स्थापना सम्भव नही है।

अल्पकाल मे एकाधिकारी प्रतियोगिता म औसत स्थिर लागत (average fixed cost), औसत परिवतनशील लागत (average variable cost), औसत कुल इकाई लागत या औसत लागत (average total unit cost or average cost) तथा सीमान्त

---

3 "In the short run, where there is monopolistic competition in an industry but the number of firms is fixed, can they all earn abnormal profits or losses. In the long run, however, the position will be similar to the long run position in a perfectly competitive industry" —Stonier & Hague

लागत (marginal cost) हो सकती हैं, परन्तु दीर्घकाल मे फर्म को केवल औसत लागत व सीमान्त लागत हो रहती है।

अल्पकाल मे लाभ की स्थिति—चित्र मे लाभ की स्थिति को दर्शाया गया है MR अल्पकालीन सीमान्त आगम रेखा है, AR अल्पकालीन औसत आगत रेखा। MC और AC अल्पकालीन सीमान्त लागत व औसत लागत रेखायें है। P बिन्दु साम्य बिन्दु है इस बिन्दु पर सीमान्त लागत व सीमान्त आगम एक-दूसरे के बराबर हैं। इस स्थिति में फर्म OM मात्रा का उत्पादन करेगी, तथा वस्तु का मूल्य LM के बराबर होगा। चू कि मूल्य LM वस्तु की लागत KM से अधिक है, इसलिए उत्पादक को प्रति इकाई KL (LM KM) लाभ प्राप्त होगा। कुल लाभ KLNT होगा।
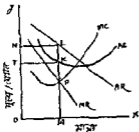
सामान्य लाभ की स्थिति—चित्र मे फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। P बिन्दु साम्य बिन्दु है, इस बिन्दु पर MC और MR बराबर है। OM उत्पादन की मात्रा है। K बिन्दु पर AR रेखा AC रेखा को स्पर्श करती है। इस प्रकार KM प्रति इकाई मूल्य भी है तथा प्रति इकाई लागत भी। दूसरे शब्दो मे, मूल्य और लागत बराबर हैं। अतः उत्पादक को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।
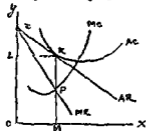
हानि की स्थिति—चित्र मे हानि की स्थिति प्रदर्शित की गई है। P बिन्दु साम्य बिन्दु है, यहा MR=MC के है। P बिन्दु से खड़ी रेखा खींची जा कि AR रेखा को K बिन्दु पर स्पर्श करती है, तथा AC रेखा को L बिन्दु पर। इस प्रकार जब उत्पादन OM होगा, तब लागत प्रति इकाई LM है, जबकि मूल्य KM। अतः उत्पादक को प्रति इकाई LK (LM—KM) हानि होगी। कुल हानि KLNT के बराबर प्राप्त होगी। उत्पादक अपनी वस्तु के लिये कम-से कम KM के बराबर मूल्य प्राप्त करेगा, यदि इससे कम मूल्य प्राप्त होगा तो वह उत्पादन बन्द कर देगा।

दीर्घकालीन साम्य .

दीर्घकाल मे फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है । यदि अल्पकाल मे कोई फर्म असाधारण लाभ प्राप्त कर रही है तो उस लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्म बाजार मे प्रवेश करेंगी, जिससे प्रतियोगिता मे वृद्धि होगी तथा नयी फर्में वस्तु की पूर्ति मे भी वृद्धि करेंगी । इसके परिणामस्वरूप वस्तु का मूल्य गिरेगा, और उत्पादक को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा ।

एकाधिकारी प्रतियोगिता मे पूर्ण प्रतियोगिता के समान ही दीर्घकाल मे 'दोहरी शर्त' को पूरा करना होता है —

(अ) MR = MC

(ब) AR = AC

दूसरी शर्त की पूर्ति ही सामान्य लाभ को जन्म देती है । चित्र मे इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है । चित्र मे P बिन्दु पर MR = MC के है, P बिन्दु से खडी रेखा खीचने पर यह रेखा AR रेखा को L बिन्दु पर काटती है । इस प्रकार मूल्य LM हुआ, तथा उत्पादन की मात्रा OM । L बिन्दु पर ही AR रेखा AC रेखा को स्पर्श करती है । अत लागत भी LM है । L बिन्दु पर AR = AC के है । इस प्रकार फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है ।
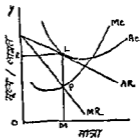
दीर्घकालीन साम्य के सम्बन्ध मे एक बात महत्वपूर्ण है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता मे AR रेखा एक गिरती हुई रेखा होती है, इसलिए वह AC रेखा को उसके न्यूनतम बिन्दु से पहले किसी बिन्दु पर (जो कि बाई ओर होता है) स्पर्श करेगी । इसका अर्थ यह होता है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता मे दीर्घकाल मे प्रत्येक फर्म अनुकूलतम मात्रा (optimum output) से कम उत्पादन करती है, जिसके परिणामस्वरूप फर्म की उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग नही हो पाता । इसके विपरीत पूर्ण प्रतियोगिता मे AR रेखा AC रेखा को उसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श करती है, अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म अनुकूलतम उत्पादन करती है ।

अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition)

प्रस्तुत अध्याय मे हम अपूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारी प्रतियोगिता को एक ही मानकर चले है । वास्तविकता यह है कि दोनो मे थोड़ा अन्तर है । बाजार की स्थितियो

का सही वर्गीकरण दो मुख्य विचारो पर आधारित है (अ) फर्मों की संख्या, (ब) फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु म एकरूपता या विभिन्नता । पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है, इसके साथ ही प्रत्येक फर्म द्वारा किया गया उत्पादन कुल उत्पादन का छोटा-सा अंश होता है, जो कि कुल पूर्ति को प्रभावित नही कर पाता । दूसरे, उद्योग की सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु एकरूप (homogeneous) होती है। यदि किसी बाजार मे उपर्युक्त स्थितियो म से कोई एक या दोनो अनुपस्थित रहती हैं तो वह अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होगी।

प्रो फेयर चाइल्ड के शब्दो मे—"यदि बाजार उचित प्रकार से संगठित नही है, और क्रेताओ तथा विक्रताओ के पारस्परिक सम्पर्क मे कठिनाई उत्पन्न होती है, तथा वे क्रय की गई वस्तुओ और दिय गये मूल्यों की तुलना करने म असमर्थ हैं तो ऐसी स्थिति को अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं।"[4]

इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

(१) विक्रेताओ की संख्या सीमित होती है।

(२) क्रेताओ को बाजार की स्थितियो का पूर्ण ज्ञान नही होता।

(३) विभिन्न विक्रेताओ द्वारा वेची जाने वाली वस्तुओ के मध्य काल्पनिक या वास्तविक अन्तर होता है, अर्थात् वस्तु विभेद पाया जाता है।

(४) यातायात की असुविधाओ या अन्य बाधाओ के कारण वस्तु क आवागमन मे असुविधा उत्पन्न होती है जिससे एक वस्तु के विभिन्न मूल्य प्रचलित हो सकते हैं।

(५) कुछ क्रेताओ का कुछ विक्रेताओ के प्रति या विशेष वस्तु के प्रति अनुराग होता है।

उपर्युक्त विशेषताओ मे से किसी एक की उपस्थिति ही अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म दे देती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अनेक रूप हैं। लेकिन प्रमुख रूप तीन हैं

4 "If the market is not properly organized, if the buyers and sellers find it difficult to come into contact with each other and they are not able to compare the commodities purchased and the prices paid by others, we shall come across a case of imperfect competition" —Fair Child

(अ) **एकाधिकार प्रतियोगिता**—इस शब्द का प्रयोग चेम्बरलिन ने किया। (विस्तृत विवेचन इसी अध्याय में है।)

(ब) **अल्पाधिकार (Oligopoly)**—अल्पाधिकार में कुछ ही फर्में होती हैं जो कि वस्तु की पूर्ति करती है। ये फर्में एकरूप वस्तु का उत्पादन करती हैं या निकट स्थानापन्न वस्तु का। इसमे विक्रेताओ की सख्या कम होने के कारण ये वस्तु के मूल्य और वस्तु की पूर्ति के प्रति सजग रहती हैं।

(स) **द्वयाधिकार (Duopoly)**—द्वयाधिकार की स्थिति मे बाजार मे केवल दो ही उत्पादक होते हैं, दोनो उत्पादको द्वारा समान या लगभग समान वस्तु का विक्रय किया जाता है। दोनो स्वतन्त्रतापूर्वक उत्पादन कार्य करके प्रतियोगिता करते है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारी प्रतियोगिता मे पूर्ण समानता नही है बल्कि थोडा अन्तर है। 'एकाधिकारी प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का एक रूप (form) मात्र है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ पूर्ण प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता मे अन्तर बताइए।

२ एकाधिकारी प्रतियोगिता से क्या अभिप्राय है? एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है।

३ एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के अल्पकालीन व दीर्घकालीन साम्य की व्याख्या कीजिए।

४ पूर्ण प्रतियोगिता व एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताओ का उल्लेख कीजिए। क्या पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारी प्रतियोगिता मे वस्तु का मूल्य ऊचा होता है?

अध्याय १३

★

प्रतिनिधि फर्म

[Representative Firm]

★ ★ ★

अर्थशास्त्र मे प्रतिनिधि फर्म का विचार प्रो. मार्शल द्वारा प्रस्तुत किया गया। मार्शल ने इसका प्रयोग स्थिर परिस्थितियो मे उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of increasing return) के अन्तर्गत सामान्य मूल्य-निर्धारण की व्याख्या करने के लिये किया।

दीर्घकाल मे किसी वस्तु का मूल्य सीमान्त उपयोगिता एव सीमान्त लागत के सतुलन द्वारा निर्धारित होता है। लेकिन उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत जब वस्तु का उत्पादन होता है तो उत्पादन मे वृद्धि के साथ साथ सीमान्त लागत म लगातार कमी होती जाती है। इस स्थिति मे वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत से अधिक होता है, अर्थात् मूल्य औसत लागत कम होती है, तथा कुछ फर्में अकुशल होती है, जिनकी उत्पादन लागत के बराबर होना है। लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे, मार्शल ने यह माना है, कि उद्योग विशेष मे फर्मों की सख्या बहुत अधिक होती है, इसके साथ ही फर्मों के विकास की स्थितिया समान नही होती। कुछ फर्में कुशल होती हैं जिनकी उत्पादन लागत अधिक होती है। चू कि पूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु के मूल्य म समानता पाई जाती है, इसलिये यह समस्या उत्पन्न होती है कि वस्तु का मूल्य किस फर्म की उत्पादन लागत के आधार पर निश्चित किया जाय। यदि कुशल फर्म के आधार पर मूल्य निर्धारित होता है तो कुछ फर्मों का, जो कि अकुशल हैं हानि होगी। यदि अकुशल फर्म के आधार पर मूल्य निर्धारित होता है तो कुछ फर्मों को लाभ प्राप्त होगा। दीर्घकाल मे पूर्ण प्रतियोगिता मे नतो फर्म को लाभ प्राप्त होता है और न ही हानि, केवल सामान्यलाभ ही प्राप्त होता है। इस जटिल समस्या को हल करने के लिये मार्शल ने 'प्रतिनिधि फर्म' का विचार प्रस्तुत किया।

प्रतिनिधि फर्म से अभिप्राय

मूल्य-निर्धारण में फर्म के चुनाव की समस्या को हल करने के लिये मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म का सुझाव प्रस्तुत किया। उनके अनुसार दीर्घकाल में वस्तु का मूल्य प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत के बराबर होता है। प्रो मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा निम्नांकित शब्दों में की है—

"प्रतिनिधि फर्म वह है जिसका जीवन काफी लम्बा रहा हो, जिसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई हो, जिसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता वाले व्यक्ति के द्वारा किया जाता हो, तथा जिसे बड़े पैमाने के उत्पादन की आन्तरिक एवं वाह्य बचतें प्राप्त होनी हों, जबकि उत्पादित वस्तु की श्रेणी, उसके विक्रय की परिस्थितियां तथा आर्थिक वातावरण को ध्यान में रखा जाता हो।"[1]

इस प्रकार मार्शल के अनुसार प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जिसका आकार न तो बहुत बड़ा है और न बहुत ही छोटा, जो न तो बिल्कुल नई है और न ही बहुत पुरानी, जिसका प्रबन्ध न तो बहुत अधिक कुशल व्यक्ति द्वारा किया जाता है और न ही अकुशल व्यक्ति द्वारा जिसे न तो लाभ प्राप्त होता है और न ही हानि, जिसकी न तो विस्तार की प्रवृत्ति होती है और न संकुचन की। इस प्रकार मार्शल की प्रतिनिधि फर्म एक 'औसत फर्म' है जो कि सम्पूर्ण उद्योग का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन मार्शल ने स्पष्ट रूप से बताया है कि यह औसत फर्म वर्तमान फर्मों की औसत फर्म नहीं होती बल्कि दीर्घकालीन औसत फर्म होती है। उन्हीं के शब्दों में—

"यह दीर्घकालीन औसत फर्म है जबकि वर्तमान प्रवृत्तियों का प्रभाव पूर्णरूप से कार्य कर चुका हो।"[2]

मार्शल ने औसत शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में किया है, मार्शल ने इसे स्पष्ट करते हुये लिखा है—

---

1 "Our representative firm must be one which has had a fairly long life, and fair success, which is managed with normal ability, and which has normal access to the economics, external and internal, which belong to that aggregate volume of production, account being taken of the class of goods produced the conditions of marketing them and the economic environment generally." —Marshall

2 "It is a long period average firm under conditions when the present tendencies have worked out their effects infull." —Marshall

"प्रतिनिधि फर्म एक विशेष प्रकार की औसत फर्म है जिसकी आवश्यकता यह पता लगाने के लिये होती है कि उद्योग विशेष मे आन्तरिक एव वाह्य वचतें किस सीमा तक प्राप्त हो चुकी हैं। हम इन वचतों का अनुमान एक या दो फर्मों को देखकर नही लगा सकते, परन्तु व्यापक रूप से सर्वेक्षण करने के उपरान्त इस प्रकार की फर्म पाई जा सकती है जो किसी विशेष औसत का प्रतिनिधित्व करती हो।'[3]

मार्शल के अनुसार प्रतिनिधि फम वास्तविक जगत म पाई जाती है। लेकिन प्रति निधि फम का आकार स्थिर दशाओ मे अपरिवर्तित रहता है, जबकि अन्य फर्मों के आकार मे वृद्धि होती है या सकुचन होता है। माशल ने इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये एक जगत का उदाहरण प्रस्तुत किया है। माशल ने उद्योग को तुलना एक जगल से की है। जगल म कुछ पेड ऐसे होते हैं जो बिल्कुल नये होते है जो निरन्तर बढते रहत हैं, कुछ पुराने होते है जिनका वढना वन्द हो जाता है, और वह नष्ट हो जाने की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो रहे होते है, कुछ पेड पूर्ण विकसित अवस्था म होते हैं। जगत के पेडा की तरह माशल ने एक उद्योग की फर्मों को तीन वर्गों मे विभाजित किया है —

(१) नई फर्में जिनमे वढने की प्रवृत्ति है तथा जिनका लाभ वढ रहा है।
(२) पुरानी फर्में जो अपनी कुशलता खो चुकी हैं, अत पतन की ओर अग्रसर हैं, तथा
(३) सुव्यवस्थित फर्में जो कि लम्बी अवधि प्राप्त कर चुकी हैं, और सफलतापूर्वक कार्य कर रही है।

माशल ने तीसरी श्रेणी की फम को औसत फर्म या प्रतिनिधि फम माना है, और इसी फर्म को लागत के आधार पर वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है।

प्रतिनिधि फर्म की विशेषतायें

माशल द्वारा प्रतिपादित प्रतिनिधि फर्म की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

---

3 "And a representative firm, is that particular sort of average firm, at which we need to look inorder to see how far the economics, internal and external, of production on a large scale have extended generally in the industry in question We cannot see this by looking at one or two firms taken at random, but we can see it fairly well by selecting after a broad survey, a firm whether in private or in joint stock managoment that represents to the best of our judgement this particular averages"

—Marshall

(१) प्रतिनिधि फर्म एक औसत फर्म होती है, जिसकी सहायता से यह पता लगाते है कि उद्योग को आन्तरिक एव वाह्य बचतें किस सीमा तक प्राप्त हो रही हैं।

(२) यह न बहुत नई फर्म होती है और न बहुत पुरानी।

(३) इसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता वाले व्यक्ति के द्वारा किया जाता है।

(४) इस फम को न लाभ प्राप्त होता है न हानि बल्कि सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

(५) स्थिर दशाओ मे फर्म का न विस्तार होता है न सकुचन।

(६) दीर्घकालीन मूल्य इस फर्म की औसत लागत द्वारा निर्धारित होता है।

(७) यह फर्म वास्तविक जगत म पाई जाती है तथा ऐसी फर्म एक या एक से अधिक हो सकती है।

प्रतिनिधि फम की आलोचना

मार्शल के प्रतिनिधि फर्म के विचार की कटु आलोचना की गई है। आलोचको म **प्रो रॉबर्टसन** (*Prof Robertson*) **प्रो रॉबिन्स** (*Prof Robbins*) एव **प्रो काल्डोर** (Prof Kaldor) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन आलोचको ने मार्शल के विचार की निम्न-लिखित आलोचनायें की —

(१) **प्रतिनिधि फर्म का विचार अस्पष्ट है**—प्रतिनिधि फर्म के विचार मे सरलता एव स्पष्टता दोनो का अभाव पाया जाता है। प्रो रॉबिन्स ने बताया कि मार्शल ने यह स्पष्ट नही किया है कि प्रतिनिधि फर्म का सम्बन्ध किससे है। रॉबिन्स के शब्दो म—"मार्शल ने यह स्पष्ट नही किया है कि प्रतिनिधि फर्म से उसका तात्पय प्रतिनिधि व्यापारिक इकाई से है या प्रतिनिधि प्लाट से, या प्रतिनिधि तकनीकी इकाई से।'[4]

(२) **प्रतिनिधि फर्म का विचार अवास्तविक है**—प्रो राबिन्स का यह विचार है कि मार्शल का विचार अवास्तविक एव भ्रांतिपूर्ण है, वास्तविक जगत मे ऐसी कोई फर्म नही पाई जाती। **प्रो निकोलस काल्डोर** (Prof Nicholas Kaldor) ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है—

---

4 "Even the clearest statement given by Marshall of his so-called representative firm does not make it clear whether Marshall means by it a representative plant or a technical production unit or a representative business unit" —Prof Robbinson

"मार्शल की प्रतिनिधि फर्म वास्तविकता का विश्लेषण न होकर मस्तिष्क का एक यत्र है।"[5]

(३) **प्रतिनिधि फर्म का विचार अनावश्यक है**–प्रो रॉबिन्स ने इस विचार को अनर्गल और अनावश्यक बताया है, उनका विचार है कि अर्थशास्त्र मे और विशेष रूप से विनिमय के क्षेत्र म ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका हल इसके बिना सभव न हो सके। राबिन्स ने इस सम्बन्ध मे लिखा है—

"जिस प्रकार हमे भूमि के प्रतिनिधि टुकडे, प्रतिनिधि मशीन या प्रतिनिधि श्रमिक की कल्पना करने की आवश्यकता नही है उसी प्रकार प्रतिनिधि फर्म या प्रतिनिधि उत्पादक की कल्पना करने की आवश्यकता नही है।"[6]

(४) **प्रतिनिधि फर्म का विचार अतार्किक है**—रोबिन्स के अनुसार यह विचार तर्कसगत नही है क्योकि मार्शल के अनुसार दीर्घकाल म वस्तु का मूल्य प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत के द्वारा निर्धारित होता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि जो फर्म प्रतिनिधि फर्म से कम कुशल है उनको हानि प्राप्त होगी, फिर भी वे उत्पादन काय करती रहेगी। लेकिन दीर्घकाल म कोई भी फम हानि प्राप्त नही करेगी। अत यह विचार तर्कसगत नही है।

(५) **पूर्ण प्रतियोगिता तथा क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम असगत है**—आलोचको का विचार है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने की दशा मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति समाप्त हो जाती है, इस स्थिति मे या तो अल्पाधिकार (oligopoly) या एकाधिकार (monopoly) की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। प्रो मेहता ने कहा है 'प्रो मार्शल का यह विचार नितान्त दोषपूर्ण है कि प्रतिनिधि फर्म हमेशा साम्य (equilibrium) की स्थिति म रहती है।'

---

5 "Marshall's representative firm is a tool of mind rather than an analysis of a concrete" —Prof Nicholas Kaldor

6 'There is no more need for us to assume a representative firm, or a representative producer, than there is for us to assume a representative piece of land, a representative machine or a representative worker" —Robbins

रॉबर्टसन ने भी मार्शल के इस विचार को बेकार माना है क्योंकि आर्थिक सिद्धान्त में इस विचार का कोई विशेष महत्व नहीं है। रॉबर्टसन के शब्दों में—

'मेरे विचार में प्रतिनिधि फर्म को सम्पूर्ण उद्योग की पूर्ति रेखा के एक सूक्ष्म रूप से कुछ अधिक मानना आवश्यक नहीं है।'[7]

प्रतिनिधि फर्म के विचार की पुनर्स्थापना (Rehabilitation of the Concept of Representative firm)

यद्यपि प्रतिनिधि फर्म के विचार की कटु आलोचना की गई तथा इसे अवास्तविक, अव्यावहारिक और अतार्किक कहा गया। फिर भी वर्तमान समय में कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा इस विचार को आलोचनाओं से मुक्त रखने का प्रयत्न किया गया है। अब बहुत से ऐसे अर्थशास्त्री हैं जो कि प्रतिनिधि फर्म को एक वास्तविकता मानते हैं। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार—

"मार्शल की प्रतिनिधि फर्म का विचार केवल मस्तिष्क की उपज ही नहीं है बल्कि यह एक वास्तविकता का विश्लेषण है।'[8]

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार प्रतिशील अर्थशास्त्र के लिए यह विचार बहुत महत्वपूर्ण है। १९१४ में सिडनी चैपमैन (Sydney Chapman) और ऐशटन (Ashton) द्वारा व्यापारिक फर्मों के अध्ययन किये गये थे, उन अध्ययनों से पता चलता है कि वास्तविक आर्थिक जीवन में इस प्रकार की फर्मों का अस्तित्व है। चैपमैन तथा ऐश्टन के अध्ययनों से निष्कर्ष निकालते हुए प्रो पीगू (Prof. Pigou) ने लिखा है—

"साधारणतया दी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत उद्योगों में या उद्योगों की शाखाओं में पर्याप्त आकार की एक प्रतिनिधि अथवा विशेष इकाई होती है जिसके आधार पर उद्योग अथवा व्यवसाय में वृद्धि होती है। जिस प्रकार मनुष्य के लिए एक सामान्य आकार और रूप होता है, उसी प्रकार व्यवसायों में भी सामान्य आकार एवं रूप होता है।"[9]

---

7 'In my opinion it is not necessary to regard it as anything other than a small scale replica of the supply curve of the industry as a whole" — Robertson

8 "Marshallian representative firm is not only a tool of the mind but is an analysis of the concrete"

9 "Generally speaking, there would seem to exist in the industries

अमेरिका के अनुभवो के आधार पर प्रो टॉसिग (Taussig) ने भी इस बात की पुष्टि की है कि प्रतिनिधि फर्म वास्तविक ससार से सम्बन्धित है।

प्रो मेहता ने भी इस विचार का दृढता से समर्थन किया है। लेकिन उन्होंने प्रतिनिधि फर्म के विचार को नया अर्थ दिया है। प्रो मेहता ने बताया कि (a) प्रतिनिधि फर्म का विचार गतिशील अवस्था म लागू होता है तथा (b) प्रतिनिधि फर्म सदैव साम्य की अवस्था मे नही रहती अपितु उद्योग मे परिवर्तन के साथ-साथ इसम भी परिवर्तन हो जाते हैं।

प्रो मेहता ने प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा इस प्रकार की है—

"प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जिसम उद्योग के साथ साथ विस्तार एव सकुचन की प्रवृत्ति पाई जाती है।"

प्रो मेहता ने बताया कि इस फर्म का बहुत अधिक व्यावहारिक महत्व है तथा यह वास्तविक जगत मे पाई जाती है। उन्होंने बताया कि यदि प्रतिनिधि फर्म वास्तविक जीवन म नही मिलती है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि इसके अध्ययन को छोड दिया जाय। उन्होंने बताया कि हम व्यवहार मे अनेक ऐसी बातो का अध्ययन करते हैं जो कि भौतिक जगत मे वास्तविक रूप से विद्यमान नही होतीं। प्रो मेहता के शब्दो म,– इस ससार म बहुत सी ऐसी वस्तुयें जिनके बारे म हम सब बातचीत करते हैं अपना अस्तित्व नही रखती, फिर भी वे भौतिक वस्तुओं के समझने मे सहायक होती हैं। प्रतिनिधि फम भी इसी प्रकार की है। जैसे ज्यामितीय वृत या सीधी रेखायें ससार म कही नही पाई जाती, फिर भी उनको अध्ययन मे आदर्श माना जाता है। भौतिक ससार को काल्पनिक ससार की तुलना से ही भलीभाति समझा जा सकता है।' इस प्रकार प्रो मेहता ने मार्शल के प्रतिनिधि फर्म के विचार का जोरदार शब्दो म समर्थन किया।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि प्रतिनिधि फर्म के विचार का व्यावहारिक महत्व है। इस महत्व के कारण ही प्रतिनिधि फर्म की पुनर्स्थापना की गई है।

---

or branches of industries of adequate size, under given sets of conditions, a typical or representative magnitude to which business tend to grow As there is a normal size and form for a man, so, but less markedly are there normal sizes and forms of business" —Pigou

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ मार्शल के प्रतिनिधि फर्म के विचार की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा मूल्य निर्धारण म इसके प्रयोग को समझाइए।

२ 'प्रतिनिधि फम' पर एक नोट लिखिए।

३ माशल के प्रतिनिधि फर्म के विचार की व्याख्या कीजिए तथा प्रो जे के मेहता के दृष्टिकोण का भी उल्लेख कीजिए।

———

अध्याय १४

★

लगान
[Rent]

★ ★ ★

अर्थशास्त्र के अध्ययन मे उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध से लगान के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। साधारणतया लगान से अभिप्राय उस भुगतान से है जो कि मकान, मशीन, खेत आदि के प्रयोग के बदले म उसके स्वामी को दिया जाता है। अर्थशास्त्र मे लगान से अभिप्राय उस भुगतान से है जो कि भूमिपति को भूमि के प्रयोग के बदले मे दिया जाता है।

लगान की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा विभिन्न प्रकार से की गई है। **डेविड रिकार्डो** (David Ricardo) के अनुसार —

"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो कि भूमिपति को भूमि की मौलिक एव अविनाशी शक्तियो के प्रयोग के बदले मे दिया जाता है।"[1]

कार्वर (Carver) के शब्दो मे—"लगान भूमि के उपयोग के बदले मे दिया गया मूल्य है।"[2]

मार्शल (Marshall) के अनुसार—"भूमि तथा अन्य प्रकृति से प्राप्त नि शुल्क उपहारो का स्वामी होने के कारण प्राप्त होने वाली आय को साधारणतया लगान कहते हैं।"[3]

---

1 "Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil." —Ricardo

2 "Rent is the price paid for the use of land" —Carver

3 "The income derived from the ownership of the land and other free gifts of nature is commonly called rent" —Marshall

इस प्रकार रिकार्डो, मार्शल आदि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने लगान का सम्बन्ध भूमि से स्थापित किया है। आधुनिक अर्थशास्त्री लगान का विश्लेषण केवल भूमि के संदर्भ में ही नहीं करते बल्कि उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को इसके अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं जिनमें 'भूमि तत्व' (land element) या 'सीमितता का गुण' पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, भूमि की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि भूमि की पूर्ति पूर्ण लोचदार नहीं होती। जिन उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति अल्पकाल में पूर्ण लोचदार नहीं होती वहीं पर लगान सामान्यतया प्राप्त होता है। स्टोनियर एवं हेग (Stonier and Hague) के शब्दों में—

> "लगान से अभिप्राय उन उत्पत्ति के साधनों को किये गये भुगतानों से है जिनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार नहीं होती।"[4]

जिस साधन की पूर्ति जितनी अधिक बेलोचदार होगी उसे उतना ही अधिक लगान प्राप्त होगा। आधुनिक अर्थ में लगान से अभिप्राय किसी भी उत्पत्ति के साधन को किये गये उस भुगतान से है जो कि उस साधन को उसी कार्य में बनाये रखने हेतु किये जाने वाले न्यूनतम भुगतान से अधिक है।

> श्रीमती जोन रॉबिन्सन के शब्दों में—"लगान के विचार का सार वह आधिक्य है जो कि उत्पत्ति के साधन की एक इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो कि उस साधन की इकाई को अपने कार्य को करते रहने के लिये आवश्यक है।"[5]

इस प्रकार लगान के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों और आधुनिक अर्थशास्त्रियों में मौलिक अन्तर है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त
(Ricardian Theory of Rent)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सुविख्यात प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो (१७७२-१८२३) द्वारा किया गया। यद्यपि रिकार्डो से पहले 'फिजियोक्रेट्स' (Physiocrates)

---

4 "The term rent is applied to payments made for factors of production which are imperfectly elastic supply."
—Stonier & Hague

5 "The essence of the conception of the rent is the conception of a surplus earned by a particular part of a factor of production over and above the minimum earning necessary to induce it to do its work." —Mrs Joan Robinson

एडम स्मिथ (Adam Smith) तथा माल्थस (Malthus) ने लगान के सम्बन्ध मे विचार प्रस्तुत किये थ । परन्तु रिकार्डो पहला अथशास्त्री है जिसने लगान के निर्धारण के सम्ब ध मे सुस्पष्ट, निश्चित एव व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किए। **रिकार्डो के अनुसार**—

"लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो कि भूमिपति को भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियो के प्रयोग के बदले म दिया जाता है।

रिकार्डो के अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त हो सकता है, उत्पत्ति के दूसरे साधनो को नहीं। क्योकि रिकार्डो का यह मत है कि भूमि मे कुछ विलक्षणतायें यदि पाई जाती हैं जो कि अन्य साधनो मे नही होती। भूमि की प्रमुख विलक्षणतायें निम्नलिखित हैं—

(१) भूमि की मात्रा सीमित होती है।

(२) भूमि प्रकृति से प्राप्त नि शुल्क उपहार है।

(३) भूमि की उपजाऊ शक्ति मे भिनता होती है।

(४) भूमि म गतिशीलता नहीं पाई जाती।

भूमि की उपर्युक्त विलक्षणताओ को ध्यान म रखकर रिकार्डो ने लगान सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होने बताया कि 'लगान एक भेदात्मक बचत है (Rent is a differential surplus)।

लगान एक भदात्मक बचत है—रिकार्डो के अनुसार भूमि की उपजाऊ शक्ति म भिनता होती है जिसके परिणामस्वरूप श्रेष्ठ भूमियो को घटिया श्रेणी की भूमिया की तुलना मे अधिक उपज प्राप्त होती है। यह उपज का आधिक्य ही लगान है। दूसरे शब्दा मे लगान वह आधिक्य है जो श्रेष्ठ भूमियो को कम उपजाऊ भूमियो की तुलना म प्राप्त होता है। इस प्रकार भूमि की उपजाऊ शक्ति म भिनता क कारण ही लगान उत्पन्न होता है।

रिकार्डो के लगान या भेदात्मक बचत का अध्ययन सामान्यत तीन भागा म किया जाता है —

(१) विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान,

(२) गहरी खेती के अन्तर्गत लगान,

(३) भूमि की स्थिति मे अन्तर होने के कारण लगान।

(१) **विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान**—इसकी व्याख्या करने के लिए रिकार्डो ने एक ऐसे द्वीप का उदाहरण दिया है जहा पर कोई व्यक्ति नहीं रहता। यदि कुछ व्यक्ति

वहा जाकर रहने लगें तो वे सबसे पहले वहा की सर्वश्रेष्ठ भूमि पर खेती करना प्रारम्भ करेंगे। तत्पश्चात जनसख्या म वृद्धि के साथ-साथ घटिया श्रेणी की भूमियो पर खेती की जाने लगेगी।

प्रारम्भ मे जब जनसख्या कम होती है तब प्रथम श्रेणी की भूमि से ही खाद्यान्न की समस्त आवश्यकता की पूर्ति करली जाती है। ऐसी स्थिति मे लगान शून्य होता है, जब जनसख्या मे वृद्धि होती है और खाद्यान्न की माग भी बढ जाती है तब उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए घटिया श्रेणी की भूमि पर खेती की जाती है। यदि जनसख्या मे और अधिक वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप बढती हुई माग को पूरा करने के लिए उससे भी घटिया श्रेणी की भूमि पर खेती की जाती है। इस प्रकार यदि भूमि की इन विभिन्न श्रेणियो के समान टुकडो पर समान मात्रा मे साधन की इकाइया लगायी जाती हैं तो श्रेष्ठ भूमियो से प्राप्त उत्पादन घटिया श्रेणी की भूमियो की अपेक्षा अधिक होता है।

किसी समय विशेष पर खेती की जाने वाली भूमियो मे सबसे घटिया श्रेणी की भूमि को 'सीमान्त भूमि' (marginal land) कहते है। सीमान्त भूमि से श्रेष्ठ भूमियो (superior lands) को पूर्व-सीमान्त भूमिया (intra marginal lands) कहते है।

बाजार मे वस्तु जिस मूल्य पर बेची जाती है वह सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होता है। यदि मूल्य इससे कम होता है तो कृषक इस भूमि पर खेती नही करगा। पूर्व सीमान्त भूमियो की लागत उनके द्वारा उत्पादित वस्तु के मूल्य से कम होगी। (क्योकि पूर्व-सीमान्त भूमियो की उपजाऊ शक्ति सीमान्त भूमि की अपेक्षा अधिक होती है) अत पूर्व सीमान्त भूमियो को बचत प्राप्त होती है। यही बचत लगान है।

विलियम फैलनर (W. Fellner) ने लिखा है—"पूर्व सीमान्त भूमियो की कीमत तथा लागत का अन्तर ही रिकार्डो का लगान है।"[6]

उत्पादक की बचत को फैलनर ने मौद्रिक रूप मे व्यक्त किया है, जबकि रिकार्डो ने इसे उत्पादन के रूप मे। अतः बचत को दोनो ही रूपो मे प्रयुक्त किया जा सकता है।

उपज का मूल्य सीमान्त भूमि की औसत लागत के बराबर होता है, इसलिये सीमान्त भूमि को कोई बचत प्राप्त नही होती है। अत **सीमान्त भूमि लगान रहित भूमि** (no rent land) होती है।

---

6 "The difference between price and cost of production of intra-marginal lands is the Ricardian rent." —W. Fellner

उपर्युक्त विश्लेषण को उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इस उदाहरण मे लगान को मौद्रिक और उत्पादन दोनो ही रूपो मे व्यक्त किया गया है।

भूमि की श्रेणिया	A श्रेणी की भूमि	B श्रेणी की भूमि	C श्रेणी की भूमि	D श्रेणी की भूमि या सीमान्त भूमि
कुल उत्पादन (गेहू के रूप मे)	५० क्वि०	४० क्वि०	३० क्वि०	२० क्वि०
लगान (उत्पादन के रूप मे)	(५०—२०) =३० क्वि०	(४०—२०) =२० क्वि०	(३०—२०) =१० क्वि०	(२०—२०) =० या लगान सहित भूमि
कुल लागत (मुद्रा के रूप मे)	१००० रु०	१००० रु०	१००० रु०	१००० रु०
बाजार मूल्य	५० रु०	५० रु०	५० रु०	$\frac{१००१}{२०}$=५०ह
कुल आय	(५०×५०) =२५०० रु०	(५०×४०) =२००० रु०	(५०×३०) =१५०० रु०	(५०×२०) =१००० रु०
लगान (द्रव्य के रूप मे)	(२५००-१०००) =१५०० रु०	(२०००-१०००) =१००० रु०	(१५००-१०००) =५०० रु०	(१०००-१०००) =० अर्थात् लगान रहित भूमि

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त को रेखाचित्र द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है।

सलग्न चित्र मे OX अक्षाक्ष पर भूमि को चार श्रेणी मे A, B, C तथा D दिखाई गई हैं। तथा OX अक्षाश पर विभिन्न भूमि की श्रेणियो से प्राप्त उपज को दिखाया गया है। समान मात्रा में साधन की इकाइया लगाने पर A भूमि से ५० क्विटल B से ४०,

C से ३० व D से २० क्विन्टल उपज प्राप्त होती है। D भूमि सीमान्त भूमि है इसलिए इस भूमि पर कोई लगान नही लगता है। A भूमि से ३०, B से २० और C से १० क्विन्टल लगान प्राप्त होता है।
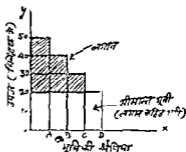
जैसा कि पूर्व मे ही कहा गया है कि कृषि उपज का बाजार मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के बराबर होता है। यदि उपज का मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत से कम होता है तो सीमान्त भूमि पर उत्पादन कार्य बन्द हो जायेगा। क्योकि कोई भी व्यक्ति हानि उठाकर उत्पादन कार्य करना पसन्द नही करेगा। जिसके परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति मे कमी हो जायेगी और यदि माग अपरिवर्तित रहती है तो बाजार मे वस्तु के मूल्य बढ जायेंगे। इसी प्रकार यदि बाजार मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत से अधिक हो जाते हैं तो अधि सीमान्त भूमि (sub marginal land) पर खेती की जाने लगेगी। इस स्थिति मे अब तक की सीमान्त भूमि पूर्व-सीमान्त भूमि बन जायेगी। यदि माग अपरिवर्तित रहती है तो वस्तु की पूर्ति मे वृद्धि होने के परिणामस्वरूप बाजार मे वस्तु के मूल्य गिर जायेंगे। अत कृषि उपज का बाजार मूल्य हमेशा सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत के बराबर होता है।

(२) गहरी खेती के अन्तर्गत लगान—रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान गहरी खेती मे भी लागू होता है। गहरी खेती के अन्तर्गत भूमि की विभिन्न श्रेणियो पर खेती नही की जाती बल्कि बढती हुई माँग को पूरा करने के लिए एक ही भूमि पर श्रम और पूजी की अधिकाधिक इकाइयो का प्रयोग किया जाता है। ऐसा करने से रिकार्डो के अनुसार प्रारम्भ में सीमान्त उपज बढती है लेकिन धीमे-धीमे उपज कम होती जाती है। अन्त मे एक स्थिति ऐसी आ जाती है जबकि श्रम और पूजी की सीमान्त मात्रा से प्राप्त उपज (या उपज का मूल्य) उस साधन की लागत के बराबर हो जाती है। इस मात्रा को सीमान्त मात्रा (marginal dose) कहते है। सीमान्त मात्रा होने के कारण यह लगानरहित मात्रा (no rent dose) होती है। इससे पूर्व की सभी मात्रायें पूर्व सीमान्त मात्रायें (super-marginal doses) होती है। इन सभी पूर्व सीमान्त मात्राओ से प्राप्त उपज सीमान्त मात्रा की उपज से अधिक होती है, सीमान्त मात्रा से अधिक जितनी उपज पूर्व सीमान्त मात्राओ को

प्राप्त होती है, वही लगान है। इस प्रकार गहरी खेती मे भी लगान भेदात्मक बचत है।

विस्तृत खेती के सन्दर्भ म खीचा गया रेखा चित्र गहरी खेती मे लगान को भी प्रदर्शित कर सकता है यदि हम भूमि की श्रेणियो के स्थान पर इसे श्रम और पूजी की मात्रायें मान ल। पहली श्रम व पूजी को मात्रा लगाने पर उपज ५० क्विटल प्राप्त होती है, दूसरी से ४०, तीसरी से ३० और चौथी मात्रा से २० क्विटल उपज प्राप्त होती है। चौथी मात्रा सीमान्त मात्रा है, अत लगान रहित मात्रा होगी। शेष पहली, दूसरी व तीसरी मात्राओ पर लगान क्रमश ३०, २० और १० क्विटल लगेगा।

(३) भूमि की स्थिति म अन्तर होने के कारण लगान—रिकार्डो के अनुसार—

> "सबसे अधिक उपजाऊ एव सबसे अच्छी स्थित भूमि पर खेती सबसे पहले की जायेगी। यदि सभी भूमियो की उपजाऊ शक्ति समान है तो लगान उस समय तक उत्पन्न नही होगा जब तक कि किसी भूमि को स्थिति का लाभ प्राप्त नही हो।"[7]

इस प्रकार रिकार्डो के अनुसार जब सभी भूमि समान उपजाऊ हो तब भूमि की स्थिति म अन्तर होने पर ही लगान उत्पन्न होगा।

समान उपजाऊ भूमियो की स्थिति म जो भूमि मण्डी के अधिक पास है वह श्रेष्ठ भूमि होगी तथा जो सबसे अधिक दूर है वह सीमान्त भूमि होगी। मण्डी के पास वाली भूमियो का यातायात व्यय सीमान्त भूमि (अथवा मण्डी से अधिक दूर स्थित भूमि) की अपेक्षा कम होगा। अत ये भूमिया पूर्व सीमान्त भूमिया होंगी। इस प्रकार पूर्व सीमान्त भूमियो को सीमान्त भूमि की तुलना मे बचत प्राप्त होगी। यही बचत लगान होगा।

रिकार्डो के सिद्धान्त की मान्यतायें (Assumptions)

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त अर्थशास्त्र के अन्य सिद्धान्तो के समान कुछ मान्यताओ पर आधारित है। रिकार्डो के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यतायें निम्नलिखित हैं—

---

7 "The most fertile and the most favourably situated land will be cultivated first If all lands are equally fertile, rent will not arise unless a particular land enjoys the advantage of situation"
—Ricardo

(१) अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के सिद्धान्तों के समान रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है।

(२) यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि प्रत्येक देश म सीमान्त भूमि (लगान रहित भूमि) पाई जाती है।

(३) रिकार्डो यह मानकर चलता है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति मे भिन्नता पाई जाती है तथा खेती सबसे पहले सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर की जाती है, उसके बाद उससे घटिया श्रेणी की भूमि पर। दूसरे शब्दों, मे खेती अवरोही क्रम (descending *order*) मे की जाती है।

(४) इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि भूमि सीमित होती है।

(५) रिकार्डो के अनुसार लगान केवल भूमि से ही प्राप्त होता है।

(६) रिकार्डो के अनुसार भूमि मे "मौलिक तथा अविनाशी शक्तिया' पाई जाती हैं जो कि अन्य साधनो मे नही होती। भूमि की इन शक्तियो के कारण ही लगान उत्पन्न होता है।

(७) रिकार्डो के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि भूमि मे 'क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Return) क्रियाशील होता है।

(८) यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि जनसख्या म निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इस प्रकार रिकार्डो का लगान सिद्धान्त उपर्युक्त मान्यताओ पर आधारित है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के प्रमुख तत्व

रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान सिद्धान्त ने निम्नलिखित तत्व है—

(१) **लगान प्रकृति की कृपणता या कन्जूसी के कारण उत्पन्न होता है, न कि उदारता के कारण**—रिकार्डो ने बताया कि लगान इसलिए उत्पन्न होता है क्योकि प्रकृति अनुदार है। अधिक उपजाऊ भूमि सीमित मात्रा मे पाये जाने के कारण ही घटिया श्रेणी की भूमि पर खेती की जाती है। इसी प्रकार गहरी खेती के अन्तगत जैसे जैसे श्रम और पूजी की इकाइया अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त की जाती है तो प्राप्त उपज कम होती जाती हैं। इसका कारण भूमि की उपजाऊ *शक्ति सीमित अथवा निश्चित होता है।*

(२) **लगान भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियो के कारण उत्पन्न होता है।** भूमि की जितनी अधिक उपजाऊ शक्ति होगी उतना ही अधिक लगान होता है।

(३) **लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि मूल्य लगान को प्रभावित करता है**—रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य म सम्मिलित नही होता और न ही मूल्य को निर्धारित करता है बल्कि मूल्य द्वारा लगान का निर्धारण होता है। रिकार्डो के अनुसार उपज का मूल्य निर्धारण सीमान्त भूमि की लागत के आधार पर होता है। **रिकार्डो के अनुसार**—

> "अनाज का मूल्य इसलिए ऊंचा नहीं है क्योंकि लगान दिया जाता है, अपितु लगान इसलिए दिया जाता है क्योंकि अनाज का मूल्य ऊंचा है।"[8]

इस प्रकार लगान मे परिवर्तन उसी स्थिति म होते हैं जबकि अनाज के मूल्य म परिवर्तन होता है। यदि अनाज का मूल्य ऊंचा हो जायेगा तो लगान की मात्रा पूर्व-सीमान्त भूमियो पर बढ जायेगी, यदि मूल्य गिर जाते हैं तो लगान की मात्रा पूर्व-सीमान्त भूमियो पर घट जायेगी।

(४) **लगान अनार्जित आय (Rent unearned income)** —रिकार्डो के अनुसार लगान भूमिपति के प्रयत्नों के कारण प्राप्त नहीं होता बल्कि भूमि का स्वामी होने के कारण प्राप्त होता है। लगान इसलिये उत्पन्न होता है क्योंकि उपज का मूल्य उत्पादन लागत से अधिक होता है। अत लगान अनार्जित आय है।

रिकार्डो के सिद्धान्त की आलोचनायें :

यद्यपि अर्थशास्त्र मे रिकार्डो का लगान सिद्धान्त अत्यन्त लोकप्रिय है फिर भी आधुनिक अर्थशास्त्रियो द्वारा इस सिद्धान्त की कटु आलोचना की गई है। रिकार्डो के सिद्धांत की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं—

(१) **रिकार्डो का यह विचार उचित नहीं कि भूमि में मौलिक और अविनाशी शक्तियां पाई जाती हैं**—आलोचकों का यह विचार है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति म अच्छे साधनो का प्रयोग करके वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार यदि भूमि का उपयोग अविवेकपूर्ण ढग से किया जाय तो उसकी उर्वरता भी शीघ्र नष्ट हो जाती है। इस प्रकार न तो भूमि मे मौलिक शक्तियां पाई जाती हैं और न ही अविनाशी।

प्रो हेने (Prof Haney) ने रिकार्डो के पक्ष का समर्थन किया है। उन्होंने कहा है कि भूमि मे कुछ इस प्रकार के तत्व पाये जाते हैं जिनको मनुष्य के

---

8 "Corn is not high because rent is paid, but rent is paid because corn is high." —Ricardo

प्रयत्नो के द्वारा न तो नष्ट किया जा सकता है और न ही बनाया जा सकता है। प्रो हेने (Haney) के शब्दों मे—

> "भूमि मे कुछ तत्व जैसे जलवायु आदि ऐसे हैं जिन्हे वर्तमान स्थिति मे न तो नष्ट किया जा सकता है और न ही उन्हे बनाया जा सकता है।"[९]

(२) **रिकार्डो का कृषि-क्रम ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है**—अमरीकी अर्थशास्त्री हेनरी कैरे (Hanry Carey, के अनुसार रिकार्डो का यह दृष्टिकोण कि सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर सबसे पहले खेती की जाती है गलत है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी पुष्टि नही की जा सकती। प्रो० कैरे ने बताया कि सबसे पहले श्रेष्ठ भूमि पर खेती नही की जाती बल्कि उस भूमि पर खेती की जाती है जहा पर सुविधा अधिक प्राप्त होती है। कैरे के अनुसार अमरीका मे कम उपजाऊ भूमि पर पहले और अधिक उपजाऊ भूमि पर बाद मे खेती की गई।

रिकार्डो के समथको का यह विचार है कि रिकार्डो के सिद्धान्त की सत्यता कृषि क्रम पर निर्भर नही है। इस कृषि क्रम का उदाहरण केवल विभिन्न भूमियो की उपजो के बीच अन्तर को स्पष्ट करने के लिये दिया गया है।

(३) **रिकार्डो की लगान रहित भूमि (Non-rent Land) या सीमान्त भूमि की मान्यता गलत है**—आलोचको का यह विचार है कि व्यवहार मे लगान रहित भूमि का सभी देशो मे पाया जाना आवश्यक नही है। उदाहरण के लिये अधिक जनसंख्या वाले देश मे, जहा पर कि भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक होता है, सबसे कम उपजाऊ भूमि भी लगान उत्पन्न करती है। इस प्रकार कोई भी भूमि लगान रहित नही होती।

(४) **रिकार्डो का सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है**—अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के सिद्धान्तो की तरह रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी पूर्ण प्रतियोगिता और दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है। आलोचको के अनुसार वास्तविक जीवन मे पूर्ण प्रतियोगिता कही भी देखने को नही मिलती। प्राय जमीदार या भूमिपति द्वारा किसान से लिया जाने वाला लगान आर्थिक लगान से भी अधिक होता है। इसी प्रकार लगान के निर्धारण मे अल्पकाल की उपेक्षा की गई है। जबकि लगान निर्धारण मे समान दीर्घकाल की अपेक्षा अल्पकाल म अधिक सामने आती है।

9 "There are certain elements that go with the land, such as climate which in the present state can neither be destroyed nor made" —Prof Hanery

(५) **रिकार्डो का यह दृष्टिकोण कि लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता, गलत है—** रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नही करता बल्कि स्वयं मूल्य से प्रभावित होता है। आलोचकों ने इस दृष्टिकोण की आलोचना की है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान भी मूल्य को प्रभावित करता है। मिल (Mill) तथा अन्य अर्थशास्त्रियो के अनुसार किसी विशेष उद्योग अथवा उपयोग की दृष्टि से लगान मूल्य म सम्मिलित रहता है।

(६) **लगान भूमि की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होता है, न कि उत्पादकता के कारण—** रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की उपजाऊ शक्ति के कारण होता है। जितनी भूमि अधिक उपजाऊ होगी उतना ही लगान अधिक होगा। आलोचकों ने रिकार्डो के इस दृष्टिकोण को गलत ठहराया है, और कहा है कि लगान का कारण भूमि की सीमितता या दुर्लभता है। उनके अनुसार यदि भूमि की पूर्ति माग की अपेक्षा अधिक है तो लगान नही लगेगा। लेकिन जैसे ही पूर्ति की अपेक्षा माग म वृद्धि हो जाती है तो लगान लगने लगेगा। आलोचकों का विचार है कि यदि सभी भूमिया समान रूप से उपजाऊ हैं तब भी उत्पत्ति ह्रास नियम के प्रभावशील रहने के कारण लगान उत्पन्न होगा। इस प्रकार रिकार्डो दुर्लभता लगान (scarcity rent) को सही रूप म स्पष्ट नही कर सके हैं।

(७) **लगान केवल भूमि की ही विशेषता नहीं है—** रिकार्डो के अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त होता है, उत्पत्ति के अन्य साधनो को नही। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने रिकार्डो के इस दृष्टिकोण की आलोचना की है। उन्होंने कहा है कि लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नही होता बल्कि उन सभी साधनो को प्राप्त होता है जिनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार perfectly elastic) नही होती। दूसरे शब्दों म, जिन साधनो की पूर्ति को अल्पकाल मे आवश्यकतानुसार परिवर्तित नहीं किया जा सकता, उन साधनों को लगान प्राप्त होता है। श्रीमती रॉबिन्सन के शब्दों में—

'उत्पत्ति के साधनो की विभिन्न इकाइया भी जो कि श्रम, साहस तथा पू जी की विस्तृत श्रेणियो के अन्तर्गत आती हैं, लगान प्राप्त कर सकती हैं।'[10]

---

10 'Particular units of factors of production which belong to the other three broad categories—labour, enterpreneurship and capital, may also earn rent" —Mrs Robinson

(८) लगान-निर्धारण के लिए अलग से सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान-निर्धारण के लिए अलग से सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने बताया कि जिस प्रकार उत्पत्ति के अन्य साधनों का हिस्सा निश्चित होता है, उसी प्रकार भूमि का पुरस्कार अर्थात् लगान निश्चित होता है। अतः रिकार्डो का अलग से लगान का निर्धारण अधिक महत्व नहीं रखता।

निष्कर्ष :

यद्यपि रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की कटु आलोचनायें की गई हैं और इसे अव्यावहारिक और असत्य कहा गया है, फिर भी यह सिद्धान्त अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रॉबर्टसन (Robertson) का कहना है कि 'आज भी लगान का प्रतिष्ठित सिद्धान्त शक्तिशाली एवं शिक्षाप्रद है।' रिकार्डो के सिद्धान्त में कुछ ऐसी बातें हैं जो कि हमेशा सत्य प्रतीत होती हैं।

(१) रिकार्डो का यह निष्कर्ष सत्य है कि जनसंख्या में वृद्धि होने से उसकी माग को पूरा करने के लिए घटिया श्रेणी की भूमि पर खेती की जाने लगती है।

(२) कृषि क्षेत्र में कितनी ही प्रगति कर ली जाय लेकिन उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता। यह सम्भव है कि कृषि में सुधार करके इसको थोड़े समय के लिए स्थगित कर दिया जाय। जीड एवं रिस्ट ने रिकार्डो के सिद्धान्त के महत्व के बारे में लिखा है—

"रिकार्डो का सिद्धान्त तभी अप्रचलित हो सकता है जबकि अन्न का उत्पादन वैज्ञानिक रीति से होने लग जाय। लेकिन उस समय तक यह प्रभावपूर्ण बना रहेगा।"[११]

(३) "प्रो. रिकार्डो का विचार कि लगान एक अनार्जित आय है" ने अर्थशास्त्रियों और विचारकों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इसी विचार से प्रभावित होकर बहुत से देशों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया। समाजवादी विचारक रिकार्डो के सिद्धान्त को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखते हैं क्योंकि यह सिद्धान्त 'सामूहिक अर्थव्यवस्था की आधारशिला है।' आधुनिक अर्थशास्त्री रिकार्डो के सिद्धान्त को सम्मान प्रदान करने की दृष्टि से ही 'सीमितता के गुण' को 'भूमि तत्व' कहते हैं।

---

11 "When albumen can be scientifically produced then will the Ricardian theory become obsolete Until then it holds good"
—Prof. Gide and Rist

लगान का आधुनिक सिद्धान्त
(Modern Theory of Rent)

रिकार्डो के अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि भूमि मे कुछ विशेष गुण पाये जाते हैं जो कि उत्पत्ति के दूसरे साधनो मे नही होते। इसलिए रिकार्डो ने लगान निर्धारण के लिए अपना अलग से सिद्धान्त प्रतिपादित किया। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री रिकार्डो के इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान को भूमि का एकाधिकार नही माना जा सकता क्योंकि उत्पत्ति के दूसरे साधनो—श्रम, पूंजी आदि मे भी सीमितता तथा स्थिरता का गुण पाया जाता है, इसलिए अन्य साधन भी लगान प्राप्त कर सकते हैं। अत आधुनिक अर्थशास्त्री अलग से लगान सिद्धान्त की आवश्यकता को महसूस नही करते और माग और पूर्ति के सामान्य सिद्धान्त को ही लगान का सिद्धान्त भी मानते हैं।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार रिकार्डो का सिद्धान्त केवल यह व्याख्या करता है कि एक भूमि को दूसरी भूमि की अपेक्षा कम या अधिक लगान क्यो प्राप्त है। लगान उत्पन्न होने का कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर रिकार्डो ने नही दिया। आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान माग की तुलना मे भूमि की सापेक्षिक दुर्लभता (scarcity) के कारण उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दो मे, लगान उत्पन्न होने का कारण भूमि की माग का पूर्ति की तुलना मे अधिक होना है। पूर्ति की तुलना मे माग जितनी अधिक होगी, उतना ही लगान अधिक होगा। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार भूमि और उत्पत्ति के अन्य साधनो मे समानता होने के कारण, अन्य साधनो का हिस्सा भी लगान के समान ही निर्धारित होता है।

भूमि की माग व्युत्पादित माग (derive demand) होती है। भूमि की माग उपज की माग से सम्बन्धित होती है, अर्थात् उपज की माग मे कमी या वृद्धि होने से भूमि की माग मे भी कमी या वृद्धि हो जाती है। यदि माग बढ जाती है तो लगान मे भी वृद्धि हो जाती है।

भूमि की पूर्ति समाज की दृष्टि से स्थिर है, परन्तु निजी व्यक्ति (या उद्योग विशेष) की दृष्टि से पूर्ति मे परिवर्तन किये जा सकते हैं। परन्तु यह परिवर्तन भी अधिक मात्रा मे नही किये जा सकते। सामान्यत भूमि की पूर्ति को बेलोचदार माना जाता है। अत लगान मे होने वाले परिवर्तन भूमि की पूर्ति को प्रभावित नही करते।

वान वीजर (Von Wieser) ने उत्पत्ति के साधनो को दो भागों मे बाटा है (a) विशिष्ट साधन (specific factors), (b) अविशिष्ट साधन (non specific

factors) विशिष्ट साधन वे साधन हैं जो कि एक ही कार्य मे प्रयुक्त किये जा सकते हो। जिनमे गतिशीलता नही पाई जाती हो तथा जिनका दूसरे कार्यों म प्रयोग करना सम्भव नही हो। आवशिष्ट साधन वे साधन होते हैं जिनको कई कामो मे प्रयुक्त किया जा सके। इनम पर्याप्त गतिशीलता पाई जाती है।

वीजर का यह मत है कि विशिष्टता एक गुण है जिसे कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है। जो साधन एक समय विशिष्ट है वह दूसरे समय अविशिष्ट हो सकता है तथा जो साधन अविशिष्ट है वह दूसरे समय विशिष्ट हो सकता है। वास्तविक रूप मे कोई साधन न तो पूर्णरुप से गतिशील होता है और न ही पूर्णरूप से अगतिशील। दूसरे शब्दो मे, एक साधन आशिक रूप से विशिष्ट साधन होता है और आशिक रूप से अविशिष्ट।

वीजर के उपर्युक्त दृष्टिकोण के आधार पर ही आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने लगान का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार **लगान विशिष्टता का भुगतान है।** क्योकि एक साधन आशिक रूप से विशिष्ट होता है और आशिक रूप से अविशिष्ट, इसलिए एक साधन मे लगान का अंश उस सीमा तक होता है जिस 'सीमा तक कि उसमे विशिष्टता का अंश होता है। यदि साधन पूर्णत अविशिष्ट है तो उसे लगान प्राप्त नही होगा।

लगान की परिभाषा तथा व्याख्या

लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने स्पष्ट रूप से की है तथा प्रो. बोल्डिंग ने इसका समर्थन किया है। ये दोनो अर्थशास्त्री लगान की व्याख्या मे केवल भूमि को ही सम्मिलित नही करते। **श्रीमती जोन रॉबिन्सन** के शब्दो म—

> "लगान के विचार का सार वह आधिक्य है जो कि उत्पत्ति के साधन की एक इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो कि उस साधन की इकाई को अपने कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।"

> **प्रो. बोल्डिंग** (Prof. Boulding) ने लगान की निम्न परिभाषा दी है—"आर्थिक लगान वह भुगतान है जो कि साम्य की स्थिति मे उद्योग मे किसी उत्पत्ति के साधन की एक इकाई को दिया जाता है और वह उस न्यूनतम राशि से अधिक है जो कि उस साधन को उसी व्यवसाय मे बनाये रखने के लिए आवश्यक है।"[12]

12 "Economic rent may be defined as a unit of a factor of production, in an industry in equilibrium, which is in excess of minimum amount necessary to keep that factor in present occupation." —Prof. Boulding

उपयुक्त दोनो परिभाषाओ से यह स्पष्ट है कि लगान उत्पत्ति के किसी भी साधन को प्राप्त हो सकता है। श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार लगान के उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि साधन की पूर्ति माग की तुलना मे बेलोच हो। दूसरे शब्दो मे, लगान उत्पन होने का कारण पूर्ति की लोचहीनता है।

आधुनिक लगान सिद्धात भी रिकार्डो के लगान की तरह लगान को एक प्रकार का 'आधिक्य' मानता है। लेकिन रिकार्डो का आधिक्य से अभिप्राय पूर्व सीमान्त भूमि एव सीमान्त भूमि की उपज का अन्तर है जबकि श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार 'लगान न्यूनतम पूर्ति मूल्य (minimum supply price) के ऊपर आधिक्य है।' न्यूनतम पूर्ति मूल्य वह मूल्य है जिससे कम पर कोई भी साधन अपनी सेवायें देने के लिए तैयार नहीं होता। दूसरे शब्दो मे, न्यूनतम पूर्ति मूल्य साधन का न्यूनतम पारिश्रमिक होता है, जो कि उस साधन को कार्य म बनाये रखने के लिए देना पडता है। इस न्यूनतम पूर्ति मूल्य से अधिक प्राप्त होने वाली आय को ही लगान कहते हैं। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना कि एक फर्म म किसी एक श्रमिक को मजदूरी ३०० रु प्राप्त होती है, यदि उस श्रमिक को एसे ही कार्य के लिए २५० रु मिल सकते हैं तो उसकी वर्तमान मजदूरी का न्यूनतम पूर्ति मूल्य २५० रु है। यदि वर्तमान फम का मालिक इस श्रमिक को सेवाओ को अपनी फम म लना चाहता है तो उसे कम से कम २५० रु मजदूरी देनी होगी। यदि उस श्रमिक को २५० रु से कम मजदूरी प्राप्त हाती है ता वह श्रमिक वर्तमान फम से नौकरी छोड देगा और दूसरी फर्म म कार्य करने लगेगा, जहा पर उसे २५० रु प्राप्त होते हैं। वर्तमान मे उसे क्योकि ३०० रु प्राप्त हो रहे हैं तथा उसका न्यूनतम पूर्ति मूल्य २५० रु है। इस प्रकार उसे ५० रु का आधिक्य प्राप्त है। अत लगान ५० रु होगा।

उत्पत्ति के साधन के न्यनतम पूर्ति मूल्य को आधुनिक अथशास्त्री हस्तातरण आय (transfer earnings) या अवसर लागत (opportunity cost) भी कहते है। हस्तान्तरण आय या अवसर लागत से अभिप्राय उस मौद्रिक आय से है जो कि उत्पत्ति के साधन को दूसरे सर्वश्रेष्ठ उपयोग से प्राप्त होती है।

प्रो बेनहम (Benham) के शब्दो मे—"द्रव्य की वह मात्रा जो कि कोई एक इकाई सवश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त कर सकती है, उसे कभी कभी हस्तातरण आय कहते हैं।"[13]

---

13 "The amount of money which any particular unit could earn in its best paid alternative use is sometimes called its transfer earnings" —Benham

श्रीमती रॉबिन्सन ने हस्तातरण आय की परिभाषा इस प्रकार दी है—"वह मूल्य जो साधन की एक दी हुई इकाई को किसी उद्योग मे बनाये रखने के लिए आवश्यक है, हस्तातरण आय या हस्तातरण मूल्य कहा जाता है ।"[१४]

किसी भी उत्पत्ति के साधन की आय दो प्रकार की हो सकती है, उसकी वास्तविक आय (या वर्तमान आय) तथा हस्तातरण आय । आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान एक बचत है जो किसी साधन की इकाई को उसकी हस्तातरण आय के ऊपर प्राप्त होती है । दूसरे शब्दो मे, वास्तविक आय एव हस्तानरण आय का अन्तर ही लगान है । सूत्र के रूप मे,

लगान = वास्तविक आय (actual earnings)—हस्तातरण आय (transfer earnings)

उदाहरण के लिए, किसी एक कृषक को एक हेक्टर भूमि पर कपास की खेती करने से ५०० रु की आय प्राप्त होती है, यदि वह किसान उसी भूमि को दूसरे सर्वश्रेष्ठ प्रयोग अर्थात् चावल के उत्पादन म लगा देता है तो उसे ४५० रु की आय प्राप्त होनी है। इस प्रकार ४५० रु उस भूमि खण्ड की हस्तातरण आय है । भूमि के उस एक हेक्टर का लगान ५० रु (५००—४५०=५०) होगा । लगान के सम्बन्ध म महत्वपूर्ण बात यह है कि 'लगान एक बचत है, इसलिये वह ऋणात्मक नही हो सकता ।'

यदि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से भूमि को लें, तो भूमि के वैकल्पिक उपयोग सम्भव नही हैं । वैकल्पिक उपयोग न होने के कारण भूमि की हस्तानरण आय शून्य रहेगी । एसी स्थिति मे भूमि की कुल आय ही लगान बन जाती है । यदि एक उद्योग की दृष्टि से भूमि को लें तो भूमि के अनेक वैकल्पिक उपयोग हो सकते हैं अत एक उद्योग की दृष्टि से भूमि मे हस्तातरण आय पाई जाती है और लगान उत्पन्न होता है ।

जैसा कि पूर्व मे ही कहा जा चुका है कि लगान विशिष्टता का परिणाम है । दूसरे शब्दो मे, लगान तब उत्पन्न होगा जबकि साधन की पूर्ति बेलोचदार (inelastic) हो या साधन की पूर्ति पूर्ण लोचदार से कम (less than perfectly elastic) हो । पूर्ति की लोच के दृष्टिकोण से तीन अवस्थायें सम्भव हैं

(१) साधन की पूर्ति पूर्ण लोचदार हो।

---

14 "The price which is necessary to retain a given unit of a factor in a certain industry may be called its transfer earnings o transfer price" —Mrs Robinson

(२) साधन की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार हो।

(३) साधन की पूर्ति इन दो चरम सीमाओं (extremes) के बीच हो अर्थात लोचदार हो या बेलोचदार।

उपर्युक्त तीन अवस्थाओं को रेखा चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

(१) **साधन की पूर्ति पूर्ण लोचदार हो**—जब साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो तो कोई लगान प्राप्त नहीं होगा। इस स्थिति म वास्तविक आय एवं हस्तातरण आय समान होती है। अत बचत या आधिक्य प्राप्त नहीं होता। साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होने का अर्थ यह है कि एक विशेष मूल्य पर साधन की कितनी भी इकाइयां प्राप्त की जा सकती हैं और यदि मूल्य म थोड़ी सी कमी आती है तो साधन की पूर्ति शून्य हो जाती है।
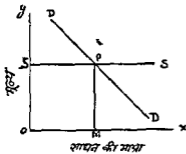
साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होने की स्थिति म साधन की पूर्ति रेखा OX अक्षास के समानान्तर होती है जैसा कि चित्र से स्पष्ट है।

उपर्युक्त चित्र म DD माग रेखा है और SS पूर्ति रेखा जो कि OX अक्षांस के सामानान्तर है क्योंकि साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है अथात साधन पूर्णतया अविशिष्ट है। माग एवं पूर्ति रेखा P बिन्दु पर काटती है। इसम प्रयुक्त साधन की मात्रा OM है। इस चित्र म साधन की कुल आय OMPS (OM×PM =OMPS) है यही हस्तातरण आय भी है। अत कोई बचत प्राप्त नहीं होती अर्थात लगान शून्य रहता है।

(२) **साधन की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार हो**—जिस साधनों की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार है अर्थात् पूर्ण विशिष्ट है उन साधनो की पूर्ति स्थिर रहती है, क्योंकि ऐसे साधन केवल एक ही प्रयोग मे प्रयुक्त किये जाते हैं। चूंकि साधन एक ही प्रयोग म प्रयुक्त किये जा सकते हैं, इसलिये उन साधनों की हस्तातरण आय शून्य होती है। अत पूर्ण बेलोचदार साधन की कुल आय ही लगान है।

साधन की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार होने के कारण पूर्ति रेखा OX अक्षास पर खडी रेखा होती है, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है

उपर्युक्त चित्र मे DD माग रेखा है तथा SM पूर्ति रेखा, जो कि स्थिर है । P बिन्दु पर माग और पूर्ति बराबर है अत साधन का मूल्य PM हुआ । यदि साधन को PM से कम मूल्य प्राप्त होता है तब भी वह साधन दूसरे व्यवसाय मे नही जायेगा । अतः साधन की कुल आय OMPR (OM×PR) हस्तातरण आय शून्य होने के कारण लगान होगी ।
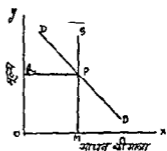
(३) साधन की पूर्ति दो चरम सीमाओ के बीच हो—यदि साधन की पूर्ति न तो पूर्ण लोचदार है और न ही पूर्ण बेलोचदार अर्थात् पूर्ण लोचदार से कम है (अर्थात् साधन आशिक रूप से विशिष्ट और आशिक रूप से अविशिष्ट है) तो साधन की समस्त आय या मूल्य का एक भाग लगान होगा । ऐसे साधन की पूर्ति रेखा बायी ओर से दायी ओर ऊपर की ओर उठी हुई होती है । इस स्थिति को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

उपर्युक्त चित्र मे SS पूर्ति रेखा है जो कि पूर्ण लोचदार से कम है तथा DD माग रेखा है । P साम्य बिन्दु है । अतः साधन की आय या मूल्य PM या OQ है तथा साधन की मात्रा OM । इस स्थिति मे साधन की कुल आय OMPQ है तथा हस्तातरण आय OMPS । इस प्रकार लगान QPS (OMPQ—OMPS) होगा । यही हस्तातरण आय पर आधिक्य है अथवा बचत है । इस चित्र से यह स्पष्ट है कि साधन OS से कम मूल्य लेने को तैयार नही होगा अर्थात् OS मूल्य तक उसकी पूर्ति शून्य होगी । जैसे-जैसे साधन के मूल्य या आय मे वृद्धि होगी, वैसे-वैसे उसकी पूर्ति भी बढती जायेगी ।
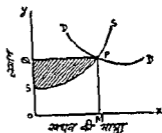
उपर्युक्त विवेचन से लगान के आधुनिक सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार है—

(१) लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नही होता बल्कि उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को प्राप्त हो सकता है जिसकी पूर्ति सीमित है ।

(२) लगान हस्तातरण आय या अवसर लागत पर अधिक है अर्थात् वास्तविक आय म से हस्तातरण आय घटाने के बाद लगान बच रहता है ।

(३) लगान उत्पन्न होने का कारण साधन की विशिष्टता है अर्थात् लगान उत्पन्न होने के लिए साधन की पूर्ति पूर्ण लोचदार से कम होना आवश्यक है।

(४) लगान का आधुनिक एक सामान्य सिद्धात है।

रिकार्डो का लगान सिद्धांत एवं आधुनिक लगान सिद्धांत की तुलना

(Comparison of Ricardian Theory of Rent and Modern Theory of Rent)

रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित लगान सिद्धान्त की अनेक मूल मान्यताओ का स्वीकार करके आधुनिक लगान सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। फिर भी दोनो सिद्धान्तो म मूलभूत अन्तर हैं—

(१) रिकार्डो के अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त होता है। उनके अनुसार लगान भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियो के उपयोग के बदले में दिया जाता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान प्रत्येक साधन मे उत्पन हो सकता है यदि उस साधन की पूर्ति सीमित है। इस प्रकार लगान पर भूमि का एकाधिकार नही है।

(२) रिकार्डो के अनुसार लगान उत्पन होने का कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति मे भिन्नता तथा भूमि की स्थितियो म अन्तर है। रिकार्डो के अनुसार सीमान्त भूमि से श्रेष्ठ भूमिया लगान प्राप्त करती हैं।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार लगान 'विशिष्टता' का परिणाम है अर्थात लगान उत्पन होने का कारण किसी साधन की पूर्ति 'पूर्ण लोचदार से कम' होना है।

(३) रिकार्डो के अनुसार लगान सीमान्त भूमि और पूर्व सीमान्त भूमि की उपज का अन्तर है। इस प्रकार लगान सीमान्त भूमि की लागत की तुलना म मापा जाता है। सीमान्त भूमि लगानरहित भूमि होती है। इस प्रकार लगान एक 'आधिक्य' है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार वास्तविक आय म से हस्तातरण आय या अवसर लागत घटा देने पर लगान प्राप्त होता है। इस प्रकार यहा भी लगान एक 'आधिक्य' है।

(४) रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित नही करता। सीमान्त भूमि लगान-रहित भूमि होती है और बाजार में वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की लागत के

बराबर होता है। अतः लगान मूल्य को प्रभावित नही करता अपितु मूल्य से प्रभावित होता है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार कई दशाओ मे लगान लागत का अश होता है अत लगान मूल्य को प्रभावित करता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. रिकार्डो के लगान सिद्धात की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

२. लगान से क्या अभिप्राय है ? आर्थिक लगान किस प्रकार निर्धारित होता है।

३. लगान के आधुनिक सिद्धान्त का आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

४. रिकार्डो के लगान सिद्धात को समझाइए। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने इस सिद्धात मे क्या सशोधन और परिवर्तन किए हैं।

५ लगान के आधुनिक सिद्धान्त को समझाइए। क्या आधुनिक सिद्धांत रिकार्डो के लगान सिद्धात का एक सुधार है ?

६. "लगान विशिष्टता का परिणाम है" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

७. लगान मूल्य मे सम्मिलित नही होता। रिकार्डो के सिद्धात के आधार पर इस कथन की व्याख्या कीजिए।

८. लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो कि भूमिपति को भूमि की मौलिक और अविनाशी शक्तियो के प्रयोग के बदले दिया जाता है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

९. "अनाज का मूल्य इसलिए ऊचा नही है कि लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए ऊचा है क्योकि उपज का मूल्य ऊचा है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

१०. लगान तभी उत्पन्न होता है जबकि साधन की पूर्ति लोचदार से कम हो। इस कथन की विवेचना कीजिए।

११. 'लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नही होता बल्कि उत्पत्ति के सभी साधनो को प्राप्त होता है; इस कथन को स्पष्ट कीजिए। रिकार्डो के लगान सिद्धात तथा आधुनिक सिद्धात की तुलना कीजिए।

अध्याय १५

★

मजदूरी
[Wages]

★ ★ ★

श्रम उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है। अर्थशास्त्र मे श्रम को मिलने वाले पुरस्कार को मजदूरी कहते हैं। दूसरे शब्दो मे मजदूरी वह भुगतान है जो कि श्रमिक को उसकी सेवाओ के बदले दिया जाता है। मजदूरी की परिभाषा कुछ विद्वानो ने इस प्रकार दी है—

प्रो. बेनहम (Prof Benham) के शब्दो मे—"मजदूरी मुद्रा के रूप मे वह भुगतान है जो कि समझौते के अधीन सेवायोजक द्वारा श्रमिक को उसकी सेवाओ के बदले दिया जाता है।"[1]

प्रो जीड (Prof Gide) के अनुसार –"मजदूरी उस श्रम का मूल्य है जो कि साहसी द्वारा किराये पर लेकर प्रयोग मे लाया जाता है।"[2]

प्रो. टॉसिग (Prof. Taussig) के विचार मे—"मजदूरी उन निश्चित धन के रूप मे भुगतान है जो कि सेवायोजक द्वारा श्रमिक को दिया जाता है।"[3]

---

1 "A wage may be defined as a sum of money paid under contract by an employer to a worker in exchange for services renderd" —Prof. Benham

2. "It (wages) should in a word, be defined as a price of labour hired and employed by an enterpreneur." —Prof. Gide

3 "Wages is the payment of stipulated amounts by an employer" —Prof. Taussig

उपर्युक्त परिभाषाओं मे यद्यपि मजदूरी को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु सभी परिभाषाये मजदूरी को सकुचित रूप मे लेती हैं। ये परिभाषाये मजदूरी की व्याख्या धन के रूप मे ही करती हैं, अत पूर्ण नही है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने मजदूरी शब्द का प्रयोग विस्तृत रूप में किया है, उनके अनुसार —"राष्ट्रीय आय का वह भाग जो श्रमिक को दिया जाता है उसे मजदूरी कहते हैं।" दूसरे शब्दो मे—"श्रम की सेवा के लिये दिया गया मूल्य मजदूरी है।"

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण को समझने के लिए निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है—

(१) अर्थशास्त्र मे 'श्रम' शब्द से अभिप्राय शारीरिक एव मानसिक दोनो प्रकार के श्रम से है। अत मजदूरी दोनो प्रकार के श्रम के लिए दिया गया भुगतान है।

(२) अर्थशास्त्री 'श्रम' को व्यापक अर्थ म लेते हैं जबकि मजदूरी का अर्थ निम्न वर्ग के भुगतान से लेते हैं।

(३) वेतन शब्द का प्रयोग विभिन्न फर्मो पर फैक्ट्रियो के उच्च पदस्थ अधिकारियो के सम्बन्ध मे किया जाता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से वेतन तथा मजदूरी में कोई अन्तर नही है।

(४) वकील, प्राध्यापक या डॉक्टर आदि व्यावसायिक व्यक्तियो का पुरस्कार भी मजदूरी के अन्तर्गत आता है।

(५) छोटे-छोटे व्यापारी तथा हाथ से काम करने वाले व्यक्तियों की सेवाओ का पुरस्कार भी मजदूरी है।

(६) बोनस, रायल्टी, कमीशन इत्यादि को भी आधुनिक अर्थशास्त्री मजदूरी के अन्तर्गत लेते हैं।

इस प्रकार अर्थशास्त्र मे मजदूरी शब्द अत्यन्त व्यापक है।

मजदूरी निर्धारण के सिद्धांत
(Theories of Wage Determination)

राष्ट्रीय आय का वह भाग जो श्रमिको को दिया जाता है, उसे मजदूरी कहते है। राष्ट्रीय आय से श्रमिको को मिलने वाले इस भाग को निर्धारित करने के लिए समय-समय पर अर्थशास्त्रियो ने विभिन्न सिद्धातो का प्रतिपादन किया है। औद्योगिक क्रांति से पूर्व

मजदूरी निर्धारण का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नही था, परन्तु जैसे जैसे नई व्यवस्था से जटिलतायें उत्पन्न होने लगी वैसे वैसे अर्थशास्त्रियो द्वारा मजदूरी निर्धारण के लिए अनेक सिद्धात दिये जाने लगे। यद्यपि आधुनिक सिद्धात के प्रतिपादन के फलस्वरूप प्राचीन सभी सिद्धात असत्य कर दिये गये हैं। फिर भी अध्ययन की पूर्णता के लिए प्राचीन सिद्धातो का अध्ययन आवश्यक है। मजदूरी निर्धारण के प्रमुख सिद्धात निम्नलिखित हैं—

१ मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धात
(The subsistance theory of wages),

२ मजदूरी का जीवन स्तर सिद्धात
(Standard of living theory of wages),

३ मजदूरी कोष सिद्धात
(The wage fund theory)

४ मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धात
(Residual climate theory),

५ मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धात
(The marginal productivity theory of wages),

६ मजदूरी का आधुनिक सिद्धात
(Modern theory of wages)।

१ मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धात (The Subsistance Theory of Wages)

इस सिद्धात का प्रतिपादन १८वी शताब्दी के प्रकृतिवादी (Physiocrats) अर्थशास्त्रियो ने किया। माल्थस के 'जनसख्या के सिद्धात' के प्रकाश मे आने के बाद इस सिद्धात के समर्थको की सख्या म पर्याप्त वृद्धि हुई। जर्मनी के अर्थशास्त्री लोसेलो (Larsalle) ने इस सिद्धात का समर्थन किया तथा प्रो रिकार्डो ने इसका समर्थन और स्पष्टीकरण किया।

मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धात दो मान्यताओं पर आधारित है—

(१) इस नियम के अनुसार खाद्य पदार्थो मे लगातार वृद्धि की जाय, तो कुछ समय पश्चात इसमे कमी होती जाती है, अर्थात् यह नियम 'उत्पत्ति ह्रास नियम' पर आधारित है।

(२) जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि होती रहती है।

इस सिद्धात की मान्यता के अनुसार मजदूरी प्राकृतिक नियम द्वारा निर्धारित होती है।

प्रो रिकार्डो के शब्दो म "श्रम का प्राकृतिक मूल्य वह मूल्य है जो श्रमिक को एक दूसरे के साथ निर्वाह करने के लिए तथा अपनी जाति की बिना वृद्धि अथवा कमी के, स्थिर बनाये रखने के लिये आवश्यक होता है।"[4]

रिकार्डो का विचार था कि मजदूरी खाद्य पदार्थों और अनिवार्य वस्तुओं के रूप मे समान रहती है। इस प्रकार इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी श्रमिको को इतनी दी जानी चाहिये जो जीवन निर्वाह के बराबर हो। दीर्घकाल मे मजदूरी न इससे कम होती है और न इससे अधिक। मजदूरी मे स्थिरता के कारण ही लैसेली (Lassalle) ने इस सिद्धात को "मजदूरी का लोह नियम' (Iron law of wages) कहा है।

इस सिद्धात के अनुसार यदि किसी समय मजदूरी जीवन निर्वाह से अधिक है तो जनसख्या मे वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक मे प्रतियोगिता बढेगी, और मजदूरी गिरकर जीवन निर्वाह के स्तर तक आ जायेगी। यदि मजदूरी जीवन निर्वाह से कम है तो श्रमिको की सख्या मे कमी होगी, परिणामस्वरूप श्रमिको की पूर्ति म कमी होगी और मजदूरी बढकर जीवन निर्वाह तक पहुंच जायेगी। इस प्रकार, इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी जीवन निर्वाह के स्तर के बराबर होती है।

प्रो जीड (Prof Gide) के अनुसार यह सिद्धात बहुत अधिक निराशावादी व आशावादी दोनो दृष्टिकोणो को लिए हुये है। निराशावादी इसलिए क्योकि यह श्रमिक के लिए अधिक सुविधाओ को सम्भावनाओ को अस्वीकार कर देता है। आशावादी इस दृष्टिकोण से कि यह सिद्धात मजदूरी का न्यूनतम स्तर निर्धारित कर देता है जिससे कम श्रमिको को मजदूरी नही दी जा सकती। इसी तथ्य के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने अनेक सिद्धातो का प्रतिपादन किया।

सिद्धात की आलोचना (Criticism) :

मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धात को अनेक अर्थशास्त्रियो द्वारा आलोचना की गई है, इनमे से प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं—

१. यह सिद्धात मांग पक्ष की अपेक्षा करता है। यह सिद्धात मजदूरी निर्धारण

---

4 "The natural price of labour is that price which is necessary to enable the labourers one with another to subsist and prepetuate their race without either increase or diminution"

—Ricardo

की केवल श्रमिकों की पूर्ति की दशाओ के आधार पर ही व्याख्या करता है, जबकि साधन के मूल्य निर्धारण के लिए दोनो पक्षो माग व पूर्ति का विचार करना होता है। श्रमिकों की माग उनकी उत्पादकता पर आधारित होती है अत मजदूरी का सम्बन्ध उत्पादकता से होना आवश्यक है परन्तु यह सिद्धात इस पक्ष की अवहेलना करता है।

२. यह सिद्धात 'जनसख्या सिद्धात' पर आधारित है। अत दोषपूर्ण सिद्धात पर आधारित होने के कारण इस सिद्धात म दोष स्वत ही आ जाते हैं। इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी मे वृद्धि से जनसख्या मे वृद्धि हो जाती है। परन्तु अनुभव इसके विपरीत है मजदूरी मे वृद्धि होने से जीवन स्तर ऊचा उठता है जो कि जन्म दर म कमी कर देता है।

३ यह सिद्धात श्रमिको की कार्यक्षमता पर ध्यान नही देता है। सामान्यत कार्यक्षमता म वृद्धि होने से श्रमिको की उत्पादकता म वृद्धि हो जाती है। जिसके फलस्वरूप मजदूरी म भी वृद्धि होना आवश्यक है।

४ यह सिद्धात निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह सिद्धात मानकर चलता है कि श्रमिको के भविष्य के सुधार करना सम्भव नही है। परन्तु व्यवहार म, श्रमिको के जीवन स्तर म पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

५ यह सिद्धात विभिन्न व्यवसायों, व्यक्तियो तथा क्षेत्रो मे पाई जाने वाली मजदूरी की भिन्नता की व्याख्या नही करता है। यह सिद्धात सबके लिए एक ही मजदूरी की कल्पना करता है।

६ यह सिद्धात मजदूरी निर्धारण म श्रमिक सघो के प्रभाव को स्थान नही देता है।

इस सिद्धात मे अनेक दोष हैं, जिसके कारण अब इस सिद्धात का केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है।

२. मजदूरी का जीवन स्तर सिद्धांत (Standard of Living Theory of Wages)

जीवन निर्वाह सिद्धात की आलोचना के उपरात कुछ अर्थशास्त्रियो ने 'जीवन स्तर सिद्धात' का प्रतिपादन किया। यह सिद्धात जीवन निर्वाह के सिद्धात पर एक सुधार है। इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी श्रमिको के जीवन स्तर द्वारा निर्धारित होती है। जीवन स्तर से अभिप्राय केवल आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति से ही नहीं होता अपितु इसम ., विश्राम आदि की सुविधायें भी सम्मिलित होती हैं जिनका कि उपभोग करने का

श्रमिक अभ्यस्त हो जाता है। इस प्रकार इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी मे स्थिर रहने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। जीवन स्तर मे परिवर्तन होने से मजदूरी मे भी परिवतन हो जाते हैं और इस परिवर्तन से श्रमिक की कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है।

इस सिद्धात के अनुसार यदि श्रमिको को मजदूरी जीवन स्तर से कम दी जाती है तो वस्तु से श्रमिक शादी करने मे असमर्थ होंगे, जिससे उनकी सख्या मे कमी हो जावेगी। श्रमिको की सख्या मे कमी होने से श्रमिको की पूर्ति मे कमी होगी परिणामस्वरूप मजदूरी बढकर जीवन स्तर के बराबर हो जायेगी यदि। मजदूरी जीवन स्तर से अधिक होगी तो श्रमिको की पूर्ति बढ जायेगी और मजदूरी घटकर जीवन स्तर के बराबर हो जायेगी।

सिद्धात की आलोचना (Criticism) .

यद्यपि यह सिद्धात जीवन निर्वाह के सिद्धात की अपेक्षा श्रेष्ठ है फिर भी यह सिद्धान्त अपूर्ण है। अनेक अर्थशास्त्रियो ने इस सिद्धात की आलोचनाये की है

(१) जीवन निर्वाह के सिद्धात के समान ही यह सिद्धात भी केवल पूर्ति पक्ष पर जोर देता है जबकि मजदूरी का निर्धारण केवल जीवन स्तर द्वारा नहीं होता अपितु श्रमिक की उत्पादकता (या माग) भी मजदूरी को प्रभावित करती है।

(२) कुछ आलोचको के अनुसार जीवन स्तर नाम की कोई ऐसी चीज नहीं है जिसका कि *श्रमिक आदी हो जाता है। वास्तव मे जीवन स्तर परिवर्तनशील है जो कि* समय या परिस्थिति के साथ बदलता रहता है।

(३) इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी का निर्धारण जीवन स्तर से होता है। आलोचको के अनुसार यह भी सत्य है कि मजदूरी से भी जीवन स्तर प्रभावित होता है। वास्तव मे दोनो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धात आशिक रूप से ही सत्य है।

(४) आलोचको के अनुसार यह सत्य है कि जीवन स्तर का प्रभाव श्रमिको की माग और पूर्ति पर पडता है परन्तु यह प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पडता है। प्रत्यक्ष रूप से मजदूरी का निर्धारण श्रमियो की माग और पूर्ति के द्वारा ही होता है।

इस प्रकार यह सिद्धात भी अनेक दोषो से युक्त है, अत अर्थशास्त्रियो ने दूसरे सिद्धात का प्रतिपादन किया।

मजदूरी कोष सिद्धात (The Wage Fund Theory)

इस सिद्धात के सम्बन्ध म प्रारम्भ मे अनेक प्राचीन अर्थशास्त्रियो ने अपने विचार दिये हैं, परन्तु जे एस मिल (J S Mill) ने इस व्यवस्थित रूप स प्रस्तुत किया। अत मजदूरी कोष सिद्धात का सम्बन्ध ज एस मिल स ही जोडा ज ता है। मिल क अनुसार श्रमिको का मजदूरी देने के लिए पू जीपतियो द्वारा पू जी का एक भाग अलग रख दिया जाता है। इस अलग रखे हुए भाग को 'मजदूरी कोष (Wage Fund) कहत हैं। मिल के अनुसार 'मजदूरी कोष की मात्रा और जनसख्या के अनुपात पर निर्भर करती है।

> जे एस मिल के शब्दो में—'मजदूरी मुख्यत श्रमिको को माग और पूर्ति पर निमर करती है, अथवा जैसा कि प्राय यह कहा जाता है कि मजदूरी जनसख्या और पू जी के अनुपात पर निमर करती है।'[5]

मजदूरी कोष श्रमिको की माग को प्रभावित करता है। कोष की मात्रा अधिक होने पर श्रमिको की माँग अधिक होगी। तथा कम होने पर श्रमिको की माग कम होगी। मजदूरी कोष का निर्माण पिछली बचतो के द्वारा होता है। यह कोष सामान्यत अपरिवर्तित तथा स्थिर रहता है। मजदूरी कोष के स्थिर रहने के कारण मजदूरी प्रत्यक्षत श्रमिको की सख्या (या पूर्ति) पर निमर करती है। यदि श्रमिको की सख्या म वृद्धि होती है तथा मजदूरी कोष स्थिर रहता है ता मजदूरी घट जायगी। इसके विपरीत यदि श्रमिको की सख्या म कमी होती है और 'कोष' स्थिर रहता है ता मजदूरी बढ जायेगी। इस प्रकार मजदूरी काष मे श्रमिको की सख्या का भाग देन पर सामान्य मजदूरी की दर प्राप्त हो जाती है।

इस सिद्धात के अनुसार मजदूरी की दर म वृद्धि दो ही स्थितियो म सम्भव है—

(a) मजदूरी कोष की वृद्धि की जाय, या

(b) श्रमिको की सख्या मे कमी की जाय।

> ज एस मिल के शब्दो म—"मजदूरी, जो कि सामान्य दर है, मे वृद्धि बिना उस कोष की मात्रा म वृद्धि किए हुए जो कि श्रमिको को किराये पर रखने के लिए निश्चित करदी गई है या किराये पर रखे जाने वाले प्रतियोगियों (श्रमिकों) की

---

5 "Wages depend mainly upon the supply and demand of labour or as it is often expressed, on the proportion between population and capital" —J S Mill

सख्या मे कमी किये हुए नही बढायी जा सकती और न ही उस कोष म बिना कमी किये हुए या बिना श्रमिको की सख्या मे वृद्धि किये हुये मजदूरी को कम किया जा सकता है।"[6]

चू कि मजदूरी कोष पिछली बचतो का परिणाम है और यह समय विशेष मे स्थिर रहता है। इसलिए मजदूरी में वृद्धि करने के लिए केवल एक ही उपाय है कि श्रमिक अपनी सख्या मे कमी कर दें। इस प्रकार यह सिद्धात श्रम सघो द्वारा मजदूरी मे वृद्धि करवाने के लिए किये जाने वाले प्रयत्नो को भी अस्वीकार कर देता है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism) ·

यद्यपि 'मजदूरी कोष सिद्धात' माग तथा पूर्ति दोनो पक्षो के आधार पर मजदूरी निर्धारण की बात करता है फिर भी इसकी अनेक अर्थशास्त्रियो द्वारा आलोचना की गई है। इस सिद्धात की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं—

(१) यह सिद्धात इस बात को स्पष्ट रूप से नही बताता कि 'मजदूरी कोष कहा से आता है और इस कोष की मात्रा का निर्धारण किस प्रकार होता है। यह केवल व्याख्या करता है कि मजदूरी कोष मे श्रमिको की सख्या का भाग देने से मजदूरी की दर ज्ञात हो जाती है।

(२) आलोचको के अनुसार यह सिद्धात सभी श्रमिको को समान मान लेता है अर्थात् श्रमिको की कार्यक्षमता पर कोई ध्यान नही देता। यदि श्रमिको की कार्यक्षमता अधिक है तो उत्पादन मे वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप श्रमिक अधिक मजदूरी प्राप्त कर सकेंगे और मजदूरी कोष की मात्रा बढ जायेगी। इस प्रकार श्रमिको की कार्य क्षमता मे अन्तर होने पर मजदूरी की दर मे भी अन्तर आ जाता है।

(३) मजदूरी कोष सिद्धान्त अवैज्ञानिक और तर्कहीन है क्योकि पहले यह मजदूरी कोष की बात करता है और बाद मे मजदूरी निर्धारण की समस्या पर विचार करता है। जबकि पहले मजदूरी की दर को ज्ञात करना चाहिए बाद मे मजदूरी कोल ज्ञात किया जाना चाहिए।

---

6 "Wages meaning of the course general rate cannot but by an increase of the aggregate funds employed in hiring labour, or a diminution in the number of competitors for hire, not fall, except by a diminution of the funds devoted to paying labour, or by an increase in the number of labourers to be paid

—J S Mill

(४) यह सिद्धान्त मान लेता है कि श्रमिको की मजदूरी मे वृद्धि श्रमिकों की सख्या मे कमी या मजदूरी कोष म वृद्धि के कारण ही सम्भव है, यह अवास्तविक है। आलोचको के अनुसार मजदूरी म वृद्धि पूजीपतियो मे प्रतिस्पर्धा के कारण होती है जबकि यह सिद्धान्त इस तथ्य को नही समझा पाता।

(५) यह सिद्धान्त यह नही समझा पाता कि विभिन्न उद्योगो मे मज्दूरी की दर मे भिन्नता क्यो पाई जाती है।

(६) इस सिद्धान्त की यह मान्यता तर्कसगत नही है कि मजदूरी मे वृद्धि पूजीपतियो के लाभ को कम कर देती है तथा मजदूरी मे कमी लाभ मे वृद्धि कर देती है। आलोचनो के अनुसार श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि तथा उत्पत्ति वृद्धि नियम के क्रियाशील होने के परिणामस्वरूप कुल उत्पादन मे अधिक वृद्धि हो जाती है जिससे कि श्रमिको की मजदूरी तथा पूजीपतियो के लाभ दोनो ही बढ जाते हैं।

(७) इस सिद्धान्त के कथन तथा स्पष्टीकरण मे अन्तर है। यह सिद्धान्त प्रारम्भ मे यह बताता है कि मजदूरी श्रम की माग और पूर्ति से निर्धारित होती है। बाद म बताता है कि श्रम की माग पूजी पर निर्भर करती है, जो कि स्थिर है। अन निष्कर्ष निकलता है कि मजदूरी पूर्ति से ही प्रभावित होनी है। दुमरे शब्दो म, 'मजदूरी कोस' स्थिर रहने के कारण मजदूरी निर्धारण मे सक्रिय भूमिका नही निभाता, वास्तव म श्रमिक की पूर्ति ही मजदूरी निर्धारित करती है।

उपर्युक्त आलोचनाओ से स्पष्ट है कि मजदूरी कोष सिद्धान्त मे अनेक दोष हैं। इन दोषो के कारण ही मिल ने बाद मे इस सिद्धान्त को त्याग दिया।

४ मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त (The Residual Claimant Theory of Wages)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकन अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया है। वाकर ने कुल उत्पादन को चार भागो मे बाटा है—लगान, ब्याज, मजदूरी और लाभ। उद्योग के कुल उत्पादन म से लगान, ब्याज और लाभ निकाल देने के बाद जो शेष रह जाता है उस पर श्रमिक का अधिकार होता है। इस प्रकार वाकर के अनुसार श्रमिक उद्योग के उत्पादन के अवशेष का अधिकारी होता है, इसलिए इसे अवशेष अधिकारी सिद्धान्त कहते हैं।

वाकर के ही शब्दो मे—"कुल उत्पादन म से लगान ब्याज और लाभ घटा देने के बाद जो शेष बचता है, मजदूरी उसी के बराबर होती है।"[7]

वाकर के अनुसार लगान, ब्याज तथा लाभ का भुगतान कुल उत्पादन के आधार पर न किया जाकर कुछ निश्चित नियमो के द्वारा किया जाता है। मजदूरी निर्धारण के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त नही है। कुल उत्पादन मे से लगान, ब्याज और लाभ का भुगतान करने के उपरान्त जो कुछ शेष बचता है वह मजदूर का हिस्सा होता है।

इस प्रकार श्रमिक को बचे हुए भाग का अधिकारी मानकर वाकर मजदूरी को श्रमिक की कार्यक्षमता या उत्पादकता से सम्बन्धित कर देता है। दूसरे शब्दो मे, कार्यक्षमता या उत्पादकता मे परिवर्तन होने पर मजदूरी मे भी परिवर्तन होगे। यदि कार्यक्षमता बढ जाती है तो कुल उत्पादन बढेगा और मजदूरी श्रमिको को अधिक मात्रा म प्राप्त होगी। कार्यक्षमता घटने पर मजदूरी भी घट जायेगी।

मजदूरी का सम्बन्ध कार्यक्षमता से स्थापित कर वाकर निराशावादी दृष्टिकोण से मुक्त हो गया है। यह सिद्धान्त मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार भी है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

यद्यपि यह सिद्धान्त पूर्व के सिद्धान्तो की अपेक्षा श्रेष्ठ है, फिर भी दोषरहित नही है। इसकी प्रमुख आलोचनाय निम्नलिखित है —

(१) यह सिद्धान्त माग पक्ष अर्थात् श्रमिको की उत्पादकता पर ध्यान देता है, पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त एकपक्षीय है।

(२) इस सिद्धान्त के अनुसार लगान, ब्याज तथा लाभ उत्पादन की मात्रा से अलग निश्चित नियमो द्वारा निर्धारित होते है, अर्थात् उत्पादन की मात्रा मे परिवर्तन होने पर भी इन साधनो का हिस्सा स्थिर रहता है, परन्तु अनुभव इससे विपरीत है। उत्पादन की स्थिति मे परिवर्तन होने पर लाभ की मात्रा म परिवर्तन होत रहते हैं।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक उत्पादन अवशेष का अधिकारी होता है जबकि अब सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत है कि लाभ वास्तव मे बचत है और सभी साधनो के मूल्य प्राय स्थिर रहते हैं।

---

7 "Wages are equal to the whole product minus rent, inte—rest and profit" — Walker

(४) इस सिद्धान्त मे मजदूरी पर श्रमिक संघो के पडने वाले प्रभाव की उपेक्षा की गई है।

५ मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Wages)

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त अलग से कोई सिद्धान्त न होकर वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का मजदूरी के क्षेत्र मे प्रयोग मात्र है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रम की सीमान्त उत्पादकता के द्वारा होता है। साम्य की स्थिति मे मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। उत्पादक किसी भी काय मे उस सीमा तक श्रमिको को लगाते हैं जहा पर कि इनसे प्राप्त सीमान्त आय इस पर किये गये व्यय के बराबर हो।

श्रम की सीमान्त उत्पादकता का पता एक इकाई कम या एक इकाई अधिक लगाकर लगाते है, दूसरे शब्दो म, श्रम की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन मे जो वृद्धि होती है वह श्रम की सीमान्त उत्पादकता होती है। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक मिलती है तो उत्पादको को हानि होगी अत वह श्रमिको की माँग कम कर देंगे। यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उत्पादको को लाभ होगा और वे अधिक श्रमिको की माग करेंगे। साम्य की स्थिति में मजदूरी ठीक सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) यह सिद्धान्त केवल श्रमिक की माग (उत्पादकता) पर विचार करता है, पूर्ति पक्ष की अवहेलना करता है।

(२) इस सिद्धान्त के अनुसार श्रम की सभी इकाइया समान होती है, लेकिन व्यवहार मे ऐसा नही पाया जाता।

(३) यह सिद्धांत पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

(४) यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता का आसानी से पता लगाया जा सकता है। परन्तु सयुक्त प्रयत्नो के द्वारा उत्पादन की स्थिति मे या साधन के निश्चित अनुपात के प्रयोग की स्थिति मे सीमान्त उत्पादकता का पता लगाना कठिन है।

(५) यह सिद्धान्त पूर्ण गतिशीलता की मान्यता पर आधारित है। व्यवहार म श्रम मे पूर्ण गतिशीलता नही पाई जाती।

यद्यपि इस सिद्धान्त की काफी आलोचना की गई है, परन्तु यह मजदूरी निर्धारण म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

६. मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त
(Modern Theory of Wages)

आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने मजदूरी निर्धारण के पुराने सभी सिद्धान्तो को अमान्य कर दिया है। उन्होने बताया कि मजदूरी श्रम की सेवाओ का मूल्य है। श्रम का मूल्य भी वस्तु के मूल्य के समान माग और पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार मूल्य निर्धारण का सामान्य सिद्धान्त ही मजदूरी निर्धारण का सिद्धान्त है। परन्तु श्रम की अपनी विशिष्टतायें होती हैं, इस कारण मजदूरी के निर्धारण का अलग से अध्ययन करने की आवश्यकता होती है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार एक उद्योग म मजदरी उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहा पर कि श्रमिको की कुल माँग रेखा तथा कुल पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती है।

मजदूरी निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त का अध्ययन हम दो शीर्षको के अन्तर्गत करेंगे —

(१) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण।

(२) अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण।

(१) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण (Wage Determination under Perfect Competition)

जैसा कि पूर्व मे ही कहा गया है कि मजदूरी का निर्धारण श्रम की माग और पूर्ति के द्वारा होता है। अत पूर्ण प्रतियोगिता मे मजदूरी निर्धारण का अध्ययन करने के लिए माग और पूर्ति रेखा का निर्माण करना आवश्यक है।

श्रम की माग (Demand for Labour),

किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिये उत्पादको द्वारा श्रम की माग की जाती है, अर्थात् श्रम की माग इसलिए की जाती हैं क्योकि श्रम म उत्पादकता है। कोई भी साहसी

या उत्पादक श्रम की माग करते समय श्रम की सीमान्त उत्पादकता के मौद्रिक मूल्य या सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (value of marginal product) को ध्यान मे रखता है। जब उत्पादक द्वारा श्रम की अधिक इकाइयो का प्रयोग किया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील होने के कारण श्रम की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। उद्योग म एक उत्पादक श्रमिको की माग उस सीमा तक करेगा जहा तक कि श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी और सीमान्त उत्पादकता का मूल्य बराबर होता है। कोई भी उत्पादक श्रम की उत्पादकता से अधिक मजदूरी देने के लिए तैयार नही होता, क्योंकि ऐसा करने से उसको हानि होती है। अत श्रम की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य या श्रम की सीमान्त उत्पादकता उत्पादको द्वारा की जाने वाली श्रम की माग की अधिकतम सीमा है।

एक निश्चित समय एव मूल्य पर उत्पादक द्वारा मागी गई श्रम की मात्रा ही श्रम की माग है। श्रम की माग अथवा श्रम की माग की लोच के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं —

(१) श्रम की माग व्युत्पादित माग (derived demand) होती है। अर्थात् श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की माग के आधार पर ही श्रम की माग की जाती है। श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की माग म कमी या वृद्धि हो जाने से श्रमिको की माग म भी कमी या वृद्धि हो जाती है।

(२) श्रम की माग उत्पत्ति के दूसरे साधनों की कीमतो पर भी निर्भर करती है। यदि अन्य सहयोगी साधनों की कीमत अधिक बढ जाती है तो श्रम का प्रयोग अधिक होने लगता है। तथा अन्य साधनो की कीमत घट जाने पर श्रम का प्रयोग कम होता है।

(३) श्रम की मांग उत्पत्ति की तकनीकी दशाओ पर निर्भर करती है। कुछ वस्तुओ के उत्पादन म श्रम तथा अन्य साधनों के मिलने का अनुपात स्थिर रहता है जबकि अन्य वस्तुओ के उत्पादन म यह अनुपात परिवर्तनशील होता है। इस सम्बन्ध के साथ ही माग मे परिवर्तन होते रहते हैं।

श्रम की माग रेखा मजदूरी की विभिन्न दरों पर मागी जाने वाली श्रम की मात्रा को बताती है। साधारणतया उद्योग म माग रेखा बायी से दायी ओर नीचे को
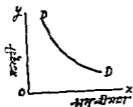
झुकती हुई होती है, जैसा कि चित्र मे दिखाया गया है। यह रेखा बताती है कि यदि मजदूरी की दर अधिक है तो श्रमिको की माग कम होगी, तथा मजदूरी कम होने पर श्रमिको की माग अधिक होगी। इस प्रकार मजदूरी तथा श्रम की माग मे उल्टा सम्बन्ध होता है।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)

श्रम की पूर्ति से अभिप्राय श्रमिको की उस सख्या से है जो कि मजदूरी की भिन्न भिन्न दरो पर कार्य करने के लिए तत्पर रहती है तथा श्रमिको द्वारा किये जाने वाले कार्य के उन घण्टो एव दिनो से है जिन्हे प्रत्येक श्रमिक देने के लिये तैयार रहता है। इस प्रकार श्रम की पूर्ति से अभिप्राय विशेष प्रकार के श्रम के उन दिनो एव घन्टो मे है जिन्हे मजदूरी की विभिन्न दरो पर कार्य करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

साधारणतया मजदूरी और पूर्ति म सीधा सम्बन्ध होता है, अर्थात् मजदूरी म वृद्धि होने पर श्रमिको की पूर्ति बढ जाती है, कमी होने पर पूर्ति घट जाती है। जिस प्रकार उत्पादक का उद्देश्य अपनी वस्तु के लिए कम से कम उस वस्तु की उत्पादन लागत के बराबर मूल्य प्राप्त करने का होता है, उसी प्रकार श्रमिक का उद्देश्य भी अपनी सेवाओ के बदले कम से कम सीमान्त त्याग (marginal sacrifice) के बराबर मजदूरी प्राप्त करने का होता है। दूसरे शब्दो मे, श्रमिक कम से कम इतनी मजदूरी प्राप्त करना चाहता है जिससे कि वह अपना तथा अपने परिवार का जीवनयापन उस स्तर पर कर सके, जिसका कि वह अभ्यस्त हो गया है इस प्रकार मजदूरी की न्यूनतम दर जीवन स्तर या सीमान्त त्याग है, जिससे कम मजदूरी लेने के लिए श्रमिक तैयार नही होगा।

श्रमिको की पूर्ति अनेक अनार्थिक और आर्थिक तत्वो से प्रभावित होती है। इनम से निम्नलिखित तत्व उल्लेखनीय हैं —

श्रम की पूर्ति जनसख्या का आकार, वर्तमान रोजगार की स्थिति, वातावरण के प्रति मोह आदि अनार्थिक कारणो से प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक स्थानान्तरण (occupational shift) श्रम की पूर्ति को प्रभावित करते हैं। यदि किसी उद्योग म मजदूरी बढ जाती है तो अन्य उद्योगो एव व्यवसायो से अधिक सख्या म श्रमिक इस उद्योग की ओर आकर्षित होते हैं। यदि उद्योग विशेष मे मजदूरी घट जाती है तो दूसरे उद्योगो और व्यवसायो मे श्रमिक चले जाते हैं।

श्रमिको की कार्यकुशलता (efficiency) भी पूर्ति को प्रभावित करती है। कार्य-

कुशलता मे वृद्धि उत्पादन म वृद्धि करती है । उत्पादन मे वृद्धि कार्य कुशलता के द्वारा उसी प्रकार होती है जैसे कि श्रमिक की सख्या मे वृद्धि के द्वारा होती है । साधारणतया ऊची मजदूरी श्रमिको के रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि कर कार्य कुशलता मे वृद्धि करती है तथा नीची मजदूरी कार्यकुशलता मे कमी कर देती है । इस प्रकार पूर्ति वक्र सामान्यत नीचे से ऊपर बायी ओर से दायी ओर को उठता हुआ होता है । सक्षेप मे श्रम की पूर्ति और मजदूरी का सम्बन्ध सीधा होता है ।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार कार्य आराम अनुपात (work leisure ratio) श्रम की पूर्ति को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण तत्व है । जब मजदूरी मे वृद्धि होती है तो उसके दो प्रकार के प्रभाव देखने को मिलते हैं—

(१) **प्रतिस्थापन प्रभाव** (Substitution effect)—जब मजदूरी मे वृद्धि होती है जो श्रमिक अधिक कार्य करने के लिए तैयार रहते हैं अर्थात आराम के स्थान पर कार्य का प्रतिस्थापन प्रभाव होता है । यह प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव होता है । प्रतिस्थापन प्रभाव हमेशा धनात्मक होता है ।

(२) **आय प्रभाव** (Income effect)—मजदूरी मे वृद्धि होने से श्रमिको की आय मे वृद्धि हो जाती है । आय बढ जाने के कारण श्रमिक आराम करना चाहते हैं, अर्थात कार्य के स्थान पर आराम का प्रतिस्थापन होता है । आय प्रभाव हमेशा ऋणात्मक (negative) होता है ।

इस प्रकार मजदूरी मे वृद्धि का प्रभाव धनात्मक होना है । दूसरा ऋणात्मक । श्रम की पूर्ति किस प्रकार प्रभावित होती है इसको ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है सामान्यत मजदूरी म वृद्धि श्रमिको की पूर्ति मे वृद्धि कर देती है अर्थात् श्रमिक पहले की अपेक्षा अधिक घण्टे कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं । परन्तु मजदूरी मे एक सीमा के बाद वृद्धि, आय प्रभाव के कारण, श्रमिक को कम काम और अधिक आराम के लिए प्रोत्साहित करती है । इस प्रकार श्रमिको की पूर्ति रेखा धनात्मक प्रभाव के कारण प्रारम्भ मे तो बढती है परन्तु एक सीमा के बाद आय प्रभाव के कारण पूर्ति घट जाती है अर्थात पूर्ति रेखा प्रारम्भ म ऊपर की ओर उठती हुई होती है किन्तु एक सीमा के बाद वह बायें को पीछे की ओर झुक जाती है जैसा कि चित्र मे स्पष्ट किया गया है ।
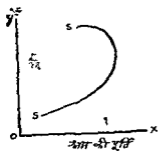
मजदूरी का निर्धारण (Wage Determination)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की व्याख्या करते समय हम यह मानकर चलते है कि श्रम बाजार मे श्रम की पूर्ति एव माग मे एकाधिकारी तत्व का अभाव पाया जाता है। उत्पादकों की सख्या पर्याप्त होती है और वह श्रम की माग स्वतन्त्रता पूर्वक करते है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की सख्या भी अधिक होती है और सब श्रमिक व्यक्तिगत आधार पर (न कि सगठन के अनुसार) अपनी सेवायें उत्पादकों को देते है। इसके अतिरिक्त श्रमिको मे पूर्ण गतिशीलता पाई जाती है।

उपर्युक्त सदर्भ मे, मजदूरी उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहा पर कि श्रम की माग व श्रम की पूर्ति बराबर होते है। दूसरे शब्दो मे, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म एक उद्योग म मजदूरी की दर की अधिकतम सीमा माग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियो के सतुलन से निर्धारित होती है। इस तथ्य को **प्रो टामस** (Prof Thomas) ने निम्न लिखित शब्दो मे व्यक्त किया है—

> 'एक उत्पादक अपने श्रमिकों को आर्थिक मजदूरी देना चाहता है, वह मजदूरी प्रचलित स्थितियो मे श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है, और जिसे कि उद्योग द्वारा दिया जा सकता है। दूसरी ओर श्रमिक सामाजिक मजदूरी बनाये रखना चाहता है यह मजदूरी सामाजिक कारणो से, विशेष रूप से उस वर्ग के जीवन स्तर से निर्धारित होती है जिस वर्ग का श्रमिक सदस्य है।'[8]

प्रो टामस ने मजदूरी की न्यूनतम सीमा जीवन स्तर स्वीकार की है, तथा उच्चतम सीमा श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता। लेकिन **प्रो सिल्वरमन** (*Silverman*) ने जीवन निर्वाह का मजदूरी को न्यूनतम सीमा बताया है। उन्ही के शब्दों मे—

---

8 'The employer seeks to pay his worker an economic wage, i e, a wage that is determined by reference to marginal productivity of the worker under existing conditions and a wage that the industry can afford to pay The worker on the other hand seeks to obtain and maintain a social wage, determined by reference to social consideration, and particularly to the customary standard of living of the group to which he belongs'

—Prof Thomas

"मजदूरी उन दो सीमाओं के बीच म, जिनम जीवन निर्वाह की सीमा न्यूनतम है और श्रमिक की उत्पादकता की सीमा उच्चतम है, श्रमिकों और उत्पादकों की क्रमश सौदा करने की शक्ति के आधार पर बदलती रहती है।[9]

इस प्रकार जहा पर श्रमिकों की माग अर्थात् सीमान्त उत्पादकता तथा श्रमिकों की पूर्ति अर्थात् सीमान्त त्याग बराबर हो जात है वहां पर मजदूरी निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों म, साम्य की स्थिति तब उत्पन्न होती है जबकि श्रमिकों की माग व पूर्ति बराबर होती है। इस स्थिति को संलग्न चित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया गया है।
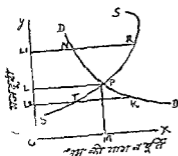
उपर्युक्त चित्र म DD श्रमिकों की माग रेखा व SS श्रमिकों की पूर्ति रेखा है। इस स्थिति म उद्योग म मजदूरी P बिन्दु पर निर्धारित होगी क्योंकि इस बिन्दु पर श्रमिकों की माग व उसकी पूर्ति बराबर हैं अर्थात् P साम्य बिन्दु है। इस प्रकार मजदूरी PM या OL होगी क्योंकि इस मजदूरी की दर पर श्रमिकों की माग तथा पूर्ति OM है। यदि मजदूरी बढ़कर OL^1 हो जाती है, इस स्थिति म श्रमिकों की पूर्ति L^1R है जबकि माग केवल L^1N, अर्थात् NR श्रमिक अतिरिक्त हैं। श्रमिकों की पूर्ति अधिक होने के कारण मजदूरी की दर घट जायेगी और घटकर उस बिन्दु पर पहुंच जायेगी जहा पर कि माग व पूर्ति बराबर हैं। इसी प्रकार यदि मजदूरी की दर OL से घटकर OL_2 हो जाती है, उस स्थिति मे श्रमिकों की पूर्ति L_2T है तथा माग L_2K, अर्थात् माग की अपेक्षा पूर्ति कम है। श्रमिकों की पूर्ति कम होने के कारण मजदूरी की दर म वृद्धि होगी और मजदूरी बढ़कर OL के बराबर हो जायेगी। संक्षेप म मजदूरी उसी बिन्दु पर निर्धारित होगी जहा पर माग व पूर्ति बराबर हैं।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध मे दो बातें ध्यान मे रखनी चाहिये—

(१) साम्य की स्थिति म मजदूरी हमेशा सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। यदि

9 'Wages may vary between the minimum set by the cost of subsistence and the maximum set by the productivity of the worker, according to the bargaining strength of workers and employers respectively' —Prof Silverman

मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से अधिक है तो उत्पादक श्रमिकों की माग कम करेंगे तथा श्रमिक अपनी पूर्ति म वृद्धि के लिए तत्पर रहेंगे। इसके विपरीत यदि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उत्पादक श्रमिकों की माग अधिक करेंगे जबकि श्रमिक अपनी पूर्ति कम करेंगे। इस प्रकार जब तक सीमान्त उत्पादकता के बराबर मजदूरी श्रमिकों को प्राप्त नहीं होगी तब तक साम्य दर स्थापित नहीं हो सकेगी, और श्रमिकों की मांग तथा पूर्ति म परिवर्तन होते रहेंगे।

व्यवहार म यह सम्भव है कि मजदूरी सीमान्त उत्पादकता से कम हो या अधिक परन्तु मजदूरी की प्रवृत्ति हमेशा सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की रहती है।

(२) हम यह मान्यता लेकर चले हैं कि सभी श्रमिकों की कार्यकुशलता समान होती है इसलिये बाजार मे मजदूरी की दर समान होती है। परन्तु व्यवहार म श्रमिकों की कुशलता म अन्तर होता है और मजदूरी की दर भी समान नहीं होती। ऐसी स्थिति म कुशलता की दृष्टि से समान श्रमिकों के विभिन्न वर्ग बन जाते है, और प्रत्येक वर्ग के लिए मजदूरी की दर समान रहती है। इस स्थिति मे भी मजदूरी की दर प्रत्येक वर्ग की माग और पूर्ति से निर्धारित होगी तथा साम्य बिन्दु पर मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है।

एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से मजदूरी का निर्धारण

उद्योग म कुल माग एव पूर्ति के द्वारा निर्धारित मजदूरी को व्यक्तिगत फर्म द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। जिस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म उद्योग द्वारा निर्धारित वस्तु के मूल्य को एक फर्म ग्रहण कर लेती है, ठीक उसी प्रकार उद्योग म निर्धारित मजदूरी को एक फर्म स्वीकार कर लेती है। इसी कारण श्रम की पूर्ति रेखा (मजदूरी रेखा) OX अक्षास के समानान्तर होती है अर्थात पूर्ति रेखा एक पड़ी हुई रेखा होती है।

एक फर्म के लिए श्रमिकों की पूर्ति रेखा पूर्णतया लोचदार होती है, इसका अर्थ यह है कि एक दी हुई मजदूरी पर एक फर्म चाहे जितनी मात्रा म श्रमिक प्राप्त कर सकती है।

उपर्युक्त विवरण से एक बात स्पष्ट होती है कि पूर्ण प्रतियोगिता म मजदूरी की दर समान रहती है इसलिए यदि एक फर्म का उत्पादक अपनी फर्म म श्रम की एक इकाई प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे मजदूरी (सीमान्त मजदूरी या marginal wage)

औसत मजदूरी (average wage) के बराबर देनी होगी। दूसरे शब्दों में, इस स्थिति मे सीमान्त मजदूरी (M W) और औसत मजदूरी (A W) बराबर होती हैं। इसे रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।
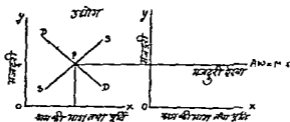
एक व्यक्तिगत फर्म के उत्पादक का उद्देश्य लाभ को अधिकतम प्राप्त करना होता है, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर पर श्रमिकों की उतनी मात्रा प्रयुक्त करेगा जहा पर श्रमिको की सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Product i e, MRP) श्रमिकों की सीमान्त मजदूरी (Marginal Wage) के बराबर हो। इस प्रकार फर्म साम्य की अवस्था मे उस समय होगी जबकि MRP बराबर हो MW के।

यदि सीमान्त आगम उत्पादकता सीमान्त मजदूरी से अधिक (MRP > MW) है तो इसका अभिप्राय है कि श्रम की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल आय मे होने वाली वृद्धि सीमान्त मजदूरी की अपेक्षा अधिक होगी। अत इस स्थिति में फर्म को लाभ होगा। फर्म अतिरिक्त इकाइयो को उस सीमा तक प्रयुक्त करेगी जहा पर कि MRP= MW है।

यदि सीमान्त आगम उत्पादकता सीमान्त मजदूरी से कम (MRP < MW) है तो इसका अर्थ है कि श्रम की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल आय मे होने वाली वृद्धि सीमान्त मजदूरी की अपेक्षा कम होगी, इस प्रकार अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से फर्म का हानि होगी। इस प्रकार फर्म उस सीमा तक श्रमिको की सख्या काम पर लगायगी जहा पर MRP = MW है। यही साम्य की स्थिति है।

अल्पकाल मे एक फर्म को श्रमिको के प्रयोग की दृष्टि से सामान्य लाभ, लाभ या हानि तीनो ही स्थितिया प्राप्त हो सकती हैं। हानि या लाभ की स्थिति का अध्ययन करने के लिए औसत रेखाओं पर ध्यान देना पड़ता है अर्थात् औसत आगम उत्पादकता (Average Revenue Product i e, ARP) और औसत मजदूरी (Average Wage,

1 e, AW) की स्थिति को देखना होता है। अल्पकाल म साम्य उसी बिन्दु पर स्थापित होता है जहा कि MRP=MW है।

(a) यदि श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी (औसत मजदूरी) औसत आगम उत्पादकता (ARP) से अधिक है तो फर्म को हानि होगी।

(b) यदि औसत मजदूरी औसत आगम उत्पादकता से कम है तो फर्म को लाभ प्राप्त होगा।

(c) यदि औसत मजदूरी और औसत आगम उत्पादकता बराबर है तो फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

इस प्रकार, अल्पकाल मे फर्म को तीनो स्थितिया प्राप्त हो सकती हैं। दीर्घकाल मे उद्योग तथा फर्म दोनो ही साम्य की अवस्था म होते हैं तथा फर्म को न तो लाभ प्राप्त होता है और न ही हानि, अर्थात् सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

यदि किसी फर्म म औसत मजदूरी औसत आगम उत्पादकता से अधिक है तो फर्म के द्वारा उत्पादन स्थगित कर दिया जायेगा, फलस्वरूप श्रमिको की माग मे कमी होगी, और मजदूरी मे भी कमी होगी। दूसरी ओर, फर्मो की सख्या मे कमी होने से वस्तु का उत्पादन कम होगा, जिससे वस्तु का मूल्य बढेगा और श्रम की औसत आगम उत्पादकता मे भी वृद्धि होगी। इस प्रकार अन्त मे ARP=AW हो जायेगी।

यदि किसी फर्म मे औसत मजदूरी औसत आगम उत्पादकता से कम है तो फर्म को लाभ प्राप्त होगा। लाभ से आकर्षित होकर नयी फर्मे उद्योग म आकर्षित होगी। इसके परिणामस्वरूप श्रमिको की माग मे वृद्धि होगी, जो कि मजदूरी म वृद्धि करेगी। दूसरी ओर वस्तु के उत्पादन मे वृद्धि होने से वस्तु के मूल्य मे कमी होगी, अत श्रम की औसत आगम उत्पादकता भी घट जायेगी। इसके परिणामस्वरूप दीर्घकाल म लाभ समाप्त हो जायेंगे और साम्य की दशा स्थापित होगी, जहा पर कि फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा।

दीर्घकाल मे साम्य की स्थिति मे औसत मजदूरी और सीमान्त मजदूरी दोनो बराबर होती हैं इसके साथ ही औसत आगम उत्पादकता सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर होती हैं। दूसरे शब्दों मे, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे दीर्घकाल मे एक फर्म दो शर्तों को एक साथ पूरा करती है।

(a) ARP=AW,

(b) MRP=MW,

साम्य बिन्दु पर मजदूरी=AW=MW=ARP=MRP।

इस स्थिति को चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है
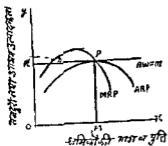
संलग्न चित्र में P बिन्दु साम्य बिन्दु है क्योंकि इस बिन्दु पर MW=MRP है, अत श्रमिकों की OM मात्रा प्रयुक्त की जायेगी, तथा मजदूरी PM होगी। इस स्थिति मे फर्म साम्य की दूसरी शर्त का पूरा करती है, अर्थात् P बिन्दु पर MW=MRP है तथा AW=ARP है। अत मजदूरी की दर PM पर फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण (Wage Determination Under Imperfect Competition)

वास्तविक जीवन म श्रम बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता प्राय नही पाई जाती वरन् अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पाई जाती है, क्योकि व्यवहार म उत्पादकों की संख्या बहुत अधिक नही होती। यदि संख्या अधिक भी है तो वे अपने हितों की पूर्ति के उद्देश्य से आपस मे मिलकर सगठन का निर्माण कर लेते हैं। इस प्रकार मजदूरी को प्रभावपूर्ण ढग से प्रभावित कर लेते है। दूसरी ओर श्रम बाजार मे श्रमिक भी असगठित नही होते। श्रमिक अपने हितो के लिए श्रम सघ बना लेते है और श्रम की पूर्ति पर प्रभावकारी नियन्त्रण स्थापित कर लेते हैं। अत श्रम बाजार म अपूर्ण प्रतियोगिता ही पाई जाती है और मजदूरी की दर दोनो (मालिकों और श्रमिकों) की सौदा करने की शक्ति पर निर्भर करती है।

यदि श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति अधिक है तो मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के पास होगी। यदि उत्पादकों की सौदा करन की शक्ति अधिक है तो मजदूरी जीवन स्तर के पास निर्धारित होगी।

श्रम बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, इसलिए औसत मजदूरी रेखा पूर्ण प्रतियोगिता के समान पड़ी हुई रेखा न होकर नीचे से ऊपर को बायीं ओर से दायीं ओर, ऊपर को उठती हुई होती है तथा सीमान्त मजदूरी रेखा भी नीचे से ऊपर की ओर उठती हुई होती है। सामान्यत सीमान्त मजदूरी रेखा औसत मजदूरी रेखा के ऊपर रहती है।

ऊपर को उठती हुई मजदूरी रेखा यह स्पष्ट करती है कि यदि उत्पादक अधिक संख्या में श्रमिकों को प्रयुक्त करना चाहता है तो उसे मजदूरी अधिक देनी होगी।

अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रमिकों की माग रेखा (सीमान्त आगम उत्पादकता) पूर्ण प्रतियोगिता के समान ही रहती है।

पूर्ण प्रतियोगिता के समान ही अपूर्ण प्रतियोगिता में साम्य बिन्दु वह बिन्दु होता है जहा पर कि सीमान्त मजदूरी (MW) और सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) बराबर हैं। दूसरे शब्दों में उत्पादक श्रमिकों की उतनी ही मात्रा प्रयुक्त करेगा जहा पर कि सीमान्त मजदूरी और सीमान्त आगम उत्पादकता बराबर हैं। इसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

संलग्न चित्र में MRP सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा है तथा ARP औसत आगम उत्पादकता रेखा। AW व MW क्रमश औसत मजदूरी व सीमान्त मजदूरी रेखायें हैं। फर्म का साम्य उस बिन्दु पर स्थापित होगा जहा पर MW = MRP है, अत साम्य बिन्दु P है। उत्पादक श्रमिकों की OM मात्रा प्रयुक्त करेगा जबकि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी KM या OQ है। इस स्थिति में फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, क्योंकि इस स्थिति में मजदूरी KM सीमान्त आगम उत्पादकता PM से कम है तथा औसत आगम उत्पादकता LM से भी कम है इस प्रकार प्रति इकाई लाभ LK (LM − KM = LK) प्राप्त होता है।

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि औसत मजदूरी KM सीमान्त आगम उत्पादकता PM से कम है। इसका अभिप्राय यह है कि जितना श्रमिकों द्वारा उत्पादन किया जाता है, उससे कम मजदूरी दी जा रही है, अत श्रमिकों का शोषण हो रहा है। श्रीमती जोन राबिन्सन के अनुसार जब औसत मजदूरी सीमान्त आगम उत्पादकता से कम होती है तब श्रमिकों का शोषण होता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ मजदूरी के आधुनिक सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

२ जिस प्रकार वस्तु का मूल्य माग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है उसी
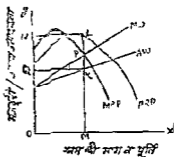
प्रकार श्रम का मूल्य (मजदूरी) भी माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है'; व्याख्या कीजिए ।

३ मजदूरी से क्या अभिप्राय है ? मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धात (Marginal productivity theory) की सविस्तार व्याख्या कीजिए ।

४ पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को समझाइये ।

५ मजदूरी निर्धारण के सबसे मान्य सिद्धात की व्याख्या कीजिए ।

६. "पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी श्रम की सीमान्त एव औसत आगम उत्पादकता के बराबर होती है ।' विवेचना कीजिए ।

७. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को समझाइये ।

अध्याय १६

★

ब्याज
[Interest]

★ ★ ★

ब्याज राष्ट्रीय लाभांश का वह भाग है जो कि पूंजीपति को उसकी पूंजी के उपयोग के बदले दिया जाता है। ब्याज की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से प्रस्तुत की हैं, उनमें से प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं —

मार्शल (Marshall) के अनुसार—"किसी ऋणी द्वारा ऋण के प्रयोग के बदले में दिया गया भुगतान ब्याज है। विस्तृत रूप में, ब्याज से अभिप्राय पूंजी के प्रयोग के बदले प्राप्त होने वाली आय से होता है।"[1]

प्रो. मेयर्स (Prof Meyers) के कथनानुसार—"ब्याज वह कीमत है जो कि ऋण देने योग्य कोष के प्रयोग के बदले दी जाती है।"[2]

प्रो विक्सेल (Prof Wicksell) के शब्दों में—ब्याज वह भुगतान है जो कि ऋणी द्वारा पूंजीपति को पूंजी की उत्पादकता और उसके त्याग के बदले दिया जाता है।"[3]

---

1 "The payment made by a borrower for the use of a loan is called interest And this term is used more broadly to represent the money equivalent of the whole income which is derived from capital" —Marshall

2 "Interest is the price paid for the use of loanable funds" — Prof Meyers

3 "Interest is a payment made by the borrower of the capital by virtue of its productivity as a reward for his abstinence," —Prof. Wicksell

कीन्स (Keynes) के अनुसार—"ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के त्याग का पुरस्कार है।"[४]

विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा दी गई परिभाषाओ मे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है, परन्तु सभी परिभाष यें एक तथ्य को स्वीकार करती है कि ब्याज द्रव्य या पूजी से सम्बन्धित है। इस प्रकार, अर्थशास्त्र मे ब्याज से अर्थ 'पूजी के उपयोग के बदले दिये जाने वाले प्रतिफल से है'। अथशास्त्र की दृष्टि से ब्याज को दो रूपो मे प्रयुक्त किया जाता है—शुद्ध ब्याज और कुल ब्याज।

शुद्ध ब्याज और कुल ब्याज
(Net Interest and Gross Interest)

शुद्ध ब्याज और कुल ब्याज मे अन्तर है। साधारणतया राष्ट्रीय लाभांश का वह भाग जो कि पूजीपति को केवल पूजी के उपयोग के बदले दिया जाता है, शुद्ध ब्याज कहलाता है। साधारण बोलचाल की भाषा मे प्रयुक्त शब्द ब्याज से अभिप्राय कुल ब्याज से होता है। कुल ब्याज वह है जो ऋणी द्वारा पूजीपति को पूजी के उपयोग के बदले दिया जाता है। इसमे शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त जोखिम का प्रतिफल तथा असुविधाओ का प्रतिफल आदि सम्मिलित रहता है। इस प्रकार शुद्ध ब्याज एक प्रकार से कुल ब्याज का अंश है।

प्रो चेपमेन (Prof Chapman) ने शुद्ध ब्याज की परिभषा निम्न शब्दो मे दी है—"शुद्ध ब्याज उधार ली गई पूजी का भुगतान है, जबकि ऋणदाता को किसी प्रकार का जोखिम या असुविधा नही होती। पूजी के उपयोग के बदले किये गये इस भुगतान को शुद्ध ब्याज, विशुद्ध ब्याज या आर्थिक ब्याज कहते हैं।"[५]

प्रो मार्शल ने शुद्ध ब्याज और कुल ब्याज का अ तर बताते हुए लिखा है—"जब हम ब्याज को केवल पूजी का प्रतिफल बताते हैं तो हमारा अभिप्राय शुद्ध ब्याज से होता है, किन्तु सामान्य रूप से इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी सम्मिलित रहते हैं और इसे कुल ब्याज कहते है।"[६]

---

4 "Interest is the reward of parting with liquidity for a specified period" —Keynes

5 "Net interest is a payment of loan of capital, when no risk nor inconvenience and no work is entailed on the lender This payment is termed as pure interest, net interest or economic interest" —Prof Chapman

6 "The interest of which we speak when we say the interest is the earning of capital simply, or the reward of waiting simply, is

कुल ब्याज म शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त अनेक भुगतान सम्मिलित रहते हैं। प्रो टामस (Prof Thomas) ने कुल ब्याज मे शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त निम्नलिखित तीन बातें सम्मिलित की हैं

(१) जोखिम का भुगतान (Payment for risk),

(२) असुविधाओ का प्रतिफल (Remuneration for inconvenience)

(३) व्यवस्था का प्रतिफल (Remuneration for management)।

१ जोखिम का भुगतान

ऋणदाता को ऋण देते समय अनेक जोखिम उठाने पडते है अत उसे इन जोखिमो का भुगतान प्राप्त होता है। प्रो मार्शल ने जोखिम को दो भागो मे बाटा है

(१) व्यक्तिगत जोखिम (Personal risk)—यह जोखिम ऋण लेने वाले व्यक्ति के आचरण से सम्बन्धित है। यदि ऋण लेने वाला व्यक्ति बेईमान हो जाय, उधार ली गई पूँजी को वापिस न करे, तो पूंजीपति को जोखिम उठाना पडता है।

(२) व्यावसायिक जोखिम (Trade risk)—जब ऋणदाता द्वारा व्यक्ति को व्यावसायिक कामो के लिए पूजी उधार दी जाती है तो उसमे यह जोखिम रहता है कि जिस व्यवसाय के लिये पूजी दी गई है, यदि वह व्यवसाय फेल हो जाता है तो पूजी वापिस आने की सम्भावना कम रहती है। इस प्रकार ऋणदाता ब्याज मे इन जोखिमो का प्रतिफल या भुगतान सम्मिलित कर लेता है।

२ असुविधाओं का प्रतिफल

ऋणदाता को ऋण देते समय अनेक असुविधायें उठानी पडती हैं। यह सम्भव है कि ऋणी द्वारा ऋणदाता को ठीक समय पर भुगतान न किया जाय या वह उस समय भुगतान करे जबकि ऋणदाता को पूजी की कोई आवश्यकता ही न हो। इसके अतिरिक्त ऋणदाता अपनी आवश्यकता के समय तत्काल ऋणी से पूजी वापिस प्राप्त नही कर सकता। इस प्रकार ऋणदाता को अनेक असुविधाओ का सामना करना पडता है अत वह ब्याज म इन असुविधाओ का प्रतिफल सम्मिलित कर लेता है।

---

net interest, but what commonly passes by the name of interest includes other elements besides this, and may be called gross interest' —Marshall

३ व्यवस्था का प्रतिफल ·

ऋणदाता जब ऋण प्रदान करता है तो उस उसका हिसाब किताब रखना होता है, तथा ऋण वसूल करने का प्रबन्ध करना होता है। यदि ऋण वसूल नही हो पाते तो उसे न्यायालय आदि की शरण लेनी पडती है अत इस व्यवस्था पर उसका व्यय होता है। ऋणदाता ब्याज मे इस व्यवस्था पर किये जाने वाले खर्च को भी सम्मिलित करता है।

इस प्रकार कुल ब्याज मे शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त जोखिम का भुगतान, असुविधाओ का प्रतिफल और व्यवस्था का प्रतिफल सम्मिलित रहता है। संक्षेप मे

कुल ब्याज = शुद्ध ब्याज + जोखिम का भुगतान + असुविधाओ का प्रतिफल + व्यवस्था का प्रतिफल

शुद्ध ब्याज = कुल ब्याज − (जोखिम का भुगतान + असुविधाओ का प्रतिफल + व्यवस्था का प्रतिफल)
= केवल पूजी के प्रयोग का प्रतिफल।

ब्याज का स्वभाव

प्रो मेहता ने पूजी की प्रकृति की विशेषताओ को बताते हुए लिखा है —

(१) ब्याज पूजी के उपयोग की कीमत है,

(२) ब्याज त्याग अथवा प्रतीक्षा का प्रतिफल है, तथा

(३) ब्याज समय पसन्दगी (time-preference) को व्यक्त करता है।

इस प्रकार ब्याज एक कीमत है जो कि पूजी के उपयोग के बदले प्राप्त होती है, साथ ही-साथ ब्याज एक आय भी है, क्योकि व्यक्ति के द्वारा पूजी का विनियोग आय प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किया जाता है, और यह आय ही ब्याज है।

ब्याज निर्धारण के सिद्धांत
(Theories of Interest)

अर्थशास्त्र मे ब्याज का सिद्धान्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रारम्भ से लेकर अब तक किसी न किसी रूप मे ब्याज के सम्बन्ध मे विद्वानों और अर्थशास्त्रियों द्वारा कुछ न कुछ विचार व्यक्त किये गये हैं, परन्तु इन विचारों मे समय परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन होते रहे हैं।

जैसा कि हेबरलर ने कहा है—"ब्याज का सिद्धान्त अर्थशास्त्र मे एक लम्बे समय से कमजोरी रही है और आज भी ब्याज की व्याख्या और ब्याज की दर के निर्धारण

के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में इतना अधिक मतभेद है जितना अर्थशास्त्र के अन्य किसी भी सिद्धांत के विषय में नहीं है।"[7]

ब्याज निर्धारण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद रहा है इसलिए ब्याज निर्धारण के अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये गये। इन सिद्धांतों का यदि हम वर्गीकरण करना चाहें तो इनको दो भागों में बाँट सकते हैं (अ) वास्तविक सिद्धांत (Real theories), (ब) मौद्रिक सिद्धांत (Monetary theories)। वास्तविक सिद्धांत ब्याज के पुराने सिद्धांत हैं और ये सिद्धांत वास्तविक तत्वों पर अधिक जोर देते हैं। मौद्रिक सिद्धांत अपेक्षाकृत नवीन सिद्धांत हैं, तथा ये मौद्रिक तत्वों पर जोर देते हैं। परन्तु सिद्धांतों का यह वर्गीकरण ऐसा नहीं है कि एक वर्ग का दूसरे वर्ग से कोई सम्बन्ध न हो। अतः इस कठिनाई से बचने के लिए इस सिद्धांतों का वर्गीकरण न करके सभी प्रमुख सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे।

ब्याज निर्धारण के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित है—

(१) ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal productivity theory of interest),

(२) ब्याज का त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धान्त (Abstinence or waiting theory of interest),

(३) ब्याज का एजियो या आस्ट्रियन सिद्धांत (The Agio or the Austrian theory of interest),

(४) फिशर का समय पसन्दगी सिद्धांत (Fisher's theory of time perference),

(५) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धांत (Classical theory of interest),

(६) ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धांत (Liquidity preference theory of interest),

(७) ब्याज का उधार देय कोष सिद्धांत या नव-प्रतिष्ठित सिद्धांत (The loanable fund theory of interest or neo-classical theory),

(८) ब्याज का आधुनिक सिद्धांत (Modern theory of interest)।

---

7 "The theory of interest has for long been a weak spot in the science of economics, and the explanation and determination of the interest rate still gives rise to more disagreement among economists than any other branch of general economic theory"
—Haberler

१ ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Interest)

यह सिद्धात ब्याज निर्धारण का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इसका समर्थन सर्वप्रथम फ्रासीसी अर्थशास्त्री टरगो (Turgot) ने किया। बाद मे इस सिद्धात का समर्थन माल्थस, जे॰ बी. से, कैर (Carey) तथा वॉन थूनेन (Von-Thunen) आदि अर्थशास्त्रियो ने किया। इन समर्थक अर्थशास्त्रियो का यह विचार है कि जिस प्रकार भूमि या श्रम मे उत्पादकता पाई जाती है, उसी प्रकार पूजी मे भी उत्पादकता पाई जाती है, अर्थात् पूजी भी उत्पादन कार्य मे सहायक होती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण पूंजी की उत्पादकता के आधार पर होता है, अर्थात् ब्याज की दर पूजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। ब्याज न तो सीमान्त उत्पादकता से कम होगा और न ही अधिक। यदि ब्याज की दर सीमान्त उत्पादकता से कम है तो अनेक नये व्यक्ति उत्पादन क्षेत्र मे आ जायेंगे और पूजी की माग करना प्रारम्भ कर देंगे, इसके फलस्वरूप ब्याज की दर मे वृद्धि होगी और वह सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। यदि ब्याज की दर सीमान्त उत्पादकता से अधिक है तो उत्पादकों को कठिनाई होगी, और अनेक उत्पादक पूजी की माग कम करेंगे, जिसके फलस्वरूप ब्याज की दर घटकर सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार दीर्घकाल मे ब्याज की दर ठीक सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है, न इससे कम और न ही इससे अधिक।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की एक विशेषता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज कभी भी ऋणात्मक नही हो सकता। ब्याज की दर उसी स्थिति मे ऋणात्मक होगी जबकि पूजी की सीमान्त उत्पादकता ही ऋणात्मक (negative) हो। सामान्य स्थितियो मे चूकि पूजी की सीमान्त उत्पादकता सदैव धनात्मक होती है अत ब्याज भी धनात्मक होता है।

आलोचना (Criticism).

इस सिद्धान्त की अनेक आलोचनायें की गई हैं, जिनमे मे प्रमुख आलोचनायें निम्न-लिखित हैं —

(१) यह सिद्धान्त एकपक्षीय है। यह सिद्धान्त ब्याज की दर का निर्धारण केवल माग पक्ष से ही करता है, पूर्ति पक्ष की पूर्णत उपेक्षा करता है। आलोचकों के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण पूजी की माग व पूर्ति दोनो की शक्तियो द्वारा होता है।

(२) यह सिद्धान्त माग पक्ष की व्याख्या भी पूरी नही करता । यह सिद्धान्त बताता है कि पूजी मे उत्पादकता है, इसलिए ब्याज दिया जाता है। लेकिन पूजी की माग अनुत्पादक एव उपभोग के कार्यों के लिये भी की जाती है, और उस पर उत्पादक कार्यों की माग के समान ही ब्याज दिया जाता है। यह सिद्धान्त अनुत्पादक कार्यों के लिये ली गई पूजी के ब्याज निर्धारण की व्याख्या नही करता ।

(३) आलोचको के अनुसार केवल उत्पादकता ही ब्याज का कारण नही है, वल्कि पूजी की पूर्ति, मौद्रिक परिस्थितिया, ऋणी व ऋणदाता का सम्बन्ध आदि बातें भी ब्याज की दर के निर्धारण को प्रभावित करती है। व्यवहार मे हम देखते है कि विभिन्न व्यवसायो मे पूजी की उत्पादकता भिन्न भिन्न होने पर भी ब्याज की दर लगभग समान रहती है।' जबकि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर उत्पादकता पर निर्भर करती है और उत्पादकता मे परिवर्तन होने से ब्याज की दर म भी परिवर्तन हो जाते हैं। व्यवहार मे इस प्रकार की स्थिति नही पाई जाती ।

(४) पूजी की सीमान्त उत्पादकता का पता लगाना कठिन है, यदि पूजी के प्रयोग द्वारा उत्पादन मे वृद्धि होती है, तो यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि उत्पादन की यह वृद्धि पूजी के फलस्वरूप है या श्रमिको की कुशलता मे वृद्धि के कारण है या सगठन मे परिवर्तन के कारण ।

२ ब्याज का त्याग या प्रतीक्षा का सिद्धान्त (Abstinence or Waiting Theory of Interest)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर (Senior) ने किया, बाद म केयरनोज (Cairnes) तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने इसका समर्थन किया । सीनियर के अनुसार जब व्यक्ति बचत करते है तो उन्हे त्याग करना होता है, क्योकि बचत उसी स्थिति मे सम्भव है जबकि व्यक्ति द्वारा वर्तमान उपयोग मे कमी की जाय, अर्थात् वर्तमान उपयोग का त्याग किया जाय । इस त्याग के कारण ही ब्याज प्राप्त होता है । सीनियर ने लिखा है–

> "त्याग धन का निर्माण नही करता, अपितु धन के निर्माण करने का अधिकार देता है, क्योकि इसमे भी श्रम के समान त्याग तथा कष्ट होता है।"[८]

सीनियर द्वारा प्रतिपादित इस विचार की कटु आलोचना की गई । वाल्टेयर (Voltair) तथा कार्ल मार्क्स (Karl Marx) जैसे विद्वान विचारकों ने बताया कि अमीर

8 "Abstinence does not create wealth, but it constitute a title to wealth, because it involves sacrifice and pain just as labour does" —Senior

व्यक्तियो के पास इतना अधिक धन होता है कि उन्हे बचत करने मे किसी प्रकार का कष्ट या त्याग नही करना पडता, *अत मार्क्स का विचार है कि ब्याज मे त्याग का अंश सम्मिलित नही होता।*

मार्शल (Marshall) ने इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से त्याग के स्थान पर 'प्रतीक्षा' (waiting) शब्द का प्रयोग किया है। उन्होने बताया कि बचत करने के लिये प्रतीक्षा करनी पडती है, क्योकि बचत करने के लिये व्यक्ति को अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति को अर्थात् 'वर्तमान उपयोग' को भविष्य के लिये स्थगित करना पडता है। इस प्रकार वह वर्तमान मे भविष्य के उपयोग के लिये प्रतीक्षा करता है। सामान्यत. अधिकांश व्यक्ति प्रतीक्षा करना नही चाहते हैं, अत उन्हें बचत करने के लिये प्रोत्साहित करने को *कुछ-न-कुछ प्रलोभन आवश्यक है। मार्शल के अनुसार ब्याज ही यह प्रलोभन है अर्थात्* प्रतीक्षा का पुरस्कार है।

आलोचना (Criticism) :

सीनियर एव मार्शल दोनो ही के दृष्टिकोणो की अनेक अर्थशास्त्रियो द्वारा कटु आलोचना की गई है।

(१) *यह सिद्धान्त केवल पूर्ति पक्ष से ही ब्याज निर्धारण की बात करता है, मांग पक्ष की* उपेक्षा करता है। अत यह सिद्धान्त एकपक्षीय (one-sided) है।

(२) इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज का कारण 'त्याग' है लेकिन आलोचको के अनुसार केवल 'त्याग' ही ब्याज का कारण नहीं होता। यदि बचत करने वाला व्यक्ति उस बचत को गतिहीन रखता है तो उसे ब्याज प्राप्त नहीं होगा। अत. बचत के साथ-साथ उसे गतिशीलता भी प्रदान करनी होगी।

(३) यह सिद्धान्त स्वीकार करता है कि 'बचत मे त्याग करना होता है। मार्क्स एव अनेक अर्थशास्त्रियो के अनुसार यह सदैव सत्य नहीं है। क्योकि अमीरों को बचत करने मे कोई त्याग नही करना पडेता, फिर भी उनको ब्याज प्राप्त होता है।

३. ब्याज का एजियो या आस्ट्रियन सिद्धान्त (The Agio or the Austrian Theory of Interest) :

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन १८३४ मे जोन रे (John Rae) द्वारा किया गया। *आस्ट्रियन अर्थशास्त्री बॉह्म बावर्क (Bohm Bowark) ने इसमें सुधार कर अन्तिम रूप* प्रदान किया। इस सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (psychological theory) भी कहते हैं।

मनुष्य स्वभावत. भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक पसन्द करता है क्योंकि उसे वर्तमान म आवश्यकता को पूरा करने से प्रत्यक्ष लाभ या वर्तमान में ही सतुष्टि प्राप्त होती है। अत वर्तमान की वस्तुयें भविष्य की अपेक्षा अधिक महत्व रखती हैं क्योंकि वर्तमान आवश्यकताओ की सतुष्टि से मिलन वाला सुख भविष्य म प्राप्त सतुष्टि की अपेक्षा अधिक होता है। ऐसी स्थिति मे, यदि कोई व्यक्ति पू जी दूसरे व्यक्ति को उधार देता है तो उसे वर्तमान सतुष्टि से प्राप्त होने वाले सुख को त्यागना पड़ता है। अत व्यक्ति उधार तभी देंगे (अर्थात वर्तमान सतुष्टि का त्याग तभी करेंगे) जबकि उनको इस त्याग का पुरस्कार प्राप्त हो। अत बॉम-बॉवर्क के अनुसार ब्याज वर्तमान सतुष्टि के त्याग का पुरस्कार है।

बॉम-बावर्क के इस दृष्टिकोण की कि वर्तमान मे प्राप्त होने वाली सतुष्टि की अपेक्षा भविष्य में प्राप्त होने वाली सतुष्टि कम होती है, कुछ विद्वानो ने आलोचना की। अपने इस विचार की पुष्टि के लिये बॉम बॉवर्क ने निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये :—

(१) मनुष्य की वर्तमान की आवश्यकताएँ भविष्य की आवश्यकताओ की अपेक्षा अधिक तीव्र होती हैं।

(२) भविष्य दूर और अनिश्चित होता है, इस अनिश्चितता के कारण ही व्यक्ति भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को अधिक महत्व प्रदान करता है।

(३) वर्तमान वस्तुओ मे भविष्य की वस्तुओ की अपेक्षा 'तकनीकी श्रेष्ठता' (technical superiority) प्राप्त होती है। क्योंकि भविष्य मे वस्तुओ का सग्रह अधिक मात्रा मे हो जाने के कारण उनसे प्राप्त होने वाली उपयोगिता (उपयोगिता ह्रास नियम के कारण) भी घट जाती है।

इस प्रकार बॉम-बॉवर्क के अनुसार वर्तमान की वस्तुयें भविष्य की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है। और उनमे उपयोगिता भी अधिक होती है।

आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) यह सिद्धान्त एकपक्षीय है क्योंकि यह सिद्धान्त ब्याज की व्याख्या पूर्ति पक्ष से ही करता है, अर्थात् यह सिद्धान्त केवल पू जी की पूर्ति पर ही ध्यान देता है, माग पक्ष की अवहेलना करता है।

(२) आलोचकों के अनुसार बॉम-बॉवर्क की यह मान्यता गलत है कि वर्तमान की वस्तुओ मे भविष्य की वस्तुओ की अपेक्षा तकनीकी श्रेष्ठता पाई जाती है।

(३) कीन्स के अनुसार बचत करने मे कोई त्याग नही करना होता, वरन् बचत व्यक्ति स्वेच्छा से करता है। अत इस दृष्टि से बचत के लिये किसी प्रकार के पुरस्कार की आवश्यकता नहीं है।

४ **फिशर का समय-पसन्दगी सिद्धान्त** (Fisher's Theory of Time Preference)

प्रो फिशर (Fisher) ने **बॉह्म बॉवर्क** के एजियो सिद्धात की मान्यताओ पर ही अपना समय पसन्दगी सिद्धात प्रतिपादित किया है। लेकिन फिशर और बॉम-बॉवर्क के सिद्धात म अन्तर है। बॉम बॉवर्क ने भविष्य की वस्तुओ की अपेक्षा वर्तमान वस्तुओ की तकनीकी श्रेष्ठता को अधिक महत्व दिया है जबकि फिशर इस दृष्टिकोण से सहमत नही है। फिशर के अनुसार समय पसन्दगी के कारण ही ब्याज प्राप्त होता है। व्यक्ति स्वभावत वर्तमान में प्राप्त होने वाली सतुष्टि या सुख की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इसी कारण व्यक्ति वतमान को सतुष्टि को प्राथमिकता प्रदान करते हैं और भविष्य की आवश्यकताओ की सतुष्टि के प्रति अधिक तत्परता नही दिखाते। यदि व्यक्ति बचत करके वतमान के सतोष या सुख का त्याग करते हैं तो उन्हें कुछ पुरस्कार प्राप्त होना चाहिये। इस प्रकार ब्याज समय पसदगी की क्षति पूर्ति है। वर्तमान मे सतुष्टि की मात्रा भविष्य की अपेक्षा जितनी अधिक होगी, ब्याज की दर उतनी ही अधिक होगी। दूसरे शब्दो म, जितना अधिक त्याग होगा उतनी ही ब्याज की दर भी अधिक होगी। फिशर के शब्दो म—

> "ब्याज वह भुगतान है जो व्यक्ति को भविष्य की अपेक्षा वर्तमान समय-पसदगी के त्याग के बदले दिया जाता है। यह समय की कीमत है, इसका कारण तथा इसकी माप सतुष्टि का त्याग है।"[९]

फिशर के अनुसार व्यक्ति अपनी आय को वर्तमान मे ही व्यय करना चाहते है, इसके कई कारण हैं —

(१) **आय की मात्रा**— आय की मात्रा और व्यय करने की आतुरता या तत्परता का गहरा सम्बन्ध है। जितनी आय कम होती है उतना हो व्यक्ति वतमान मे सतुष्टि को भविष्य की अपेक्षा अधिक महत्व देता है। आय कम होने के कारण व्यक्ति का आत्मनियन्त्रण कम रहता है और वह वर्तमान आवश्यकताओ की सतुष्टि को अधिक महत्व देता है। आय अधिक होने पर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को

---

9 "Interest is the paymemt which man requires in order to equate future with present volues It is the price of time, its cause and its measure is impatence to enjoy" —*Fisher*

वर्तमान म आसानी से सतुष्ट कर सकता है, इसलिये वर्तमान मे व्यय की आतुरता कम हो जाती है।

(२) **समयानुसार प्राय का वितरण**—वर्तमान मे व्यय करने की आतुरता समयानुसार आय क वितरण पर भी निभर करती है। यदि व्यक्ति की आय जीवनपयन्त समान रहेगी तो उसकी व्यय की तत्परता प्राय की मात्रा, व्यक्ति के स्वभाव तथा उसके चरित्र से निर्धारित होती है। यदि व्यक्ति की आय भविष्य मे बढती चली जायगी तो व्यक्ति की वर्तमान म व्यय करन की आतुरता अधिक रहती है। तथा यदि व्यक्ति की आय भविष्य मे कम होत जाने की सभावना रहती है तो उसकी वर्तमान व्यय म व्यय करने की तत्परता कम होती है।

(३) **भविष्य मे प्राय की निश्चितता**—फिशर के अनुसार भविष्य म आय की निश्चितता भी समय-पसन्दगी को प्रभावित करती है। यदि व्यक्ति को भविष्य मे आय के सम्बन्ध मे अनिश्चितता है तो वह वर्तमान म कुछ न कुछ बचाकर रखेगा, अर्थात् वतमान म व्यय करने की आतुरता कम होगी। यदि भविष्य की आय म निश्चितता है तो समय पसदगी अधिक होती है।

(४) **व्यक्ति का स्वभाव व चरित्र**—व्यक्ति का स्वभाव व चरित्र भी व्यय करने की आतुरता को प्रभावित करता है। एक दूरदर्शी व्यक्ति की समय-पसदगी कम होगी जबकि अदूरदर्शी एव अपव्ययी व्यक्ति की समय-पसदगी अधिक होगी।

अत फिशर के अनुसार समय-पसदगी पर कई बातो का प्रभाव पडता है।

आलोचना (Criticism)

फिशर द्वारा प्रतिपादित समय पसन्दगी सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं—

(१) यह सिद्धान्त केवल पूर्ति पक्ष पर ही विचार करता है, माग पक्ष की उपेक्षा करता है। अत एकपक्षीय है।

(२) यह सिद्धान्त केवल यह स्वीकार करता है कि पूजी की पूर्ति व्यय करने की आतुरता और समय-पसन्दगी से ही प्रभावित होती है। जबकि व्यवहार म पूजी की पूर्ति पर अनक शक्तियो का प्रभाव पडता है।

(३) यह सिद्धात दो मान्यताओं पर आधारित है प्रथम, फिशर द्रव्य की क्रय शक्ति को स्थिर मानकर चलत है, द्वितीय, बचत करने वाले व्यक्तियो की रुचियो, स्वभाव व परिस्थितियो मे कोई परिवर्तन नहीं होता। ये दोनो मान्यतायें अवास्तविक हैं,

क्योकि वास्तविक जगत मे द्रव्य की क्रय शक्ति मे लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। इसके साथ ही व्यक्ति की रुचि, स्वभाव तथा उससे सम्बन्धित परिस्थितिया भी लगातार बदलती रहती हैं। अत गलत मान्यताओ पर आधारित होने के कारण यह सिद्धान्त वास्तविक नही हो सकता।

५ ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Classical Theory of Interest) ·

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धात को 'ब्याज की माग और पूर्ति' का सिद्धात भी कहते हैं। इस सिद्धात का प्रतिपादन प्रतिष्ठित अथशास्त्रियो ने किया, बाद म मार्शल (Marshall) पीगू (Pigou), वालरस (Walras), टॉसिग (Taussig) तथा नाइट (Knight) आदि अथशास्त्रियो ने इस सिद्धात को सशोधित किया।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर पू जी की माग और पू जी की पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है। ब्याज की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी, जहा पर कि पू जी की माग पू जी की पूर्ति के बराबर होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार पू जी की माग विनियोगो (investments) से सम्बन्धित है, जबकि पू जी की पूर्ति बचतो (savings) से। अत हम यह भी कह सकते है कि पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति मे ब्याज की दर का निर्धारण विनियोग माग सूची (investment demand schedule) तथा बचत अनुसूची (saving schedule) की क्रिया प्रतिक्रिया के द्वारा होता है।

पू जी की माग (Demand for Capital)

पू जी की माग विनियोगो के लिये की जाती है, अर्थात् उत्पादक वर्ग पू जी की माग करता है। पू जी की माँग इसलिये की जाती है क्योकि पू जी मे उत्पादकता है। लेकिन पू जी सभी उपयोगो मे समान रूप से उत्पादक नहीं होती। सामान्यत पू जी की पूर्ति माग की अपेक्षा कम होती है, इसलिये पू जी का उपयोग वहा किया जाता है जहा पर कि प्रतिफल अधिक प्राप्त हो। यदि पू जी की पूर्ति मे वृद्धि हो जाती है तो उसे कम उत्पादक कार्यो मे भी प्रयुक्त किया जा सकता है। उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Return) क्रियाशील होने के कारण जैसे-जैसे पू जी का प्रयोग अधिक मात्रा मे किया जाता है वैसे-वैसे उसकी सीमान्त उत्पादकता (marginal productivity) घटती जाती है। लेकिन पू जी के सम्बन्ध मे एक विशेष बात यह है कि पू जीगत वस्तुओ का प्रयोग एक लम्बे समय तक किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे उत्पादक पू जीगत वस्तु को चालू रखने की लागत निकालकर उसकी अनुमानित वास्तविक लागत को ध्यान मे रखता है।

फर्म की पू जी की सीमान्त उत्पादकता रेखा (माँग रेखा) बाये से दाये नीचे की ओर गिरती हुई होती है। एक फर्म का उत्पादक पू जी का उपयोग उस सीमा तक करता है जहा

पर कि पूंजी की सीमांत उत्पादकता और ब्याज की दर बराबर हो जाती है। यदि ब्याज की दर अधिक है तो उत्पादकों द्वारा पूंजी की मांग कम की जायेगी। यदि बाजार की दर नीची है तो उत्पादक पूंजी की मांग अधिक मात्रा में करेंगे। इस प्रकार पूंजी की मांग और ब्याज की दर में उल्टा सम्बन्ध होता है। इसलिए मांग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है।

पूंजी की पूर्ति (Supply of Demand)

पूंजी की पूर्ति समाज की बचतों पर निर्भर करती है, अर्थात् व्यक्तियों फर्मों तथा सरकार द्वारा की गई बचतों पर पूर्ति निर्भर करती है। समाज के द्वारा की गई बचतों पर आय का स्तर, जीवन स्तर, दूरदर्शिता, परिवार के प्रति स्नेह तथा ब्याज की दर आदि तत्वों का प्रभाव पड़ता है यदि सभी स्थितियों को स्थिर मान लिया जाय तो ब्याज की दर ही पूंजी की पूर्ति को सर्वाधिक प्रभावित करेगी। साधारणतया जब ब्याज की दर ऊंची होती है तब व्यक्तियों द्वारा अधिक बचतें की जाती है तथा ब्याज की दर नीची रहने पर बचतें कम मात्रा में होती हैं। लेकिन समाज में एक वर्ग ऐसा भी होता है जो ब्याज की दर पर ध्यान नहीं देता और अपनी बचत करता रहता है जिससे कि भविष्य में एक निश्चित आय उनको प्राप्त होती रहे। लेकिन इस प्रकार के व्यक्ति बहुत कम होते हैं। सामान्य बचतकर्ता ब्याज की दर से प्रभावित होता है, अर्थात् ऊंची दर पर अधिक बचत और नीची ब्याज दर पर कम बचत करता है। इसीलिए पूंजी की पूर्ति रेखा बायें से दायें नीचे से ऊपर की ओर उठती हुई होती है। पूंजी की पूर्ति रेखा को बचत की पूर्ति रेखा भी कहते हैं।

जब कोई व्यक्ति बचत करता है तो उसे अपने वर्तमान उपभोग को स्थगित करना पड़ता है। इस स्थगन के कारण उसको त्याग करना होता है क्योंकि वर्तमान की आवश्यकतायें भविष्य की अपेक्षा अधिक तीव्र होती हैं। अतः कोई भी व्यक्ति उस समय तक बचत नहीं करेगा जब तक कि उसे 'त्याग' का प्रतिफल अर्थात् ब्याज प्राप्त न हो। प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार पूंजी की पूर्ति की दृष्टि से ब्याज की दर इतनी ऊंची होनी चाहिए कि सीमान्त बचतकर्ता (marginal saver) को बचत के लिए प्रोत्साहित कर सके।

ब्याज का निर्धारण (Determination of Interest)

इस सिद्धांत के अनुसार ब्याज का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां पर कि पूंजी की मांग व पूंजी की पूर्ति बराबर हो जाती हैं। जिस बिन्दु पर मांग और पूर्ति बरा-

वर होती हैं, उसे सन्तुलन बिन्दु कहते हैं। सतुलन बिन्दु पर बचत और विनियोग बराबर होते हैं।

जैसा कि पूर्व मे कहा गया है कि पूजी की माग रेखा पूजी की सीमान्त उत्पादकता को भी व्यक्त करती है। यदि पूजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की दर से कम है तो उत्पादको द्वारा पूजी की माग कम की जाएगी। माग कम हो जाने के कारण ब्याज की दर गिरेगी और ब्याज की दर गिरकर सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जाएगी। इसके विपरीत यदि पूजी की सीमात उत्पादकता ब्याज की दर से अधिक है तो उत्पादको द्वारा पूजी की माग अधिक होगी। अधिक माग होने के कारण ब्याज की दर बढ़ेगी और बढकर सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जाएगी। इस प्रकार सतुलन की स्थिति मे ब्याज की दर हमेशा सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी।

पूजी की पूर्ति रेखा बचतो की पूर्ति को व्यक्त करती है। इस सिद्धात के अनुसार सन्तुलन की स्थिति मे बचत तथा विनियोग मे समानता रहती है। यदि किसी समय विशेष मे बचत तथा विनियोग मे असन्तुलन स्थापित होता है तो ब्याज की दर म परिवर्तन होगा तथा ब्याज की दर का यह परिवर्तन बचत तथा विनियोग मे समानता स्थापित कर देगा। ब्याज की दर के निर्धारण को रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–
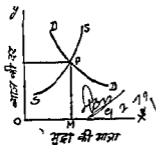
मुद्रा की मात्रा

उपर्युक्त चित्र मे D D पूजी की माग रेखा तथा S S पूजी की पूर्ति रेखा है। माग व पूर्ति रेखा (विनियोग व बचत रेखा) एक दूसरे को P बिन्दु पर काटती हैं। अत P सन्तुलन बिन्दु हुआ तथा PM ब्याज की दर। इसी ब्याज की दर पर बचत और विनियोग मे सन्तुलन स्थापित होगा।

आलोचना (Criticism)

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की अनेक आलोचनायें की गई हैं। इस सिद्धात की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं—

(१) इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग तथा बचत म समानता ब्याज की दर से स्थापित होती है, लेकिन कीन्स (Keynes) इस विचार से सहमत नहीं है। कीन्स के अनुसार बचत और विनियोग मे समानता आय के स्तर स स्थापित होती है।

(२) इस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर और बचत तथा विनियोग म प्रत्यक्ष तथा महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है अर्थात ब्याज की दर म परिवर्तन होने से बचत और

विनियोग मे परिवर्तन हो जाते हैं। परन्तु अनुभव यह सिद्ध करता है कि ब्याज और विनियोग मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता। जैसे एक निर्धन देश मे ब्याज की दर मे वृद्धि होने पर भी बचतो मे अधिक मात्रा मे वृद्धि नही होती, इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि ब्याज की दर अधिक हो, फिर भी विनियोगो के लिये पूजी की माग अधिक मात्रा मे की जाय। अत ब्याज की दर और बचत का सम्बन्ध प्रत्यक्ष नही होता, यह सही है कि ब्याज की दर कुछ सीमा तक बचतो की मात्रा को प्रभावित करती है। आलोचको के अनुसार ब्याज की दर की अपेक्षा आय के स्तर का प्रभाव बचतो पर अधिक पडता है।

(३) इस सिद्धात के अनुसार 'ब्याज त्याग का प्रतिफल है'। कीन्स ने बताया कि यह विचार उचित नही क्योकि यदि एक व्यक्ति को अपने पूर्वजो से पूजी प्राप्त होती है तब भी उसे उस पूजी पर ब्याज प्राप्त होता है जबकि उसको त्याग नही करना पडता। अत कीन्स ने कहा है कि—"ब्याज उपभोग त्यागने का पुरस्कार नही है अपितु तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।"

(४) यह सिद्धात आय पर विनियोग के प्रभाव की उपेक्षा करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि ब्याज की दर ऊची होगी, तो अधिक व्यक्ति बचत करने के लिए प्रोत्साहित होगे, लेकिन यह हमेशा सत्य नही होता। जैसे—यदि ब्याज की दर ऊची होती है तो कम विनियोग होगे, परिणामस्वरूप कम आय होगी और व्यक्तियो को कम रोजगार प्राप्त होगा। इस सबका परिणाम यह होगा कि आय कम होने के कारण बचत भी कम हो जायेगी, भले ही ब्याज की दर ऊची है।

(५) *इस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर अनिर्धारित रह जाती है, क्योकि इस सिद्धात* के अनुसार ब्याज की दर पूजी की माग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। लेकिन पूजी की पूर्ति निर्धारित करना सम्भव नही है इसलिए ब्याज की दर भी निर्धारित नही की जा सकती। इस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर निर्धारित करने के लिए बचतें ज्ञात होनी चाहिये और बचतो का ज्ञान करने के लिए ब्याज की दर *मालूम होनी चाहिये। इस प्रकार इस सिद्धांत के आधार पर किसी निष्कर्ष पर* पहुँचना कठिन है।

(६) कीन्स ने इस सिद्धात की आलोचना की है कि यह सिद्धात ब्याज की दर के निर्धारण मे मुद्रा की मात्रा, बैंक साख, पिछली बचतें आदि के महत्व की उपेक्षा करता है।

(७) यह सिद्धात पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। कीन्स तथा अन्य अर्थशास्त्रियो का यह मत है कि वास्तविक समाज मे साधनो का पूर्ण उपयोग सम्भव नही अर्थात् समाज मे पूर्ण से कम रोजगार पाया जाता है।

६ ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धांत (Liquidity Preference Theory of Interest)

लार्ड कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'General Theory of Employment, Interest and Money' म ब्याज के 'तरलता पसन्दगी सिद्धात' का प्रतिपादन किया। ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धात से भिन्न कीन्स का यह सिद्धात ब्याज का मौद्रिक सिद्धात (monetary theory) है। उस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण मुद्रा की माग एव पूर्ति के द्वारा होता है।

कीन्स के अनुसार – "ब्याज वह कीमत है जो धन को नकद रूप मे रखने की इच्छा तथा प्राप्त नकदी की मात्रा म समानता स्थापित करती है।"[10]

इस प्रकार कीन्स के अनुसार—ब्याज बचत करने का पुरस्कार नहीं है अपितु "ब्याज निश्चित अवधि के लिए तरलता के त्याग का पुरस्कार है।"[11]

कीन्स के अनुसार जिस प्रकार वस्तु का मूल्य वस्तु की माग व पूर्ति से निश्चित होता है उसी प्रकार ब्याज की दर भी मुद्रा की माग व पूर्ति स निर्धारित होती है। मुद्रा की माग तरलता पसन्दगी (liquidity preference) से सम्बन्धित है तथा मुद्रा की पूर्ति समाज मे उपलब्ध मुद्रा की मात्रा से।

मुद्रा की माग या तरलता पसन्दगी (Demand for Money or Liquidity Preference)

कीन्स के अनुसार मुद्रा की माग से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जिसे व्यक्ति अपने पास तरल रूप मे रखना चाहते हैं अर्थात तरलता पसन्दगी ही मुद्रा की माग है।

कोई भी व्यक्ति जिसे आय प्राप्त होती है वह समस्त आय को व्यय नहीं करता। वह निर्णय लेता है कि आय का कितना भाग उपभोग कार्यो मे व्यय किया जाय और कितना भाग बचा कर रखे। बचत को भी कई रूपो म रखा जा सकता है, परन्तु कीन्स का यह विचार है कि मुद्रा सबसे अधिक तरल है अत सामान्यत व्यक्ति अपनी आय के बचे हुए भाग को तरल रूप म ही रखना पसन्द करते हैं। यदि वह व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपने इस बचे हुए भाग को देता है तो उसे तरलता का परित्याग करना पड़ता

10 "It is the price which equilibrates the desire to hold wealth in the form of cash with the available quantity of cash" —Keynes

11 "Interest is the reward for parting with liquidity for a specified period of time" —Keynes

है। अत उस व्यक्ति को तरलता के परित्याग का पुरस्कार प्राप्त होना चाहिये। कीन्स के अनुसार तरलता के परित्याग का पुरस्कार ही ब्याज है।

तरलता पसन्दगी उत्पन्न होने का कारण क्या है ? इस सम्बन्ध मे कीन्स का विचार है कि व्यक्ति समाज मे अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए अपने पास तरल रूप मे मुद्रा रखना चाहता है। तरल रूप मे मुद्रा, कीन्स के अनुसार निम्नलिखित तीन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए रखी जाती है।

१. कार्य-सम्पादन उद्देश्य या लेन-देन उद्देश्य (Transactions motive),
२. आकस्मिक कार्य का उद्देश्य या सतर्कता उद्देश्य (Precautionary motive),
३. सट्टा उद्देश्य (Speculative motive)।

१. कार्य सम्पादन उद्देश्य या लेन-देन का उद्देश्य (Transactions Motive) ·

प्रत्येक व्यक्ति की आय का एक निश्चित समय होता है किन्तु उसे व्यय प्रतिदिन करने पडते है, इसलिए व्यक्ति दिन प्रतिदिन के कार्यों को पूरा करने के उद्देश्य से अपने पास मुद्रा तरल रूप मे रखना चाहता हैं। कार्य सम्पादन के उद्देश्य से वह तरल रूप मे मुद्रा दो दृष्टिकोण से रखता है—

(१) **आय उद्देश्य** (Income motive)—जब एक उपभोक्ता अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यों को पूरा करने के लिए मुद्रा तरल रूप मे रखता है तो उसे आय उद्देश्य कहा जाता है। क्योकि व्यक्ति को आय एक निश्चित समय के बाद ही प्राप्त होती है अत कुछ मुद्रा तरल रूप मे रखना आवश्यक हो जाता है। कार्य सम्पादन हेतु कोई उपभोक्ता मुद्रा की कितनी मात्रा तरल रूप मे रखेगा, यह उपभोक्ता की आय के आकार और उसको प्राप्त होने वाली आय की समयावधि पर निर्भर करता है।

(२) **व्यवसाय उद्देश्य** (Business motive)—जब उत्पादक या साहसी द्वारा कच्चा माल, श्रमिको की मजदूरी, यातायात व्यय या अन्य चालू व्ययो का भुगतान करने के लिए अपने पास मुद्रा तरल रूप मे रखी जाती है तो उसे व्यवसाय उद्देश्य कहते है। व्यवसाय उद्देश्य के लिए तरल रूप मे रखी जाने वाली मुद्रा की मात्रा फर्म के 'क्रय-विक्रय' पर निर्भर करती है।

इस प्रकार आय उद्देश्य और व्यवसाय उद्देश्य दोनो मिलकर कार्य सम्पादन उद्देश्य का निर्माण करते है। कीन्स के अनुसार इस उद्देश्य के लिये तरल रूप मे रखी जाने वाली मुद्रा की मात्रा, प्रत्यक्ष रूप से ब्याज की दर से प्रभावित नही होती।

२. आकस्मिक कार्य का उद्देश्य या सतर्कता उद्देश्य (Precautionary Motive) :

व्यक्ति अपनी आय के एक भाग को तरल रूप मे अप्रत्याशित आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए रखना चाहता है । दूसरे शब्दो मे, बीमारी, बेरोजगारी या अन्य आकस्मिक दुर्घटनाओ का सामना करने के लिए व्यक्ति मुद्रा की कुछ मात्रा तरल रूप मे रखता है। इस उद्देश्य के लिए तरल रूप मे रखी जाने वाली मुद्रा की मात्रा व्यक्तियों के आय के स्तर पर निर्भर करती है। कीन्स के अनुसार इस उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली मुद्रा की मात्रा भी प्रत्यक्ष रूप से ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती ।

३ सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive) :

कुछ व्यक्तियो द्वारा मुद्रा तरल रूप मे इस उद्देश्य से रखी जाती है कि यदि भविष्य मे ब्याज की दरों मे वृद्धि हुई तो वे लाभ प्राप्त कर सकेंगे । सट्टे के उद्देश्य के बारे म कीन्स ने लिखा है—

"भविष्य की घटनाओ के सम्बन्ध मे साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक जानकारी होने के कारण लाभ कमाने के उद्देश्य को ही सट्टा उद्देश्य कहते हैं ।"[12]

कीन्स के अनुसार कार्य सम्पादन उद्देश्य, सतर्कता उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य तीनो मिलकर मुद्रा की कुल माग को निर्धारित करते हैं। यदि नकद मुद्रा की कुल माग को L के द्वारा व्यक्त किया जाय तथा प्रथम दो उद्देश्य कार्य सम्पादन उद्देश्य तथा सतर्कता उद्देश्य की नकद मुद्रा की माग को L_1 के द्वारा व्यक्त किया जाय तथा सट्टा उद्देश्य के लिए नकद मुद्रा की मात्रा को L_2 के द्वारा व्यक्त किया जाय तो हम इस प्रकार लिख सकते हैं

$$L = L_1 + L_2$$

कीन्स के अनुसार L_1 ब्याज की दर से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं होता, यह सामान्यत आय के स्तर पर निर्भर करता है । L_2 ब्याज की दर से प्रभावित होता है अर्थात् सट्टे के उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली नकद मुद्रा की माग ब्याज की दर में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती है। कीन्स ने ब्याज की दर को निर्धारित करने के लिये मुद्रा की इसी माग (L_2) पर अधिक जोर दिया है ।

ब्याज की दर तथा सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माग मे उल्टा सम्बन्ध होता है, इसलिए मुद्रा की माग रेखा (या तरलता पसन्दगी रेखा) बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है ।

---

12 "Speculative motive is a motive of earning profit by knowing better than market what the future will bringforth" —Keynes

मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money) ·

मुद्रा की पूर्ति से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जिसे व्यक्ति अपने पास रखना चाहते हैं। सामान्यत मुद्रा की कुल पूर्ति म बैंक साख पत्र-मुद्रा तथा सिक्के सम्मिलित रहते हैं। मुद्रा की पूर्ति एक प्रवाह (flow) न होकर एक स्टाक (stock) है। मुद्रा की पूर्ति पर मुद्रा प्रधिकारी (या केन्द्रीय बैंक) का नियन्त्रण होता है इसलिए समय विशेष मे मुद्रा की कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है।

समय विशेष मे मुद्रा की कुल पूर्ति (M) स्थिर रहने के कारण पूर्ति रेखा एक खडी रेखा (vertical line होती है।

ब्याज की दर का निर्धारण (Determination of the Rate of Interest)

ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहा कि मुद्रा की माग रेखा (तरलता पसन्दगी रेखा) तथा मुद्रा की पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती हैं। ब्याज निर्धारण के सम्बन्ध मे कीन्स का विचार है कि—

(१) यदि तरलता पसन्दगी (मुद्रा की माग) स्थिर रहती है और मुद्रा की पूर्ति मे वृद्धि हो जाती है तो ब्याज की दर गिर जायेगी, तथा यदि मुद्रा की पूर्ति मे कमी हो जाती है तो ब्याज की दर बढ जायेगी।

(२) यदि मुद्रा की पूर्ति मे कोई परिवर्तन नही होता और तरलता पसन्दगी बढ जाती है तो ब्याज की दर भी बढ जायेगी। यदि तरलता पसन्दगी घट जाती है तो ब्याज की दर भी घट जायेगी।

(३) यदि तरलता पसन्दगी और मुद्रा की पूर्ति दोनो म परिवर्तन होता है तब ब्याज की दर का निर्धारण दोनो शक्तियो मे सन्तुलन द्वारा होगा। यदि मुद्रा की पूर्ति मे वृद्धि तथा तरलता पसन्दगी मे वृद्धि समान अनुपात मे होती है तो ब्याज की दर अप्रभावित रहेगी। यदि मुद्रा की पूर्ति तरलता पसन्दगी के अनुपात से अधिक बढ जाती है तो ब्याज की दर घटेगी तथा यदि मुद्रा की पूर्ति के अनुपात से तरलता पसन्दगी बढ जाती है तो ब्याज की दर बढेगी।

सामान्यत. मुद्रा की पूर्ति ब्याज की दर को प्रभावित करती है परन्तु ब्याज की दर मुद्रा पूर्ति को प्रभावित नही करती।

कीन्स के ब्याज सिद्धात को रेखा चित्र की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है।
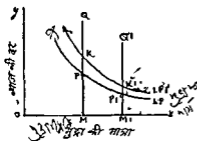
संलग्न चित्र में LP तरलता पसन्दगी रेखा है अर्थात् मुद्रा की माग को व्यक्त करती है। OM मुद्रा की पूर्ति है जिसे QM रेखा द्वारा प्रदर्शित किया है, क्योंकि मुद्रा की कुल मात्रा को हम स्थिर मानकर चले हैं। अर्थात् ब्याज की दर म होने वाले परिवर्तनों का मुद्रा की मात्रा पर कोई प्रभाव नही पडता। इस स्थिति मे जबकि LP मुद्रा की माग रेखा है और QM पूर्ति रेखा, दोनो रेखायें एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटती हैं। अत ब्याज की दर PM होगी। इस ब्याज की दर पर माग व पूर्ति बराबर हैं।

यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है और तरलता पसन्दगी बढकर LP_1 हो जाती है, उस स्थिति म ब्याज की दर PM से बढकर KM हो जायेगी। यदि मुद्रा की पूर्ति बढकर OM^1 हो जाती है और तरलता पसन्दगी LP रहती है अर्थात् कोई परिवर्तन नही होता तो ब्याज की दर घटकर P^1M^1 हो जाती है। यदि तरलता पसन्दगी मे भी परिवर्तन होता है अर्थात् LP से बढकर LP_1 हो जाती है तथा मुद्रा की पूर्ति भी बढकर OM से OM_1 हो जाती है, तब ब्याज की दर K^1M^1 होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि साम्य की स्थिति म तरलता पसन्दगी और मुद्रा की पूर्ति बराबर होती हैं।

> **प्रो कीन्स** के अनुसार— 'साम्य की अवस्था वह है जिसमे ब्याज की दर मुद्रा की मात्रा तथा व्यक्तियो की मुद्रा को तरल रूप मे रखने की इच्छा के बराबर होती है।"[13]

तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचनना (Criticism of the Liquidity Preference Theory)

कीन्स का सिद्धात यद्यपि पूर्व के सिद्धानो की अपेक्षा श्रेष्ठ है फिर भी यह दोष-रहित नहीं है। विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने अपने अपने दृष्टिकोण से इस सिद्धात की आलोचना की है।

---

13 "At the equilibrium position, the rate of interest will be just as *the level necessary to equate the quantity of money in existence* with the aggregate amount wanted by the people to hold"

— Keynes

प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) प्रो हेन्सन (Prof Hanson) के अनुसार—'कीन्स के सिद्धात म वही आलोचना लागू होती है जो कि कीन्स ने प्रतिष्ठित सिद्धात के सम्बन्ध मे की थी।"[१४]

हेन्सन के अनुसार सिद्धात म भी ब्याज की दर अनिर्धारित रहती है, क्योकि इस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण तरलता पसन्दगी और मुद्रा की पूर्ति से होता है। परन्तु तरलता पसन्दगी आय के स्तर से प्रभावित होती है और आय का स्तर ब्याज की दर पर निर्भर करता है। क्योकि ब्याज की दर का प्रभाव विनियोगो पर पडता है और विनियोगो के परिवर्तन आय के स्तर म परिवर्तन ला देते है अत ब्याज की दर का पता लगाने के लिए आय के स्तर को जानना होगा तथा आय के स्तर का पता लगाने के लिए ब्याज की दर का पता होना चाहिए। इस प्रकार कीन्स का सिद्धात भी ब्याज की दर को ठीक तरह से निर्धारित नही कर पाता।

(२) **प्रो हेनरी हेजलिट** (Henry Hazlitt) के अनुसार कीन्स ब्याज के निर्धारण म केवल मौद्रिक तत्वो पर ही अधिक जोर देता है और उत्पादकता तथा समय पसन्दगी जैसे वास्तविक तत्वो की उपेक्षा करता है। अत यह सिद्धात पूर्ण नही है जैसा कि **प्रो. विकसैल** (Prof Wicksell) ने कहा है कि—"उस समय तक कोई सिद्धान्त पूर्ण नही हो सकता जब तक कि उसमे दोनो तत्वो, मौद्रिक और वास्तविक का समावेश न हो।"

(३) कीन्स का सिद्धात पूजी की उत्पादकता को महत्व प्रदान नही करता। बेनहम (Benham) के अनुसार पूजी की माग पर पूजी की सीमान्त उत्पादकता का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। क्योकि पूजी की माग केवल इस उद्देश्य के लिए नही की जाती कि उसे तरल रूप म रखा जाय बल्कि इसलिए भी की जाती है कि पूजी का विनियोग कर वस्तु का उत्पादन किया जाय।

(४) कीन्स ने तरलता के परित्याग को ब्याज का आधार माना है लेकिन जेकब विनर (Jacob Viner) के अनुसार बिना बचत के तरलता का परित्याग नही किया जा सकता। अर्थात् पहले बचत करनी होती है उसके बाद ही तरलता का त्याग सम्भव है। अत कीन्स द्वारा बचत की उपेक्षा करना गलत है।

---

14 "Keynes's criticism of the classical theory applies equally to his own theory" — Prof Hanson

(५) कीन्स का सिद्धात सकुचित है क्योकि यह सिद्धात तरलता पसन्दगी को केवल तीन उद्देश्यो से ही सम्बन्धित करता है, जबकि ब्याज की दर पर प्रभाव उत्पादकता, बचत और उपयोग की प्रवृति का भी प्रभाव पडता है।

यह सिद्धांत तरलता पसन्दगी अर्थात् माग का अधिक महत्व प्रदान करता है तथा मुद्रा की पूर्ति का यह समय विशेष म मौद्रिक अधिकारी द्वारा नियन्त्रित मान लेता है। इस प्रकार यह सिद्धात दोनो पक्षो—माग व पूर्ति—को समान महत्व प्रदान नहीं करता।

(६) यह सिद्धात अल्पकाल म ब्याज निर्धारण की व्याख्या करता है। दीघकाल म ब्याज की दर क्या होगी इसकी व्याख्या नही करता।

(७) कीन्स का सिद्धात व्यावहारिक तत्वो के विपरीत है। कीन्स के सिद्धात के अनुसार मन्दी की स्थिति म ब्याज की दर अधिक ऊची होनी चाहिए क्योकि उस समय व्यक्तियो की तरलता पसन्दगी अधिक होती है तथा तेजी की स्थिति म ब्याज की दर नीची होनी चाहिए क्योकि तरलता पसन्दगी कम होती है। लेकिन व्यवहार म हम देखते हैं कि मन्दी की स्थिति मे ब्याज की दर नीची होती है तथा तेजी की स्थिति म ब्याज की दर ऊची। इस प्रकार यह सिद्धात वास्तविक स्थिति की व्याख्या करने म असमथ है।

७ **ब्याज का उधार देय कोष सिद्धात या ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धात** (Loan able Fund Theory of Interest or Neo-classical Theory of Interest)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सवप्रथम स्वीडन के अथशास्त्री विकसैल (Wicksell) ने किया। बाद मे ओह्लिन (Ohlin), गुन्नार मिडल (Gunnar Myrdol), हेन्सन (Hanson) तथा लिण्डल (Lindahl) आदि स्वीडन के अथशास्त्रियो न इसम सुधार किया। इग्लैंड के अथशास्त्री रॉबटसन (Robertson) ने भी इस सिद्धात के विकास म सहयोग दिया है।

यह सिद्धान्त ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त का सुधरा हुआ रूप है, इसलिए इसे नव प्रतिष्ठित सिद्धात कहते हैं। इस सिद्धान्त म ब्याज के निर्धारण के लिये मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनो ही प्रकार के तत्वो को सम्मिलित किया गया है, जबकि प्रतिष्ठित सिद्धात केवल वास्तविक तत्वो (अमौद्रिक तत्वो) से सम्बन्धित है और कीन्स का केवल मौद्रिक तत्वो से।

उधार-देय कोष से अभिप्राय उस मुद्रा से होना है जिसकी मुद्रा बाजार म माग और पूर्ति होती है अर्थात् ऋण लेने वाल व्यक्तियो और सस्थाओ द्वारा मुद्रा बाजार म जितनी मुद्रा की माग की जाती है तथा ऋण देने वाले व्यक्तियो तथा सस्थाओ द्वारा मुद्रा बाजार म जितनी मुद्रा प्रस्तुत की जाती है, वह उधार-देय कोष कही जाती है।[15]

प्रो. हेन्सन (Hanson) के अनुसार—"उधार-देय कोष विश्लेषण के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उधार-देय कोष की माग सूची एव पूर्ति सूची के सन्तुलन द्वारा होता है।"[16]

दूसरे शब्दो मे, ब्याज का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ कि उधार देय कोषा की माग एव पूर्ति दोनो बराबर होती हैं। उधार-देय कोष सिद्धान्त के दोनो पक्ष—माग और पूर्ति—प्रतिष्ठित सिद्धान्त की तुलना म अधिक विस्तृत हैं।

उधार-देय कोषो की माँग (Demand of Loanable Funds)

मुद्रा की माग उत्पादक तथा उपयोग दोनो ही कार्यों के लिये की जाती है। उधार-देय कोष सिद्धान्त इन दोनो को माग मे सम्मिलित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उधार-देय कोष की माग के चार स्त्रोत हैं—(१) उत्पादक तथा व्यापारियो द्वारा माग, (२) उपभोताओ द्वारा माग, (३) सरकार द्वारा माग, तथा (४) सचय करने के लिए माग।

(१) उत्पादक तथा व्यापारियो द्वारा माग—उधार-देय कोषो की उत्पादको तथा व्यापारियो द्वारा बडे पैमाने पर माग की जाती है। उत्पादक तथा व्यापारी पूजीगत वस्तुओ को क्रय करने के लिए मुद्रा की माग करते है। क्योकि उत्पादक तथा व्यापारी पूजीगत वस्तुओ के लिये मुद्रा की माग करत हैं इसलिए इन कोषो की माग पूजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। सामान्यत जब ब्याज की दर कम होती है उस समय उत्पादक तथा व्यापारियो द्वारा उधार देय कोषो की माग अधिक होती है तथा ब्याज की दर अधिक होने पर माग कम की जाती है। इस प्रकार ब्याज की दर और उत्पादक तथा व्यापारियो द्वारा की जाने वाली पूजी की माग मे उल्टा सम्बन्ध होता है।

---

15 ओहलिन ने उधार-देय कोष के स्थान पर साख शब्द का प्रयोग किया है तथा हेबरलर (Haberler) ने विनियोजन योग्य कोष (investible funds) शब्द का।

16 "According to loanable funds analysis the rate of interest is determined by the intersection of the demand schedule for loanable funds with the supply schedule" —Hanson

(२) **उपभोक्ताओं द्वारा माग**—उपभोक्ताओं द्वारा उधार-देय कोषों की माग उस समय की जाती है जबकि वे अपनी आय और साधनों से अधिक उपयोग की वस्तुओं पर व्यय करना चाहते हैं। उपभोक्ता प्राय उधार देय कोषो की माग टिकाऊ वस्तुओं का क्रय करने के लिये करते हैं, जैसे—स्कूटर, टेलीविजन, रेडियो आदि। उपभोक्ताओं की माग ब्याज की दर से काफी प्रभावित होती है। यदि ब्याज की दर अधिक है तो माग कम होती है तथा नीची ब्याज की दर पर माग अधिक होती है।

(३) **सरकार द्वारा माग**—सरकार द्वारा भी उधार देय कोषो की माग की जाती है। सरकार द्वारा माग सकटकालीन परिस्थितियो मे तथा विकास कार्यक्रमों के लिए अधिक की जाती है। सामान्यत ऊची ब्याज की दर पर सरकार उधार-देय कोष की माग कम करती है तथा नीची ब्याज की दर पर अधिक। परन्तु सकटकाल मे सरकार की माग पर ब्याज का कोई प्रभाव नही पडता।

(४) **सचय करने के लिए माग**—उधार-देय कोषो की माग उन व्यक्तियों के द्वारा भी की जाती है जो कि मुद्रा को तरल रूप म रखना चाहते हैं। यदि ब्याज की दर कम है तो कोष की माग अधिक होगी तथा ऊची ब्याज की दर पर माग कम होगी।

इस प्रकार

उधार-देय कोष की कुल माग = उत्पादक तथा व्यापारी + उपभोक्ता + सरकार + सचय के लिये की जाने वाली माग

Total demand for loanable funds = Demand by producers & businessmen + consumers + Government + Hoarders

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उधार-देय कोषो की माग तथा ब्याज की दर म उल्टा सम्बन्ध होता है। अत उधार-देय कोषों की कुल माग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है।

उधार-देय कोषों की पूर्ति (Supply of Loanable Funds)

उधार-देय कोष की पूर्ति के निम्नलिखित स्त्रोत हैं :—

(१) **बचतें (Savings)**—उधार देय कोष की पूर्ति का एक प्रमुख स्त्रोत बचतें हैं। बचतें व्यक्तियों द्वारा तथा व्यावसायिक फर्मों द्वारा की जाती हैं।

व्यक्ति अपनी आय का कुछ भाग बचाकर रखता है। रॉबटसन के अनुसार व्यक्तियो द्वारा बचत वर्तमान आय म से नही की जाती बल्कि 'प्रयोग योग्य आय' से बचत की जाती है, क्योकि व्यक्ति द्वारा वर्तमान म किये गये प्रयत्न या कार्य का प्रतिफल वर्तमान म ही प्राप्त नही होता बल्कि भविष्य म प्राप्त होता है। सामान्यत ऊची ब्याज की दर पर अधिक बचत होती है और नीची ब्याज की दर पर कम।

व्यावसायिक फर्मो द्वारा भी बचते की जाती हैं, लेकिन इन फर्मो द्वारा की जाने वाली बचते प्राय अपने ही विनियोग कार्यो के लिये होती हैं। इसलिए उनकी बाजार में माग व पूर्ति नही होती। अत फर्मो द्वारा की गई बचते पूर्ति को प्रभावित नही करती।

(२) **बैंक साख** (Bank credit)—उधार देय कोषो की पूर्ति सरकार द्वारा नोट छापकर या बैंको द्वारा साख का निर्माण करके की जाती है।

(३) **पिछली बचतो का विसग्रह** (Dishoarding for past savings)—जब व्यक्तियो द्वारा भूतकाल मे की गई बचतो का विसचय किया जाता है तो उधार-देय कोषो की पूर्ति म वृद्धि हो जाती है। सामान्यत जब ब्याज की दर ऊची होती है तब व्यक्तियो द्वारा विसचय अधिक मात्रा मे किया जाता है।

(४) **अविनियोग** (Disinvestment)—जब फर्मे या व्यावसायिक सस्थायें 'घिसावट कोष' तथा अन्य कोष मे रखी जाने वाली राशि को बाजार म प्रस्तुत कर देती है तब उधार देय कोषो की पूर्ति मे वृद्धि हो जाती है।

इस प्रकार

उधार-देय कोषो की कुल पूर्ति = बचत + बैंक साख + विसग्रह + अविनियोग

(Total Supply of Loanable Funds = Savings + Bank credit + Dishoarding + Disinvestment)

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि उधार-देय कोषो की पूर्ति और ब्याज की दर का सम्बन्ध सीधा होता है। अत उधार-देय कोष की कुल पूर्ति रेखा बायें से दाये ऊपर की ओर चढ़ती हुई होती हैं।

ब्याज की दर का निर्धारण (Determination of the Rate of Interest) :

इस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहा पर उधार-देय कोषो की कुल माग और कुल पूर्ति बराबर होती है। यदि उधार देय कोषो की

माग और पूर्ति मे असन्तुलन स्थापित हो जाता है तो ब्याज की दर म भी परिवर्तन होगा, और ब्याज की दर का यह परिवर्तन उधार-देय कोषो की माग और पूर्ति म सन्तुलन स्थापित कर देगा । इसे निम्न चित्र के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।
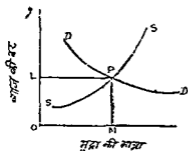
सलग्न चित्र म DD उधार-देय कोषो की कुल माग रेखा है तथा SS पूर्ति रेखा । P बिन्दु पर माग और पूर्ति बराबर हैं अत PM ब्याज की दर है और OM कुल माग और कुल पूर्ति की मात्रा ।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Theory)

उधार देय कोष सिद्धात ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धात पर एक सुधार है क्योकि इसमे माग पक्ष मे व्यापारियो तथा उत्पादको द्वारा की जाने वाली माग के अतिरिक्त उपभोक्ताओ, सरकार और सचय के लिये की जाने वाली माग को भी सम्मिलित किया गया है । पूर्ति पक्ष मे बचतो के अतिरिक्त विसचय, अविनियोग और बैंक साख को सम्मिलित किया गया है । इस प्रकार यह सिद्धात मौद्रिक और वास्तविक दोनो तत्वो को सम्मिलित करता है । फिर भी यह सिद्धान्त दोषरहित नही है, इस सिद्धात की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) आलोचको के अनुसार यह सिद्धात बचतो पर ब्याज दर के पडने वाले प्रभाव की अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या करता है । व्यवहार मे ब्याज की दर बचतो को इतना अधिक प्रभावित नही करती । जैसे अमीर व्यक्ति स्वत ही बचत करेंगे, चाहे ब्याज की दर शून्य हो क्योकि उनकी आय इतनी अधिक होती है कि वे समस्त आय को व्यय नही कर पाते । इसी प्रकार मध्यम वर्ग के व्यक्ति भी आकस्मिक कार्यों की पूर्ति हेतु बचत करते है तथा गरीब व्यक्ति ब्याज की दर ऊ ची होने पर भी बचत करने की स्थिति म नही होते । इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि बचतों पर ब्याज की दर का प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडता है, जैसा कि यह सिद्धात मानता है ।

(२) प्रतिष्ठित सिद्धात के समान यह सिद्धात भी आय पर विनियोग के पडने वाले प्रभाव की उपेक्षा करता है । इस सिद्धात के अनुसार जब ब्याज की दर अधिक होती है

तव व्यक्तियों के द्वारा अधिक बचतें की जाती हैं, परन्तु यह बात व्यवहार में सही प्रतीत नहीं होती। क्योंकि जब ब्याज की दर अधिक होती है तो विनियोग कम होता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों को कम रोजगार प्राप्त होता है तथा आय भी कम हो जाती है जो कि बचतों को कम कर देती है। इस प्रकार ऊंची ब्याज की दर पर बचत कम होती है।

(३) यह सिद्धांत आय के स्तर को स्थिर मानता है, जो कि गलत है। व्यवहार में, जब विनियोग में परिवर्तन होते हैं, तो आय के स्तर में भी परिवर्तन आ जाते हैं।

(४) प्रतिष्ठित सिद्धांत के समान यह सिद्धांत भी ब्याज की दर को अनिर्धारणीय (indeterminate) मानता है। इस सिद्धांत के अनुसार ब्याज की दर उधार-देय कोषों की माग और पूर्ति से निर्धारित होती है। उधार-देय कोषों की पूर्ति में बचत एक महत्वपूर्ण स्थान है। बचतों को ज्ञात करने के लिये ब्याज की दर मालुम होनी चाहिए। इस प्रकार ब्याज की दर को निर्धारित करने के लिए बचत मालुम होनी चाहिए और बचत को ज्ञात करने के लिए ब्याज की दर मालुम होनी चाहिए, अतः यह सिद्धान्त स्वयं ही एक कुचक्र में फस जाता है, जिससे ब्याज की दर का निर्धारण नहीं हो पाता।

(५) इस सिद्धांत में वास्तविक व मौद्रिक दोनों तत्वों को मिलाने का प्रयास किया गया है। लेकिन आलोचकों के अनुसार बचत और विनियोग जैसे वास्तविक तत्वों और बैंक साख तथा तरलता पसन्दगी जैसे मौद्रिक तत्वों का समयोजन करना अनुपयुक्त है।

ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Interest)

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इनमें से कोई भी सिद्धान्त ब्याज निर्धारण की सतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता। आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स (Hicks) तथा लनर (Learner) ने प्रतिष्ठित सिद्धांत और कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त के महत्वपूर्ण तत्वों को मिलाकर एक नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जिसे ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त कहते हैं।

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त में वास्तविक तत्वों—बचत तथा विनियोग—को महत्व प्रदान किया गया था, जबकि कीन्स ने केवल मौद्रिक तत्वों—तरलता पसन्दगी और मुद्रा की पूर्ति—को ही प्राथमिकता दी। इस प्रकार दोनों ही सिद्धान्त ब्याज के निर्धारण की

सही व्याख्या प्रस्तुत करने मे असमर्थ रहे। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने वास्तविक व मौद्रिक दोनो ही तत्वो को महत्व प्रदान किया और उनका समन्वय कर नया सिद्धान्त दिया। यद्यपि उधार-देय कोष सिद्धान्त मे भी वास्तविक और मौद्रिक तत्वो का समन्वय किया गया है लेकिन उनका प्रयत्न अधिक सफलता प्राप्त नही कर सका। इस प्रकार आधुनिक सिद्धान्त कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त और प्रतिष्ठित सिद्धान्त का सम्मिलित रूप है।

आधुनिक सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर निर्धारित करने के चार निर्धारण तत्व है—बचत, विनियोग, तरलता पसन्दगी तथा मुद्रा की मात्रा। इनके अतिरिक्त आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने एक और तत्व 'आय' को भी सम्मिलित किया। आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार प्रतिष्ठित सिद्धान्त का यह विचार कि ब्याज की दर बचत और विनियोग मे साम्य स्थापित करती है, तर्कसगत है। इसी प्रकार कीन्स का विचार कि ब्याज की दर तरलता पसन्दगी और मुद्रा की मात्रा से साम्य स्थापित करती है, उचित है। यदि इन चार तत्वो मे आय तत्व को और सम्मिलित कर लिया जाय तो ब्याज निर्धारण का एक सतोषजनक सिद्धान्त प्राप्त हो जाता है।

इस सिद्धात के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहा पर बचत और विनियोग रेखा तथा तरलता पसन्दगी और मुद्रा की पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती है। इस बिन्दु पर (अर्थात् साम्य की स्थिति मे) चारो तत्वो—बचत, विनियोग, तरलता पसन्दगी तथा मुद्रा की मात्रा बराबर होता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ शुद्ध ब्याज तथा कुल ब्याज मे क्या अन्तर है ? शुद्ध ब्याज किस प्रकार निर्धारित होती है ?

२ "ब्याज प्रतीक्षा का प्रतिफल है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

३. ब्याज के एजियो या आस्ट्रियन सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

४. "ब्याज पूंजी-बचतो की पूर्ति एव पूजी विनियोगो के बीच समानता स्थापित करता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

५ ब्याज के माग व पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

६ ब्याज के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

७ उधार-देय कोष सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

८ "उधार-देय कोष सिद्धान्त ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर एक सुधार है।" व्याख्या कीजिए।

९ कीन्स के तरलता पसन्दगी सिद्धान्त और उधार देय कोष सिद्धान्त के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

१०. आधुनिक सिद्धान्त ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त और तरलता पसन्दगी सिद्धान्त का सम्मिलित रूप है।" क्या आप इससे सहमत हैं ?

११. "ब्याज शुद्ध प्रतीक्षा का पुरस्कार है। यह एक निश्चित समय में पूंजी के प्रयोग की कीमत है और इसलिए ब्याज की दर पूंजी की माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।" स्पष्ट कीजिए।

अध्याय १७

★

लाभ

[Profit]

★ ★ ★

राष्ट्रीय आय का वह भाग जो साहसी को उत्पादन कार्य मे जोखिम उठाने के प्रतिफल के रूप मे दिया जाता है उसे लाभ कहते हैं। लेकिन लाभ शब्द को अनेक अर्थों मे प्रयुक्त किया गया है इसलिये उलझन मे पड जाने का भय रहता है, जैसा कि **प्रो नाइट** (Prof Knight) ने लिखा है —

"लाभ को छाडकर अर्थशास्त्र म शायद ही और कोई शब्द हो जिसके इतने अधिक अर्थ हो।"

लाभ के अर्थ को समझने के लिए हम कुछ अर्थशास्त्रियो द्वारा दी गई परिभाषाओ का लेते है।

प्रो जे के मेहता के अनुसार—"इस गतिशील विश्व म मानव के उत्पादन कार्यों मे अनिश्चितता तत्व एक चौथे प्रकार का त्याग उत्पन्न करता है। यह त्याग जोखिम उठाना अथवा अनिश्चितता वहन करना है, जिसको लाभ द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।"[1]

एच एम क्रूम (H M Croome) के शब्दों में—"लाभ उन खतरो का पुरस्कार है जिनका बीमा नही हुआ है।"[2]

---

1 "The element of uncertainty introduces a fourth category of sacrifices in the productive activities of men in this dynamic world This category is risk taking or uncertainty bearing It is remunerated by profit." —J K Mehta

2 "Profit is the reward for uninsured risks" —H. M Croome

प्रो लेफ्टविच (Prof Leftwich) के अनुसार—"आर्थिक लाभ फर्म की कुल उत्पादन लागतो के ऊपर कुल प्राप्तियों का शुद्ध अवशेष या अतिरेक है।"[3]

प्रो हेनरी ग्रेसन (Prof Henry Grayson) के अनुसार—"लाभ नवप्रवर्तन के लिए पुरस्कार है, जोखिम और अनिश्चितता स्वीकार करने का पुरस्कार है तथा बाजार के ढाचे की अपूर्णताओ का परिणाम है। स्पष्ट है कोई एक दशा या तीनो दशाओ का कोई भी मिश्रण आर्थिक लाभ को जन्म दे सकता है।"[4]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि लाभ के सम्बन्ध म अर्थशास्त्रियो के विचारो मे भिन्नता है। लाभ को सही रूप मे समझने के लिए कुल लाभ व शुद्ध लाभ का अध्ययन आवश्यक है।

कुल लाभ एव शुद्ध लाभ (Gross Profit and Net Profit)

साधारणत जब लाभ शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसका अभिप्राय कुल लाभ से होता है। कुल लाभ एक आधिक्य है जो कि साहसी को कुल आय मे से कुल व्यय घटा देने के बाद प्राप्त होता है। आधुनिक अर्थशास्त्री कुल व्यय के अन्तर्गत केवल उन्ही साधनो पर किये गये व्यय को सम्मिलित करते है जिनको कि साहसी क्रय करता है। दूसरे शब्दो मे, कुल आय मे से स्पष्ट लागत घटा देने के बाद जो बचता है वह कुल लाभ है। कुल लाभ मे निम्नलिखित मदें सम्मिलित रहती हैं—

(१) **अस्पष्ट लागत-अर्थात् साहसी द्वारा स्वय के लगाए गए साधनो का पुरस्कार**—जब साहसी द्वारा अपने ही व्यवसाय मे अपनी पूजी लगाई जाती है या स्वय की भूमि पर उत्पादन कार्य करता है या स्वय ही प्रबन्ध कार्य करता है, ऐसी दशा मे उसको अपनी पूजी पर प्राप्त होने वाला ब्याज, भूमि का लगान और प्रबन्धक के रूप म मिलने वाला वेतन कुल लाभ मे सम्मिलित होगा। क्योंकि यदि साहसी इन

---

3 "Economic profit is a pure surplus or excess of total receipts over all costs of production incurred by the firm"
—Prof Leftwich

4 "Profit may be considered as a reward for making innovations, a reward for accepting risks and uncertainties, and a result of imperfections in the market structure Evidently, any one or any combination of the three conditions can give rise to econom c profits'
— Prof Henry Grayson

साधनो को दूसरे उत्पादक को देता है तो उसको इन साधनो का पुरस्कार प्राप्त होता है।

(२) **मशीन आदि का घिसावट व्यय**—उत्पादन कार्य मे मशीन, यत्र आदि पूंजीगत वस्तुओ का प्रयोग करने से उनमे घिसावट होती है और कुछ समय बाद वे उत्पादन कार्य के योग्य नही रह पाती। ऐसी स्थिति म साहसी कुल लाभ म से एक भाग अलग से रख देता है जिससे कि नयी मशीनें, यत्र आदि क्रय किय जा सकें। कुल लाभ में घिसावट व्यय तथा बीमा व्यय आदि सम्मिलित रहते है।

(३) **एकाधिकारी लाभ**—कभी-कभी बाजार मे किसी वस्तु के उत्पादक को एकाधिकार प्राप्त हो जाता है, अर्थात् एक उत्पादक बाजार मे वस्तु की पूर्ति पर नियत्रण रखता है। ऐसी स्थिति मे वह उपभोक्ताओ को ऊँचे मूल्य पर वस्तु बेचता है जिससे उसे अधिक लाभ प्राप्त होता है। यह लाभ कुल लाभ म सम्मिलित रहता है।

(४) **आकस्मिक लाभ** (Windfall or chance gain) कभी-कभी युद्ध के कारण या अन्य परिस्थितियो के कारण वस्तुओ के मूल्यो मे काफी वृद्धि हो जाती है जिसके कारण साहसी को काफी लाभ प्राप्त होता है। यह लाभ भी कुल लाभ म सम्मिलित रहता है।

(२) **शुद्ध लाभ**—उपर्युक्त सभी मदो को कुल लाभ मे से घटाने के बाद जो शेष बचता है वही शुद्ध लाभ है। अर्थशास्त्रियो के अनुसार शुद्ध लाभ साहसी द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित कार्यों का प्रतिफल है।

(a) **समन्वय करना**—साहसी ही उत्पादन के कार्य का सगठन तथा साधनो का समन्वय करता है। साहसी ही उत्पादन की योजना बनाता है और उसे नियन्त्रित करता है।

(b) **जोखिम उठाना**—पूंजीवादी व्यवस्था म साहसी को काफी अधिक जोखिम उठानी पड़ती है। साहसी लागत और आय के बारे म अनुमान लगाता है। यह अनुमान गलत निकलते हैं तो उसे हानि प्राप्त हो सकती है।

(c) **नवप्रवर्तन का पुरस्कार**—साहसी द्वारा उत्पादन पद्धतियो म नये नये प्रयोग किये जाते है तथा नयी नयी वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है, जिसके कारण लाभ प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शुद्ध लाभ कुल लाभ का ही एक अग है। शुद्ध लाभ एव कुल लाभ को सक्षेप मे हम कह सकते हैं —

(१) कुल लाभ = कुल आय — कुल स्पष्ट लागतें
= स्पष्ट लागतों का प्रतिफल + घिसावट का व्यय + एकाधिकारी लाभ + आकस्मिक लाभ + शुद्ध लाभ

(२) शुद्ध लाभ = कुल आय — (स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें)
= कुल लाभ — अस्पष्ट लागतें
= कुल लाभ — (स्पष्ट लागतें + घिसावट व्यय + एकाधिकारी लाभ + आकस्मिक लाभ)

उपर्युक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि लाभ की एक उचित एवं सर्वमान्य परिभाषा देना काफी कठिन है। लाभ की प्रकृति अन्य साधनों से भिन्न है अत अन्य साधनों से प्राप्त होने वाली आय से कुछ भिन्नता रखता है।

(१) लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है अर्थात् साहसी को हानि भी प्राप्त हो सकती है जबकि अन्य साधनों को हानि प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं होती।

(२) लाभ म अनिश्चिततायें रहती हैं तथा उतार चढाव (fluctuation) अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक होते हैं। तेजी या मन्दी की स्थिति म मजदूरी, लगान या ब्याज म होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षा लाभ म परिवतन अधिक होते हैं।

(३) लाभ अन्य साधनों की आय की तरह किसी समझौते पर आधारित नहीं होते जिनको कि पहले से ही निर्धारित कर लिया गया हो। लाभ अनिश्चित बचा हुआ भाग है जो कि भूमि, श्रम व पूंजी के समझौते के आधार पर निश्चित आय प्रदान करने के बाद बचता है।

लाभ के सिद्धान्त
(Theories of Profit)

लाभ निर्धारण के सिद्धान्त के सम्बन्ध म अर्थशास्त्रियों म प्रारम्भ से ही मतभेद रहे हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अपने दृष्टिकोणों के आधार पर लाभ सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इन विभिन्न सिद्धान्तों म विचारों की भिन्नताओं के साथ साथ अपूर्णतायें भी है। लाभ का ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है जिसे सर्वमान्यता प्राप्त हो। लाभ निर्धारण के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

१ लाभ का लगान सिद्धान्त (Rent theory of profit),
२ लाभ का मजदूरी सिद्धान्त (Wage theory of profit),
३ लाभ का जोखिम सिद्धान्त (Risk theory of profit),

४ लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त (Uncertainty bearing theory of profit),

५ लाभ का गतिशील सिद्धान्त (Dynamic theory of profit),

६ लाभ का नव प्रवर्तन सिद्धान्त (Innovation theory of profit),

७ लाभ का समाजवादी सिद्धान्त (Socialist theory of profit),

८ लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal productivity theory of profit),

१ लाभ का लगान सिद्धान्त (Rent Theory of Profit)

लाभ के लगान सिद्धान्त का पूर्ण विकास वाकर (Walker) ने किया। इस सिद्धान्त के पूर्व ब्रिटिश अर्थशास्त्री जे एस मिल और सीनियर ने इस प्रकार के विचार प्रस्तुत किये थे। वाकर के अनुसार 'लाभ योग्यता का लगान है'। जिस प्रकार भूमि की विभिन्न श्रेणियों की उपजाऊ शक्ति में भिन्नता पाई जाती है, उसी तरह वाकर ने बताया कि साहसियों की योग्यता में भी अन्तर होता है। जो साहसी अधिक योग्य होता है वह कम योग्य साहसी की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करता है।

प्रो वाकर के शब्दों में—"जिस प्रकार लगानरहित भूमि होती है जिसकी उपज केवल लागत को ही पूरा करती है, उसी प्रकार एक साहसी या लाभरहित फर्म होती है जिससे प्राप्त आय केवल उत्पादन लागत को पूरा करती है, और जिस प्रकार लगान वह आधिक्य है जो लगानरहित भूमि के ऊपर प्राप्त होता है, तथा मूल्य में सम्मिलित नहीं होता उसी प्रकार लाभ भी आधिक्य है जो कि सीमान्त फर्म के ऊपर प्राप्त होता है।"[५]

इस प्रकार वाकर का सिद्धात रिकार्डो के लगान सिद्धात पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार साहसियों की योग्यता में अन्तर होता है, और सीमान्त साहसी को लाभ प्राप्त नहीं होता जबकि श्रेष्ठ साहसियों को उनकी योग्यता के अनुसार लाभ प्राप्त होता है।

---

5 "Just as there is a no rent land whose produce just covers the price, so there is a no profit firm or entrepreneur whose income just covers the cost of production, and just as rent of a price of land is surplus above the no rent land and does not enter into price, as profit of a firm is surplus above the no profit firm" —Walker

वाकर के अनुसार लाभ एक बचत है अत वह लगान के समान वस्तु के मूल्य को प्रभावित नही करता बल्कि स्वय मूल्य से प्रभावित होता है। यदि वस्तु का मूल्य अधिक है तो लाभ भी अधिक प्राप्त होगा यदि मूल्य कम है तो लाभ भी घट जायेगा।

लाभ और लगान म एक अन्तर है। लगान एक स्थायी आय है अत अल्पकाल और दीर्घकाल दोनो म ही लगान रहता है। लाभ दीर्घकाल म शून्य रहता है क्योकि दीर्घकाल म साहसियो को पूर्ति म वृद्धि की जा सकती है। साहसियो की पूर्ति मे वृद्धि होन स उत्पादन बढेगा परिणामस्वरूप मूल्य कम होगा और लाभ भी कम हो जायेंगे। यह लाभ उस सीमा तक कम होते जायग जब तक कि वे शून्य तक नही पहुच जाते। अत पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल म केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा। अपूर्ण प्रतियोगिता म साहसी लाभ प्राप्त कर सकते है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

वाकर के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाय निम्नलिखित है —

(१) यह सिद्धान्त लाभ और लगान म समानता स्थापित करता है जो कि गलत है। क्योकि लगान हमेशा धनात्मक होता है या शून्य होता है वह ऋणात्मक नही होता जबकि लाभ ऋणात्मक भी होता है।

(२) यह सिद्धान्त लाभ निर्धारण म जोखिम और अनिश्चितता जैसे महत्वपूर्ण तत्वो का महत्व प्रदान नही करता। आलोचको के अनुसार लगान योग्यता का लगान नही है बल्कि जोखिम और अनिश्चितताओ का प्रतिफल है।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ साहसी की योग्यता के कारण उत्पन्न होता है जबकि आलोचको के अनुसार लाभ पर योग्यता के अतिरिक्त अन्य तत्वो का भी प्रभाव पडता है जैसे एकाधिकार या साहसी की अनुकूल परिस्थितियो के कारण भी लाभ उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त लाभ के सभी कारणो की व्याख्या नही करता है।

(४) लगान स्थिर व गतिशील दोनो ही अवस्थाओ मे पाया जाता है जबकि लाभ केवल गतिशील अवस्था म ही सम्भव है, क्योकि लाभ उत्पन्न होने का कारण जोखिम और अनिश्चितता है।

(५) इस सिद्धान्त की यह मान्यता ठीक नही है कि लाभ लागत म सम्मिलित नही रहता। आलोचको के अनुसार सामान्य लाभ लागत का अग है और लाभ म सम्मिलित रहता है।

(६) आलोचकों के अनुसार यह सम्भव है कि व्यवहार में लगानरहित भूमि मिल जाय, परन्तु लाभरहित साहसी का पाया जाना सम्भव नहीं है। यदि साहसी को दीर्घकाल में लाभ प्राप्त नहीं होता तो वह उस व्यवसाय को छोड़कर दूसरे व्यवसाय में चला जायेगा।

लाभ का मजदूरी सिद्धान्त (Wage Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो टॉसिग (Prof Taussig) ने किया तथा इसका समर्थन डेवनपोर्ट (Davenport) द्वारा किया गया है। प्रो टॉसिग के अनुसार लाभ एक प्रकार की मजदूरी है जो कि साहसी को उसके द्वारा प्रदत्त निरन्तर सेवाओं के बदले दिया जाता है।

> प्रो टॉसिग के शब्दों में—"लाभ केवल संयोग से ही प्राप्त नहीं होता बल्कि यह विशेष प्रकार की योग्यता के प्रयोग का परिणाम है, एक प्रकार का मानसिक श्रम है जो कि वकीलों और न्यायाधीशों के श्रम से अधिक भिन्न नहीं होता।"[६]

इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ और मजदूरी में समानता है। इन दोनों में केवल यह अन्तर है कि श्रमिक को शारीरिक श्रम के बदले मजदूरी प्राप्त होती है जबकि लाभ साहसी को मानसिक श्रम के बदले प्राप्त होता है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त की यह विशेषता है कि यह लाभ के औचित्य (justification) और स्वभाव पर प्रकाश डालता है, फिर भी इस सिद्धान्त में अनेक दोष हैं इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) यह सिद्धान्त लाभ और मजदूरी के अन्तरों पर ध्यान नहीं देता, जैसे—

(अ) साहसी का मुख्य कार्य जोखिमों और अनिश्चितताओं को वहन करना होता है जबकि मजदूरी या निश्चित वेतन प्राप्त करने वाले किसी भी व्यक्ति को किसी भी अनिश्चितता या जोखिम का साहसी के समान सामना नहीं करना पड़ता।

---

6 "Profits are not due to mere chance, they are the outcame of the exercise of special ability, a sort of mental labour not much different from the labour of lawyers and judges"

– *Prof Taussig*

(ब) साहसी के लाभ म सयोग (chance) और अवसरो (opportunities) का अधिक महत्व होता है जबकि श्रमिक केवल अपने परिश्रम से ही मजदूरी म वृद्धि कर सकता है।

(२) यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाता कि सयुक्त पूजी कम्पनी म भागीदारो (shareholder's) को लाभ क्यो प्राप्त होता है, जबकि भागीदारो के द्वारा किसी प्रकार का श्रम नही किया जाता।

(३) लाभ ऋणात्मक और शून्य दोनो हो सकता है, जबकि मजदूरी कभी शून्य नही होती।

३. लाभ का जोखिम सिद्धान्त (Risk Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो हॉलि (Prof Hawley) द्वारा किया गया। मार्शल ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। प्रो हॉलि के अनुसार 'लाभ जोखिम उठाने का पुरस्कार है'। साहसी जब किसी वस्तु का उत्पादन करता है, उसम किसी न किसी प्रकार का जोखिम अवश्य रहता है। उत्पत्ति के अन्य साधनो का पुरस्कार निश्चित रहता है अर्थात् उत्पादन से लाभ हो या हानि, दूसरे साधनो को प्रतिफल अनिवार्य रूप से प्राप्त होता है, परन्तु साहसी का प्रतिफल अनिश्चित रहता है। अत कोई भी साहसी उसी अवस्था मे उत्पादन कार्य करेगा जबकि उसे जोखिम का प्रतिफल प्राप्त हो।

हॉलि के अनुसार—"किसी व्यवसाय का लाभ व्यवस्था या समन्वय का पुरस्कार नही है, बल्कि जोखिम तथा उत्तरदायित्व उठाने का पुरस्कार है जिसे उस व्यवसाय को चलाने वाला प्राप्त करता है।"[7]

हॉलि के मत म जोखिम उठाना साहसी का प्रमुख कार्य है। जहा पर जोखिम अधिक होता है, वहा लाभ अधिक होता है तथा कम जोखिम वाले व्यवसायो मे लाभ कम होता है। जोखिम म भिन्नता के कारण ही विभिन्न व्यवसायो म लाभ भी भिन्न-भिन्न रहता है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

हॉलि के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है —

(१) प्रो नाइट के अनुसार साहसी को लाभ सभी प्रकार के जोखिमो से प्राप्त नही

---

7 "The profit of an undertaking is not the reward for managment or co-ordination, but for risks and responsibilities that the undertaker subjects himself to" —Hawley

होता। लाभ केवल उन्ही जाखिमो से प्राप्त होता है जो कि अनिश्चित और अज्ञात ह।

(२) आलोचकों के अनुसार साहसी को लाभ प्राप्त होन का कारण जोखिम उठाना नही है वल्कि अपनी योग्यता और कुशलता से जोखिम को कम कर देना है।

जैसा कि कार्वर ने कहा है—"लाभ इसलिए उत्पन्न नही होता कि जाखिम उठाई जाती है बल्कि इसलिए प्राप्त होता है कि साहसी अपने बुद्धि कौशल से अपन व्यवसाय के जोखिम को कम कर देना है।'[८]

(३) इस सिद्धात की यह मान्यता गलत है कि लाभ और जोखिम का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। कभी कभी साहसी अपनी रुचि के अनुसार उस व्यवसाय को भी अपना लेता है, जहा पर जोखिम अधिक होता है और लाभ कम।

(४) आलोचको के अनुसार जोखिम उठाना लाभ के अनेक कारणो म से एक है, जब कि यह सिद्धान्त जोखिम को ही लाभ का एकमात्र कारण मान लेता है।

४ **लाभ का अनिश्चितता वहन सिद्धान्त (Uncertainty Bearing Theory of Profit)**

लाभ के अनिश्चितता वहन सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो नाइट (Prof Knight) ने किया। नाइट ने बताया कि साहसी या उत्पादक को लाभ इसलिए प्राप्त होता है कि वह अनिश्चितता वहन करता है। प्रो नाइट न जोखिम का दो भागा म बाटा है

(अ) ज्ञात जोखिम या बीमा योग्य जोखिम,

(ब) अज्ञात जोखिम या बीमा आयोग्य जोखिम।

ज्ञात जोखिम वह जोखिम है जिनका पहले से ही अनुमान लगाया जा सकता है अत ऐसे जोखिम का पहले से ही बीमा कराया जा सकता है। इसलिए नाइट ने इसे बीमा योग्य जोखिम कहा है। नाइट के अनुसार इस प्रकार का जोखिम साहसी के लिए अनिश्चितता उत्पन्न नही करता, क्योंकि जोखिम साहसी क स्थान पर बीमा कम्पनियां को झेलना पडता है। अत ज्ञात जोखिम लाभ उत्पन्न नही करत।

अज्ञात जोखिम वह जोखिम है जिसका पहले से अनुमान नही लगाया जा सकता, अत ऐसे जोखिम का पहले से बीमा भी नही कराया जा सकता। पूर्व म ही बीमा न होने

---

8 "Profits are not because risks are borne, but because superior entrepreneurs are able to reduce them" —Carver

के कारण इसे बीमा अयोग्य जोखिम कहा जाता है। बीमा अयोग्य जोखिम या अज्ञात जोखिम को नाइट न अनिश्चितता कहा है। प्रो नाइट के अनुसार लाभ अज्ञात जोखिम के कारण ही उत्पन्न होता है। बीमा अयोग्य जोखिम या अज्ञात जोखिम आधुनिक व्यवसायो म निम्न प्रकार पाये जा सकते है —

(१) नई फर्में उत्पादन क्षेत्र मे प्रवेश करें तो पुरानी फर्मों की प्रतियोगिता का सामना करना पडेगा, जिसके फलस्वरूप उन पुरानी फर्मों के लाभ म कमी आ जायेगी।

(२) यदि नई उत्पादन विधि का प्रयोग होने लगे या नई प्रकार की मशीनो का प्रयोग किया जाय, तो कुछ फर्में इन नये तरीको के साथ सामजस्य स्थापित नही कर पाती जिसके कारण उनको हानि उठानी पडती है।

(३) यह सम्भव है सरकार वस्तु की अधिकतम कीमत निर्धारित कर दे या उद्योग का ही अपने नियन्त्रण म ले ले।

(४) समय समय पर बाजार म मन्दी या तेजी की स्थिति आती रहती है, जिससे वस्तु के मूल्यो में उतार-चढाव होते रहते हैं और ये परिवर्तन लाभ को प्रभावित करते हैं। मन्दी की स्थिति मे साहसी को हानि होने की सम्भावना रहती है।

इस प्रकार प्रो नाइट के अनुसार उपर्युक्त जोखिम वह जोखिम है जिनका पूर्व म बीमा किया जाना सम्भव नही है। प्रो नाइट लाभ और अनिश्चितता वहन के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करते है, अर्थात् जितनी अधिक अनिश्चितता होगी उतना ही लाभ अधिक होगा। अत इस सिद्धात के अनुसार लाभ जोखिम का प्रतिफल न होकर अनिश्चितता वहन करने का प्रतिफल है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है —

(१) इस सिद्धात के अनुसार अनिश्चितता वहन करना ही साहसी का एकमात्र कार्य है, जबकि साहसी को इसके अतिरिक्त भी अन्य कार्य करने होते है, जैसे—सगठन करना, साधनो मे समन्वय स्थापित करना, नव प्रवर्तन का काय करना आदि। इस प्रकार अनिश्चितता केवल लाभ उत्पन्न करने वाले कारणो म से एक है।

(२) इस सिद्धात के अनुसार लाभ अनिश्चितता उठाने का पुरस्कार है लेकिन आलोचको के अनुसार कभी कभी साहसी अनिश्चितता वहन करते हुए भी लाभ प्राप्त नही कर पाता है। इस स्थिति की व्याख्या यह सिद्धात नहीं करता।

(३) यह सिद्धांत अनिश्चितता वहन को उत्पादन का एक प्रथम साधन मानता है जबकि व्यवहार म इस प्रकार का कोई साधन नहीं पाया जाता। आलोचकों के अनुसार यह उत्पादन का अलग से कोई साधन नहीं है वरन साहसी की विशेषताओं को ही व्यक्त करता है।

(४) आलोचकों के अनुसार यह सिद्धांत केवल आकस्मिक लाभ की ही व्याख्या करता है, शुद्ध लाभ की व्याख्या नहीं करता।

५ लाभ का गतिशील सिद्धांत (Dynamic Theory of Profit)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन प्रो जे बी क्लार्क (Prof J B Clark) ने किया। प्रो क्लार्क के अनुसार 'लाभ बिक्री मूल्य और लागत मूल्य का अन्तर है।' उन्होंने बताया कि लाभ केवल गतिशील अवस्था म ही सम्भव है, क्योंकि स्थिर अवस्था में न तो कोई जोखिम उठाना पड़ता है और न ही किसी प्रकार की अनिश्चितता रहती है। इस प्रकार क्लार्क के अनुसार लाभ परिवर्तनों का परिणाम है।

वास्तविकता यह है कि समाज गतिशील है, उसमे कुछ न-कुछ परिवर्तन अवश्य होते रहते हैं। प्रो क्लार्क के अनुसार समाज मे पाँच प्रकार के परिवर्तन लगातार होते रहते हैं।

(a) जनसंख्या के आकार म परिवर्तन,
(b) पूंजी की पूर्ति म परिवर्तन,
(c) उत्पादन के तरीकों म परिवर्तन,
(d) औद्योगिक सगठनों के रूपों म परिवर्तन,
(e) मानवीय आवश्यकताओं म परिवर्तन।

गतिशील समाज म उपर्युक्त परिवर्तन होते रहने के कारण ही लाभ उत्पन्न होता है। सामान्यत ये परिवर्तन समाज म अपने आप ही होते रहते हैं, लेकिन कभी-कभी ये परिवर्तन औद्योगिक सगठनों या व्यावसायिक फर्मों के द्वारा जान-बूझकर भी किये जाते हैं। इन परिवर्तनों से वस्तु की मांग और पूर्ति म परिवर्तन होता रहता है, जिससे लाभ उत्पन्न होता है।

स्थिर अवस्था में उपर्युक्त पाचों प्रकार के परिवर्तनों का अभाव पाया जाता है, जिसके कारण अनिश्चितता और जोखिम भी नहीं रहते। इनके अभाव म बिक्री मूल्य और लागत मूल्य का अन्तर समाप्त हो जाता है, परिणामस्वरूप लाभ उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार क्लार्क के अनुसार लाभ के सृजन के लिए समाज मे गतिशीलता आवश्यक है।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism) :

क्लार्क के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है :—

(१) प्रो. नाइट ने बताया कि सभी प्रकार के परिवर्तन लाभ उत्पन्न नही करते। उन्होंने बताया कि लाभ केवल उन परिवर्तनो के परिणाम है जिनको पहले से ज्ञात नही किया जा सकता। अतः प्रो. नाइट के अनुसार लाभ अनिश्चितता के कारण उत्पन्न होते हैं।

(२) प्रो. टॉसिग के अनुसार यह सिद्धान्त प्रबन्धको के वेतन और लाभ के बीच अनावश्यक और कृत्रिम भेद उत्पन्न करता है।

(३) आलोचको के विचार मे क्लार्क की आर्थिक गतिशीलता (economic dynamics) वास्तव मे तुलनात्मक स्थिरता है। आर्थिक गतिशीलता से अभिप्राय निरन्तर होने वाले परिवर्तनो से होता है। किन्तु प्रो. क्लार्क द्वारा व्यक्त गतिशीलता शीघ्र ही रुक जाती है, जिससे लाभ का लोप हो जाता है।

६. **लाभ का नव-प्रवर्तन सिद्धान्त (Innovation Theory of Profit) :**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो शुम्पीटर (Schumpeter) ने किया। यह सिद्धान्त प्रो. क्लार्क के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है, क्योकि शुम्पीटर भी लाभ को गतिशील परिवर्तनो का कारण मानते हैं। लेकिन इन दोनो मे एक भिन्नता है, क्लार्क गतिशीलता या परिवर्तनो को ही लाभ का कारण मानते हैं जबकि शुम्पीटर के अनुसार नव-प्रवर्तन के द्वारा लाभ उत्पन्न होते है, अर्थात् नये-नये आविष्कारो, वस्तु के विक्रय की नई रीतियो तथा वितरण की व्यवस्था आदि मे परिवर्तन करने से लाभ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार नव-प्रवर्तन सिद्धान्त क्लार्क के गतिशील सिद्धान्त से अधिक व्यापक है।

नव-प्रवर्तन का उद्देश्य वस्तु की उत्पादन लागत मे कमी कर देना है जिसके परिणाम-स्वरूप वस्तु के मूल्य और उसकी लागत मे अन्तर हो जाता है, यह अन्तर ही लाभ होता है। इस प्रकार लाभ नव-प्रवर्तन का कारण और परिणाम दोनो है। क्योकि लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से ही नव-प्रवर्तन किये जाते हैं, अतः लाभ नव-प्रवर्तन को प्रभावित करता है।

एक सफल नव प्रवर्तन से केवल अस्थायी रूप से ही लाभ प्राप्त हो सकता है, क्योकि जैसे ही दूसरी फर्मे इसका अनुकरण करती हैं तो उससे प्राप्त होने वाला लाभ समाप्त हो जाता है। इस प्रकार जब एक नये प्रयोग या आविष्कार से प्राप्त होने वाला लाभ रुक जाता है तो दूसरा प्रयोग किया जाता है और पुनः लाभ प्राप्त होने लगता है। शुम्पीटर के अनुसार लाभ प्राप्त होना है और समाप्त होता है और फिर प्राप्त होने लगता है। उन्होंने

बताया कि कोई भी आविष्कार, विचार या प्रयोग उस समय तक नव-प्रवर्तन नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसको व्यवहार मे न अपना लिया जाय।

प्रो शुम्पीटर के अनुसार लाभ केवल उसी को प्राप्त होता है जो कि नव-प्रवर्तन का प्रयोग करता है। लाभ उसे प्राप्त नहीं होता जो कि नया विचार प्रस्तुत करता है, या आविष्कार करता है या नई व्यवस्था के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

प्रो क्लार्क की तरह शुम्पीटर का यह विचार है कि लाभ जोखिम का प्रतिफल नहीं है, क्योंकि साहसी जोखिम नहीं उठाता। जोखिम तो पूजीपति को उठाना पड़ता है क्योंकि साहसी जिस उपक्रम के लिए पूजी उधार लेता है, यदि वह असफल हो जाता है तो हानि पूजीपति को होती है न कि साहसी को।

सिद्धात की आलोचना (Criticism) :

शुम्पीटर के सिद्धात की आलोचनायें प्राय वही हैं जो कि क्लार्क के गतिशील सिद्धात की हैं। इस सिद्धात की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं :—

(१) यह सिद्धात केवल नव प्रवतन को ही लाभ का कारण मानता है, दूसरे तत्वो की उपेक्षा करता है। यह बात सही है कि नव-प्रवर्तन लाभ को प्रभावित करता है, लेकिन यही लाभ का एकमात्र कारण नहीं है।

(२) यह सिद्धात लाभ के निर्धारण मे जोखिम और अनिश्चितता जैसे महत्वपूर्ण तत्वो की उपेक्षा करता है। शुम्पीटर का यह विचार उचित नही कि जोखिम पूजीपति उठाता है, साहसी नही। वास्तविकता इससे विपरीत है, अर्थात् पूजीपति जोखिम नहीं उठाते अपितु साहसी जोखिम उठाता है।

(३) यह सिद्धात साहसी के कार्यों के प्रति सकुचित दृष्टिकोण अपनाता है, क्योंकि साहसी का कार्य केवल नव-प्रवर्तन तक ही सीमित नही रहता। साहसी को इसके अतिरिक्त सगठनात्मक कार्य भी करने होते है।

७ लाभ का समाजवादी सिद्धात (Socialist Theory of Profit) :

इस सिद्धात का प्रतिपादन कार्ल मार्क्स (Karl Marks) ने किया है। इस सिद्धात के अनुसार लाभ प्राप्त होने का कारण यह है कि उत्पादकों या पूजीपतियो द्वारा श्रमिकों को जो मजदूरी दी जाती है, वह उनके कार्य के अनुपात म बहुत कम होती है। इस प्रकार पूजीपतियो द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता है, यह शोषण ही लाभ का कारण है।

मार्क्स के अनुसार वस्तु का मूल्य उसम लगाये गये श्रम से निर्धारित होता है। पूजीपतियो द्वारा श्रमिको के प्रतिफल और पुरस्कार (अर्थात् मजदूरी) को हड़प कर लिया जाता

है, जिससे उनको लाभ प्राप्त होता है । इस दृष्टि से समाजवादियो ने लाभ को 'कानूनी डाका' कहा है । मार्क्स ने बताया कि लाभ श्रमिको के शोषण पर आधारित होने के कारण मानवीय और कानूनी दोनो ही दृष्टियो से अनुचित है, इसलिये इसे समाप्त कर देना चाहिए ।

सिद्धान्त की आलोचना (Criticism)

मार्क्स के सिद्धात की प्रमुख आलोचनाये निम्नलिखित हैं —

(१) यह सिद्धात मार्क्स के मूल्य के श्रम सिद्धात' (labour theory of value) पर आधारित है, जो कि केवल अप्रत्याशित लाभ के सम्बन्ध म ही उचित है, क्योकि यह सिद्धात साहसी के पुरस्कार के सम्बन्ध म कुछ नही कहता ।

(२) इस सिद्धात के अनुसार लाभ श्रमिको के शोषण का परिणाम है । आलोचको के अनुसार यह विचार उचित नही है, क्योकि लाभ साहसी को जोखिम उठाने के कारण या अनिश्चितता वहन करने के कारण प्राप्त होता है ।

(३) आलोचको के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था मे सभी श्रमिको को समान मजदूरी का भुगतान किया जाता है । यदि अल्पकाल म साहसी को हानि प्राप्त होती है, उस स्थिति म भी श्रमिको को मजदूरी का भुगतान पहले वाली दरो पर किया जाता है ।

मार्क्स का सिद्धात यद्यपि आज के समाज मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है, फिर भी यह लाभ के निर्धारण की समस्या को पूर्णत हल नही कर सका है ।

८. लाभ का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory of Profit) :

इस सिद्धात के अनुसार लाभ साहसी की उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होता है । साहसी चू कि उत्पत्ति का एक साधन है इसलिये इस साधन का हिस्सा भी उत्पत्ति के दूसरे साधनो के समान ही इसकी सीमान्त उत्पादकता (या सीमान्त आगम उत्पादकता–MRP) के द्वारा निश्चित होना है । इस सिद्धात के अनुसार साहसी की सीमात उत्पादकता जितनी अधिक होगी, उतना ही लाभ अधिक होगा । दूसरे शब्दो मे, सामान्यत जिन उद्योगो मे साहसी की पूर्ति कम होती है, वहा साहसी की सीमात उत्पादकता अधिक होने के कारण लाभ अधिक प्राप्त होता है तथा जिन उद्योगो मे साहसी की पूर्ति अधिक होती है, साहसी की सीमान्त उत्पादकता कम होने के कारण लाभ भी कम प्राप्त होता है ।

सिद्धात की आलोचना (Criticism)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धात की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है —

(१) यह सिद्धात पूर्ण नही है, क्योकि लाभ निर्धारण की केवल माग पक्ष से ही व्याख्या करता है, पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है।

(२) साहसी की सीमात उत्पादकता को ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। एक फर्म या व्यवसाय मे साहसी केवल एक ही होता है अत उसकी सीमात उत्पादकता ज्ञात नहीं की जा सकती। यदि हम सैद्धातिक दृष्टि से इसे स्वीकार भी करलें, तो फर्म या व्यवसाय मे एक और साहसी लगाना होगा, जबकि व्यवहार मे साहसी समान रूप से कुशल नही होते।

(३) यह सिद्धात आकस्मिक लाभो की व्याख्या नही करता, क्योकि इस प्रकार के लाभो का साहसी की सीमात उत्पादकता से कोई सम्बन्ध नही होता।

उपर्युक्त सभी सिद्धातो का अध्ययन करने के उपरात यह निष्कर्ष निकलता है कि इनम कोई भी सिद्धात ऐसा नही है जिस पूर्ण सिद्धात या सतोषजनक सिद्धात कहा जा सके। भिन्न भिन्न अर्थशास्त्रियो ने भिन्न भिन्न दृष्टिकोणो स लाभ की व्याख्या की है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने लाभ निर्धारण के लिये माग और पूर्ति सिद्धात को ही सवश्रेष्ठ माना है। उनके अनुसार जिस प्रकार उत्पत्ति के अन्य साधनो का पुरस्कार उस साधन की माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है, ठीक उसी प्रकार साहसी का पुरस्कार साहसी की माग और पूर्ति के द्वारा निश्चित होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने लाभ निर्धारण म सामान्य लाभ को ही प्रमुखता प्रदान की है।

सामान्य लाभ का निर्धारण
(Determination of Normal Profit)

इसे लाभ का माग और पूर्ति का सिद्धात भी कहते हैं। आधुनिक विश्व म लगा... परिवर्तन होत रहते हैं, जिसके फलस्वरूप अल्पकाल व दीर्घकाल म अनिश्चितता बनी रहती है। अनिश्चितता होने के कारण यह आवश्यक है कि साहसी को उत्पादन कार्य म बनाये रखने के लिये *न्यूनतम पुरस्कार प्राप्त हो। यह न्यूनतम पुरस्कार ही सामान्य लाभ है।*

"सामान्य लाभ शुद्ध लाभ का ही एक अग है जिसको साहसी प्राप्त करना चाहता है। यह अनिश्चितता वहन करने का कम न होने योग्य न्यूनतम पुरस्कार है जो कि

एक निश्चित समयावधि में साहसियों को उद्योग विशेष में बनाये रखने के लिए आवश्यक है।"[9]

यदि साहसी को उद्योग विशेष में सामान्य लाभ भी प्राप्त नहीं होता है तो वह दूसरे उद्योग या व्यवसाय में चला जायेगा। यह सम्भव है कि अल्पकाल में साहसियों को सामान्य लाभ से अधिक लाभ प्राप्त हो, परन्तु दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

जिस प्रकार अन्य साधनों का हिस्सा (पुरस्कार) उस साधन की माग और पूर्ति के द्वारा निश्चित होता है उसी प्रकार साहसी का लाभ भी माग और पूर्ति के द्वारा निश्चित होता है।

साहसी की मांग

साहसी की माग उसकी सीमांत उत्पादकता के कारण की जाती है। सीमांत आगम उत्पादकता अधिक होने पर साहसियों की माग अधिक होती है तथा कम होने पर माग कम। साहसी की माग सीमांत उत्पादकता के अतिरिक्त औद्योगिक विकास का स्तर, जोखिम की मात्रा आदि से प्रभावित होती है। परन्तु इनका प्रभाव माग पर परोक्ष रूप से ही पड़ता है।

अन्य साधनों की अपेक्षा साहसी की सीमांत उत्पादकता (या सीमांत आगम उत्पादकता) का पता लगाना काफी कठिन है क्योंकि एक फर्म में केवल एक ही साहसी रहता है। इस समस्या को हल करने के लिये साहसी की सीमान्त उत्पादकता का एक फर्म के सदर्भ में विचार न करके सम्पूर्ण उद्योग के सदर्भ में विचार करते हैं।

एक उद्योग विशेष में जितनी फर्में होती हैं उतने ही साहसी होते हैं। उद्योग में फर्मों की संख्या में वृद्धि होने से फर्मों को प्राप्त होने वाले लाभ में कमी आ जायेगी, (क्योंकि फर्मों की संख्या में वृद्धि से उत्पादन बढ़ेगा जिससे वस्तु की कीमत घटेगी), अतः फर्मों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप साहसियों की सीमान्त उत्पादकता कम होती जाती है। अतः सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा (MRP) बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुई होती है। यदि सभी उद्योगों के साहसियों की सीमान्त आगम उत्पादकता रेखाओं को जोड़ दिया जाय, तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये साहसियों की माग ज्ञात की जा सकती है।

---

9 "Normal profit is that part of *pure profit*, *which is expected by* entrepreneur It is an irreducible minimum reward for uncertainty bearing, which entrepreneurs will require over a period of time, to induce them to stay in a particular industry"

साहसी की पूर्ति

साहसी की पूर्ति कई तत्वों पर निभर करती है, जैसे— समाज की दशा, जनसख्या का आकार, व्यवसाय म जोखिम की मात्रा आदि ।

सामान्य लाभ साहसी का पूर्ति मूल्य है । अर्थव्यवस्था की अनिश्चितता को वहन करने के लिये साहसी की पूर्ति बनाये रखने के उद्देश्य से कम स कम सामान्य लाभ के बराबर साहसी को पुरस्कार देना आवश्यक है । सामान्यत यदि अर्थव्यवस्था म लाभ की दर ऊँची है तो साहसियों की पूर्ति अधिक होगी, यदि लाभ दर नीची है तो पूर्ति कम होगी । इस प्रकार लाभ दर और साहसी की पूर्ति का सम्बन्ध सीधा होता है, इसलिये सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए साहसी की पूर्ति रेखा बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ती हुई होती है ।

सामान्य लाभ का निर्धारण (Determination of Normal Profit)

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से सामान्य लाभ का निधारण उस बिन्दु पर होगा, जहा पर साहसियों की माग रेखा तथा पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती हैं । इसे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है ।
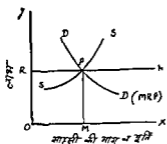
सलग्न चित्र म DD सीमान्त आगम उत्पादकता रेखा है तथा SS पूर्ति रेखा है । दोनो रेखायें एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटती हैं, अत सामान्य लाभ PM होगा और साहसियों की माग तथा पूर्ति OM । सामान्य लाभ को RN रेखा द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति म प्रत्येक उद्योग सामान्य लाभ के इस स्तर को प्राप्त करेगा ।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ सामान्य लाभ तथा अतिरिक्त लाभ मे अन्तर बताइए । क्या साहसी का पुरस्कार उत्पादन लागत मे प्रवेश करता है ?

२ "लाभ का सिद्धात अर्थशास्त्र का सबसे अधिक विवादग्रस्त एव असतोषजनक सिद्धात है ।" व्याख्या कीजिये ।

३ प्रो क्लार्क के लाभ के गतिशील सिद्धात की व्याख्या कीजिये ।

४ "लाभ का आधुनिक सिद्धात उत्पादन प्रक्रिया म साहसी का वह योगदान बताता है

कि वह बीमा अयोग्य जोखिमों तथा अनिश्चितताओं को वहन करता है।" विवेचना कीजिए।

५. कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ में अन्तर बताइए। लाभ के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

६. लाभ के विभिन्न सिद्धान्तों को समझाइए। इनमें कौनसा सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ है? कारण बताइए।

७. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए —

(a) "लाभ योग्यता का लगान है।"

(b) लाभ "कनूनी डाका" है।

(c) लाभ गतिशील समाज में पाया जाता है, स्थिर समाज में समाप्त हो जाता है।

८. 'लाभ का वही सिद्धान्त सत्य है जिसमें लाभ के गतिशील सिद्धान्त और जोखिम के सिद्धान्त का सामंजस्य हो।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

द्वितीय खण्ड

व्यापक-अर्थशास्त्र

[Macro Economics]

अध्याय १

★

स्थिर एवं गतिशील अर्थशास्त्र

[Static and Dynamic Economics]

★ ★ ★

अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे स्थिर (static) और गतिशील (dynamic) शब्दो का प्रयोग बहुत अधिक होने लगा है। इन शब्दो के महत्त्व मे वृद्धि के कारण ही अर्थशास्त्र को अब दो भागो—स्थिर अर्थशास्त्र एव गतिशील अर्थशास्त्र-मे बाटा जाने लगा है। लेकिन अर्थशास्त्रियो मे इन दोनो शब्दो के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध मे काफी मतभेद पाया जाता है। स्थिर एव गतिशील अर्थशास्त्र का उचित एव सही स्पष्टीकरण न होने के कारण ही प्रो नाइट (Prof Knight) ने कहा है।

"स्थिर और गतिशील जैसे दुर्भाग्यपूर्ण शब्दो के प्रयोग से व्यर्थ का भ्रम उत्पन्न हो गया है।"[1]

परन्तु अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्री प्रो. नाइट के इस दृष्टिकोण से सहमत नही है और ये अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को स्थिर एव गतिशील दो भागो मे विभाजित करना उचित समझते है, तथा इस प्रकार के अध्ययन को अर्थशास्त्र के विकास के लिए उपयोगी समझते है। जैसा कि प्रो हैरोड (Harrod) के विचार से स्पष्ट है

'स्थिर और गतिशील अर्थशास्त्र के बीच विभाजन की सही रेखा बनाने से आर्थिक विचारो की प्रगति को सहायता प्राप्त होती है।"[2]

स्थिर या स्थैतिक अर्थशास्त्र Static Economics)

स्थिर अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of static economics)—भौतिकशास्त्र मे

---

1 "Needless confusion has been caused by the unfortunate use of the terms "Static and Dynamic" — Prof Knight

2 "The correct charting of a line of demarcation between them should have beneficial result on the progress of economics" —Prof Harrod

स्थिर शब्द गतिहीनता अथवा विकाय (rest) की अवस्था के लिए प्रयुक्त होता है। अर्थशास्त्र म स्थिर शब्द से अभिप्राय गतिहीन या मृत अवस्था से नही होता, अपितु उस अवस्था से होता है जिसम गति तो रहती है परन्तु यह गति निश्चित, नियमित और शातिपूर्ण रहती है। दूसरे शब्दो मे, स्थिर अवस्था मे गति तो रहती है परन्तु अचानक झटके नही लगते अर्थात् इसमे अनिश्चितता का अभाव रहता है। प्रो हैरोड (Prof Harrod) ने स्थिर अवस्था को निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया है

"स्थिर साम्य से अर्थ विश्राम की अवस्था से नही होता, वरन् उस अवस्था से होता है जिसम दिन-प्रतिदिन और वर्ष-प्रतिवर्ष कार्य निरन्तर हो रहा हो, परन्तु उसमे कमी या वृद्धि न हो रही हो। इस सक्रिय किन्तु अपरिवर्तनशील प्रक्रिया को ही स्थिर अर्थशास्त्र कहा जा सकता है।"[3]

स्थिर अर्थशास्त्र के अर्थ के सम्बन्ध म अर्थशास्त्रियो म पर्याप्त मतभेद है, अतः सही अर्थ समझने के लिए इन विभिन्न दृष्टिकोणो का समझना आवश्यक है।

डॉ मार्शल (Dr Marshall) ने स्थिर अवस्था के लक्षणो का वर्णन करते हुए लिखा है

"स्थिर अवस्था मे सभी महत्वपूर्ण लक्षण ऐसे स्थान पर दृष्टिगोचर होते है जहा जनसख्या और धन दोनो म वृद्धि हो रही हो तथा दोनो मे वृद्धि की दर समान हो, और जहा पर भूमि की कोई कमी नही होती। उत्पत्ति की विधियो और दशाओ म बहुत कम परिवर्तन होता है तथा जहा मनुष्य का चरित्र स्वय स्थिर रहता है।"[४]

प्रो पीगू (Pigou) के शब्दो मे—"जिन बूदो से मिलकर झरना बनता है वे सदा बदलती रहती हैं, किन्तु झरने का रूप अपरिवर्तित रहता है। इसी प्रकार स्थिरता की अवस्था मे परिवर्तन तो होते रहते हैं परन्तु ये परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं होते हैं।"

इस प्रकार पीगू के अनुसार स्थिर अवस्था मे समग्र रूप म कोई परिवर्तन नही होता जबकि छोटे-छोटे तत्व बदलते रहते है। प्रो मेकफाई (Prof Macfie) ने स्थिर अर्थ व्यवस्था की परिभाषा निम्नलिखित शब्दो मे की है

"स्थिर अवस्था एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमे वह साधन जो उपभोग, उत्पादन विनिमय और वितरण पर नियन्त्रण करते हों, स्थिर हो या स्थिर मान लिये गये हों।

---

3 "Thus a static equilibrium by no means implies a state of idleness, but one in which the work is steadily going forward day-by-day and year-by year, but without increase or diminution .... that it is to this active but unchanging process that the expression static economics should be applied " —Prof Harrod

जनसंख्या मे न तो वृद्धि होती है और न कमी तथा आयु समूहो (age groups) मे भी कोई परिवर्तन नही होता। उत्पादन के तरीके और कुल उत्पादन भी समान रहता है, और यदि जनसंख्या बढती है तो कुल उत्पादन भी उसी अनुपात मे बढ़ जाता है।"[5]

प्रो. हिक्स (Prof Hicks) के अनुसार आर्थिक सिद्धान्त के वे भाग स्थिर है जिनमे तिथि (dating) का ध्यान नही रखते।"[6]

प्रो. हैरोड के तिथिकरण (dating) के इस विचार से प्रो हिक्स ने असहमति व्यक्त की है। इसके अतिरिक्त टिनबर्गन (Tinbergen), स्टिगलर (Stigler), कीन्स (Keynes) तथा जे बी क्लार्क (J. B Clark) आदि अर्थशास्त्रियो ने स्थिर अर्थव्यवस्था के आधार पर अध्ययन किया है तथा इस सम्बन्ध मे अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

प्रो जे. के. मेहता ने स्थिर अर्थशास्त्र की निम्नलिखित विशेषतायें बताई हैं .—

(१) इस अवस्था मे लाभ का अश शून्य होता है।
(२) उत्पादन की इकाइयो मे विस्तार या सकुचन की प्रवृत्ति नही पाई जाती।
(३) अर्थव्यवस्था म विकास या ह्रास की प्रवृत्ति नही पाई जाती।
(४) साम्य एक निश्चित अवधि के आगे तक विस्तृत रहता है।

गतिशील या प्रावेगिक अर्थशास्त्र

(Dynamic Economics)

गतिशील अर्थशास्त्र का अर्थ (Meaning of Dynamic Economics)

---

4 "Nearly all the distinctive features of a stationary state may be exhibited in a place where population and wealth are both growing, provided they are growing at about the same rate and there is no scarcity of land, provided also, the methods of production and the conditions change very little, and above all, where the character of man himself is a constant quantity" —Marshall

5 "The stationary state is an economic system in which the factors which control production and consumption, distribution and exchange are constant, or assumed to be constant Population is regarded as neither increasing nor decreasing and its age composition does not alter, Methods of production and the total output remain the same, or at least if population grows, total output must be regarded as growing at the same rate" —Prof Macfie

भौतिकशास्त्र में 'गतिशील' से अभिप्राय परिवर्तन की दर से होता है, अर्थशास्त्र में भी गतिशीलता से अभिप्राय उत्पादन की दर और गति में होने वाले परिवर्तनों से है। इस प्रकार गतिशील अर्थशास्त्र में अर्थ-व्यवस्था में होने वाले निरन्तर परिवर्तनों, इन परिवर्तनों की प्रक्रियाओं तथा परिवर्तनों के कारणों का अध्ययन किया जाता है। गतिशील अर्थशास्त्र की परिभाषा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतैक्य नहीं है। कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं —

- **प्रो हिक्स** (Prof Hicks) के अनुसार — "गतिशील अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त के उस भाग से सम्बन्धित है जिसमें कि तिथिकरण महत्वपूर्ण है।"[7]

इस प्रकार प्रो हिक्स ने तिथिकरण (समय तत्व) को विशेष महत्व दिया है। कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि प्रो हिक्स ने तिथिकरण (dating) से सम्बन्ध स्थापित कर गतिशील अर्थशास्त्र के क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया है।

- **प्रो हेरोड** (Prof Harrod) के अनुसार "गतिशील अर्थशास्त्र का सम्बन्ध विशेष रूप से निरन्तर परिवर्तन के प्रभावों और निश्चित किये जाने वाले मूल्यों की परिवर्तन की दर से होता है।"[8]
- **मि बॉमोल** (Mr Boumol) के शब्दों में—"आर्थिक गतिशीलता भूतकालीन और भविष्य की घटनाओं से सम्बन्धित आर्थिक तत्वों का अध्ययन है।"[9]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि गतिशील अर्थशास्त्र अर्थ व्यवस्था में होने वाले निरन्तर परिवर्तनों, उन परिवर्तनों की दरों और उनके प्रभाव व कारणों का अध्ययन करना है। जे **बी क्लार्क** (J B Clark) ने गतिशील अर्थ व्यवस्था की पाच विशेषतायें बताई हैं —

(१) जनसख्या में वृद्धि होती है,
(२) पूजी की मात्रा में वृद्धि होती है,
(३) उत्पादन की विधियों में सुधार हो रहा होता है,

---

7 "Economic dynamic refers to those parts of economic theory where the problem of 'dating' is conspicuously important" —Prof Hicks

8 "Dynamics will specially be concerned with the effects of continuing changes and with rates of changes in the values that have to be determined" —Prof Harrod

9 "Economic dynamics is the study of economic phenomena in relation to preceeding and succeeeding events" — Baumol

(४) औद्योगिक संस्थाओं (Industrial establishments) के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा होता है अर्थात् अकुशल इकाइयों के स्थान पर कुशल इकाइयों का अस्तित्व कायम होता है।

(५) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में वृद्धि होती है।

प्रो क्लार्क का विचार है कि जिस अर्थ व्यवस्था में इन विशेषताओं का अभाव हो वह गतिशील अर्थ-व्यवस्था न होकर स्थिर होगी।

स्थिर तथा गतिशील अर्थशास्त्र में अन्तर

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन कर लेने के उपरान्त इन दोनों का अन्तर समझ लेना भी आवश्यक है।

स्थिर अर्थशास्त्र का सम्बन्ध किसी समय विशेष की स्थिति से होता है, जबकि गतिशील अर्थशास्त्र का सम्बन्ध समयावधि से होता है। स्थिर अर्थशास्त्र में क्रम तथा समय का कोई महत्व नहीं होता जबकि गतिशील अर्थशास्त्र में क्रम और समय का अन्तर महत्वपूर्ण होता है। गतिशील अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था में होने वाले निरन्तर परिवर्तनों से सम्बन्धित होता है, जिसमें जनसंख्या, पूंजी, उत्पादन की विधि, उपभोक्ता की माग तथा औद्योगिक इकाइयां सभी परिवर्तित होती रहती हैं, जबकि स्थिर अर्थशास्त्र में ये सभी तत्व निरन्तर परिवर्तन की अवस्था में नहीं होते।

प्रो. जे. के. मेहता ने दोनों का अन्तर बताते हुए कहा है कि स्थिर अवस्था वह है जो कि निश्चित समय के बाद भी उसी क्रम में बनी रहती है जबकि गतिशील अवस्था में समय के परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता रहता है।

प्रो हिक्स के शब्दों में—"स्थिर अर्थशास्त्र वह है जहां तिथिकरण की कोई आवश्यकता नहीं होती परन्तु गतिशील अर्थशास्त्र में तिथिकरण अत्यन्त आवश्यक है।"

स्थिर अर्थशास्त्र का क्षेत्र एवं महत्व (Scope and Importance of Static Economics) :

स्थिर शब्द से सम्बन्धित मान्यताओं से इसके प्रयोग क्षेत्र को काफी सीमित कर दिया है, किन्तु अर्थशास्त्र की बहुत-सी विषय-सामग्री का अध्ययन केवल स्थिर विश्लेषण के आधार पर ही किया जा सकता है। टिनबर्जन (Tinbergen) का विचार है कि जो बातें दीर्घकालीन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित होती हैं तथा जिनमें वस्तुस्थिति अपरिवर्तनीय रहती है उनका अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र के द्वारा ही किया जाना सम्भव है। इस विश्लेषण का महत्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जायेगा।

१ अर्थशास्त्र का बहुत बड़ा भाग स्थिर विश्लेषण पर आधारित है। इनमे से प्रमुख समस्याये व विश्लेषण इस प्रकार है :—

(१) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित स्वतत्र व्यापार (free trade) का सिद्धात स्थिर विश्लेषण पर ही आधारित है।

(२) प्रो रॉबिन्स (Prof Robbins) द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा स्थिर अर्थशास्त्र पर ही आधारित है।

(३) मूल्य-निर्धारण म औसत लागत की अपेक्षा सीमान्त लागत से अधिक सहायत ली जाती है। सीमात लागत का अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ही होता है।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन स्थिर अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय है जबकि यह सिद्धात विभिन्न देशो के साधनो की गतिशीलता पर आधारित है।

(५) तुलनात्मक लागत का सिद्धात एव लगान का सिद्धात आदि, जिनमे समय क अधिक महत्त्व नही है, स्थिर अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।

(६) व्यापार चक्र (trade cycles) का सिद्धात 'स्थिर' तथा 'गतिशील' दोनो की सीमाओपर स्थित है। इसके कुछ सिद्धात स्थिर अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आत हैं और कुछ गतिशील अर्थशास्त्र मे।

२ **परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिए आवश्यक**—यदि स्थि अर्थशास्त्र की सहायता न ली जाय तो परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था का अध्ययन करने म अनेक जटिलतायें आ जायेंगी। आर्थिक परिवर्तनो की प्रवृत्ति काफी जटिल होती है अत परिवर्तनशील अर्थ व्यवस्था का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के लिये उसे छोटी छोटी स्थिर अवस्थाओ मे विभाजित कर दिया जाता है। ऐसा करने से अध्ययन काफी सुविधा जनक हो जाता है। इस प्रकार स्थिर अवस्था गतिशील अवस्था की एक दशा बन जाती है। इस सम्बन्ध मे प्रो मेहता का कथन उल्लेखनीय है—

> "गतिशील अर्थशास्त्र स्थिर अर्थशास्त्र पर एक लगातार टीका (running comm entry) है इसलिये स्थिर अर्थशास्त्र के नियम गतिशील अर्थशास्त्र पर लागू होने चाहिए।"[10]

---

10 "Dynamic economics is, as it was a running commentary on static economics The laws of state economics must, therefore, apply to dynamics" —Prof. Mehta

दूसरे शब्दों में, हम कह सकते है कि स्थिर अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं का सरलीकरण प्रस्तुत कर देता है।

स्थिर अर्थशास्त्र की सीमायें (Limitation of Static Economics)

स्थिर अर्थशास्त्र का व्यापक महत्व है फिर भी यह विश्लेषण एक सीमा तक आर्थिक समस्याओं के सुलझाने मे सहायक सिद्ध होता है। इसके सीमित प्रयोग के मुख्य कारण निम्नलिखित है :

(१) **अवास्तविक मान्यता पर आधारित**—यह विश्लेषण अवास्तविक मान्यताओं, जैसे—पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रतियोगिता आदि पर आधारित है, जबकि व्यावहारिक जगत मे ये मान्यतायें नहीं पाई जाती है।

(२) **परिवर्तनशील तत्वों को स्थिर मान लेना**—यह विश्लेषण आर्थिक व्यवहार को निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्वों को स्थिर मान लेता है, जैसे—रुचि, साधन, प्रविधि (technology) आदि। जबकि वास्तविक जीवन मे ये निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं।

(३) **स्थिर अवस्था काल्पनिक है**—वास्तविक ससार जो कि गतिशील और परिवर्तनशील है, उसको स्थिर मानना केवल भ्रम उत्पन्न करता है। इसी कारण **कार्ल मार्क्स** (Karl Marx) ने इसे सैद्धांतिक कल्पना कहा है। **एजवर्थ** (Edgeworth) के शब्दों मे:—"परिवर्तनशील को स्थिर मान लेने के कारण अर्थशास्त्र म अनेक भ्रम उत्पन्न हो गये है।"[११]

प्रो. हिक्स ने भी स्थिर अवस्था को महत्व प्रदान नहीं किया है। उनका विचार है कि वास्तविक समस्याओं के समाधान मे स्थिर विश्लेषण का प्रयोग बहुत सीमित रूप में ही किया जा सकता है। उन्हीं के शब्दों मे—

"स्थिर अवस्था अन्त म और कुछ नहीं वरन् वास्तविकता से दूर जाना है।"

गतिशील अर्थशास्त्र का क्षेत्र एवं महत्व (Scope and Importance of Dynamic Economics)

गतिशील अर्थशास्त्र वास्तविक जीवन की परिवर्तनशील आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिये परम आवश्यक है। स्थिर अर्थ व्यवस्था सम्बन्धी विचार गतिशील अर्थ-व्यवस्था

11 "The treating as constant of what is variable is the source of most of the follocies in political economy." —Edgeworth

क विचार की अपेक्षा काफी पुराने हैं, फिर भी पुराने अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित अनेक महत्वपूर्ण सिद्धांतों में 'गतिशीलता' से सम्बन्धित अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। रिकार्डो की 'वितरण की समस्या' और माल्थस का 'जनसंख्या का सिद्धान्त' गतिशील दृष्टिकोण पर ही आधारित हैं। परन्तु मार्शल व उसके सहयोगियों ने (नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने) स्थिर अर्थशास्त्र को अपनाया। इस प्रकार स्थिर दृष्टिकोण का महत्व प्राप्त हुआ।

गतिशास्त्र अर्थशास्त्र का वास्तविक प्रयोग प्रो मार्शल के बाद ही हुआ। गतिशील अर्थशास्त्र को प्रो रॉस (Prof Ross), प्रो कालेकि (Kalecki) और टिनबर्जन (Tinbergen) आदि अर्थशास्त्रियों ने विकसित किया। तत्पश्चात् हेरोड, रॉबर्टसन (Robertson) हैनसन (Hansan) आदि अर्थशास्त्रियों ने इसका प्रयोग कर गतिशील विश्लेषण के महत्व में वृद्धि की। अधिकांश आधुनिक शास्त्री गतिशील विश्लेषण प्राथमिकता प्रदान करते हैं।

गतिशील अर्थशास्त्र के अध्ययन का महत्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होता है —

१ **गतिशील अर्थशास्त्र वास्तविकता के अधिक समीप है**—गतिशील अर्थशास्त्र के वास्तविकता के समीप होने के दो कारण हैं —

(१) यह विश्लेषण अवास्तविक मान्यताओं, जैसे—पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रतियोगिता आदि पर आधारित नहीं है।

(२) यह आर्थिक व्यवहार के निर्धारक तत्वों, जैसे—रुचि, साधन व प्रविधि को अपरिवर्तनशील नहीं मानता।

२ **बहुत सी आर्थिक समस्याओं का अध्ययन केवल गतिशील अर्थशास्त्र में ही सम्भव है**—आधुनिक आर्थिक समस्यायें जो मनोविज्ञान पर आधारित हैं उनका सरलता से अध्ययन गतिशील अर्थशास्त्र में ही किया जा सकता है—

(a) निरन्तर परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली आर्थिक समस्याओं का अध्ययन गतिशील अर्थशास्त्र में ही सम्भव है।

(b) व्यापार चक्र जैसी जटिल समस्याओं का अध्ययन पूर्ण तथ्यों के साथ गतिशील अर्थशास्त्र ही प्रस्तुत करता है।

३ **गतिशील विश्लेषण लचीला (flexible) है**—गतिशील अर्थशास्त्र अपनी व्याख्या में अत्यन्त लचीला है। इसके कारण अर्थशास्त्री सभी प्रकार की सम्भावनाओं की खोज के लिए अधिक से अधिक नमूने चुन सकता है और समस्याओं का विश्लेषण कर सकता है।

प्रो. रॉबिन्स (Robbins) ने गतिशील अर्थशास्त्र के चार महत्वपूर्ण कारण बताये हैं–

(१) यह बहुत से आर्थिक सिद्धातों की सत्यता और क्रियाशीलता की जाच करता है।

(२) यह स्थिर अर्थशास्त्र की अवास्तविक मान्यताओ को अलग करता है और ठोस तथा वास्तविक मान्यतायें प्रस्तुत करता है, जिसके आधार पर अध्ययन किया जाता है।

(३) यह उन क्षेत्रों पर प्रकाश डालता है जहा पर कि स्थिर अर्थशास्त्र के सिद्धातो मे सुधार किया जाना चाहिए।

(४) यह नवीन तत्वो पर प्रकाश डालता है।

गतिशील अर्थशास्त्र की सीमायें (Limitations of Dynamic Economics)

गतिशील अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण के लिए बहुत उपयोगी तथा आवश्यक है। लेकिन इसमे जटिलता होने के कारण इसकी अनेक सीमायें हैं।

(१) इस विश्लेषण का अभी तक पूर्ण विकास नही हो पाया है जिसके कारण इसके प्रयोग मे अनेक व्यावहारिक कठिनाइया आती है।

(२) गतिशील अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये उच्च गणित तथा इकोनोमैट्रिक्स (Economatrics) का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। इस कारण यह विश्लेषण काफी कठिन हो जाता है, और सामान्य व्यक्ति की समझ से बाहर है।

(३) वास्तविक जगत म परिवर्तन काफी तेजी से होते है तब समस्याओ का अध्ययन शुद्ध गतिशील दृष्टिकोण से करना काफी कठिन हो जाता है।

गतिशील अर्थशास्त्र की जटिलताओं के कारण ही अनेक अर्थशास्त्रियो ने स्थिर अर्थशास्त्र का पक्ष प्रस्तुत किया है। जैसा कि प्रो लर्नर (Prof Lerner) का विचार है

> "जब हम स्थिर अर्थशास्त्र को छोड देते है तो आर्थिक समस्यायें अस्पष्ट प्रतीत होने लगती है।"[१२]

परन्तु इस दृष्टिकोण से गतिशील अर्थशास्त्र के महत्व मे कोई कमी नहीं आती है।

---

12 "When we leave the stationary economy (static economics) thing (economic problems) become somewhat less neat"

—Lerner

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दोनो ही विश्लेषणो की कुछ सीमायें है तथा दोनो ही विश्लेषण अथशास्त्र के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। अथशास्त्र के अध्ययन के लिये किसी भी विश्लेषण को छोडा नही जा सकता, क्योकि अनेक आर्थिक समस्यायें ऐसी है जिनका अध्ययन केवल स्थिर अथशास्त्र द्वारा ही हो सकता है तथा कुछ ऐसी भी आर्थिक समस्यायें है जिनका समाधान केवल गतिशील अथशास्त्र मे ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त वास्तविक जगत म कुछ ऐसी भी आर्थिक समस्यायें हैं जिनका सन्तोषजनक समाधान किसी एक के द्वारा सम्भव नही है वल्कि दोनो—स्थिर व गतिशील—की आवश्यकता होती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र के अध्ययन म दोनो ही महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ स्थिर व गतिशील अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। दोनो के गुण और दोषो की व्याख्या कीजिए।

२ स्थिर व गतिशील विश्लेषण के विचार की व्याख्या कीजिए तथा अर्थशास्त्र के अध्ययन म गतिशील विश्लेषण के महत्व को समझाइए।

३ स्थिर और गतिशील अर्थशास्त्र मे क्या अन्तर है ? स्थिर अर्थशास्त्र की उपयोगिता क्या है ?

४ स्थिर व गतिशील अर्थशास्त्र की उपयोगिता एव सीमाओ की व्याख्या कीजिए। इनम से कौन सी प्रणाली अधिक सामान्य और मौलिक है ?

५ 'स्थिर व गतिशील दोनो ही विश्लेषण अथशास्त्र के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है।' व्याख्या कीजिए।

अध्याय २

★

राष्ट्रीय आय
[National Income]

★ ★ ★

राष्ट्रीय आय का विचार अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में सर्वप्रथम एडम स्मिथ ने विचार प्रस्तुत किये, परन्तु उनका विचार अस्पष्ट था। बीसवीं शताब्दी में इस विचार को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने स्पष्ट रूप में प्रयुक्त कर वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। साधारणतः राष्ट्रीय आय से अभिप्राय वस्तुओं और सेवाओं की उस मात्रा से है जो कि एक वर्ष में किसी राष्ट्र में उत्पादित की जाती है। राष्ट्रीय आय की गणना करते समय वस्तुओं और सेवाओं के कुल उत्पादन में मशीनों की घिसावट को घटा दिया जाता है।

राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं लेकिन हम केवल प्रो मार्शल, प्रो पीगू (Prof Pigau) तथा प्रो फिशर (Prof Fisher) द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय आय की परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

मार्शल की परिभाषा (Definition of Prof Marshall)

प्रो मार्शल ने अपनी प्रस्तुत 'Principles of Economics' में राष्ट्रीय लाभांश या राष्ट्रीय आय की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी है

"किसी देश की पूंजी एवं श्रम का उसके प्राकृतिक साधनों पर प्रयोग करने से प्रतिवर्ष भौतिक और अभौतिक वस्तुओं तथा सभी प्रकार की सेवाओं का एक शुद्ध योग (net aggregate) उत्पन्न करते हैं। यही उस देश की वास्तविक शुद्ध आय, या आगम या राष्ट्रीय लाभांश है।"[1]

---

1 "The labour and capital of the country, acting on its natural resources, produce annually a certain net aggregate of commodities, material and immaterial, including services of all kinds This is true net annual income, or revenue of the country, or the national dividend" —Marshall

मार्शल के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना वार्षिक आधार पर ही की जाती है। उनके अनुसार देश म उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के योग में से घिसावट व्यय आदि घटा देने के बाद राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है। **मार्शल के अनुसार राष्ट्रीय आय की** गणना करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान म रखना चाहिए —

(१) राष्ट्रीय आय की गणना वार्षिक आधार पर की जानी चाहिए।

(२) राष्ट्रीय आय की गणना करते समय कुल उत्पादन म से मशीनों की घिसावट तथा टूट फूट व्यय निकाल देना चाहिए।

(३) विदेशों म किये गये विनियोगों से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय इसम जोड देनी चाहिए।

(४) *उन सभी सेवाओं को, जिन्हे व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों तथा मित्रों को बिना* किसी मूल्य के प्रदान करता है, राष्ट्रीय आय म नहीं जोडना चाहिए।

(५) निजी सम्पत्ति और सार्वजनिक सम्पत्ति से प्राप्त होने वाले लाभ को राष्ट्रीय आय म नहीं जोडना चाहिए।

मार्शल की परिभाषा की आलोचना (Criticism of Marshall's Difinition)

राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध म प्रो मार्शल के विचार सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से तो उचित प्रतीत होते हैं, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसम अनेक कठिनाइयां प्रतीत होती हैं। प्रो मार्शल की परिभाषा की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) कुल उत्पादन की सांख्यिकी माप करना बहुत कठिन है, क्योंकि एक वर्ष म एक देश म उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं की संख्या बहुत अधिक होती है। अतः *इन सभी वस्तुओं की माप करना अत्यन्त कठिन है।*

(२) व्यक्तिगत उपभोग के लिए रखी गई वस्तुओं की गणना करना कठिन है, अर्थात वे वस्तुयें जो बाजार म विनिमय के लिए उपलब्ध नहीं होती, उनकी गणना करने म कठिनाई आती है।

(३) *वस्तुओं तथा सेवाओं की दोहरी गणना* (double counting) *की सम्भावना रहती* है, क्योंकि यह सम्भव है कि पहले किसी एक वस्तु की गणना एक स्थान पर करें, और उसके रूप म परिवर्तन होने पर उसकी गणना दूसरे स्थान पर भी करलें, *जैसे—कृषि उत्पादन की गणना करते समय कपास की मात्रा को सम्मिलित कर* लिया जाय, तत्पश्चात् औद्योगिक उत्पादन की गणना करते समय उस कपास से बनाये गये वस्त्र की गणना करलें। इस प्रकार दोहरी गणना के कारण राष्ट्रीय आय की सही-सही गणना नहीं हो पाती।

यद्यपि मार्शल की परिभाषा की आलोचना की गई है, फिर भी इसमे सरलता और व्यापकता (comprehensiveners) का गुण पाया जाता है।

पीगू की परिभाषा (Difinition of Prof Pigou) ,

प्रो पीगू की राष्ट्रीय आय की परिभाषा मे भी मार्शल के समान उत्पादित वस्तु और सेवाओ को राष्ट्रीय आय का आधार माना है, परन्तु पीगू ने अपनी परिभाषा को व्यावहारिक बना दिया है।

पीगू के शब्दो मे—"राष्ट्रीय आय समाज की वस्तुनिष्ठ आय (objective income) का वह भाग है जिसे मुद्रा मे मापा जा सकता है, इसमे विदेशो से प्राप्त होने वाली आय भी सम्मिलित रहती है।"[2]

पीगू ने अपनी परिभाषा मे दो बातो पर जोर दिया है

(१) पीगू ने यह स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्रीय लाभाश (राष्ट्रीय आय) म केवल उन्ही वस्तुओ और सेवाओ को सम्मिलित किया जायेगा, जिनको मुद्रा मे मापा जा सकता है अर्थात् जिनका विनिमय किया जाता है। इस प्रकार जो सेवायें मनुष्य स्वय करता है या अपने परिवार के लिए नि शुल्क करता है, राष्ट्रीय आय मे नही सम्मिलित होगी।

(२) देश के नागरिको द्वारा विदेशो मे किये गये विनियोगो से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय मे सम्मिलित करना चाहिए।

प्रो पीगू की परिभाषा मार्शल की परिभाषा से श्रेष्ठ दिखाई पडती है क्योकि पीगू न राष्ट्रीय आय की गणना करने लिए व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया है।

आलोचना (Criticism) ·

यद्यपि पीगू की परिभाषा मे निश्चितता तथा वास्तविकता पाई जाती है, परन्तु इसमे भी अर्थशास्त्रियो ने अनेक दोष बताये हैं

(१) प्रो पीगू ने वस्तुओ के बीच कृत्रिम भेद किया है, उन्होने वस्तुओ को दो भागो मे एक, जिन वस्तुओ का मुद्रा मे विनिमय होता है, दूसरी, जिन वस्तुओ का मुद्रा म विनिमय नही होता। यह भेद सही नही है, अनौचित्यपूर्ण है।

---

2 "The National Dividend is that part of the objective income of the community, including, of course, income derived from abrood, which can be measured in money" —Pigou

(२) यदि पीगू के दृष्टिकोण के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना की जाय तो इसम केवल उन्ही वस्तुओ और सेवाओ को सम्मिलित किया जायेगा जिनका मुद्रा द्वारा विनिमय होता है। एसा करने से राष्ट्रीय आय की सही गणना नहीं हो सकेगी तया अनेक कठिनाइया उपस्थित हो जायेंगी, जैसे—पीगू के अनुसार ही एक नौकरानी की सेवायें राष्ट्रीय आय म सम्मिलित की जायेगी क्योकि उसे अपनी सेवा का पारिश्रमिक प्राप्त होता है, यदि मालिक अपनी नौकरी से शादी कर लेता है तो उसकी सेवायें राष्ट्रीय म शामिल नही होगी।

(३) पीगू की परिभाषा सभी प्रकार की अर्थव्यवस्था म समान रूप से लागू नही होती। यह केवल उन देशों मे लागू होती है जहा पर विनिमय केवल मुद्रा के माध्यम से ही होता है। अर्द्धविकसित या अविकसित देशो की अर्थव्यवस्थाओ म जहा पर वस्तु विनिमय का चलन होता है वहा यह परिभाषा उपयोगी सिद्ध नही होती। यदि एक ऐसी अर्थव्यवस्था हो जहा पर मुद्रा का चलन बिल्कुल न हो तो पीगू के इस विचार के आधार पर उस देश की राष्ट्रीय आय शून्य रह जायेगी। अत यह विचार केवल विकसित दशो के लिए ही उपयोगी है।

फिशर की परिभाषा (Difinition of Fisher)

फिशर की राष्ट्रीय आय की परिभाषा मार्शल और पीगू की परिभाषाओ से कुछ भिन्न है। मार्शल और पीगू दोनो ने ही राष्ट्रीय आय की गणना 'उत्पादन' के आधार पर करने को कहा है, जबकि फिशर ने राष्ट्रीय आय का 'उपभोग' से सम्बन्धित किया है।

> **प्रो फिशर** के शब्दो म—"राष्ट्रीय लाभाश या आय म केवल वही सेवाऐं सम्मिलित की जाती है जो कि अन्तिम रूप से उपभोक्ताओ का प्राप्त होती हैं, चाहे वे भौतिक या मानवीय वातावरण से प्राप्त हो। इस प्रकार एक पियानो या ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है इस वर्ष की आय का भाग नही है, वरन् वह केवल पूजी म वृद्धि है। केवल वही सेवायें जो इनके प्रयोग से मुझे इस वर्ष प्राप्त होगी, आय कहलायेंगी।"[3]

---

3 "The national dividend or income consists solely of services as received by ultimate consumers, whether from their material or from the human enviranment Thus, a piano or over coat made for me this year is not a part of this year's income, but an addition to capital Only the services rendered to me during this year by there things are income" —Fisher

आलोचना (*Criticism*)

यद्यपि फिशर की परिभाषा अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि यह राष्ट्रीय आय में वस्तुओं और सेवाओं के वास्तविक उपभोग के मौद्रिक मूल्यों को ही सम्मिलित करती है लेकिन इस परिभाषा के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जायेंगी। इस परिभाषा की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) प्रो. फिशर की परिभाषा के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इसमें एक देश में रहने वाले सभी व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं का योग ज्ञात करना होगा। उपभोग का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत होने के कारण इसकी गणना करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

(२) इस पद्धति के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए टिकाऊ वस्तुओं के 'जीवनकाल' को ज्ञात करना पड़ेगा। बिना 'जीवनकाल' ज्ञात किये किसी वस्तु के किसी विशिष्ठ वर्ष में हुए उपभोग का मौद्रिक मूल्य का पता नहीं लगा सकते। वस्तुओं और सेवाओं के जीवनकाल की गणना करना असम्भव सा प्रतीत होता है।

(३) टिकाऊ वस्तु के जीवनकाल का पता लगाना कठिन है लेकिन यदि किसी प्रकार यह पता भी लगा लिया जाय तो उस स्थिति में जबकि वस्तु हस्तांतरित होती है अर्थात् कई हाथों से गुजरती है तब उसकी सही कीमत और उत्पादन तिथि का पता लगाना अत्यन्त कठिन होता है।

फिशर की आलोचनाओं से स्पष्ट होता है कि उपभोग के आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना करना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार फिशर के दृष्टिकोण का व्यावहारिक महत्व काफी सीमित रह जाता है।

तीनों परिभाषाओं की तुलनात्मक उपयुक्तता (Relative Suitability of the three Definitions)

राष्ट्रीय आय की मार्शल, पीगू और फिशर द्वारा दी गई परिभाषाओं का हमने अभी तक विवेचन किया है। इन तीनों परिभाषाओं में कौन सी परिभाषा श्रेष्ठ है, इसका उत्तर देना कठिन है। उपर्युक्त तीनों परिभाषाओं में कोई भी पूर्ण नहीं है तीनों परिभाषाओं के गुण और दोष हैं। परिभाषा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए हमें उद्देश्य को सामने रखना होगा अर्थात् राष्ट्रीय आय का किस उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जा रहा है।

यदि हमारा उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों के आर्थिक कल्याण को मापना है या जीवन स्तर की तुलना करनी है तो फिशर की परिभाषा अधिक श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि फिशर के अनुसार राष्ट्रीय आय म केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित किया जायगा जिनका कि उपभोग एक देश म रहने वाले व्यक्ति करते हैं। यदि हमको यह ज्ञात करना हो कि युद्ध की स्थिति म एक देश म कितनी सामग्री मिल सकती है तब भी फिशर की परिभाषा श्रेष्ठ साबित होगी। क्योंकि इसके लिए यह पता लगाना होगा कि देश म कितनी सामग्री बनाई जा सकती है और कितनी सामग्री का उपभोग होगा।

जब शान्तिकाल म हमारा उद्देश्य यह ज्ञात करना हो कि आर्थिक कल्याण को कौन-कौनसे तत्व प्रभावित कर रहे हैं तब प्रो मार्शल तथा प्रो पीगू की परिभाषायें श्रेष्ठ कही जायेंगी, क्योंकि दीर्घकाल म आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने के लिए वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन मे अधिक वृद्धि करना आवश्यक होता है।

मार्शल और पीगू की परिभाषाओं म मार्शल की परिभाषा विस्तृत है जबकि पीगू की परिभाषा अधिक व्यावहारिक और सरल है।

राष्ट्रीय आय का आधुनिक विचार

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार राष्ट्रीय आय के अर्थ को समझने के लिए दो विचारों को समझ लेना आवश्यक है

(१) कुल राष्ट्रीय उत्पादन (Gross National Product i e G N P),

(२) विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (Net Nat onal Product i, e, N N P)।

(१) कुल राष्ट्रीय उत्पादन (G N P)—किसी देश में एक वर्ष म जितनी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है उनके कुल मौद्रिक मूल्य को (बाजार की कीमतों पर) कुल राष्ट्रीय उत्पादन कहते हैं। कुल राष्ट्रीय उत्पादन म केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं का मौद्रिक मूल्य ही सम्मिलित रहता है, अर्थात् इसम इन मध्यवर्ती (intermediate) वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य नहीं जोडा जाता जिनका प्रयोग अन्तिम वस्तु के उत्पादन म किया जाता है।

कुल राष्ट्रीय उत्पादन म अप्रत्यक्ष कर भी सम्मिलित रहते हैं, क्योंकि कुल राष्ट्रीय आय की गणना बाजार की कीमतों पर होती है और बाजार की कीमतों म अप्रत्यक्ष कर सम्मिलित होते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक मीटर कपडे पर उत्पादन लागत १०) रु आती है, उस पर १) रु उत्पादन कर है तो कपडे का बाजार मूल्य ११) रु मीटर होगा।

विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (N N P) विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन से अभिप्राय एक वर्ष मे किसी देश मे वस्तुओ और सेवाओ के विशुद्ध (net) उत्पादन से होना है। जब वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जाता है तब मशीन और अन्य अचल सम्पत्ति का कुछ न कुछ ह्रास (Depreciation) अवश्य होता है, कुल राष्ट्रीय उत्पादन म से मशीनो की घिसावट आदि का व्यय घटा देने से जो शेष बचत है वह विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन होता है।

सक्षेप म

विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन = कुल राष्ट्रीय उत्पादन — घिसावट व्यय।

(N. N P) = (G N P) — Depreciation charges

आधुनिक अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित कुल राष्ट्रीय उत्पादन तथा विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन के अतिरिक्त तीन अन्य धारणाओ का भी अध्ययन करते है। ये धारणाय निम्नलिखित हैं —

(१) राष्ट्रीय आय (National Income),
(२) व्यक्तिगत आय Personal Income),
(३) व्यय योग्य आय (Disposable Income)।

(१) **राष्ट्रीय आय** (National Income)—राष्ट्रीय आय से अभिप्राय भूमि, श्रम, पूजी तथा सगठन सभी उत्पादन के साधनो को मिलने वाले आय स्त्रोतों के योग से होता है। इसे साधन लागतो पर राष्ट्रीय आय भी कहते है। यद्यपि आधुनिक अर्थशास्त्री विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन का ही राष्ट्रीय आय कहते हैं, परन्तु कुछ अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय को सकुचित रूप म परिभाषित करते है। उनके अनुसार विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन मे से अप्रत्यक्ष कर घटा देने के बाद जो शेष बचता है वही राष्ट्रीय आय है। कुछ अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय म विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन अप्रत्यक्ष कर घटा देने के बाद उपदान (subsidies) जोड देन हैं, इस प्रकार

राष्ट्रीय आय = विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन — अप्रत्यक्ष कर
(National Income) = (Net National Product) — (Inderect Taxes)
+ उपदान
+ (subsidies)

(२) **व्यक्तिगत आय** Personal Income)—व्यक्तिगत आय से अभिप्राय एक देश म एक वर्ष म व्यक्तियो अथवा परिवारो को वास्तविक रूप म प्राप्त होने वाली आय से होता है। व्यक्तिगत आय के निर्धारण के लिए राष्ट्रीय आय म से उन राशियो को निकालना होता है जिनका उत्पादन के साधनो म वितरण नही किया जाता, जैसे—आयकर कम्पनियो

का अतिरिक्त लाभ, सामाजिक सुरक्षा अशदान (social security contribution) आदि, तथा उन भुगतानो को जोड दिया जाता है जो सरकार द्वारा जनता को दिया जाता है जैसे—सामाजिक सरक्षण के अन्तगत मिलने वाला लाभ तथा प्रतिभूतियो पर मिलने वाला ब्याज आदि।

(३) व्यय योग्य आय (Disposable Income)—व्यय योग्य आय से अभिप्राय उस आय स होता है जिसका व्यक्ति वास्तविक रूप म उपयोग कर सकता है। व्यक्ति को प्राप्त होने वाली सम्पूर्ण आय व्यय करने के लिए प्राप्त नहीं होती, अपितु उस आय म से कुछ अश व्यक्तियो द्वारा प्रत्यक्ष करो के रूप मे सरकार को चुकाना पडता है। इस प्रकार व्यक्तिगत आय म से प्रत्यक्ष कर चुका देने के बाद जो शेष बचता है वही व्यय योग्य आय है।

राष्ट्रीय आय की गणना (Calculation of National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना करने की प्रो कुजनेट्स (Prof Kuznets) ने तीन रीतिया बतायी हैं —

(१) वस्तु सेवा रीति (Commodity service method),

(२) आय प्राप्त रीति (Income received method),

(३) उपभोग बचत रीति (Consumption saving method),

कुजनेट्स के अतिरिक्त अन्य अर्थशास्त्रियो ने राष्ट्रीय आय की गणना के लिये अनेक रीतिया सुझायी हैं, उनमे प्रमुख निम्नलिखित हैं —

(४) व्यावसायिक गणना रीति (Occupational method),

(५) सामाजिक लेखाकन विधि (Social accounting method)।

प्रो वी के आर वी राव (Prof. V K R V Rao) ने राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन और आय गणना रीति का सामूहिक प्रयोग किया है।

(१) वस्तु सेवा रीति (Commodity service method)—इस रीति को 'उत्पादन गणना रीति' (census of production method) भी कहते हैं। इस रीति मे एक वर्ष म उत्पादित सभी वस्तुओ और सेवाओ का शुद्ध मूल्य (net value) ज्ञात किया जाता है और उनको जोडने के बाद राष्ट्रीय आय प्राप्त की जाती है। इस प्रकार जो योग (total) प्राप्त किया जाता है उसे 'अन्तिम उत्पादन योग' (final products total कहा जाता है।

इस रीति से गणना करते समय निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखा जाता है —

(१) वस्तुओ तथा सेवाओ की दुहरी गणना से बचने के लिये केवल अन्तिम वस्तुओ और सेवाओ का ही मूल्य ज्ञात किया जाता है।

(२) कुल उत्पादन मे से अचल सम्पत्ति का घिसावट व्यय घटा दिया जाता है।

(३) विदेशी लेन-देन का समायोजन (adjustment) कर लिया जाता है। अर्थात् आयात और निर्यात के मूल्यो की गणना की जाती है, जिसमे राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिये आयात और निर्यात का अन्तर लिया जाता है।

(२) **आय-प्राप्त रीति** (Income-received method)—इस रीति को 'आय गणना रीति' (income census method) भी कहते है। इस रीति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए व्यक्तियो तथा व्यवसायिक फर्मों द्वारा एक वर्ष मे प्राप्त शुद्ध आय को ज्ञात किया जाता है और उनकी आयो को जोड लिया जाता है। दूसरे शब्दों मे, इस रीति के द्वारा व्यक्तियो को प्राप्त मजदूरी, वेतन, लाभ, लगान और ब्याज आदि को जोडकर राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है।

इस रीति द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिये निम्नलिखित बातो को ध्यान म रखा जाता है —

(१) इसमे हस्तातरण भुगतानो (transfer payments) को सम्मिलित नही किया जाता, अर्थात् उन भुगतानो को जो किसी प्रकार का उत्पादन नही करते, राष्ट्रीय आय म सम्मिलित नही किया जाता जैसे वृद्धावस्था पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता आदि।

(२) जिन वस्तुओ और सेवाओ के लिये मौद्रिक भुगतान नही किया जाता उनको राष्ट्रीय आय मे सम्मिलित नही किया जाता।

(३) अवितरित लाभ को राष्ट्रीय आय मे जोड लिया जाता है।

(४) सेवायोजक या उत्पादक द्वारा उत्पादन मे लगाये गये स्वय के साधनो के पुरस्कारो को बाजार कीमत के आधार पर राष्ट्रीय आय मे सम्मिलित किया जाता है।

(३) **उपभोग-बचत रीति** (Consumption-saving method)—इस रीति को 'व्यय गणना रीति' (census of expenditure method) तथा 'उपभोग विनियोग रीति (consumption investment method) भी कहते हैं।

इस रीति की यह मान्यता है कि व्यक्ति अपनी आय मे से कुछ भाग बचाकर रख लेते हैं और शेष भाग व्यय कर देते है, अत राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिये देश के समस्त व्यक्तियो की कुल बचतो तथा कुल व्ययो को जोड लिया जाता है। कुल बचत

कुल विनियोग के बराबर होती है, इसलिए इस रीति को बचत विनियोग रीति कहते हैं। इस रीति की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि व्यक्तियों की बचतों और व्ययों के विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त नहीं हो पाते।

(४) व्यावसायिक गणना रीति (Occupational method)—इस रीति में राष्ट्रीय आय की गणना देश में रहने वाले व्यक्तियों के व्यवसायों के आधार पर की जाती है। इस रीति में सर्वप्रथम कृषि, उद्योग धन्धे, बैंकिंग, यातायात तथा व्यवसायों में कार्य करने वाले व्यक्तियों की आय की तालिकायें बनाली जाती हैं, तत्पश्चात् इन विभिन्न व्यवसायों की तालिकाओं का योग प्राप्त कर इनको जोड़ लिया जाता है। इन विभिन्न तालिकाओं के जोड़ से प्राप्त योग को ही राष्ट्रीय आय कहते हैं।

स्टाम्प के अनुसार इस रीति में उन आयों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए जो कि किसी व्यवसाय से प्राप्त नहीं होती है जैसे—वृद्धावस्था पेन्शन युद्ध के विशेष भत्ते आदि।

(५) सामाजिक लेखांकन रीति (Social accounting method)—इस रीति का प्रतिपादन रिचर्ड स्टोन (Richardstone) ने किया। इस रीति के अनुसार विभिन्न प्रकार के लेखाओं और लेन देन को विभिन्न वर्गों में बांट दिया जाता है। समान आय प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को एक ही वर्ग में रखा जाता है और विभिन्न वर्गों की औसत आय मालूम करके उस वर्ग के व्यक्तियों की संख्या से गुणा कर दिया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त विभिन्न वर्गों के योग को जोड़ कर राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है।

उत्पादन गणना रीति तथा आय गणना रीति का सम्मिश्रण (Both Method Mixed)

प्रो वी के आर वी राव (Prof V K R V. Rao) ने भारत की राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उत्पादन गणना रीति तथा आय गणना रीति दोनों का सहारा लिया है। इस रीति के अनुसार जहां पर उत्पादन के विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध होते हैं, वहां उत्पादन गणना रीति और जहां पर आय के विश्वसनीय व सही आंकड़े प्राप्त होते हैं, वहां पर आय गणना रीति का प्रयोग किया जाता है। जहां पर विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं होते वहां पर स्वयं सर्वेक्षण करके आंकड़े तथा सूचनायें प्राप्त की जाती हैं।

राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाइयां (Difficulties in Calculation of National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना करना किसी भी देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, परन्तु राष्ट्रीय आय की गणना करने में अनेक कठिनाइयां आती हैं जिनके कारण राष्ट्रीय आय की सही-सही गणना नहीं हो पाती। ये कठिनाइयां विकसित देशों की अपेक्षा अविकसित और

अल्पविकसित देशो म अधिक आती हैं, क्योकि इन देशो म विश्वसनीय आकडे उपलब्ध नही हो पाते । राष्ट्रीय आय की गणना की प्रमुख कठिनाइया निम्नलिखित है —

(१) राष्ट्रीय आय की गणना करत समय आकडे एकत्रित करने मे काफी कठिनाई आती है । अल्पविकसित और अविकसित देशो म प्राप्त आकडे अविश्वसनीय तथा अपर्याप्त भी होते हैं जिससे सही गणना नही हो पाती ।

(२) राष्ट्रीय आय की गणना मुद्रा मे की जाती है, लेकिन ऐसे देशो मे जहा पर उ पादन का एक बडा भाग बाजार मे नही पहुँच पाता, वहा राष्ट्रीय आय की गणना करने म कठिनाई आती है ।

(३) राष्ट्रीय आय की गणना करने म बहुत-सी वस्तुओं और सेवाओं की दुहरी गणना होने की सम्भावना बनी रहती है, जिसके कारण सही राष्ट्रीय आय ज्ञात नही हो पाती ।

(४) अल्पविकसित और अविकसित देशो म आय के सम्बन्ध म सही जानकारी प्राप्त करना कठिन होता है विशेष रूप से उन व्यक्तियो की आय ज्ञात करने मे जो आय कर नही देते है । इसके अतिरिक्त भारत जैसे देश म जहा पर व्यक्ति (कृषक) एक व्यवसाय न अपनाकर अनेक व्यवसायो म लगा रहता है ।

(५) विभिन्न वर्षों की राष्ट्रीय आय की तुलना करने के लिए मूल्य स्तर (price level) मे परिवतन के अनुसार समयोजन (adjustment) करना होता है । इसके लिए निर्देशाङ्को का प्रयोग करना पडता है, जबकि स्वय निर्देशाङ्कों के निर्माण मे भी अनेक कठिनाइया आती है । अत सही जानकारी उपलब्ध नही हो पाती ।

राष्ट्रीय आय विश्लेषण का महत्व (Significance of National Income Analysis)

राष्ट्रीय आय के आकडो को 'अर्थ व्यवस्था का लेखा (account of economy) भी कहा जाता है । इसकी सहायता से विभिन्न भागो मे बटी हुई राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था का सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता है । बचत, विनियोग, पूजी निर्माण औद्योगिक उत्पादन, जीवन-स्तर तथा आर्थिक कल्याण आदि का अध्ययन करने म सहयोग प्रदान करता है । प्रो शूप (Prof Shoup) ने इसके महत्व को दर्शाते हुए लिखा है

"अर्थशास्त्र की अधिकाश आर्थिक समस्याओं को समझने के लिए राष्ट्रीय आय और उसको प्रभावित करने वाले तत्त्वो का अध्ययन करना चाहिए ।"[४]

---

4 "Most of the major problems in economics involve the concept of National Income and the understanding of the factors governing it" —Prof Shoup

राष्ट्रीय आय का महत्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होता है :

(१) राष्ट्रीय आय देश की आर्थिक प्रगति की सूचक है। इस विश्लेषण के द्वारा यह पता लगता है कि उत्पादन में किस प्रकार और कितनी वृद्धि हो रही है। यह सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था की उन्नति और अवनति की ओर संकेत करती है तथा देश में उपलब्ध साधनों के प्रयोग की स्थिति को भी दर्शाती है।

(२) राष्ट्रीय आय की सहायता से देश की आर्थिक प्रगति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तथा विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति की तुलना करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

(३) सरकार की सही आर्थिक नीति के निर्धारण में सहयोग देते हैं। सरकार अपनी मौद्रिक नीति, प्रशुल्क नीति, आर्थिक सहायता आदि नीतियों के निर्माण में राष्ट्रीय आय विश्लेषण का सहारा लेती है।

(४) *आर्थिक नियोजन (economic planning)* के लिए राष्ट्रीय आय का प्रयोग अनिवार्य है, क्योंकि योजनाओं के निर्माण के लिए राष्ट्र में उपलब्ध साधनों, प्रगति की स्थितियों तथा विनियोग और बचत का अध्ययन आवश्यक होता है।

(५) राष्ट्रीय आय देश के आर्थिक कल्याण की सूचक होती है मार्शल ने बताया है कि राष्ट्रीय आय जितनी अधिक होगी उस देश का आर्थिक कल्याण भी उतना अधिक होता है।

(६) राष्ट्रीय आय विश्लेषण के प्रयोग से अर्थ व्यवस्था के दोषों की जानकारी प्राप्त हो जाती है जिससे विकास की दर को तीव्र करने के लिए उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

राष्ट्रीय आय विश्लेषण की सीमायें (Limitation of National Income Analysis)

राष्ट्रीय आय की गणना करने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। आधुनिक जगत में अधिकांश कठिनाइयाँ दूर की जा चुकी हैं, लेकिन अल्प विकसित देशों में अब भी अनेक कठिनाइयाँ राष्ट्रीय आय की गणना करने में उपस्थित हो जाती हैं राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आँकड़े विकसित और अल्प विकसित तथा अर्द्ध विकसित देशों में पूर्ण सही चित्र प्रस्तुत न करके एक मोटा अनुमान प्रस्तुत कर देते हैं। इस विश्लेषण की कुछ सीमायें हैं, जो निम्नलिखित हैं —

(१) *विभिन्न देशों की राष्ट्रीय आय की तुलना करना वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है।* इसका कारण यह है कि विभिन्न देशों का आर्थिक स्तर, उपभोक्ताओं की

आवश्यकतायें उनका उपभोग श्रम अलग-अलग होना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश अपनी राष्ट्रीय आय की गणना अपने ही ढंग से करता है, अतः राष्ट्रीय आय की गणना की रीतियों म भिन्नता होने के कारण भी विभिन्न देशों की राष्ट्रीय आय की तुलना करना वैज्ञानिक नहीं है।

(२) राष्ट्रीय आय की गणना मुद्रा म की जाती है। सही गणना के लिए उत्पादन लागत का सही ज्ञान आवश्यक है, परन्तु व्यवहार मे वास्तविक उत्पादन लागत का पता लगाना कठिन है।

(३) कुछ अर्थशास्त्रियो का विचार है कि राष्ट्रीय आय का केवल तुलनात्मक महत्व है।

राष्ट्रीय आय विश्लेषण की अनेक सीमायें होने के बावजूद भी राष्ट्रीय आय के महत्व मे कोई कमी नही आती। आज के युग मे जबकि अधिकाश सरकारें अपनी आर्थिक समृद्धि मे वृद्धि करने के लिए योजनाओ का सहारा ले रही है, इस विश्लेषण का महत्व काफी बढ गया है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. राष्ट्रीय आय से आप क्या समझते हैं? राष्ट्रीय आय की गणना किस प्रकार की जाती है?

२. राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध मे मार्शल, पीगू और फिशर के विचारो की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

३. कुल राष्ट्रीय उत्पादन (Gross National Product) तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (Net National Product) मे अन्तर बताइए।

४. मार्शल फिशर तथा पीगू द्वारा दी गई राष्ट्रीय आय की परिभाषाओ का परीक्षण कीजिए। इन परिभाषाओं मे कौन-सी परिभाषा श्रेष्ठ है और क्यो?

५. राष्ट्रीय आय के महत्व को समझाइए। राष्ट्रीय आय की गणना करने मे आने वाली कठिनाइयो का भी उल्लेख कीजिए।

अध्याय ३

★

आर्थिक प्रणाली के कार्य

[Functions of the Economics System]

★ ★ ★

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक आर्थिक क्रियायें करता है। उत्पादन, विनिमय, वितरण आदि क्रियायें आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु करता है। इन आर्थिक क्रियाओं पर प्राकृतिक व भौतिक साधनों तथा सामाजिक और राजनैतिक संगठनों का प्रभाव पड़ता है। उत्पादन, विनिमय, वितरण आदि की क्रियाओं के संचालन के लिए परिस्थिति के अनुसार नियमों तथा सिद्धान्तों का विकास होता रहता है तथा अनेक संस्थाओं का निर्माण हो जाता है। ये नियम, सिद्धान्त तथा संस्थायें एक आर्थिक प्रणाली का ढांचा तैयार करती है और यह ढांचा ही आर्थिक प्रणाली का आधार है, जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का संचालन होता है।

आर्थिक प्रणाली से आशय उस वैधानिक तथा संस्थागत ढांचे (legal and institutional frame work) से है जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियायें संचालित होती हैं। आर्थिक क्रियाओं से अभिप्राय उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण सम्बन्धी क्रियाओं से होता है। ये समस्त आर्थिक क्रिया-कलाप मनुष्य की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से किये जाते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति में कहीं-न कहीं सरकार का कम या अधिक हस्तक्षेप अवश्य रहता है, इसलिए किसी देश की आर्थिक प्रणाली उस देश की सरकार द्वारा किये जाने वाले नियंत्रण व हस्तक्षेप की मात्रा एवं सीमा पर निर्भर करती है।

आर्थिक प्रणाली की परिभाषा सूक्ष्म एवं सही रूप में देना काफी कठिन है क्योंकि इसमें अनेक रूप हो सकते है। फिर भी अर्थशास्त्रियों ने इसे परिभाषित करने की चेष्टा की है।

विलियम एन लुक्स (William N Loucks) के शब्दों में—आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत वे संस्थायें आती हैं, जिनको व्यक्तियों या राष्ट्र या समूह द्वारा चुना

जाता है या स्वीकार किया जाता है तथा जिनके माध्यम से उनके साधनो को मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि हेतु प्रयोग मे लाया जाता है।"[1]

आर्थिक प्रणाली की एक श्रेष्ठ परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है —

"आर्थिक प्रणाली सस्थाओ का एक ढाचा है जिसके द्वारा उत्पत्ति के साधनो तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ के प्रयोग पर सामाजिक नियत्रण किया जाता है।"[2]

आर्थिक प्रणाली के कार्य (Function of Economic System)

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को (पूजीवाद, समाजवाद, या मिश्रित अर्थ व्यवस्था) कुछ आवश्यक एव आधारभूत कार्य करने पडते हैं। यद्यपि इनकी कार्य पद्धति तथा प्रणाली म भिन्नता होने के कारण भिन्नता आ जाती है। आर्थिक प्रणाली के आधारभूत एव मौलिक कार्यों की सख्या के सम्बन्ध म अर्थशास्त्रियो मे मतैक्य नही है। प्रो फरग्यूसन तथा क्रेप्स (Ferguson and Kreps) तथा प्रो सेम्युलसन (Prof Samuelson) ने आर्थिक प्रणाली के तीन कार्य बताये हैं। प्रो स्टिगलर (Stigler) ने चार, प्रो हाम (Prof Halm) ने सात तथा प्रो नाइट (Prof Knight) और लेफ्टविच (Leftwich) ने पाच आधारभूत कार्य बताये हैं।

प्रो. सेम्युलसन के अनुसार आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्य केवल तीन होते हैं, उन्ही के शब्दो म

"प्रत्येक अर्थव्यवस्था को किसी प्रकार तीन मूलभूत आर्थिक समस्याओ को हल करना होता है। सभी सम्भावित वस्तुओ और सेवाओ मे से किस प्रकार की और कितनी वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जायेगा। इन वस्तुओ का उत्पादन करने के लिये आर्थिक साधनो का किस प्रकार प्रयोग होगा तथा वस्तुओ का उत्पादन किसके लिए किया जायेगा अर्थात् विभिन्न व्यक्तियो तथा वर्गों मे आय का वितरण किस प्रकार का होगा।"[3]

---

1 "An economic system conists of those institutions which a given people, or nation or group of nations, has chosen or accepted as the means through which their resources are utilised for the satis factions of human wants"—William N Loucks

2 'Economic system is the frome work of institutions by which the use of the means of production and of their products is socially controlled" —Quoted from K P. Jain's book 'समाजशास्त्र के सिद्धात

3 "Every economy must some how solve the three fundamental economic problems 'What kind and quantity shall be produced of all possible goods and services?' How economic resources'

सैम्युलसन के इस मत से सभी अर्थशास्त्री सहमत है कि ये तीन आधारभूत कार्य आर्थिक प्रणाली को करने होते हैं, परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसमे पाच कार्य बताये हैं। ये पाच कार्य निम्नलिखित हैं

(१) किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ? (What is to be produced ?),
(२) वस्तुओ का उत्पादन कैसे किया जाय ? (How shall the goods be produced),
(३) वस्तुओ का उत्पादन किसके लिये किया जाय ? (For whom shall the goods be produced ?),
(४) साधनो का पूर्ण उपयोग (Full utilisation of Resources),
(५) आर्थिक अनुरक्षण तथा विकास (Economic Maintenance and growth)।

उपर्युक्त प्रथम तीन अवस्थाओ का किसी भी अर्थ व्यवस्था के लिए हल करना आवश्यक है, बिना इन अवस्थाओ का हल किये कोई भी अर्थ व्यवस्था कार्य नहीं कर सकती। बाद की दो अवस्थाओ के हल से अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप अच्छा बनता है।

१ किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ? (What is to be produced ?)

किसी भी अर्थ-व्यवस्था के सामने सबसे पहला कार्य यह निर्धारण करना है कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाय। यह कार्य इसलिए करना होता है क्योंकि साधन मनुष्य की आवश्यकताओं की तुलना म सीमित मात्रा म पाये जाते हैं। अत अधिकतम आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए साधनो के वितरण के सम्बन्ध म निर्णय लेना होता है। दूसरे शब्दो म, विभिन्न उत्पादन सम्भावनाओ के बीच यह निर्णय लेना होता है कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाय और किस वस्तु का उत्पादन नही किया जाय।

'किस वस्तु का उत्पादन किया जाय' म दो बातें निहित हैं —

(१) किन वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जाय ?
(२) इन वस्तुओं और सेवाओ का कितना उत्पादन किया जाय ?

(अ) **किन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया जाय ?** — एक अर्थ-व्यवस्था म उन्ही वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जाता है जो कि समाज की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अत अर्थ-व्यवस्था या समाज को वस्तुओ और सेवाओ का चुनाव

shall be used in producing base goods" For whom the goods shall be produced, i e what the distribution of income among different individuals and classes is to be" —Samuelson

करना होता है, कि वह उपभोग वस्तुओ (consumer goods) का उत्पादन करे या पूंजीगत वस्तुओ (capital goods) का उत्पादन करे। इसके बाद उसे निर्णय करना होता है कि उपभोग वस्तुओ मे आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन करे या विलासता की वस्तुओ का। वस्तुओ और सेवाओ के उत्पादन के सम्बन्ध मे निर्णय विभिन्न आर्थिक प्रणालियो मे भिन्न-भिन्न प्रकार से लिए जाते हैं। पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था म यह निर्णय कीमत यत्र (price mechanism) द्वारा लिए जात हैं जबकि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था म केन्द्रीय सत्ता द्वारा निर्णय लिए जाते है।

(व) **वस्तुओ और सेवाओ का कितना उत्पादन किया जाय**—वस्तुओ और सेवाओ का चुनाव करने के बाद प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को यह निर्णय लेना होता है कि वह इन वस्तुओ और सेवाओ की कितनी मात्रा उत्पादित करे। उसे यह निर्णय करना होता है कि कितनी मात्रा मे पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन करे और कितनी मात्रा म उपभोग वस्तुओं का। वास्तव मे यह निर्णय देश की आर्थिक स्थिति और आर्थिक प्रणाली से प्रभावित होता है।

एक अर्थ व्यवस्था जब उत्पादन के सम्बन्ध मे निर्णय लेती है तो उसके सामने दो बातें रहती है पहली, यह कि कुछ वस्तुओ के उत्पादन मे यदि वृद्धि की जाती है तो दूसरी कुछ वस्तुओ के उत्पादन मे कमी आजायेगी। इसका कारण साधनों की सीमितता है। दूसरी, यदि एक ही प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन मे साधनो की मात्राओ मे वृद्धि की जाती है तो अतिरिक्त साधनो से प्राप्त उत्पादन क्रमश घटता जायेगा। अत. अर्थ-व्यवस्था को उत्पादन करते समय वस्तुओं और सेवाओ के सापेक्षिक महत्व पर अनिवार्य रूप से विचार करना होता है। उसे यह निर्णय करना होता हैं कि वह पूंजीगत वस्तुओ और सेवाओ, जैसे—मशीनो और यत्रो का उत्पादन कितनी मात्रा म करे, और उपभोग की वस्तुओ, जैसे—कपडा, चीनी, रेडियो आदि का उत्पादन कितनी मात्रा मे करे। पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन 'भविष्य की आवश्यकताओ' से सम्बन्धित है, जबकि उपभोग वस्तुओ का उत्पादन 'वर्तमान की आवश्यकताओ' से। यदि उत्पादन के साधनो को उपभोग की वस्तुओ मे अधिक लगा दिया जायेगा तो इसका प्रभाव यह होगा कि वर्तमान की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु साधन अधिक उपलब्ध होने के कारण भविष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु साधन कम मात्रा मे उपलब्ध हो सकेंगे। इससे भविष्य मे उत्पादन कम प्राप्त होगा, जिससे अर्थ-व्यवस्था का उचित विकास सम्भव नहीं हो पायेगा। इसके विपरीत यदि पूंजीगत वस्तुओ मे अधिक साधन प्रयुक्त किये जाते है तो वर्तमान उपभोग के लिए कम वस्तुयें उपलब्ध हो सकेंगी। अत प्रत्येक अर्थ व्यवस्था वर्तमान व भविष्य

की आवश्यक्ताओ के महत्व के आधार पर वस्तुओ और सेवाओ म उत्पादन का निणय लेती है।

२ **वस्तुओं का उत्पादन कसे किया जाय** (How shall the goods be produced?)

एक अथ यवस्था का दूसरा काय यह निणय लेना होता है कि वस्तुओ का उत्पादन कैसे किया जाय ? अथात उत्पादन क सगठन के सम्बन्ध म निणय लना होता है। उत्पादन के सगठन स सबधित काय निम्नलिखित हैं —

(१) साधनों का उपयोग उन उद्योगो म किया जाय जो कि उन वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन करते हैं जिनको कि उपभोक्ता अधिक पस द करत ह तथा साधनो का उन उद्योगो म जाने से रोका जाय जिनकी वस्तुओ और सवाओ को उपभोक्ता कम पसन्द करते हैं। दूसरे शब्दो मे उपभोक्ताओ की पसन्द की वस्तुओ और सवाओ के उत्पादन के लिए अधिक साधनो को प्रयुक्त किय जाय ।

(२) विभिन्न फर्मो द्वारा (जो कि निधारित वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन करती हैं) साधनो का कुशलतम प्रयोग किया जाय।

(३) उत्पत्ति के साधनो को (जिसम श्रम भी सम्मिलित है) उन प्रयोगो म लगाया जाय जो कि सबसे अधिक उत्पादक हो ।

उत्पादन के सगठन के सम्बन्ध म महत्वपूण बात यह है कि उपलब्ध साधनो का कुशलतम उपयोग (most efficient use, हो जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत कम हो जाय ।

३ **वस्तुओ का उत्पादन किसके लिए किया जाय** (For whom shall the goods be produced ?)

एक अथव्यवस्था का तीसरा महत्वपूण निणय यह करना होता है कि उत्पादित वस्तुओ का वितरण किस प्रकार किया जाय। दूसरे शब्दो म, कुल उत्पादन को विभिन्न आर्थिक इकाइयो म किस प्रकार बाटा जाय । इसके अतिरिक्त यह भी निणय करना पडता है कि कुल उत्पादन म से विभिन्न आर्थिक इकाइयो का हिस्सा उनकी योग्यतानुसार दिया जाय या उनकी आवश्यकतानुसार। यह निणय देश की आर्थिक प्रणाली (economic system) स प्रभावित होता है। सामान्यत प्रत्यक अथ व्यवस्था के यह निधारित करना होता है कि कुल उत्पादन का वितरण कुशल तथा न्यायसगत हो जिससे कि समाज म रहने वाले सभी व्यक्ति सुखी व सम्पन्न रह। परन्तु इस प्रकार का निणय कवल आर्थिक बातो से प्रभावित नही होता, इस पर राजनीतिशास्त्र तथा नीतिशास्त्र के तत्वो का भी प्रभाव पडता है।

अर्थ-व्यवस्था का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाता है कि वहा के व्यक्तियो को उपयोग के लिए कितनी वस्तुयें उपलब्ध होती है। वहा के व्यक्तियो का रहन सहन का स्तर कैसा है, वहा के नागरिको को ऐसी सुविधायें प्राप्त हैं या नही जो उनको स्वस्थ व सुखी बनाने के साथ-साथ देश के उत्पादन म वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करती है। परन्तु विभिन्न देशो म अपनायी जाने वाली आर्थिक प्रणालियो म भिन्नता होने के कारण वितरण के उद्देश्य मे समानता नही पाई जाती, जिसके फलस्वरूप इस आधार पर मूल्यांकन करना कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त तीनो समस्यायें अर्थ व्यवस्था की आधारभूत समस्यायें हैं जिनको प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था द्वारा हल किया जाना आवश्यक है। इन तीनो के मूल म समस्या 'साधनो की सीमितता' है। यदि साधन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हो तो 'किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ?' या 'वस्तु का उत्पादन कैसे किया जाय' की समस्या उत्पन्न ही नही होगी। साधनो की सीमितता के कारण ही उपभोग, उत्पादन और वितरण मे 'चुनाव' करना होता है।

४. साधनों का पूर्ण उपयोग (Full Utilisation of Resources)

प्रत्येक अर्थ व्यवस्था का यह महत्वपूर्ण कार्य होता है कि वह उपलब्ध साधनो का पूर्ण उपयोग कर प्रत्येक देश की सरकार या समाज इस बात के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती है कि उपलब्ध मानवीय एव भौतिक साधनो का पूर्ण प्रयोग हो। परन्तु यह देखा जाता है कि सामान्यत प्रत्येक देश म कुछ न कुछ साधन अप्रयुक्त (unutilised) रह जाते हैं जिससे बेरोजगारी या अनैच्छिक बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अत प्रत्येक अर्थ व्यवस्था इस बात के लिए भरसक प्रयत्न करती है कि कोई भी साधन अप्रयुक्त न रहे अर्थात् 'पूर्ण रोजगार' की स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं।

जो देश या समाज अपनी वर्तमान आवश्यकताओ की अधिकतम पूर्ति करना चाहता है, वह भौतिक और मानवीय दोनो ही साधनो का तीव्रगति से प्रयोग करेगा। इस स्थिति म जब भौतिक साधनो के शोषण की गति तेज होती है तो वर्तमान म उत्पादन बढ जाता है लेकिन भविष्य की आवश्यकताओ के लिए कम साधन ही उपलब्ध हो पाते हैं। अत प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था मे साधनो के प्रयोग का स्तर निर्धारित किया जाता है। इसके अतिरिक्त उन देशो म जहा पर जनसख्या की वृद्धि की दर अधिक है, वहा पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने के लिए अधिक-से-अधिक रोजगार की सुविधा प्रदान करने के प्रयत्न किये जाते हैं। यह रोजगार की सुविधा उसी स्थिति मे प्राप्त होगी जबकि साधनो का अधिकाधिक विकास किया जाय।

५ आर्थिक अनुरक्षण तथा विकास (Economic Maintenance and Growth)

वर्तमान समय म प्रत्येक अर्थ व्यवस्था का यह उद्देश्य होता है कि वह अधिक-से-अधिक विकास करे जिससे कि समाज को अधिकतम सतुष्टि प्राप्त हो सके। अर्थ व्यवस्था के विकास के लिए यह आवश्यक है कि जो उत्पादन क्षमता वर्तमान म है उसम किसी प्रकार की कमी नही आये, तथा साधनो की मात्रा और किस्म म वृद्धि करके देश के उत्पादन मे वृद्धि की जाय। अनुरक्षण तथा विकास से आशय उत्पादन क्षमता म कमी न होने देने तथा उत्पादन की तकनीको म सुधार और साधनो के प्रयोग म वृद्धि से है।

प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था उस समय तक विकास नहीं कर सकती अथवा अपने समाज को अधिकतम वस्तुयें उपलब्ध नहीं करा सकती जब तक कि नई वस्तुओ का उत्पादन नही किया जाता। नई वस्तुओ का उत्पादन बढाने के लिए उत्पादन विधि म निरन्तर सुधार किया जाता है तथा वैज्ञानिक और प्राविधिक शिक्षा का विस्तार किया जाता है। दूसरे शब्दों म, उत्पादन की कुशलतम व नवीन रीतियो का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक अर्थ-व्यवस्था को पाच कार्य अनिवार्यत: करने होते हैं और ये सभी कार्य 'साधनो की सीमितता' से सम्बन्धित है। ये सभी कार्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। किसी भी अर्थ-व्यवस्था की स्थिति को ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त पाचो कार्यों की स्थिति का देखा जाता है, अर्थात् यदि उपर्युक्त सभी कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं, तो वह अर्थ-व्यवस्था विकसित अवस्था म होती है। लेकिन विभिन्न देशो म आर्थिक प्रणालियो म भिन्नता होने के कारण इन पाचो समस्याओ के हल के लिए अलग अलग नियम व तरीके अपनाये जाते है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ आर्थिक प्रणाली से क्या अभिप्राय है ? एक आर्थिक प्रणाली कौन-कौनसे कार्य सम्पन्न करती है ?

२. आर्थिक प्रणाली के कार्यों की व्याख्या कीजिए।

३ किसी भी आर्थिक प्रणाली की मूलभूत समस्या क्या है ? इन समस्याओ को किस प्रकार हल किया जाता है ?

अध्याय ४

★

पूंजीवाद
[Capitalism]

★ ★ ★

आर्थिक प्रणालियो म पू जीवाद का अपना विशिष्ट स्थान है । पू जीवाद के महत्व के कारण ही इसके गुण, दोष और भविष्य के सम्बन्ध मे विद्वानो और अथशास्त्रियो म विवाद काफी समय से चला आ रहा है । वर्तमान युग मे विश्व के अनेक देशो ने पू जीवादी व्यवस्था को अपनाया है ।

पू जीवादी अर्थ व्यवस्था औद्योगिक क्रांति की देन है । इग्लैंड म हुई औद्योगिक क्राति से पूर्व वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन छोटी मात्रा मे होता था । उत्पादन करने के लिये उत्पत्ति के साधनो का प्रयोग कम होता था तथा उनमे कम पू जी की आवश्यकता होती थी, अत उत्पादन काय सामान्य व्यक्ति की पहु च से बाहर नही था । परन्तु औद्योगिक क्रांत के पश्चात् उत्पादन का स्वरूप बदल गया । उत्पादन म मशीनो, यत्रो व शक्ति का प्रयोग होने लगा, फलस्वरूप उत्पादन का आकार बढ गया । इस स्थिति म उत्पादन करने के लिए अधिक मात्रा म पू जी, श्रम व दूसरे उत्पत्ति के साधनो की आवश्यकता पडी । इन साधनो को एकत्रित करने और उनको उत्पादन कार्य मे लगाने के लिए जितनी पू जी, कुशलता व योग्यता की आवश्यकता हुई वह साधारण उत्पादक के लिए जुटा पाना सम्भव नही रहा । अत उत्पादन काय कुछ ही व्यक्तियो के हाथ मे चला गया, जिसके फलस्वरूप धीरे धीरे पू जी उन्ही व्यक्तियो के हाथो म केन्द्रित होती चली गई । पू जी के केन्द्रीयकरण के कारण समाज म आर्थिक विषमतायें काफी बढ गई ।

पू जीवाद की परिभाषा (Definition of Capitalism)

पू जीवाद[1] वह आर्थिक अवस्था है जिसम उत्पत्ति के साधनो पर कुछ ही व्यक्तियो

---

१ पू जीवाद को अनियोजित अर्थ व्यवस्था (unplanned economy) या स्वतत्र अर्थ-व्यवस्था (free economy) भी कहते हैं ।

(निजी व्यक्तियों या व्यक्तिगत संस्थाओं) का स्वामित्व या नियंत्रण होता है, तथा जिनका उपयोग वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने लाभ में वृद्धि के लिए करते हैं। पूंजीवाद की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार से दी है। यहां पर हम पूंजीवाद की कुछ प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

प्रो पीगू (Prof Pigou) ने पूंजीवाद की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी है —

"पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था वह है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर अधिकार निजी व्यक्तियों का होता है या उनके द्वारा किराये पर लिये जाते हैं, तथा उनके आदेशानुसार इस प्रकार उपयोग में लाये जाते हैं कि वे जिन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में सहयोग देते हैं, उनको लाभ पर बेचा जा सके।"[2]

लुक्स और हूट (Loucks and Hoot) के अनुसार—"पूंजीवाद आर्थिक संगठन की वह प्रणाली है जिसकी विशेषता निजी स्वामित्व तथा मनुष्य कृत एवं प्राकृतिक पूंजी का निजी लाभ के लिए प्रयोग है।"[3]

प्रो सिडनी एवं वैब (Prof Sydney and Webb) के शब्दों में —"पूंजीवाद या पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था या पूंजीवादी सभ्यता से अभिप्राय उन उद्योगों या वैधानिक संस्थाओं के विकास की उस अवस्था से है जिसमें अधिकांश श्रमिक अपने आपको उत्पत्ति के साधनों के स्वामित्व से वंचित मानते हैं और उनकी स्थिति उन मजदूरों के समान हो जाती है जिनका जीवन निर्वाह, सुरक्षा, वैयक्तिक स्वतन्त्रता आदि राष्ट्र के एक छोटे से समूह की इच्छा पर निर्भर हो जाती है, अर्थात् उन लोगों पर जो अपने वैधानिक स्वामित्व द्वारा भूमि, मशीनरी और समाज की श्रम शक्ति के मालिक बन

2 "A capitalist industry is one in which the material instrument of production are owned or hired by private persons and are operated at their orders with a view to selling at a profit the goods and services that they help to produce" — Prof Pigou

3 'Capitalism is a system of economic organisation featured by private ownership and use for private profit of man made and natural resources" — Loucks and Hoot

जाते हैं। ये उनके संगठन पर नियंत्रण रखते हैं तथा ऐसा करने का उनका उद्देश्य निजी और व्यक्तिगत लाभ कमाना होता है।"[4]

प्रो डी मेकराइट (Prof D Macwright) के अनुसार—"पूंजीवाद एक ऐसी प्रणाली है जिसमें आर्थिक संगठन का एक बड़ा भाग और विशेष तौर पर विशुद्ध तथा विनियोग निजी (गैर-सरकारी) इकाइयों द्वारा सक्रिय तथा स्वतंत्र प्रतियोगिता की दशा में लाभ प्राप्ति की आशा से किया जाता है।"[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि पूंजीवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व होता है, तथा वे इन साधनों का प्रयोग लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। संक्षेप में, पूंजीवाद का आधार निजी सम्पत्ति और आर्थिक स्वतंत्रता है।

पूंजीवाद की विशेषतायें (Salient Feature of Capitalism)

पूंजीवाद या अनियोजित अर्थ व्यवस्था के विकास के साथ साथ इसकी विशेषतायें हमारे सामने प्रकट होने लगी। अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं से पूंजीवाद की विशेषताओं का पता लगता है। इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

---

4 "By the term 'capitalism' or the 'capitalist system', or as we prefer, the 'capitalist civilisation', we mean the particular stage in the development of industries and legal institutions in which the bulk of the workers find themselves divorced from the ownership of the instruments of production in such a way as to pass into the position of wage earners whose subsistence, security and personal freedom seem dependent or the will of a relatively small proportion of the notion namely those who own and through their legal ownership control the organisation of the land, the machinery and labour force of the community and do so with the object of making for themselves individual and private gains
—Sydney and Webb

5 "Capitalism is a system in which, on average, much of the greater portion of economic life and particularly of net new investment is carried on by private (i e, non government) units under conditions of active and substantially free competition, and avowedly of the least, under the incentive of a hope for profit"
—Prof D Macwright

(१) निजी सम्पत्ति का अधिकार (Right of private property)—पूंजीवाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता निजी सम्पत्ति का अधिकार है। इस व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति एवं क्षमतानुसार निजी सम्पत्ति का निर्माण कर सकता है तथा उसे अपनी इच्छानुसार उत्तराधिकारियों को दे सकता है। पूंजीवादी व्यवस्था में निजी सम्पत्ति के अधिकार की सुरक्षा सरकार द्वारा की जाती है। व्यक्ति को इस सम्पत्ति के उपभोग की स्वतंत्रता होती है और वह यदि इस सम्पत्ति का उपयोग और अधिक आय प्राप्त करने के लिये करना चाहता है तो उसमे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही की जाती है। इस प्रकार व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने, उसका उपभोग तथा उसे उत्तराधिकारियो को देने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है।

(२) आर्थिक स्वतंत्रता (Economic freedom)—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में व्यक्ति को यह स्वतंत्रता रहती है कि वह अपनी इच्छानुसार व्यवसाय का चुनाव कर सके, और वह इस व्यवसाय में जब चाहे तब परिवर्तन भी कर सके। इसके अतिरिक्त उपभोक्ताओं को किसी भी वस्तु को क्रय करने की स्वतंत्रता रहती है, अर्थात वह अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करने के उद्देश्य से वस्तुओं का चुनाव कर सकता है। इसके साथ ही व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी दूसरे व्यक्ति से अनुबन्ध या प्रसंविदा (cotract) कर सकता है। संक्षेप में, व्यक्ति को – (अ) व्यवसाय की स्वतंत्रता, (ब) चुनाव की स्वतंत्रता तथा (स) प्रसंविदा की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। आर्थिक स्वतंत्रता में राज्य के द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाता।

आज के युग में परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने के कारण पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता पूंजीवादी देशो में नहीं पाई जाती है। उसमें समाज के हित का ध्यान में रखते हुए तथा देश की आवश्यकतानुसार कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये जाते है। सरकार द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धो और नियमो के अन्तर्गत ही व्यक्तियों को स्वतंत्रता प्राप्त होती है। जैसा कि डी एच रॉबर्टसन (D H Robertson) ने कहा है —"कानून द्वारा स्वीकृत विस्तृत सीमाओ तथा सामाजिक वातावरण द्वारा निर्धारित सीमाओं के बीच प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने जीवन तथा अपनी आय को प्रयोग में ला सकता है।"[६]

(३) लाभ उद्देश्य (Profit motive)—पूंजीवादी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता-लाभ

6 "Within the wide limits allowed by the law, and the stricter bounds set by social opportunity, each man is at liberty to spend both his life and his income as he chooses' — D H Robertson

उद्देश्य है। इस व्यवस्था में जितनी भी आर्थिक क्रियायें की जाती है, उनका उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। प्रो जी डी एच कोल (Prof G D H Cole) के शब्दों में —"सम्भावित लाभ वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण पूंजीवादी व्यवस्था घूमती है।"[7]

अतः पूंजीवादी व्यवस्था में समस्त आर्थिक क्रियायें व्यक्ति अपने स्वार्थ के कारण करता है। अपने साधनों का उपभोग करते समय कोई भी व्यक्ति सामाजिक हित को ध्यान में नहीं रखता।

(४) प्रतियोगिता (Competition)—पूंजीवादी व्यवस्था में समाज में प्रतियोगिता पाई जाती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन कार्य करने के लिये स्वतन्त्र रहता है, वे अपनी समस्त क्रियायें अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से संचालित करते हैं अतः एक ही वस्तु के अनेक उत्पादक हो जाते हैं जिससे उनमें प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती है। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में प्रतियोगिता केवल उत्पादकों या विक्रेताओं में ही नहीं पाई जाती बल्कि उपभोक्ताओं में भी वस्तु को क्रय करने की प्रतियोगिता रहती है। इसके अतिरिक्त क्रेताओं और विक्रेताओं के मध्य भी प्रतियोगिता रहती है। उत्पादक या विक्रेता अपनी वस्तु को अधिक मूल्य पर बेचना चाहता है जबकि क्रेता उसके लिये कम मूल्य देना चाहता है। इस प्रकार पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था प्रतियोगितापूर्ण अर्थ-व्यवस्था बन जाती है।

(५) वर्ग संघर्ष (Class conflict)—पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था की एक और विशेषता वर्ग-संघर्ष है। इस व्यवस्था में समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है—एक, पूंजीपति वर्ग, दूसरा, श्रमिक वर्ग अथवा अमीर वर्ग और गरीब वर्ग। अपने-अपने हितों की रक्षा के लिए इन दोनों वर्गों में संघर्ष चलता रहता है। पूंजीपति वर्ग अपने लाभ में वृद्धि करने के उद्देश्य से श्रमिकों का शोषण करता है, जबकि श्रमिक अधिकाधिक सुविधायें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते है तथा पूंजीपति के शोषण से बचने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार संघर्ष पूंजीवाद का 'धर्म' बन जाता है। परिस्थितियां इस प्रकार उत्पन्न हो जाती है कि प्रचलित व्यवस्था में इस संघर्ष का कोई समाधान दिखाई नहीं देता।

(६) मूल्य यंत्र (Price mechanism)—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में कोई भी केन्द्रीय सत्ता नहीं होती जो कि उत्पादन तथा उपभोग पर नियंत्रण रखती हो। इस व्यवस्था में

---

7 "Expected profit is the pivot on which the entire capitalistic system turns" —C D H Cole

सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओ पर नियत्रण 'मूल्य यत्र' के द्वारा किया जाता है। समाज मे वस्तुओ का उत्पादन कितनी मात्रा मे होगा, तथा किन वस्तुओं का उत्पादन होगा, यह मूल्य यत्र द्वारा निर्धारित होता है। इसके अतिरिक्त उपभोग भी मूल्य यत्र से प्रभावित होते हैं। पूजीवादी व्यवस्था म मूल्ययत्र की इस महत्ता के कारण ही इसे 'मूल्य द्वारा शासित प्रणाली' भी कहते हैं।

(७) समन्वय का अभाव (Lack of co ordination)—पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं मे समन्वय का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि 'जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार समन्वय का कार्य करती है, उसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र म समन्वय करने के लिए कोई केन्द्रीय सत्ता नही होती।' अत केन्द्रीय निर्देशन या नियोजन के अभाव मे उपभोक्ताओ की माग तथा पूर्ति म कोई समन्वय स्थापित नही होता, यह सब मूल्य यत्र द्वारा सचालित होता है। यदि कही निर्देशन या नियत्रण होता है तो वह अपर्याप्त होता है।

(८) व्यापार चक्र (Trade cycles)—पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था की एक और प्रमुख विशेषता व्यापार चक्र का पाया जाना है, अर्थात् इसम नियमित रूप से तेजी व मन्दी (boom and depression) आती रहती है। जब उत्पादन वर्ग द्वारा यह अनुभव किया जाता है कि किसी वस्तु या सेवा की माग अधिक है तो वह लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी अधिकतम पूजी का विनियोग कर देता है। इसी प्रकार अन्य उत्पादक भी यही करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वस्तु का उत्पादन माग की तुलना म अधिक हो जाता है। अत अति-उत्पादन (over production) की स्थिति पैदा हो जाती है।

इसके विपरीत यदि कम उत्पादन हो जाता है तो उपभोक्ताओ को वस्तुयें प्राप्त करने म कठिनाई आती हैं, और वस्तु के लिए ऊँचा मूल्य देना पड़ता है। इस प्रकार पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे 'अधिक उत्पादन' और 'कम उत्पादन' का चक्र चलता रहता है।

(९) साहसी का महत्व (Importance of entrepreneur)—पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था म साहसी को अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसका कारण यह है कि इस व्यवस्था म आर्थिक अस्थिरता अधिक पाई जाती है, जिससे उत्पादन का कार्य जोखिमपूर्ण हो जाता है। साहसी इन जोखिमो को झेलता है। वह उत्पत्ति के साधनो को उत्पादन कार्य म लगाये रखता है तथा उनके समन्वय स्थापित करता है।

(१०) आत्मघाती प्रकृति (Self destructive nature)—पूजीवादी व्यवस्था स्वय आत्मघाती होती है अर्थात यह व्यवस्था 'स्वय अपने विनाश के बीज बोये रहती है'। इस व्यवस्था म उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। लाभ

कमाने के लिये वह विनियोग अधिक करता है तथा इस बात का प्रयत्न करता है कि अधिक-से अधिक वस्तुओ का उत्पादन कम लागत पर कर सके। इसके परिणामस्वरूप अधिक उत्पादन (over-production) हो जाता है और मन्दी की स्थिति आ जाती है। इससे उत्पादक को हानि उठानी पडती है।

दूसरी ओर पू जीवादी व्यवस्था म सम्पत्ति कुछ ही हाथो म केन्द्रित होती जाती है। अमीर और अधिक अमीर बन जाता है गरीब और अधिक गरीब। इसम श्रमिको की सख्या बढती जाती है, और पू जीपतियो की सख्या कम होती जाती है, जिससे श्रमिक सगठित होकर पू जीपतियो द्वारा किये जा रहे शोषण के विरुद्ध उठ खडे होते हैं और पू जी-वादी व्यवस्था को तहस नहस कर नई व्यवस्था समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना करत है। इस तरह पू जीवाद की समाप्ति का कारण पू जीवाद ही है। मार्क्स (Marx) ने इसे 'स्वचालित विनाश का नियम' कहा है।

पू जीवादी अर्थ व्यवस्था के गुण (Merits of Capitalist Economy)

पूजीवाद के समर्थको द्वारा इस व्यवस्था म निम्नलिखित गुण बताये जाते है —

(१) स्वय सचालित (Automaticity) — पू जीवादी अर्थ-व्यवस्था स्वय सचालित अर्थव्यवस्था होती है, आर्थिक क्रियाओ के सचालन के लिए किसी केन्द्रीय नियत्रण इकाई की आवश्यकता नही होती। इस व्यवस्था मे उत्पादक लाभ की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता है। किस वस्तु का और कितनी मात्रा मे उत्पादन होना चाहिए इसका निर्णय उत्पादक मूल्य यत्र (price mechanism) की सहायता से करता है। मूल्य यत्र एक अदृश्य हाथ (invisible hand) की तरह कार्य करता है, और स्वय ही आर्थिक इकाइयो मे समन्वय स्थापित हो जाता है।

(२) बडी मात्रा मे उत्पादन (Large scale production) — पू जीवादी व्यवस्था म उत्पादन बडी मात्रा मे किया जाता है। उत्पादक हमेशा यह प्रयत्न करता है कि बाजार म वह अपनी वस्तुओ को अधिकतम मात्रा मे बेचकर लाभ अर्जित करे। इसके लिए वह नयी-नयी तकनीक का प्रयोग करके उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि करता है। उत्पादन अधिक मात्रा म करने से एक तो उसका बाजार पर नियत्रण स्थापित होता है, दूसरी ओर वस्तु के उत्पादन म बडे पैमाने के उत्पादन के लाभ प्राप्त हो जाते है। इस स्थिति म उपभोक्ताओ को भी लाभ प्राप्त होता है, क्योकि उपभोक्ता वस्तु को सस्ते मूल्य पर प्राप्त कर लेते है।

(३) जीवन-स्तर मे वृद्धि (Improvement in the standard of living) — पू जीवादी व्यवस्था की महत्वपूर्ण सफलता यह है कि इसके द्वारा आर्थिक प्रगति तेजी मे होती है तथा नागरिको के जीवन-स्तर म सुधार होता है। इस व्यवस्था म उत्पादन बडी

मात्रा मे होता है तथा वस्तुओं और सेवाओं की सख्या भी काफी अधिक होती है, जिससे उपभोक्ताओं का वस्तुयें उपभोग के लिए आवश्यकतानुसार उपलब्ध हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उत्पादक लाभ के उद्देश्य से कार्य करता है, अत उत्पादकों म प्रतिस्पर्धा पाई जाती है, जिससे प्रत्येक उत्पादक बाजार मे नियत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से वस्तुओं को सस्ते मूल्य पर उत्पादित करने के लिये प्रयत्नशील रहता है, इससे उपभोक्ता को विभिन्न प्रकार की वस्तुयें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हो जाती हैं जिससे उपभोक्ता के रहन सहन म वृद्धि होती है।

प्रो शुम्पीटर (Prof Schumpeter) के अनुसार—"सस्ते सूती एव रेशमी वस्त्र, जूते, मोटरकार आदि ऐसी वस्तुयें हैं जो पूंजीवादी उत्पादन की विशिष्ट देन हैं, और यह ऐसी उन्नति नहीं है जो केवल धनी व्यक्तियो तक ही सीमित हो। ...
पूंजीवादी प्रणाली आकस्मिक कारणों से नहीं वरन् अपनी कार्य-प्रणाली की विशिष्टता के कारण जनसाधारण के जीवन-स्तर में वृद्धि करती है।"

(४) **लचीलापन** (Flexibility)—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का प्रमुख गुण इसका लचीलापन है। पूंजीवादी व्यवस्था परिस्थितियो म परिवर्तन होने पर स्वय म भी परिवर्तन करके परिस्थितियों के अनुकूल बना लेती है। इसका कारण यह है कि उत्पादन क साधनों पर निजी व्यक्तियो का स्वामित्व होता है अत आवश्यकतानुसार परिस्थितियों के अनुकूल उनका उपयोग करते हैं, जिससे साधनो म पर्याप्त गतिशीलता आ जाती है।

लुक्स तथा हूट (Lucks and Hoot) के शब्दो मे—पूंजीवादी व्यवस्था म लचीलापन तथा समयानुकूलता होती है जिसके कारण ही इसने परिस्थितियो म होने वाले परिवर्तनो क अनुकूल अपनी रीतियो और विधियो को ढाल लिया है।"[8]

(५) **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता** (Consumer's sovereignty)—पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था मे उत्पादक निजी लाभ के उद्देश्य से कार्य करता है। उसे लाभ अधिकतम उसी स्थिति मे प्राप्त होगा जबकि वह वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ताओ की रुचियों और आवश्यक्ताओ के अनुरूप करे। अत उपभोक्ताओ की व्यक्तिगत देख रेख की जाती है। इस प्रकार उपभोक्ता की प्रभुता स्थापित हो जाती है।

(६) **साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग** (Fullest use of resources)—पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था म उपलब्ध साधनो का सर्वोत्तम उपयोग होता है। उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त

8 "It has possessed a flexibility, an adoptability and a resiliency which have permitted it to mould its forms and processes into conformity with innumerable changes in the environmental setting" —Lucks and Hoot

करने के उद्देश्य से उत्पादन के नये-तरीकों और विधियों को अपनाते हैं, जिससे कि उत्पादन लागत कम हो जाय। इसके साथ ही उत्पादकों का यह प्रयास होता है कि अवशिष्ट पदार्थों का भी अधिकतम उपयोग हो सके। पूंजीपति या उत्पादक स्वयं भी मितव्ययता को अपनाता है। इन सबके फलस्वरूप उत्पादकों के लाभ में वृद्धि होती है तथा समाज और राष्ट्र को भी लाभ प्राप्त होता है

(७) **योग्यतम की विजय** (Survival of the fittest)—पूंजीवादी व्यवस्था प्रतियोगिता (competition) पर आधारित है। प्रतियोगिता में वही विजयी हो सकता है जो योग्यतम हो या सबसे अधिक बलशाली हो। अतः उत्पादन के क्षेत्र में केवल वे ही साहसी टिक पाते हैं जो कि योग्य, कुशल और दूरदर्शी हों। इस प्रकार साधनों का दुरुपयोग नहीं हो पाता क्योंकि अकुशल और अयोग्य साहसी बाजार में नहीं रहते। इसके अतिरिक्त समाज को भी लाभ प्राप्त होता है।

(८) **आर्थिक स्वतन्त्रता** (Economic freedom)—पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में सरकार द्वारा मनुष्य की क्रियाओं पर नियन्त्रण नहीं लगाया जाता, अर्थात् व्यक्तियों को आर्थिक व राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार व्यवसाय का चुनाव करता है तथा उपभोक्ता अपनी पसन्द की वस्तुओं का उपभोग करता है।

> डॉ कुमारप्पा (Dr Kumarappa) के शब्दों में—"इस प्रणाली की सबसे आकर्षक विशेषता यह है कि व्यक्ति को कार्य का चुनाव करने की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया जाता है, और इसे ही केन्द्र बनाया जाता है।"

आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ साथ इस व्यवस्था में राजनैतिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त होती है। इस स्वतन्त्रता में इस बात को महत्व प्राप्त होता है कि किसी दूसरे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण न हो सबको सामाजिक सुरक्षा व सामाजिक न्याय प्राप्त हो।

(९) **वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति** (Scientific and technological progress)—पूंजीवादी व्यवस्था प्रतियोगिता पर आधारित है। बाजार में वही साहसी टिक पाता है जो कि कुशल हो तथा अपनी वस्तु को कम लागत पर उत्पादित कर उपभोक्ताओं को सस्ते मूल्य पर श्रेष्ठ वस्तु उपलब्ध करा सके। अतः इस व्यवस्था में प्रत्येक साहसी दूसरे साहसी से अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से यह प्रयत्न करता है कि वह अपनी फर्म या कारखाने में अन्वेषण (invention) और अनुसंधान (research) कार्य कराये। जिससे उसे नये-नये तरीकों का ज्ञान हो सके और उत्पादन में उनका प्रयोग करके कम लागत पर वस्तु बाजार में ले आये। यदि साहसी इसमें सफल नहीं हो पाता है तो थोड़े समय पश्चात्

उसे बाजार से बाहर जाना होता है। इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में निरन्तर तकनीकी प्रगति होती रहती है।

(१०) पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन तथा अधिक उत्पादन (Encouragement to capital formation and more production) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति का अधिकार रहता है जो कि बचत और विनियोग दोनों को प्रोत्साहित करता है। लाभ प्राप्ति की स्वतन्त्रता के कारण व्यक्ति अधिक बचत करके उत्पादन कार्यों में लगा देना चाहता है, जिससे कि उसके लाभ में वृद्धि हो सके। इस प्रकार इस व्यवस्था में बचत व उत्पादन दोनों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

(११) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International co-operation)— पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है तथा नये-नये आविष्कारों व तकनीक का प्रयोग करके लागत को कम करने का प्रयत्न किया जाता है। इससे प्राप्त होने वाले लाभ एक देश तक ही सीमित नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त एक देश का साहसी अपनी वस्तु के लिये कच्चा माल आदि सामग्री दूसरे देशों से भी प्राप्त करता है। इस प्रकार आपसी सहयोग में वृद्धि होती है और सद्भावनापूर्ण वातावरण बनता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। *यही कारण है कि आज विश्व के अनेक देशों में पूंजीवादी व्यवस्था पाई जाती है।*

पूंजीवाद के दोष (Demerits of Capitalism) :

पूंजीवाद में अनेक गुण हैं लेकिन ये गुण सैद्धान्तिक अधिक हैं। व्यवहार में पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के दोष इतने गम्भीर हैं कि कोई भी विकासशील या अल्पविकसित देश इस व्यवस्था को अपनाने का साहस नहीं जुटा पाता है। इसमें निम्नलिखित प्रमुख दोष पाये जाते हैं :—

(१) आर्थिक असमानता (Economic in equalities)—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह व्यवस्था आर्थिक असमानता को जन्म देती है तथा जैसे-जैसे इसका विकास होता जाता है वैसे वैसे आर्थिक असमानतायें और अधिक बढ़ती जाती हैं। इस आर्थिक असमानता का कारण व्यक्ति को सम्पत्ति प्राप्त करने की स्वतन्त्रता, उत्तराधिकार के नियम तथा समाज में अवसरों की असमानता है। इस व्यवस्था में अमीर और अधिक अमीर बन जाता है तथा गरीब और अधिक गरीब। अतः समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में—अमीर (haves) तथा गरीब (have nots)—में बट जाता है। गरीब वर्ग में श्रमिक होते हैं जिनको जीवनयापन की सुविधायें प्राप्त करने में भी कठिनाई आती है, जबकि धनी ऐशो-आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं।

जी डी एच कोल (G D H Cole) के शब्दों में —"उद्योग के मन्दिर में सुख के नाम पर पुजारी तथा दासों में जमीन आसमान का अन्तर पाया जाता है।"[9]

यह असमानता का क्रम निरन्तर चलता रहता है, और इसका प्रभाव आगे आने वाली पीढ़ी (next generation) पर भी पड़ता है।

२) वर्ग-संघर्ष (Class conflict)—पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में समाज दो वर्गों में विभक्त हो जाता है—सम्पन्न वर्ग (haves) तथा असम्पन्न (have nots)। एक के पास आर्थिक शक्ति होती है दूसरा वर्ग श्रमिकों का होता है जो कि निर्धन होता है। इन दोनों वर्गों का उद्देश्य अपने अपने हितों की पूर्ति करना होता है। दोनों वर्गों में हितों में अन्तर होने के कारण आपस में संघर्ष होता रहता है जिसके कारण औद्योगिक तथा सामाजिक अशान्ति बनी रहती है।

(३) व्यापार चक्र (Trade cycles)—पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का एक प्रमुख दोष समाज में व्यापार चक्र का पाया जाना है। व्यापार चक्र उत्पन्न होने का कारण माग और पूर्ति का असमायोजन है। इस व्यवस्था में समन्वय स्थापित करने के लिए केन्द्रीय सत्ता का अभाव होता है। प्रत्येक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से उत्पादन करता है। इसके परिणामस्वरूप अर्थ-व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है और कभी तेजी (booms) और कभी मन्दी (depression) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में मन्दी व तेजी एक निश्चित समय के बाद आती रहती है, तथा यह अर्थ-व्यवस्था का एक सामान्य स्वभाव बन जाती है।

(४) असन्तुलित विकास (Unbalanced growth)—पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादक स्वतन्त्रतापूर्वक अपने लाभ में वृद्धि करने के उद्देश्य से प्राकृतिक साधनों का उपयोग करते हैं। प्राय उन्हीं क्षेत्रों में उद्योग धन्धे स्थापित करते हैं जहां पर कि उनके विकास के लिए अनुकूल वातावरण हो तथा उनके लिए लाभदायक हो। इस तरह एक ही स्थान पर उद्योग धंधे केन्द्रित हो जाते हैं, तथा दूसरे क्षेत्रों का विकास नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त उत्पादक सभी प्रकार के उद्योग धंधों में रुचि न रखकर उन्हीं उद्योगों को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं जिनमें लाभ का प्रतिशत अधिक प्राप्त होता है। अत कुछ विशेष प्रकार के उद्योगों का विकास अधिक हो

---

9 'There is a world of difference in terms of happiness between the high priest and the slaves in the temple of industry'
—Prof G D H Cole

जाता है, जबकि दूसरे उद्योग उपेक्षित रहते है। इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था म पर्याप्त क्षेत्रीय असमानताये पाई जाती हैं।

(५) एकाधिकारी प्रवृत्तिया (Monopolistic tendencies)—यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता पूंजीवादी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है, परन्तु व्यवहार मे एकाधिकारी प्रवृत्तिया देखने को अधिक मिलती है। उत्पादक प्राय प्रतियोगिता से बचने के लिए तथा अपने लाभो म वृद्धि करने के उद्देश्य से एकाधिकारी सघो या औद्योगिक सघो की स्थापना कर लेते है। इससे प्रतियोगिता कम हो जाती है, और उपभोक्ता से अपने उत्पादन का ऊचा मूल्य वसूल किया जाता है।

(६) आर्थिक शोषण (Economic exploitation)—पूंजीवादी व्यवस्था मे उत्पादको का प्रधान उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे श्रमिको को उनका पारिश्रमिक कम देते है तथा उनसे कार्य अधिक लेते हैं। इस प्रकार श्रमिको का शोषण कर अपने लाभ मे वृद्धि करते है। उत्पादको द्वारा श्रमिको के लिए कल्याणकारी कार्य बहुत कम किये जाते हैं जिससे उनको सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नही होती। इसके साथ ही उत्पादकों द्वारा एकाधिकारी सघो की स्थापना कर ली जाती है, जिससे श्रमिको को वस्तुयें उचित मूल्य पर प्राप्त नही हो पाती। इस प्रकार इस व्यवस्था म मानवीय पक्ष का अभाव पाया जाता है।

प्रो० लेविस (Prof. Lewis) के शब्दो मे—"बाजार तन्त्र के मजदूरी सम्बन्धो (wage relations) मे मानवीयता का अभाव पाया जाता है।"[10]

(७) बेरोजगारी (Unemployment)—पूंजीवादी व्यवस्था म बेरोजगारी की समस्या निरन्तर बनी रहती है। यह इस व्यवस्था का एक प्रमुख दोष है।

प्रो० पीगू (Prof Pigou) के शब्दो मे—"पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था का सबसे गम्भीर दोष बेरोजगारी है।"[11]

इसका कारण यह है कि व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त करने के लिए थोड़े से पूंजीपतियो पर निर्भर रहना पड़ता है, और ये पूंजीपति अपनी स्वार्थप्रेरित योजना के अनुसार ही कार्य करते है। प्राय यह देखा जाता है कि पूंजीपति श्रमिको को कभी भी अपने

10 "The market mechanism does not harmonise the wage relations" —Prof Lewis

11 "The most serious evil in the capitalist economic system is the evil of unemployment" —Prof Pigou

रोज़गार से अलग कर देते हैं। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्रता का अधिकार हास्यास्पद बन जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था पूर्ण रोज़गार की अवस्था प्राप्त करने म सदैव असमर्थ रही है। सर्वाधिक विकसित देश अमेरिका मे भी बेरोजगारो की संख्या काफी है। इसी कारण आधुनिक समय म अधिकाश देश समाजवाद की ओर झुक रहे है।

(८) अपव्यय (Wastage)—पूंजीवादी व्यवस्था म प्रतियोगिता पाई जाती है। इस प्रतियोगिता के कारण उत्पादको द्वारा बहुत बडी मात्रा मे साधनो का अपव्यय प्रचार तथा विज्ञापन आदि पर किया जाता है। कभी-कभी अनेक फर्मों के द्वारा एक-सी वस्तु का उत्पादन किया जाता है, जिससे साधनो का अपव्यय होता है। इसके अतिरिक्त बडी फर्में दूसरी प्रतियोगी फर्मों को समाप्त करने के उद्देश्य से बडी मात्रा मे आर्थिक साधनो का दुरुपयोग करती हैं। इस प्रकार यह अपव्यय समाज के हित म नही होता।

(९) सामाजिक परजीविता (Social parasitism)—पूंजीवादी व्यवस्था मे एक ऐसे वर्ग का उदय होता है जो कि बिना कुछ कार्य किये अपनी जीविका चलाता रहता है। इसका कारण यह है कि कुछ व्यक्तियो को अपने पूर्वजो से धन व सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है जिससे वे अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते है इस प्रकार ये 'परजीवी' बन जाते है।

(१०) समाज कल्याण का अभाव (Lack of social welfare)—पूंजीवादी व्यवस्था म प्रत्येक कार्य 'निजी लाभ' के लिए किया जाता है, समाज कल्याण के कार्यों की ओर कोई ध्यान देने को तैयार नही होता। इस प्रकार, इस व्यवस्था म कल्याणकारी उद्देश्यो का अभाव पाया जाता है।

(११) उपभोक्ता की सार्वभौमिकता मिथ्या है (Consumer s sovereignty is a myth,—पूंजीवादी व्यवस्था का यह गुण बताया जाता है कि यहा पर उपभोक्ता 'राजा' होता है। परन्तु व्यवहार मे यह पूर्णत असत्य सिद्ध होता है। पूंजीवादी व्यवस्था म उत्पादको द्वारा उपभोक्ताओ को विज्ञापन और प्रचार के माध्यम से किसी वस्तु विशेष की ओर आकर्षित किया जाता है जिससे उपभोक्ता की पसन्द को प्रभावित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्पादक एकाधिकारी संघो की स्थापना कर लेते है जिससे उपभोक्ता को वस्तु के लिए अधिक मूल्य देना पडता है। अत उपभोक्ताओ का शोषण किया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूंजीवादी व्यवस्था म अनेक दोष है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के दोषों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रणाली अधिक समय तक नहीं चल सकती। परन्तु वास्तविकता यह है कि आज के युग म पुराने पूंजीवाद का केवल सैद्धांतिक महत्व रह गया है। पूंजीवादी व्यवस्था का प्रमुख गुण परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढाल लेना है। आज के पूंजीवाद म अनेक परिवर्तन हो चुके हैं जिनके कारण ही आज यह जीवित है। आज पूंजीवादी देशों म आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। बाजार व्यवस्था मे सरकार का अंकुश रहता है तथा सरकार सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए अनेक नीतियां निर्धारित करती है तथा उनका कठोरतापूर्वक पालन कराती है। श्रमिकों का शोषण कम करने तथा उनके कल्याण म वृद्धि करने के लिए अनेक योजनायें बनाती हैं।

अत पूंजीवादी व्यवस्था मे अनेक परिवर्तन हो जाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि पूंजीवाद का निकट भविष्य मे लोप होना सम्भव नहीं है।

पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था और मूलभूत आर्थिक समस्यायें (Capitalist Economy and Fundamental Economic Problems)

प्रत्येक अर्थ व्यवस्था की कुछ मूलभूत समस्यायें होती है, जिनको कि उसे हल करना होता है। हल करने का तरीका आर्थिक प्रणालो म भिन्नता होने के कारण भिन्न भिन्न हो जाता है। पूंजीवादी अथ व्यवस्था जिसे स्वतन्त्र उपक्रम अथ-व्यवस्था (free enterprise economy) भी कहते हैं, इस की अपनी कुछ अलग से विशेषतायें होती हैं। इस व्यवस्था म व्यक्ति को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तथा निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार प्राप्त होता है। अत पूंजीवादी व्यवस्था मे समस्त आर्थिक क्रियायें 'लाभ' प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है। इस व्यवस्था म समन्वय या नियन्त्रण हेतु केन्द्रीय सत्ता नहीं होती, अपितु समस्त आर्थिक क्रियायें 'मूल्य यन्त्र (price mechanism) द्वारा संचालित होती है।

नीचे विस्तार से इस बात की व्याख्या की गई है कि किस प्रकार 'मूल्य यन्त्र' अर्थ-व्यवस्था को मूलभूत आर्थिक समस्याओ (आर्थिक प्रणाली के आधारभूत कार्यों) को हल करता है :—

१ किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ? (What is to be produced)

पूंजीवादी व्यवस्था मे मूल्ययन्त्र द्वारा ही यह निर्धारण होता है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय। इस व्यवस्था मे कीमतों के द्वारा उपभोक्ताओं की रुचियों तथा आवश्यकताओं का पता लगता है। उत्पादक का उद्देश्य 'लाभ' प्राप्त करने का होता है अत वह उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है जो कि उपभोक्ताओं द्वारा पसन्द की जाती हैं।

उपभोक्ताओं की पसन्दगी या रुचियों को बाजार कीमतो मे व्यक्त किया जाता है। सामान्यत. उपभोक्ता उन वस्तुओ और सेवाओ के लिए अधिक मूल्य देने को तैयार होगा जिनको वह अधिक पसन्द करता है, तथा उन वस्तुओ और सेवाओ के लिए कम मूल्य देने को तैयार होगा, जो कि उसकी रुचि या पसन्द के अनुकूल नही है। अत उत्पादकों द्वारा उन्ही वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन अधिक मात्रा मे किया जायेगा जिनको उपभोक्ताओ द्वारा क्रय किया जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसी ही वस्तुये उत्पादक को अधिक मूल्य प्रदान करती हैं।

किसी वस्तु के लिए दिये जाने वाले अधिक मूल्य दो स्थितियों को स्पष्ट करते हैं :—

(१) उपभोक्ता उस वस्तु को अधिक पसन्द करते है और इच्छा व्यक्त करते है कि यह वस्तु अधिक मात्रा म उपलब्ध हो।

(२) ऊचे मूल्य उत्पादको को अधिक लाभ की संभावना व्यक्त करते है। इसके अतिरिक्त अधिक मात्रा मे उत्पादन करने से प्रति इकाई लागत भी कम हो जाती है।

पूंजीवादी व्यवस्था मे, जहा पर आर्थिक क्रियायें मूल्य यन्त्र द्वारा सचालित होती है, उपभोक्ता को प्रभुसत्ता प्राप्त होती हैं क्योंकि उत्पादक उसी वस्तु का उत्पादन करते हैं जो उपभोक्ता चाहते हैं तथा उस वस्तु का उत्पादन नही करते जिस वस्तु की माग कम होती है। परन्तु इसकी कुछ सीमायें हैं —

(१) उपभोक्ता की माग को विज्ञापन व प्रसार के द्वारा उत्पादक प्रभावित करते है, अत उपभोक्ता पूर्ण स्वतन्त्र होकर निर्णय नही ले पाता।

(२) उपर्युक्त विश्लेषण केवल यह बताता है कि 'मूल्य यन्त्र' द्वारा उत्पन की जाने वाली वस्तुओ का मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है, परन्तु यह स्पष्ट नही करता कि वस्तुओ का निर्धारण (वस्तुओ का मूल्यांकन) कैसे होना चाहिए, यह प्रश्न नैतिक है, जिसको मूल्य सिद्धांत व्याख्या नही करता। परन्तु इस दृष्टिकोण की उपेक्षा करना उचित नही है। मूल्य यन्त्र की क्रियाओ द्वारा यह सम्भव है कि इसमे निर्धन व्यक्तियो की अपेक्षा धनी व्यक्तियो की वस्तुओ का उत्पादन अधिक हो, दूसरे शब्दो मे, कम आय वाले व्यक्तियो को आवश्यक आवश्यकताओ की वस्तुओ के स्थान पर अधिक आय वाले व्यक्तियो की विलासता की वस्तुओ का उत्पादन अधिक हो। इस स्थिति को प्रो. लेफ्टविच ने स्पष्ट किया है।

प्रो० लेफ्टविच के शब्दो मे—"मूल्य प्रणाली पूर्ण रूप से कार्य करते हुए ऐसे

सामाजिक परिणाम ला सकता है जिन्हे कि हम अवाछनीय समझे और राजनैतिक प्रक्रिया के द्वारा सुधारने का प्रयत्न करें।"[12]

२ **वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाय ?** (How shall the good be produced ?)

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था म वस्तुओं के उत्पादन सगठन 'मूल्य प्रणाली' के द्वारा किया जाता है। यहा पर यह निणय करना होता है कि उत्पादन काय किन विधियो और तरीको स किया जाय। इस व्यवस्था म उत्पादक उन विधियो और तरीको का प्रयोग करता है जो अधिकतम लाभ प्रदान करें। अत एक ओर उत्पादक ऊचा मूल्य प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तथा दूसरी ओर लागत घटाने का प्रयत्न करता है, ऐसी दशा म —

(१) जिन उद्योगों म वस्तु की माग अधिक होगी, उन उद्योगो की वस्तु के मूल्य भी ऊचे होंगे और उत्पादक अपने साधनों को इन उद्योगो म प्रयुक्त करेंगे। तथा जिन उद्योगो की वस्तु की माग कम होगी वहा पर साधन भी कम प्रयुक्त किए जायेंगे।

(२) प्रतिस्पर्धा होने के कारण बाजार म व ही फर्मे रह पाती हैं जो कि कुशलतापूर्वक उत्पादन करती हैं। इस व्यवस्था म साधनो के खुले बाजार होते है, और प्रत्येक साधन का बाजार मूल्य होता है। अत इन बाजार मूल्यो के आधार पर उत्पादक विभिन्न विधियो की लागत की तुलना कर लेते हैं, और जिस विधि के द्वारा लागत न्यूनतम आती है उसी विधि के द्वारा उत्पादन किया जाता है।

३ **वस्तुओं का उत्पादन किसके लिए किया जाय ?** (For whom shall the goods be produced ?)

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था म उत्पादित वस्तुओं का वितरण भी मूल्य प्रणाली के द्वारा होता है। वस्तुओं का उत्पादन बाजार म बेचने के लिए किया जाता है और बाजार म वस्तुयें वही क्रय कर सकेंगे जिनके पास क्रयशक्ति होगी, अर्थात उत्पादन का वितरण वैयक्तिक आय (personal income) पर निर्भर करता है। इस व्यवस्था म जिनके पास अधिक सम्पत्ति है पर जिनकी आय अधिक है वे अधिक वस्तुयें प्राप्त करेंगे तथा जिनकी आय कम है वे कम वस्तुयें प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार साधन सम्पन्न वर्ग कुल उत्पादन का एक बडा भाग प्राप्त करता है तथा साधनहीन वर्ग जो अधिक बडा होता है, कुल उत्पादन का छोटा भाग प्राप्त करता है।

---

12 'The price system in such a situation, though working perfectly, may lead to social consequences that we consider undesirable and attempt to rectify through the political process'

— Prof Leftwich

उत्पादन के वितरण के सम्बन्ध में मूल्य प्रणाली का कोई नैतिक वक्तव्य नहीं होता अतः आय के वितरण की असमानता होने के कारण उत्पादन के वितरण में भी काफी अधिक विषमता पाई जाती है अर्थात साधनों का वितरण असमान होने से उत्पादन का वितरण अन्यायपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार का वितरण सामाजिक व नैतिक दृष्टि से उचित नहीं होता इसलिए पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में सरकार द्वारा कुछ संशोधन किये जाते हैं परन्तु इन संशोधनों से मूल्य प्रणाली के कार्य को बहुत अधिक प्रभावित नहीं किया जाता। सरकार के द्वारा आय का पुनर्वितरण करने के उद्देश्य से प्रगतिशील कर लगाये जाते हैं तथा कल्याणकारी कार्यों पर अधिक व्यय किया जाता है।

उपर्युक्त तीनों समस्याएं एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और पूंजीवादी व्यवस्था में इन तीनों का संचालन मूल्य प्रणाली द्वारा किया जाता है। परन्तु वर्तमान में पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के रूप में परिवर्तन होने के कारण कुछ सीमा तक सरकारी हस्तक्षेप भी रहता है। सरकारी हस्तक्षेप का प्रमुख कारण कल्याणकारी कार्यों में वृद्धि करना होता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था से क्या अभिप्राय है? पूंजीवाद के गुण व दोषों की व्याख्या कीजिए।

२ पूंजीवाद की परिभाषा दीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

३ पूंजीवाद की मुख्य विशेषताएं क्या हैं? क्या पूंजीवाद आज के युग में व्यावहारिक है?

४ एक आर्थिक प्रणाली के क्या कार्य हैं? पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में ये कार्य किस प्रकार सम्पन्न किये जाते हैं?

५ निम्नलिखित विवेचन कीजिए

(अ) पूंजीवाद औद्योगिक क्रांति की देन है।

(ब) पूंजीवाद में साधनों का अपव्यय होता है।

(स) पूंजीवाद स्वयं अपने विनाश के बीज बोए रहता है।

(द) पूंजीवाद में लाभ का उद्देश्य ही सर्वोपरि है।

———

अध्याय ५

★

समाजवाद
[Socialism]

★ ★ ★

समाजवाद का जन्म मुख्यत पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। पूंजीवादी व्यवस्था म आर्थिक विषमता और शोषण, बेरोजगारी, वर्ग-सघर्ष आदि दोष पाये जात हैं, जिसके विरोध म इंग्लैण्ड, फ्रास व जर्मनी के विद्वान विचारको ने आवाज उठाई। कार्ल मार्क्स ने समाजवाद को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। मार्क्स के बाद इस विचारधारा का विस्तार हुआ और आज ससार के प्रत्येक कोने से समाजवाद के समर्थकों की आवाज आती है। विश्व का आधे से अधिक भाग आज समाजवादी हो चुका है।

समाजवादी विचारधारा के प्रारम्भ से लेकर आज तक जितने प्रवक्ता एव विचारक हुए हैं, उनके विचारो म काफी विभिन्नता पाई जाती है। जिसके कारण आज समाजवाद के सम्बन्ध म सामान्य परिभाषा देना सम्भव नही है।

प्रो जोड (Prof C E M Joad) ने इस स्थिति को देखकर कहा है—"समाजवाद के अनेक प्रवक्ताओ के कारण, जिसम राजनैतिक विचारक भी सम्मिलित है, समाजवाद का साहित्य इतना विशद् हो गया है कि यह बतलाना भी कठिन हो जाता है कि समाजवाद क्या है ? सक्षेप म समाजवाद एक एसी टोपी की तरह है जिसकी शक्ल प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड गई है।"[1]

[1] 'As the advocates of socialism are very numerous and many of them have been first rate political pamphleteers, the literature of the subject is enormous, with the result that it is hard to say in what exactly it is that socialism consists Socialism in short, is like a hat that has lost its shape because everybody wears it'
—Prof C E M Joad

विचारों की भिन्नता के कारण विभिन्न विद्वानों ने समाजवाद की विभिन्न परिभाषायें दी हैं। इनमें से कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं।

तुगन बरानोवस्की (Tugan Baranowsky) के अनुसार—'समाजवाद का सार यह है कि इसके अन्तर्गत समाज में किसी व्यक्ति का शोषण नहीं होता। वतमान आर्थिक व्यवस्था लाभ पर आधारित है, लेकिन समाजवाद में उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण का होता है। वस्तुओं का उत्पादन समाज की उपयोगिता के आधार पर ही किया जाता है।'[2]

इस परिभाषा में शोषणरहित समाज एवं अधिकतम सामाजिक कल्याण को समाजवाद का आधार बताया गया है। यह परिभाषा उचित प्रतीत होती है।

प्रो वेब एवं श्रीमती वेब (Prof Webb and Mrs Webb) के शब्दों में—"सामाजीकरण का मुख्य लक्षण यह है कि उद्योगों एवं सेवाओं तथा उत्पादन के साधनों, जिनकी आवश्यकता हो, पर निजी व्यक्तियों का स्वामित्व नहीं होना चाहिए तथा औद्योगिक एवं सामाजिक प्रशासन का सगठन निजी लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं होना चाहिए।"[3]

यह परिभाषा दो बातें स्पष्ट करती है —(१) उत्पादन सरकार द्वारा किया जाना चाहिए तथा (२) कार्य लाभ के उद्देश्य से नहीं होने चाहिए।

प्रो डिकिन्सन (Prof Dickinson) के अनुसार—"समाजवाद समाज का एक ऐसा आर्थिक सगठन है, जिसमें उत्पादन के भौतिक साधनों पर समाज का स्वामित्व होता है और उनका सचालन एक सामान्य योजना के अन्तर्गत ऐसी सस्थाओं द्वारा किया जाता है जो कि समाज का प्रतिनिधित्व करती है तथा समाज के प्रति उत्तर-

---

2 "The essence of socialism lies in the absence of exploitation of any individual in the society. The present economic system is based on the profit motive But under socialism it aims at the maximum welfare of all The production of commodities is on the basis of their utility of the community"

—Prof Tugan Baranowsky

3 "The essential feature in socialisation is that industries and services, with the instruments of production, which they require, should not be owned by individuals and that industrial and social administration should not be organised for the purpose of obtaining private profit" —Prof. Webb and Mrs. Webb

दायी होती है। सामाजीकृत नियोजित उत्पादन से जो लाभ प्राप्त होते हैं उनको समाज के सभी व्यक्ति समानता के आधार पर प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।'[४]

यह परिभाषा तीन बातें स्पष्ट करती है —(अ) उत्पत्ति के साधनों पर समाज का स्वामित्व, (ब) एक सामान्य योजना के अनुसार उत्पादन, (स) समानता के आधार पर आय का वितरण। इन विशेषताओं के कारण ही डिकिन्सन की परिभाषा को एक श्रेष्ठ परिभाषा माना जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह बात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि समाजवादी व्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था से पूर्णत भिन्न है। समाजवादी व्यवस्था में निजी स्वामित्व को कोई स्थान प्राप्त नहीं होता तथा समस्त आर्थिक क्रियायें सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए संचालित की जाती है।

समाजवाद की विशेषतायें (Salient Features of Socialism)

समाजवाद की उपर्युक्त परिभाषाओं में यद्यपि भिन्नता है फिर भी इनसे समाजवाद की प्रमुख विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं। समाजवाद की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

(१) **उत्पादन के साधनों पर सरकार का स्वामित्व** (Social or Governments ownership on the factors of production)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उत्पादन के साधनों पर सरकार या समाज का स्वामित्व होता है। इसमें व्यक्तियों को प्राय निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं होता और न ही निजी लाभ के उद्देश्य से उत्पादन के साधनों का उपयोग राज्य द्वारा सामूहिक हित के लिए किया जाता है।

परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि समाजवाद में सभी वस्तुओं और साधनों पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होगा। इस व्यवस्था में निजी क्षेत्र रह सकता है परन्तु वह महत्वहीन होता है।

---

4 Socialism is an economic organisation of society in which the material means of production are owned by the whole community and operated by organs representative of and responsible to the community according to a general plan all members of the community being entitled to benefits from the results of such socialised planned production on the basis of equal rights"
—Prof Dickinson

प्रो. लुक्स (Prof. Loucks) के अनुसार —"केवल बड़े पैमाने के उत्पादन म प्रयोग होने वाले साधनो पर सरकार का स्वामित्व होता है, छोटे पैमाने पर सीमित मात्रा म उत्पादन निजी व्यक्तियो द्वारा किया जा सकता है।'

(२) आर्थिक नियोजन (Economic planning)—नियोजन समाजवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। यदि हम कहे कि बिना नियोजन के समाजवाद सम्भव नही है तो अतिशयोक्ति नही होगी। समाजवादी व्यवस्था पूर्णत योजनाबद्ध होती है। इसका कारण यह है कि इस व्यवस्था म 'मूल्य यन्त्र' (price mechanism) का सवथा अभाव होता है। इस व्यवस्था मे उत्पादन करने का उद्देश्य सामाजिक लाभ म वृद्धि करना होता है, अत उन वस्तुओ का उत्पादन बन्द कर दिया जाता है जिनसे कम लाभ प्राप्त होता है और उन उद्योगो का विकास किया जाता है जो लाभ म वृद्धि करते हैं। इस कार्य को नियोजन अधिकारी द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(३) सामाजिक कल्याण (Social welfare)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था म वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन समाज के कल्याण म वृद्धि करने के उद्देश्य से किया जाता है। अत आर्थिक क्रियाओं को पूजीवादी व्यवस्था के समान स्वतन्त्र नही छोड़ा जाता बल्कि उन क्रियाओ के निर्देशन और उनके बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य केन्द्रीय नियोजन अधिकारी द्वारा एक निश्चित योजना के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार इस व्यवस्था म व्यक्तिगत लाभ के लिए उत्पादन न किया जाकर उपभोग के लिये उत्पादन किया जाता है जो कि सामाजिक कल्याण म वृद्धि करता है।

(४) आर्थिक समानता (Economic equality)—समाजवादी व्यवस्था का उद्देश्य आर्थिक असमानताओ को समाप्त कर देना है। इस व्यवस्था म व्यक्तिगत सम्पत्ति और लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य को समाप्त कर दिया जाता है, जिससे असमानताय अधिक नही होती। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का मुख्य सिद्धांत 'प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार कार्य देना तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार साधन उपलब्ध कराना है।' यद्यपि व्यवहार मे आर्थिक असमानताये पूर्णत समाप्त नही की जा सकती, परन्तु इस व्यवस्था मे पूजीवादी अर्थ व्यवस्था की अपेक्षा समानता स्थापित करने के लिए अधिक प्रयास किए जाते है।

(५) शोषण का निराकरण Elimination of exploitation)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन के साधनो पर सरकार का नियन्त्रण होता है तथा सरकार

अधिकतम कल्याण के उद्देश्य से उत्पादन कार्य करती है, अतः इस व्यवस्था मे समाज पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था की तरह दो वर्गों—पूँजीपतियों और श्रमिकों—मे विभाजित नही होता। इस कारण श्रमिक वर्ग का शोषण नही हो पाता। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता व क्षमता के अनुसार कार्य दिया जाता है तथा इसी को ध्यान मे रखकर पारिश्रमिक दिया जाता है।

(६) **प्रतियोगिता का अन्त** (Elimination of competition)—समाजवादी व्यवस्था मे उत्पादन साधनों पर नियन्त्रण सरकार का होता है। सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता उत्पादन की मात्रा, वस्तुओं के प्रकार तथा उनकी कीमत का निर्धारण करती है। अत इस व्यवस्था म बाजार म प्रतियोगिता नहीं पाई जाती।

(७) **अनार्जित आय की समाप्ति** (End of unearned income)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था म प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता व योग्यता के अनुसार कार्य करता है और उसे इसी आधार पर पारिश्रमिक प्राप्त होता है। जो व्यक्ति कार्य नहीं करता है उसे आवश्यक सुविधायें प्राप्त नही होती हैं। इस प्रकार इस व्यवस्था मे कोई भी व्यक्ति अनार्जित आय प्राप्त करके अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता।

(८) **वर्ग संघर्ष की समाप्ति** (Elimination of class-struggle)—समाजवादी व्यवस्था म समाज दो वर्गों पूँजीपति व श्रमिकों—म विभक्त नहीं होता, क्योंकि उत्पादन कार्य सरकार द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। अत मालिकों व श्रमिकों म संघर्ष का प्रश्न ही नही उठता। इस प्रकार औद्योगिक शांति बनी रहती है।

समाजवादी अर्थ व्यवस्था के गुण (Merits of Socialist Economy)

समाजवाद की ओर आज अधिकांश लोग आकृष्ट हुए हैं, इसका कारण पूँजीवाद के दोष हैं। समाजवाद के समर्थक विचारकों एवं अर्थशास्त्रियों का विचार है कि समाजवाद म पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के दोष अपने आप ही समाप्त हो जाते हैं। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं —

(१) **आर्थिक साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग** (Maximum utilisation of economic resources)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था म केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं और उन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु देश के प्राकृतिक और आर्थिक साधनों का संतुलित ढंग से प्रयोग किया जाता है। नियोजित ढंग से साधनों का प्रयोग होने के कारण सभी साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग होता है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे केन्द्रीय सत्ता का अभाव होता है, प्रत्येक व्यक्ति लाभ के उद्देश्य को ध्यान म रखकर उत्पादन कार्य करता है। इसका परिणाम यह होता है

कि अनेक उत्पादक लाभ प्राप्त करने के लिये उत्पादन कार्य करते है, जिससे उत्पादन में सामंजस्य स्थापित नही हो पाता तथा साधनों का अपव्यय भी होता है।

(२) **सतुलित विकास** (Balanced development)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था में उत्पादन 'निजी लाभ' के लिए न किया जाकर सामाजिक कल्याण के लिए किया जाता है। अत सामाजिक दृष्टि से लाभदायक सभी उद्योगों के विकास की योजना तैयार की जाती है, जिससे पिछड़े हुए भागों का भी विकास समान रूप से किया जाता है। आर्थिक नियोजन का सहारा लेने के कारण देश का विकास सतुलित ढग से तो होता ही है, साथ ही-साथ विकास की गति भी तेज होती है।

(३) **व्यापार चक्रों का अन्त** (Elimination of trade cycles)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था में आर्थिक स्थायित्व अधिक रहता है। इस व्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन और उनकी माग में समन्वय स्थापित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप 'अधिक उत्पादन' (over production) या 'कम उत्पादन' (under production) की समस्या नही रहती, अर्थात मन्दी और तेजी की सम्भावनायें काफी कम हो जाती है। इस तरह समाजवादी व्यवस्था में व्यापार चक्रों का अन्त हो जाता है।

(४) **बेरोजगारी का निराकरण** (Elimination of unemployment)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था में नियोजित ढग से सभी कार्य होने के कारण बेरोजगारी की समस्या नही पाई जाती है। इस व्यवस्था में मुख्य उद्देश्य ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि और बेरोजगारी के निवारण का होता है। इसके विपरीत पूजीवादी अर्थ व्यवस्था में व्यापार चक्रों की उपस्थिति के कारण बेरोजगारी की समस्या सदैव बनी रहती है। प्रो पीगू (Prof Pigou) ने इस सम्बन्ध में अपना मत निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है —

"बेरोजगारी की समस्या के समाधान में केन्द्रीय नियोजन से युक्त समाजवादी व्यवस्था पूजीवाद की तुलना में निश्चित रूप से लाभदायक स्थिति में है।"[5]

(५) **सामाजिक कल्याण में अधिकतम वृद्धि** (Maximisation of social welfare)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन 'लाभ के उद्देश्य' से न किया जाकर 'व्यक्तियों के के कल्याण' के उद्देश्य से किया जाता है इस व्यवस्था में उत्पादन करते समय जनता की

---

5 "For tackling the problem of unemployment, a socialist system with central planning has definite advantage over a capitalist one" —Prof Pigou

आवश्यकता की वस्तुओ की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त समाजवादी व्यवस्था मे नागरिको की सामाजिक सुरक्षा, जैसे—वृद्धावस्था पेंशन, बीमारी मे सुरक्षा आदि की बहुत अच्छी व्यवस्था की जाती है।

(६) **आर्थिक असमानताओं मे कमी** (Reduction in economic inequalities)—पू जीवादी अर्थ व्यवस्था का प्रमुख दोष आय के वितरण की अत्यधिक विषमता है। समाजवाद इस दोष को दूर कर देता है। समाजवाद का प्रधान उद्देश्य आय के वितरण की असमानताओ को कम करना है। इस व्यवस्था के उत्पादन के साधनो पर स्वामित्व सरकार का होता है, इसलिए केन्द्रीय सत्ता इस प्रकार आर्थिक क्रियाओ का सचालन करती है कि आय असमानताये न्यूनतम हो जायें। समाजवादी व्यवस्था म व्यक्तियो की आय मे अन्तर केवल कार्यक्षमता के अ तर मे बराबर होता है। इस व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति को समानता के आधार पर कार्य करने और विकास करने के अवसर प्राप्त होते है।

(७) **शोषण का अन्त** (Elimination of exploitation)—समाजवादी व्यवस्था मे सभी आर्थिक साधनो पर सरकार का स्वामित्व या नियन्त्रण होता है, जिसके कारण समाज दो वर्गों म विभक्त नही हो पाता। राज्य आर्थिक साधनो का प्रयोग अधिकतम कल्याण के लिये करता है इसलिए व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण नही हो पाता।

(८) **वर्ग-सघर्ष की समाप्ति** (Elimination of class-struggle)—पू जीवादी व्यवस्था मे वर्ग-सघष निर तर चलता रहता है, क्योकि पू जीपतियो और श्रमिको के हित अलग अलग होते है। परन्तु समाजवादी व्यवस्था मे उत्पत्ति के साधनो पर सरकार का स्वामित्व होता है अत वर्ग विभाजन नही होता। वर्ग-विभाजन (पू जीपति और श्रमिक) न होने के कारण औद्योगिक शाति भी बनी रहती है।

(९) **परजीविता का अन्त** (End of parasitism)—समाजवाद मे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर नियन्त्रण लगा दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उत्तराधिकार मे सम्पत्ति या धन किसी व्यक्ति को भी प्राप्त नही होता। अत कोई भी व्यक्ति अनार्जित आय पर जीवन निर्वाह नही कर सकता। इससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका चलाने के लिए कार्य अनिवार्य रूप से करना पडता है।

समाजवादी अर्थ-व्यावस्था के दोष (Demerits of Socialist Economy).

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के गुणो को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह

व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु यह व्यवस्था भी दोषरहित नही है। इसके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं:—

(१) **कुशलता तथा उत्पादकता मे कमी** (Lack of efficiency and productivity)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे कुशलता तथा उत्पादकता का निम्न स्तर रहता है। इसका कारण यह है कि इस व्यवस्था मे उद्योगो तथा व्यवसायो पर नियन्त्रण सरकारी अधिकारियो का रहता है और इन अधिकारियो का कोई निजी स्वार्थ न होने के कारण वे उत्पादन कार्यों म अधिक रुचि नही लेते। सरकारी कार्यों म लाल फीताशाही (red-tapism) होने के कारण शीघ्र निर्णय भी नही लिये जा सकते तथा सरकारी अधिकारियो द्वारा साहसपूर्ण जोखिम भी नही उठाया जाता। इसके अतिरिक्त श्रमिको की आय उनकी कुशलता और योग्यता के आधार पर प्राप्त नही होती बल्कि सरकार द्वारा निर्धारित वितरण नीति के आधार पर दी जाती है। इन सभी कारणो से समाजवादी व्यवस्था मे कुशलता तथा उत्पादकता का स्तर पूंजीवादी व्यवस्था की तुलना मे निम्न रहता है।

(२) **साधनो का अविवेकपूर्ण उपयोग** (Irrational utilisation of resources)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था म उत्पत्ति के साधनो का विवेकपूर्ण उपयोग नही हो पाता क्योकि इसमे पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के समान कोई स्वचालित यन्त्र नही होता। समाजवादी व्यवस्था म उत्पादन की मात्रा, प्रकार आदि का निर्धारण केन्द्रीय अधिकारी द्वारा किया जाता है। केन्द्रीय अधिकारी को सभी आर्थिक निर्णय लेने होते हैं, इसलिए यह सम्भावना बनी रहती है कि माग और पूर्ति मे सामजस्य स्थापित नही हो पाये। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानो का विचार है कि समाजवादी व्यवस्था मे साधनो का वितरण किसी वैज्ञानिक आधार पर नही किया जाता बल्कि मनमाना होता है। इस कारण साधनो का अविवेकपूर्ण उपयोग होता है।

(३) **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता मे कमी** (Loss of consumer's sovereignty)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था मे उपभोक्ता की सार्वभौमिकता समाप्त हो जाती है क्योकि इस व्यवस्था म सरकार या केन्द्रीय सत्ता द्वारा ही यह निर्णय लिया जाता है कि किस वस्तु का और कितनी मात्रा मे उत्पादन होगा। उपभोक्ता को केवल वे वस्तुयें उपभोग के लिए प्राप्त होती हैं जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाती हैं। जबकि पूंजीवाद व्यवस्था मे उपभोक्ता की पसन्द तथा चुनाव के अनुसार ही वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है।

समाजवादी विचारक इस आलोचना से सहमत नही है। उनका विचार है कि इस व्यवस्था मे विलासता की वस्तुओ का उत्पादन नही किया जाता बल्कि उपभोक्ता

की सामान्य आवश्यकताओ को देखकर उत्पादन किया जाता है। जिससे साधनो का अपव्यय रुकता है तथा उन वस्तुओ का उत्पादन भी नही होता जो कि समाज के लिए हानिकारक हैं या जो व्यक्तियों की कार्यक्षमता को कम कर देती है।

(४) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अभाव** (Loss of individual freedom)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था मे व्यक्तियो की स्वतन्त्रता लगभग समाप्त हो जाती है। इस व्यवस्था मे समस्त साधनो का उपयोग राज्य के आदेशानुसार होता है। अत उत्पादन, उपभोग तथा वितरण मे राज्य का नियन्त्रण होता है, और व्यक्ति का आर्थिक जीवन भी स्वतन्त्र नही होता। पूर्ण नियोजित अर्थ व्यवस्था होने के कारण सम्पूर्ण निर्णय केन्द्रीय सत्ता द्वारा लिए जाते है, जिसके परिणामस्वरूप तानाशाही को प्रोत्साहन मिलता है। इस व्यवस्था मे किसी व्यक्ति को सरकार के आदेशो का पालन करना अनिवार्य होता है तथा सरकार की आलोचना करने वालो को कठोर दण्ड भी दिया जाता है। विख्यात समाजवादी विचारक ट्रॉटस्की (Trotasky) के शब्दो म

"वह देश जिसमे राज्य ही केवल नियोक्ता (employer) है, विरोध का अर्थ धीरे-धीरे भूखे रहकर मरना है। पुराना सिद्धात है कि 'जो कार्य नही करेगा नही खायेगा' का स्थान नया सिद्धान्त ले लेना है कि 'जो आज्ञापालन नहीं करेगा नहीं खायेगा'।"[6]

समाजवाद के आलोचकों का विचार है कि इस व्यवस्था मे आर्थिक समानता के लिए प्रयत्न किये जाते है परन्तु ये प्रयत्न केवल दुख और कठिनाइयो म ही समानता लाते है।

(५) **प्रेरणा का अभाव** (Absence of incentive)—समाजवादी अर्थ व्यवस्था म उत्पादन के काय निजी लाभ के उद्देश्य से नही किये जाते इसलिए उत्पादन कार्यों म प्रेरणा का अभाव पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्पादन कार्यों मे नयी विधियो और आविष्कारो को भी अधिक प्रोत्साहन प्राप्त नही होता क्योंकि समाजवादी व्यवस्था मे उत्पादक को निश्चित वेतन प्राप्त होना है। अत वह साहसयुक्त जोखिम भी नही उठाता।

---

6 "In a country where the sole employer is the State, opposition means death by slow starvation The old principle, he who does not work shall not eat has been replaced by a new one, he who does not obey shall not eat" —Trotasky

समाजवादी विचारकों के अनुसार यह विचार भ्रमात्मक है। उनका विचार है कि इस व्यवस्था म राष्ट्रीयता, देशप्रेम तथा स्वाभिमान आदि ऐसी प्रेरणायें है जो कि व्यक्ति को उत्पादन कार्यों के लिए प्रेरित करती हैं। इसके साथ ही व्यक्ति को उसकी योग्यता व क्षमतानुसार वेतन प्राप्त होता है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी कुशलता म वृद्धि करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

(६) निर्णयों का अभाव (Absence of dicision making)—समाजवादी व्यवस्था म उत्पादन, वितरण आदि के सभी निर्णय केन्द्रीय सत्ता द्वारा लिये जाते हैं और ये निर्णय नौकरशाही पर निर्भर करते है। नौकरशाही म अनेक दोष होने के कारण तथा व्यक्तिगत लाभ के अभाव म आर्थिक निर्णय शीघ्र नही लिये जाते जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन प्रभावित होता है।

समाजवादी विचारक इस बात से सहमत नही हैं, उनके अनुसार व्यवहार मे यह बात पूर्णत गलत सिद्ध हो जाती है। प्राय समाजवादी देशो मे विकास की गति अन्य देशो की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है, और यह तभी सम्भव है जबकि व्यक्तियो द्वारा निर्णय सही समय पर तथा तत्परता से किये जाते हो।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि समाजवादी अर्थ व्यवस्था म अनेक दोष पाये जाते है, परन्तु जब पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था से इसकी तुलना करते हैं तो यह व्यवस्था श्रेष्ठ प्रतीत होती है। व्यवहार म यह देखने को मिला है कि समाजवादी व्यवस्था म देश के विकास की गति काफी तेज रहती है जिससे देश आर्थिक रूप से सुदृढ होता है तथा उसके नागरिको का जीवन स्तर भी ऊँचा उठ जाता है। इसम 'मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण' भी नही होता तथा प्रत्येक व्यक्ति को समानता के आधार पर सुविधायें प्रदान की जाती हैं। प्रो शुम्पीटर (Schumpeter) ने समाजवादी व्यवस्था को पूजीवादी व्यवस्था की तुलना म श्रेष्ठ बताया है। उनके अनुसार इस व्यवस्था म चार गुण पाये जाते है —

(१) समाजवाद म राजकीय प्रबन्ध के अन्तर्गत अधिक कुशलता पाई जाती है, जिससे उत्पादन मे वृद्धि होती है।
(२) समाजवाद मे व्यापार चक्रो का अभाव रहता है।
(३) समाजवाद मे एकाधिकारी आचरण (monopolistic practices) का अभाव पाया जाता है।
(४) समाजवाद मे आर्थिक असमानतायें कम पाई जाती है जिससे आर्थिक कल्याण अधिक होता है।

समाजवाद की श्रेष्ठता के कारण ही ससार के अधिकतर व्यक्तियों का झुकाव समाजवाद की ओर है । आज पूजीवादी देशो म भी अनेक प्रयत्न आर्थिक समानताओ को कम करने के लिये किये जा रहे है जिससे कि उनके स्वरूप म भी समाजवादी तत्वो का धीमे धीमे प्रवेश होता जा रहा है । यह सब कारण समाजवाद की श्रेष्ठता को प्रभावित करते हैं ।

समाजवाद के विभिन्न स्वरूप (Different forms of Socialism)

उपयुक्त अध्ययन म हमने समाजवाद के सामान्य स्वरूप की व्याख्या की है । व्यवहार म राबर्ट ओवन (Robert Owen) स लेकर आज तक के समाजवादी विचारको ने इसका अनेक रूपो म प्रतिपादित किया है । प्रारम्भ से लेकर आज तक की समाजवादी विचारधारा को हम दो भागो म बाट सकते हैं —

(१) विकासवादी समाजवाद (Evolutionary socialism),
(२) क्रान्तिकारी समाजवाद (Revolutionary socialism) ।

दोनो ही विचारधारा के समाजवादियो के आदर्श व उद्देश्य समान है परन्तु उन उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनो मे भिन्नता पाई जाती है । विकासवादी समाजवाद के विचारक अपने उद्देश्यो की पूर्ति धीरे धीरे, शान्तिपूर्ण एव वैधानिक तरीको से करना चाहते हैं । क्रान्तिकारी समाजवादी अपने उद्देश्यो की पूर्ति म हिंसा व क्रान्तिकारी रीतियो के प्रयोग को भी उचित मानते हैं । ब्रिटेन की लेबर पार्टी का समाजवाद विकासवादी समाजवाद है जबकि रूस चीन, आदि साम्यवादी देशो का समाजवाद क्रान्तिकारी समाजवाद है ।

समाजवाद के अनेक रूप है जिनम से मुख्य रूप निम्नलिखित है ।

(१) **समूहवाद या राजकीय समाजवाद** (Collectivism or State socialism)— राजकीय समाजवाद का जन्मदाता रोडबर्टस (Rodbertus) है । इस प्रकार के समाजवाद म 'उत्पादन के समस्त साधनो का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है तथा राज्य द्वारा ही धन की उत्पत्ति और उसका वितरण होता है। इस व्यवस्था म निजी व्यक्ति को उत्पादन कार्य करने और लाभ प्राप्त करने की स्वतत्रता नही होती। राजकीय समाजवाद म उत्पादन से जो लाभ प्राप्त होता है वह जनता के हित म व्यय कर दिया जाता है ।

मार्क्सवाद और समूहवाद या राजकीय समाजवाद म प्रमुख अन्तर यह है कि राजकीय समाजवाद मे वैधानिक तथा ससदीय ढग से राज्य सत्ता प्राप्त की जाती है जबकि मार्क्सवाद म क्रान्ति और विद्रोह के द्वारा समाजवाद की स्थापना की जाती है ।

(२) **मार्क्सवाद या वैज्ञानिक समाजवाद** (Marxism or scientific socialism—) वैज्ञानिक समाजवाद का जन्मदाता कार्ल मार्क्स (Karl Marx) है इसलिए इसे

मार्क्सवाद के नाम से भी जाना जाता है। मार्क्स से पूर्व समाजवाद का एक आदर्शवादी तथा काल्पनिक रूप था इसलिए इसे काल्पनिक समाजवाद भी कहा जाता था। मार्क्स ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक 'दास केपिटल' (Das Capital) में सन् १८६७ में समाजवाद के सिद्धान्त को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया और वैज्ञानिक समाजवाद के विकास में एन्जिल्स (Engels) का सहयोग प्राप्त किया।

मार्क्स के अनुसार—"समाजवाद से अभिप्राय आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन के साधनों पर पूरे समाज का स्वामित्व स्थापित होना, उत्पादन शक्तियों का तेजी से उन्नति करना और उत्पादन का एक योजना के अनुसार संगठित किया जाना है।"

मार्क्सवादी समाजवाद के दो मुख्य आधार हैं — (अ) मूल्य का श्रम सिद्धांत (labour theory of value), (ब) इतिहास की भौतिक व्याख्या (material interpretation of history)।

मार्क्स का 'मूल्य का श्रम सिद्धांत' यह बताता है कि श्रमिकों को उत्पादन मूल्य की अपेक्षा मजदूरी बहुत कम मिलती है। इस अतिरेक (surplus) को पूंजीपतियों द्वारा हड़प कर लिया जाता है, और वे श्रमिकों का शोषण करते हैं। अतः मार्क्स ने बताया कि इस 'शोषण' या 'लूट' का कारण 'निजी सम्पत्ति' है। अतः निजी सम्पत्ति को समाप्त कर देना चाहिए और उत्पादन तथा उपभोग के समस्त साधनों पर सरकार या राज्य का स्वामित्व होना चाहिए।

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की है, उसने बताया है कि सभी ऐतिहासिक घटनाओं का कोई-न-कोई आर्थिक आधार अवश्य होता है। देश का राजनैतिक संगठन भी आर्थिक संगठन पर आधारित होता है। उन्होंने बताया कि देश में युद्ध, आन्दोलन, उपद्रव आदि सब कारणों से होते हैं। मार्क्स ने इतिहास की भौतिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए आगे बताया कि पूंजीवाद स्वयं विनाश के बीज बोए रहता है। उन्होंने बताया कि पूंजीवाद में दो वर्ग—पूंजीपति (haves) और श्रमिक (have-nots) पाये जाते हैं। कालान्तर में पूंजीपतियों की संख्या कम होती जाती है तथा श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इनमें आपस में सदैव संघर्ष चलता रहता है, अतः एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि श्रमिकों की अधिक संख्या थोड़े-से पूंजीपतियों को समाप्त कर देती है। इस प्रकार पूंजीपतियों की समाप्ति के साथ ही पूंजीवाद का अन्त होगा और वर्गहीन समाज (class-less society) की स्थापना होगी। इस प्रकार पूर्ण समाजवाद (full blooded socialism) की स्थापना हो जायेगी।

(३) श्रमिक संघवाद (Syndicatism)—श्रमिक संघवाद का जन्म फ्रांस में हुआ। इस मत के विचारकों का मत है कि सरकारी अधिकारी कुशलतापूर्वक उत्पादन कार्य

नही करते, उनमे नौकरशाही की प्रवृत्ति पाई जाती है। सरकारी कर्मचारी जनहित के लिए कार्य न करके मनमानी करते हैं, इसलिये श्रमिक सघवाद मे उत्पादन के साधनो पर राज्य का नियत्रण नहीं होता बल्कि प्रत्येक फर्म या कारखाने के श्रमिको के सघ उसके मालिक होते हैं और वे ही इनका सचालन करते हैं। अपने आर्थिक या राजनैतिक उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए ये हिंसा का भी प्रयोग करते है।

(४) **शिल्प समाजवाद (Guild socialism)**—शिल्प समाजवाद श्रमिक सघवाद से थोडा भिन्न है। इसमे उत्पादन के साधनो तथा उद्योगो पर राज्य का नियंत्रण रहता है, वह उत्पादन की किस्म, मूल्य-निर्धारण आदि के सम्बन्ध म निर्णय लेता है। परन्तु इनका प्रबन्ध तथा सचालन प्रत्येक फर्म व कारखाने म कार्य करने वाले सभी प्रकार के मजदूर सघो के हाथ मे रहता है। इन सघो को 'गिल्ड' (guild) कहते है।

(५) **साम्यवाद (Communism)**— साम्यवाद मार्क्सवादी समाजवाद का उन्नत रूप है। साम्यवाद को सर्वसत्तावादी सामूहिकवाद (totalitarian collectivism) भी कहते हैं, क्योकि साम्यवाद म उत्पादन, उपभोग आदि सभी पर 'समूह' का नियन्त्रण होता है। इस व्यवस्था मे 'सामूहिक सगठन' (या राज्य) यह निर्धारित करता है कि किन वस्तुओ का और कितनी मात्रा म उत्पादन किया जाय तथा वस्तुओ का वितरण राज्य के द्वारा किया जाता है। भोजन, मकान, शिक्षा, चिकित्सा आदि सभी की व्यवस्था राज्य या सामूहिक सगठन द्वारा की जाती है। व्यक्तियो द्वारा वही कार्य किये जाते है जो सरकार द्वारा उन्हे करने के लिए दिये जाते हैं। इस प्रकार यह व्यवस्था उन अधिकारो को छीन लेती है जो कि व्यक्ति अपने निजी लाभ के लिये या दूसरो के शोषण के लिए प्रयोग म लाता है।

साम्यवाद का आधार अन्तर्राष्ट्रीय है तथा यह जाति, रग, धर्म आदि के भेदो को स्वीकार नही करता। इस व्यवस्था म कोई भी 'पराधीन' जाति या समाज नहीं होता। साम्यवाद का अन्तिम उद्देश्य क्रांति द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है।

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था और मूलभूत आर्थिक समस्यायें (Socialist Economy and Fundamental Economic Problems)

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे उत्पत्ति के साधनो पर राज्य या सरकार का नियत्रण होता है, अतः राज्य इस प्रकार से कार्य करता है कि इन साधनो का अनुकूलतम उपयोग

हो। इन साधनों के उपयोग के लिए तथा जनता के कल्याण के लिए समाजवाद मे नियोजन का सहारा लिया जाता है। समाजवादी व्यवस्था मे आर्थिक निर्णय लेने के लिए एक केन्द्रीय नियोजन अधिकारी (Central Planning Authority) की नियुक्ति की जाती है और इसी के द्वारा अर्थ-व्यवस्था की तीनो मूलभूत समस्याओ—(१) किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ? (२) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाय ? तथा (३) वस्तुओं का उत्पादन किसके लिये किया जाय ?—को हल किया जाता है। केन्द्रीय नियोजन अधिकारी द्वारा उत्पादन इकाइयो के व्यवस्थापको तथा समितियो द्वारा लिये गये निर्णयो मे समन्वय स्थापित किया जाता है।

(१) **किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ?** (What is to be produced ?)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे अन्य अर्थ-व्यवस्थाओ के समान उत्पादन की कुछ सम्भावनायें होती हैं, जिनमे से चुनाव किया जाता है। प्राय उसी उत्पादन सम्भावना को चुना जाता है जो अधिकतम उपयोगिता प्रदान करती हैं। केन्द्रीय योजना अधिकारी ही लाभ को दृष्टिगत रखते हुए यह निर्णय लेता है कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाय। योजना अधिकारी यह निर्णय समाज की आवश्यकताओ की तीव्रता के आधार पर लेता है। समाजवादी व्यवस्था मे किसी वर्ग विशेष की आवश्यकताओं को महत्व नही दिया जाता, बल्कि सम्पूर्ण समाज का समानता के आधार पर आका जाता है। अत इस व्यवस्था मे आवश्यक आवश्यकताओ को प्राथमिकता प्रदान की जाती है, और इन्ही उत्पादनो के लिए साधनो का वितरण किया जाता है।

कुछ आलोचको की यह धारणा है कि समाजवादी व्यवस्था मे उपभोक्ताओं को वही वस्तुयें प्राप्त हो पाती हैं जिनको कि केन्द्रीय अधिकारी पसन्द करते है। परन्तु यह धारणा उचित प्रतीत नही होती क्योकि इस व्यवस्था मे सामूहिक हित को महत्व प्रदान किया जाता है।

(२) **वस्तुओ का उत्पादन कैसे किया जाय ?** (How shall the goods be produced ?)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे वस्तुओं के उत्पादन का सगठन केन्द्रीय योजना अधिकारी या सरकार द्वारा किया जाता है। इस व्यवस्था मे उन विधियों और तकनीको का प्रयोग किया जाता है जिससे उत्पादन की मात्रा अधिकतम हो। इस व्यवस्था मे उत्पादन इकाइयो के लिए उत्पादन की मात्रा निश्चित कर दी जाती है, तथा उनको उत्पादन के साधन सुलभ कर दिये जाते है। यदि उत्पादन की मात्रा निर्धारित उत्पादन से कम है तो उसकी कार्यक्षमता मे वृद्धि के लिए अनेक उपाय

किये जाते है । यदि उत्पादन की मात्रा निर्धारित उत्पादन से अधिक है तो प्रोत्साहन देने के लिए 'बोनस' आदि की सुविधा प्रदान की जाती है ।

इस व्यवस्था मे नई विधियो और तकनीको के प्रयोग को महत्व दिया जाता है तथा उत्पादन कार्य मे अनुसधान आदि के लिये विशेष सुविधायें भी उपलब्ध करा दी जाती हैं ।

(१) वस्तुओ का उत्पादन किसके लिए किया जाय ? (For whom shall the goods be produced ?)—समाजवादी व्यवस्था मे उत्पादित वस्तुओ के वितरण की विशेष समस्या उत्पन्न नहीं होती । चू कि उत्पादित वस्तुओं का वितरण आय पर निभर होता है इसलिए समाजवादी व्यवस्था म आय के वितरण मे अधिक असमानता न होने के कारण सभी व्यक्तियों के लिए समान आधार पर उत्पादन किया जाता है । व्यक्तियो की स्थिति मे भिन्नता होने के कारण वितरण मे आवश्यकतानुसार कुछ असमानता अवश्य आ जाती है । इस प्रकार, यह व्यवस्था सम्पूण समाज की इच्छाओ को समान प्राथमिकता प्रदान करती है ।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ समाजवाद से आप क्या समझते हैं ? समाजवाद की विशेषताओ को बताइए ।

२ समाजवाद की परिभाषा दीजिये तथा उसके गुणो व दोषो की व्याख्या कीजिए ।

३ समाजवाद तथा पू जीवाद म अन्तर स्पष्ट कीजिए । क्या समाजवाद पू जीवाद के दोषो को दूर करता है ?

४ समाजवाद के विभिन्न स्वरूप बताइए तथा किसी एक स्वरूप (form) की विस्तृत व्याख्या कीजिए ।

५ समाजवाद पर एक निबन्ध लिखिये ।

६ आर्थिक प्रणाली के प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिये । समाजवादी प्रणाली किस प्रकार से इन कार्यों को पूरा करती है, समझाइये ।

अध्याय ६

★

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था

[Mixed Economy]

★ ★ ★

मिश्रित अर्थ व्यवस्था वर्तमान युग की देन है। इस अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादन, वितरण तथा आर्थिक विकास के साधनो पर न तो सरकार का पूर्ण स्वामित्व होता है और न ही निजी व्यक्तियो का। यह वह अर्थ-व्यवस्था है जिसम देश के विकास मे सरकार व साहसी दोनो ही समान रूप से सहयोग प्रदान करत है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की धारणा का विकास

(Evolution of the Concept of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थ व्यवस्था का विचार सारे विश्व के लिए एक नया विचार है। एडम स्मिथ (Adam Smith), जे बी से (J. B Say), रिकार्डो (Ricardo), जे एस मिल (J S Mill) आदि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने राज्य के हस्तक्षेप को व्यापार सचालन आदि के लिए अनुचित बताया। इस प्रकार उन्होने स्वतन्त्र व्यापार और अहस्तक्षेप की नीति (Laissez Faire) का समर्थन किया। इस नीति का थोडे समय तक (मुख्यत प्रथम विश्वयुद्ध से पहले तक) बोलबाला रहा, परन्तु स्वतन्त्र व्यापार की नीति मे अनेक दोषो—(१) गलाकाट प्रतियोगिता, (२) वितरण की असमानता, (३) श्रमिको का शोषण, (४) व्यापार चक्रो की उपस्थिति—के कारण इस व्यवस्था से व्यक्तियो का ध्यान हटने लगा। उस समय के विचारको का ध्यान समाजवाद की ओर आकृष्ट हुआ। पूजीवादी देशो मे इस स्थिति को देखकर सरकार ने भी कुछ महत्वपूर्ण उद्योगो और व्यवसायो को अपने नियन्त्रण मे लेना प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की शुरूआत हुई।

प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व ही यद्यपि स्वतन्त्र व्यापार की नीति का पतन होना प्रारम्भ हो गया था, परन्तु १९१७ की रूसी क्रांति ने पूंजीवाद (स्वतन्त्र उपक्रम अर्थ व्यवस्था) के विरोध मे व्यक्तियो को आकृष्ट किया। अधिकांश अर्थशास्त्री समाजवाद के सम्बन्ध में चर्चा करने लगे। लार्ड कीन्स (Lord Keynes) ने अपनी पुस्तक 'स्वतन्त्र व्यापार का अन्त' (End of Laissez Faire) मे जो कि १९२६ म प्रकाशित हुई, पूंजीवाद (स्वतन्त्र व्यापार की नीति) की कटु आलोचना की। इसके अतिरिक्त १९२९-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी से उत्पन्न हुए आर्थिक सकटो को देखते हुए अनेक अर्थशास्त्री समाजवाद के समर्थक हो गये। इन अर्थशास्त्रियो ने कीन्स के विचारो का समर्थन किया। पीगू (Pigou) ने कीन्स के विचार का समर्थन करते हुए लिखा है

> "आर्थिक शांति के लिए उत्पादन के साधनो का समाजीकरण आवश्यक है और जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा है।"[1]

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के समय तक विश्व मे दो प्रकार की अर्थ-व्यवस्थायें विद्यमान थी (१) पूंजीवाद, (२) समाजवाद। ये दोनो ही एक-दूसरे की विरोधी थी। इन दोनो व्यवस्थाओ मे एक कमी यह थी कि वे एक-दूसरे के लाभो को सम्मिलित नहीं कर पाती थी। इसके अतिरिक्त इन दोनो ही व्यवस्थाओं म अनेक दोष थे।

लार्ड कीन्स ने इस स्थिति को देखकर एक महत्वपूर्ण विचार दिया कि एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था होनी चाहिए जो पूंजीवाद और समाजवाद दोनो के सहयोग के आधार पर कार्य करती हो। इस प्रकार कीन्स ने पूंजीवाद और समाजवाद के बीच एक समझौते की नीव डाली। यही बाद म मिश्रित अर्थ व्यवस्था के रूप म विकसित हुई।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था[2] पूंजीवाद एव समाजवाद के बीच का रास्ता है। इस अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ क्षेत्रो मे सरकार द्वारा स्वय उत्पादन कार्य किये जाते हैं तथा कुछ क्षेत्रो मे निजी व्यक्तियो को उत्पादन कार्य करने की स्वतन्त्रता रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे क्षेत्र होते हैं जहा पर सरकार और निजी व्यक्ति दोनो मिलकर उत्पादन कार्य करते हैं

---

1 "Socialisation of means of production was sine-quanon of economic peace and the sooner is was adopted the better"
—Pigou

2 हेन्सन (Hansen) ने *मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को द्वैध अर्थ-व्यवस्था'* (Dual Economy) तथा लर्नर (Lerner) ने नियमित अर्थ व्यवस्था (Controlled Economy) कहा है।

हैं। इस अर्थ व्यवस्था मे उद्योगो के क्षेत्रो का विभाजन एक निश्चित योजना के अन्तर्गत होता है। सामान्यत क्षेत्रो का विभाजन उस देश की आर्थिक नीति और सरकार द्वारा उद्देश्यो से प्रभावित होता है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था की परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि अर्थशास्त्रियो मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के स्वरूप पर मतभेद है। कुछ अर्थशास्त्री, जैसे—सेम्युलसन (Samuelson) अमेरिका की अर्थ व्यवस्था को भी मिश्रित अथ व्यवस्था मानते हैं, जबकि दूसरी ओर कुछ अर्थशास्त्रियो का विचार है कि समाजवादी अर्थ-व्यवस्था ही मिश्रित अर्थ व्यवस्था है। वास्तविकता यह है कि पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र (सरकार द्वारा नियमित एव सचालित उद्योग एव व्यवसाय) का अस्तित्व होता है तथा समाजवादी व्यवस्था म निजी क्षेत्र का अस्तित्व होता है। परन्तु पूजीवाद मे सार्वजनिक क्षेत्र को और समाजवाद मे निजी क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही होता, अत इस प्रकार की व्यवस्था को मिश्रित अर्थ व्यवस्था के नाम से पुकारना तर्कसगत नही होगा।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था मे सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र दोनो ही का अस्तित्व रहता है, इसके साथ ही दोनो क्षेत्रो को अथ व्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। दूसरे शब्दो मे, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे नियन्त्रित (controlled) तथा स्वतन्त्र (free) दोनो ही प्रकार के उद्योगो का सह-अस्तित्व होता है और दोनो ही अर्थ व्यवस्था के विकास म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

जैसा कि पूर्व मे कहा गया है कि मिश्रित अथ व्यवस्था की सर्वमान्य परिभाषा अभी तक कोई नही है, फिर भी निम्नलिखित परिभाषा को उचित परिभाषा माना जा सकता है —

> "मिश्रित अर्थ-व्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमे सार्वजनिक और निजी क्षेत्र का सह-अस्तित्व होता है दोनो के कार्यकरण का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है तथा दोनो क्षेत्र मिलकर देश के आर्थिक विकास के लक्ष्य से कार्य करते हैं।"

सक्षेप मे, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे निजी और सार्वजनिक क्षेत्र घनिष्ट रूप से सबधित होते हैं तथा दोनो एक इकाई के दो भागो के रूप मे कार्य करते है। भारतीय योजना आयोग के विचार इसी प्रकार के हैं।[3]

---

3 "In a planned economy the distinction between the public and private sector is one of relative importance The two sectors are and must function as part of a single organism"

— Planning Commission

मिश्रित अर्थ व्यवस्था की विशेषतायें (Salient Features of Mixed Economy) :

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को सही रूप में समझने के लिए इसकी विशेषताओं को जानना आवश्यक है। इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है :—

(१) **निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह-अस्तित्व** (Co-existence of private and public sector)—मिश्रित अर्थ व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र का सह-अस्तित्व पाया जाता है और इस व्यवस्था में दोनों ही क्षेत्रों का पर्याप्त महत्व रहता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र चार भागों में बटा रहता है —

(१) सार्वजनिक क्षेत्र (Public sector),
(२) निजी क्षेत्र (Private sector),
(३) संयुक्त क्षेत्र (Joint sector),
(४) सहकारी क्षेत्र (Co-operative sector)।

(१) **सार्वजनिक क्षेत्र** (Public sector)—इस क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों पर स्वामित्व व नियंत्रण सरकार का होता है। सरकार जिन उद्योगों को देश की सुरक्षा तथा कल्याण के लिए आवश्यक समझती है, अपने नियंत्रण में ले लेती है। इन उद्योगों में प्रायः कोयला, लोहा एवं इस्पात, खनिज तेल आदि आधारभूत उद्योग तथा सुरक्षा, सम्बन्धी उद्योग एवं यातायात के साधन आदि रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त उन उद्योगों को भी रखा जाता है जिनमें निजी व्यक्ति कार्य करने का साहस नहीं जुटा पाते, लेकिन वे देश के विकास के लिए आवश्यक होते हैं।

(२) **निजी क्षेत्र** (Private sector)—इस क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों पर स्वामित्व एवं नियन्त्रण निजी व्यक्ति का होता है। इस क्षेत्र में प्रायः उपभोग वस्तुओं के उद्योगों को रखा जाता है। इन उद्योगों को सरकार की नीतियों तथा आदेशों का पालन करना अनिवार्य होता है। सरकार द्वारा इन उद्योगों पर अप्रत्यक्ष नियन्त्रण लगाये जाते हैं।

(३) **संयुक्त क्षेत्र** (Joint sector) —इस क्षेत्र के अन्तर्गत वे उद्योग होते हैं जिनका संचालन तथा नियन्त्रण सरकार एवं निजी व्यक्तियों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है। इस क्षेत्र के अस्तित्व का प्रमुख कारण सरकार द्वारा निजी व्यक्तियों की कुशलता तथा अनुभव का देश के विकास के लिए प्रयोग करना

है। सामान्यत इन उद्योगो में प्रयुक्त पूंजी मे ५१ प्रतिशत हिस्सा सरकार का होता है, शेष निजी व्यक्तियो या उद्योगपतियो का।

(४) **सहकारी क्षेत्र** (Co operative sector).—सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत वे उद्योग आते है जो कि सहकारी सस्थाओ द्वारा सचालित किये जाते है। इस क्षेत्र म प्राय उपभोग वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है। सरकार द्वारा इस क्षेत्र मे उद्योगो के विकास के लिए पर्याप्त सुविधायें प्रदान की जाती है।

एक बात यहा बताना महत्वपूर्ण है कि विभिन्न क्षेत्रो के विभाजन का कोई वैज्ञानिक आधार नही है और न ही इस विभाजन के सम्बन्ध मे स्थिर दृष्टिकोण ही अपनाया जाता है। परिस्थितियो तथा आवश्यकताओ मे परिवर्तन होने पर इसमे भी परिवर्तन हो जाता है। एक ही प्रकार का उद्योग सार्वजनिक एव निजी दोनो मे ही हो सकता है, जैसे—लोहा एव इस्पात उद्योग, शक्कर उद्योग, सीमेंट उद्योग आदि भारत मे दोनो क्षेत्रो म पाये जाते है।

(२) **आर्थिक नियोजन** (Economic planning) —मिश्रित अर्थ व्यवस्था मे देश के आर्थिक विकास के लिये आर्थिक नियोजन का सहारा लिया जाता है। उद्योगो तथा व्यवसायो का सचालन एक निश्चित योजना के आधार पर किया जाता है। इग्लैंड, फ्रास आदि देशो मे भी लोकतन्त्रीय नियोजन (democratic planning) को अपनाया जाता है।

(३) **वितरण की असमानताओ मे कमी** (Riduction in the inequalities of distribution) —मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे वितरण की समानता स्थापित करने के लिए भरसक प्रयत्न किये जाते हैं। इस व्यवस्था मे निजी व्यक्तियो को उत्पादन कर लाभ प्राप्त करने को छूट होती है तथा सम्पत्ति का अधिकार होता है, लेकिन यह स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी लाभ की मात्रा और सम्पत्ति की सीमा निर्धारित कर दी जाती है। इसके साथ ही एकाधिकारी शक्तियों पर रोक लगा दी जाती है और सरकार द्वारा अधिक मात्रा मे कल्याणकारी कार्य किये जाते है। इन सब कार्यों से वितरण की असमानताओ मे कमी कर देते है।

(४) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का नियम** (Regulation of individual freedom)—मिश्रित अर्थ व्यवस्था मे यद्यपि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता रहती है परन्तु उसे सामाजिक हित मे नियमित कर दिया जाता है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था को अपनाये जाने के कारण (Reasons for the Adoption of Mixed Economy)

आज ससार म अधिकाश देश मिश्रित अर्थ व्यवस्था को महत्व प्रदान करते हैं, इसका मुख्य कारण इस प्रणाली के गुण हैं। अर्द्ध-विकसित एव अविकसित देशों म तो प्राय इसी प्रणाली को अपनाया जा रहा है। इस प्रणाली के अपनाये जाने के निम्नलिखित कारण हैं —

(१) **पूजीवाद एव समाजवाद दोनो के गुण**—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पूजीवाद एव समाजवाद दोनो के गुणो को लेकर चलती है तथा इसके दोषो को छोड देती है, क्योकि इस व्यवस्था म पूजीवाद को एक निश्चित सीमा के अन्दर ही कार्य करने दिया जाता है, जिससे निजी लाभ, शोषण आदि पर नियत्रण लगा दिया जाता है। इसके साथ ही, साधनो म समान वितरण हेतु प्रयत्न किये जाते है जिसम व्यक्तिगत स्वतत्रता को बनाये रखा जाता है।

(२) **निजी एव सार्वजनिक दोनो ही उद्योगो के पास पूजी का अभाव**—विकासशील एव अविकसित देशो म पूजी का पर्याप्त अभाव पाया जाता है। कोई भी क्षेत्र–निजी या सार्वजनिक–इस स्थिति म नही होता कि वह देश म आर्थिक विकास हेतु वाछित पूजी विनियोजन कर सके, अत देश के आर्थिक विकास के लिए निजी एव सार्वजनिक–दोनो क्षेत्रो म अधिक-से अधिक मात्रा म पूजी प्राप्त करने के लिये प्रयत्न किया जाता है।

(३) **कुशल व्यक्तियों का अभाव**—मिश्रित अर्थ व्यवस्था अपनाये जाने का कारण विकासशील एव अविकसित देशो म कुशल व्यक्तियो का कम मात्रा म पाया जाना है। कोई भी देश इस अवस्था म नही होता कि वह निजी या सार्वजनिक क्षेत्र से पर्याप्त मात्रा म कुशल व अनुभवी व्यक्ति प्राप्त कर सके, अत देश म आर्थिक विकास के लिए सभी प्रयासो द्वारा कुशल एव विशिष्ट शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो की सेवायें प्राप्त की जाती हैं।

(४) **देश की आर्थिक क्रियाओ के क्षेत्र का विभाजन**—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था म देश की आर्थिक क्रियाओं का सचालन किसी एक इकाई द्वारा न किया जाकर इसको सार्वजनिक व निजी क्षेत्र म विभाजित कर दिया जाता है। इस विभाजन से कार्य-सचालन अधिक सुविधापूर्वक एव प्रभावशाली ढग से किया जाता है। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था को पूर्णत स्वतन्त्र भी नहीं छोडा जाता और न ही पूर्ण नियन्त्रण होता है, इससे विकास की गति तेज होती है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के गुण (Merits of Mixed Economy) :

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का उद्देश्य पूंजीवाद एव समाजवाद के गुणो को प्राप्त करना है तथा उनके दोषो से बचना है। अधिकांश देशो ने इसके गुणो के कारण ही इसे अपनाया है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे निम्नलिखित गुण पाये जाते है :—

(१) **निजी सम्पत्ति, लाभ उद्देश्य तथा मूल्य यंत्र** (Private property, profit motive and price mechanism)—मिश्रित अर्थ व्यवस्था मे निजी सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त होता है तथा साहसी लाभ के उद्देश्य से उत्पादन कार्य कर सकता है। इस प्रकार साहसी एव उत्पादको को कार्य करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त होते है। इसके साथ ही, इस व्यवस्था मे मूल्य यंत्र भी कार्य करता रहता है, परन्तु सरकार इस प्रकार से हस्तक्षेप करती है कि उत्पादक एव साहसी निजी लाभ एव सम्पत्ति के उद्देश्य से श्रमिको का शोषण न कर सके।

(२) **पर्याप्त स्वतन्त्रता** (Adequate freedom)—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे व्यक्तियो को पर्याप्त आर्थिक व राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। इस व्यवस्था मे उपभोक्ताओ को अपनी आय को व्यय करने की स्वतन्त्रता होती है तथा व्यक्तियो को अपने व्यवसाय को चुनने की भी स्वतन्त्रता प्रप्त होती है। यद्यपि सरकार द्वारा हानिकारक वस्तुओ के उपभोग पर अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण लगा दिये जाते है तथा कुछ व्यवसायो को सरकार विकास के उद्देश्य से अधिक प्रोत्साहन दे देती है।

इस व्यवस्था मे विचार अभिव्यक्ति की भी स्वतन्त्रता रहती है परन्तु राष्ट्रीय हित मे कभी-कभी सरकार प्रतिबन्ध लगा देती है।

(३) **तीव्र आर्थिक विकास** (Rapid economic development)—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे देश का विकास तीव्र गति से होता है। इस व्यवस्था मे नियोजित ढग से विकास किया जाता है तथा विकास योजनाये बनाने से पूर्व देश मे उपलब्ध सम्पूर्ण साधनो का सर्वेक्षण किया जाता है। तदुपरात निजी एव सार्वजनिक क्षेत्रो का कार्य करण क्षेत्र निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार साधनो मे कुशलतम प्रयोग के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जाते है। इसके परिणामस्वरूप देश का विकास तीव्र गति से होता है।

(४) **आर्थिक असमानताओं में कमी** (Reduction in economic inequalities)—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे आर्थिक असमानतायें काफी कम हो जाती है। क्योंकि इस प्रणाली मे निजी लाभ तथा सम्पत्ति पर एक सीमा के बाद नियन्त्रण लगा दिये जाते है तथा एकाधिकारी प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण व रोक लगा दी जाती है। असमानताओ

को कम करने के लिए सम्पन्न वर्ग पर कर अधिक मात्रा में लगा दिये जाते हैं तथा निर्धन व्यक्तियों को अनेक प्रकार, जैसे— शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा आदि की सुविधा प्रदान की जाती है। दूसरे शब्दों में, सरकार द्वारा निर्धन वर्ग के लिये कल्याणकारी कार्य किये जाते हैं।

(५) **आर्थिक नियोजन की सफलता** (Success of economic planning)—मिश्रित अर्थ व्यवस्था मे नियोजन कार्य काफी सुगम हो जाता है, क्योंकि जनता के द्वारा नियोजन कार्यों मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं की जाती, अपितु विकास कार्यों के लिए सहयोग प्रदान किया जाता है।

मिश्रित अर्थ व्यवस्था के दोष (Demerits of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थ व्यवस्था में अनेक गुण हैं परन्तु यह भी दोषों से रहित नहीं है। इस व्यवस्था की पूंजीवादी व समाजवादी दोनों ही पक्षों से आलोचना की जाती है। इसके बारे में प्राय कहा जाता है—' यह प्रणाली दो घोड़ों पर पैर रखकर चलने वाले सवार की तरह है, जिसकी गिरने की सम्भावना अधिक रहती है।' इस प्रणाली की प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

(१) **अकुशल प्रणाली** (Inefficient system)—मिश्रित अर्थ व्यवस्था के सम्बन्ध में आलोचना की जाती है कि यह प्रणाली कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाती। इस व्यवस्था में पूंजीवाद की तरह न तो मूल्य यन्त्र ही पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ क्रियाशील रह पाता है और न ही समाजवाद की तरह पूर्ण नियोजन होता है, तथा इन दोनों स्थितियों के अभाव में समन्वय की आवश्यकता होती है। दोनों में उचित समन्वय स्थापित करना काफी कठिन कार्य है। उचित समन्वय के अभाव में विकास की गति काफी धीमी हो जाती है।

कुछ आलोचकों का विचार है कि यह व्यवस्था दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती जिससे मानवीय असंतोष में काफी वृद्धि हो जाती है। आचार्य अवधूत (Acharya Avadhut) के शब्दों में

"मिश्रित अर्थ व्यवस्था केवल प्रभावहीन और व्यर्थ ही नहीं है अपितु खतरनाक भी है। यह मानवता में नैराश्य को गहरा कर देती है।"[4]

---

4 'Mixed economy is not only ineffective and useless but is also dangerous It tends to deepen the frustration of humanity'

— Acharya Avadhut

(२) अस्थिरता (Instability)—आलोचकों का मत है कि मिश्रित अर्थ-व्यवस्था कभी भी स्थायी रूप धारण नही कर सकती। ऐसा भी हो सकता है कि निजी क्षेत्र का महत्व धीरे-धीरे बढता जाकर अर्थ व्यवस्था मे प्रमुख स्थान प्राप्त कर ले और सार्वजनिक क्षेत्र का स्थान गौण रह जाय। इसके विपरीत यह भी सभव है कि सरकार द्वारा नियत्रणो की मात्रा मे धीरे धीरे वृद्धि होती जाय और सार्वजनिक क्षेत्र का स्थान प्रमुख हो जाय तथा निजी क्षेत्र का गौण। आलोचको का विचार है कि कालान्तर में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पू जीवादी या समाजवादी व्यवस्था के रूप मे बदल जाती है, इसका अस्तित्व स्थायी नही होता। आचार्य अवधूत के शब्दो मे :

"वास्तव मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था एक हास्यास्पद असगति है। शेर एव बकरे की चिरस्थायी मित्रता की कल्पना करना मूर्खता है।"[5]

(३) लोकतन्त्र को खतरा (Danger to democracy)—आलोचकों का मत है कि मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे धीरे-धीरे सरकार हस्तक्षेप मे वृद्धि करती जाती है और ऐसी स्थिति आ जाती है कि समाजवादी शक्तिया शक्तिशाली हो जाती है। इससे सरकार म तानाशाही की प्रवृति आ जाती है तथा जनतन्त्रीय रूप समाप्त होने लगता है। व्यक्तियो की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की विद्वानो द्वारा की गई आलोचनाओ मे सत्यता का अश अवश्य है, परन्तु यह कहना नितान्त असगत होगा कि मिश्रित अर्थ व्यवस्था व्यवहार मे देश के विकास म सहयोग प्रदान नही कर सकती। वास्तविकता यह है कि आज ससार के अनेक देशो ने इस प्रणाली को अपनाया है, और वे दोनो क्षेत्रो म सहयोग एव समन्वय स्थापित करने मे सफल हुए है। इस प्रणाली को अधिकाश विकासशील व अविकसित देश अपना रहे है, तथा अपना विकास कर रहे है। यदि इस प्रणाली मे कुशल एव अनुभवी व्यक्तियो द्वारा कार्य सचालन किया जाय तो समाजवाद व पू जीवाद, दोनो ही प्रणालियो के लाभ प्राप्त हो सकते है तथा देश अपने साधनो का सतुलित रूप से प्रयोग कर विकास पथ पर आगे बढ़ सकता है।

---

5 "But in reality mixed economy is ludicrously absurd It is preposterous to think of lasting friendship between a goat and tiger"
—Acharya Avadhoot

भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था
(Mixed Economy in India)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास करने तथा नागरिकों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए नियोजन तथा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपनाया। १६४८ की औद्योगिक नीति के साथ ही भारत में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की शुरुआत हुई। इस औद्योगिक नीति में उद्योगों को चार श्रेणियों में बांटा गया, जिसमें सार्वजनिक व निजी दोनों ही क्षेत्रों को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया। सरकार द्वारा इस लोकतन्त्रीय समाजवाद (democratic socialism) का लक्ष्य निर्धारित करने से १६५६ में नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। इस नीति में उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया —

प्रथम श्रेणी में १७ उद्योग रखे गये जिनके विकास का पूर्ण दायित्व केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया। इसमें अस्त्र-शस्त्र, परमाणु शक्ति, लोहा एवं इस्पात, खनिज तेल, वायुयान निर्माण आदि सम्मिलित हैं।

द्वितीय श्रेणी में १२ उद्योगों को रखा गया जिनका भविष्य में नये कारखाने आदि खोलने के लिए सरकार स्वयं कार्य करेगी, लेकिन इसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में सहयोग बनाये रखने पर जोर दिया गया है। इसमें अल्मूनियम, कृत्रिम रबर आदि उद्योग सम्मिलित हैं।

तृतीय श्रेणी में उन उद्योगों को रखा गया जिनका विकास सामान्यतः निजी साहसियों द्वारा किया जायेगा।

सरकार द्वारा निजी क्षेत्र के साहसियों को प्रोत्साहित करने तथा सहयोग देने के लिये अनेक कार्यक्रम भी अपनाये गये। इन तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त सरकार ने यह भी निश्चय किया कि सहकारी क्षेत्र का भी विकास किया जाय। सरकार द्वारा निजी क्षेत्र पर पर्याप्त नियंत्रण रखा जाता है जिससे कि एकाधिकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन प्राप्त न हो।

इस प्रकार भारत में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को महत्व दिया गया है तथा परस्पर सहयोग को प्राथमिकता प्रदान की गई है। इन दोनों क्षेत्रों के महत्व व सहयोग के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए स्व. लालबहादुर शास्त्री ने कहा :—

"मैं इस बात को अत्यधिक महत्वपूर्ण समझता हूं कि व्यापारियों और उद्योगपतियों तथा सरकार के बीच परस्पर चर्चा, सहयोग एवं सद्भावना रहनी चाहिए।"[६]

अधिकांश भारतीय विद्वान व अर्थशास्त्री दोनों क्षेत्रों के सहयोग और समन्वय को देश के आर्थिक विकास के लिए उचित मानते हैं। प्रसिद्ध उद्योगपति भरत राम के शब्दों में—

"दोनों क्षेत्रों में विभिन्न बिन्दुओं पर सहयोग होना आवश्यक है, यदि दोनों में उच्च श्रेणी का सद्भाव स्थापित नहीं किया जाता है तो एक क्षेत्र के विकास की धीमी गति दूसरे क्षेत्र के विकास की सम्भावनाओं को प्रभावित करेगी, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण क्षेत्र की अर्थ-व्यवस्था पर पड़ेगा।"[७]

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था और मूलभूत आर्थिक समस्यायें (Mixed Economy and its Fundamental Economic Problems)

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन कार्य सरकार एवं निजी साहसी दोनों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं।

प्रो लर्नर (Lerner) के शब्दों में—"इस व्यवस्था का मूलभूत सिद्धांत यह है कि किसी विशेष स्थिति में जिस तरीके से अधिकतम सामाजिक कल्याण हो, उसी को अपनाना चाहिये।"[८]

अतः इस व्यवस्था में दोनों ही क्षेत्रों में साधनों का कुशलतम प्रयोग करके उत्पादन में वृद्धि की जाती है तथा व्यक्तियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जाता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में यद्यपि दोनों क्षेत्रों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है, फिर भी सरकार

---

6 "I regard it as a matter of highest importance that there should be increasing deliberations, co operation and goodwill between businessmen and industrialists on the one hand, and government on the other" —Lal Bahadur Shastri

7 'There has essentially to be close association between the two sectors at different points and unless a higher degree of harmony is achieved, the slow rate of growth of one sector will itself depress the potential growth of the other and, therefore, of the economy as a whole" —Bharat Ram

8 'Its fundamental principle of organisation is that in any particular instance the mean that serves the society best should be one that prevails" —Lerner

द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किसी एक क्षेत्र को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दे दिया जाता है, जैसे—भारत म सरकार सार्वजनिक क्षेत्र मे लगातार वृद्धि करती जा रही है।

इस व्यवस्था म भी पू जीवाद व समाजवाद की तरह तीन मूलभूत आर्थिक समस्यायें है—

(१) किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ?
(२) वस्तुओ का उत्पादन कैसे किया जाय ?
(३) वस्तुओ का उत्पादन किस के लिए किया जाय ?

(१) **किस वस्तु का उत्पादन किया जाय ?**—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे 'मूल्य यत्र' तथा सरकार दोनो ही यह निर्धारित करते हैं कि किन वस्तुओ का उत्पादन किया जाय। निजी साहसियो द्वारा उन वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जाता है जो कि उपभोक्ताओ द्वारा पसद की जाती हैं तथा जहा पर लाभ प्राप्त होने की सभावना अधिक रहती है। सरकार द्वारा उन वस्तुओ म उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाता है जो कि अति आवश्यकता की है तथा जो सामान्य उपभोक्ता द्वारा प्रयोग म लाई जाती हैं। सरकार द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उन वस्तुओ एव सेवाओ के उत्पादन पर नियत्रण लगा दिये जाते हैं जो कि हानिकारक हं या जो मनुष्य के कल्याण म वृद्धि नही करती। सार्वजनिक क्षेत्र में उन्ही वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन होना है जिन्हे कि सरकार चाहती है। इस व्यवस्था म सामान्यत उत्पादन प्राथमिकताओ के आधार पर निश्चित किया जाता है।

(२) **वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाय ?**—मिश्रित अर्थ-व्यवस्था म वस्तुओ के उत्पादन का सगठन सरकार व निजी साहसी दोनो के द्वारा किया जाना है। दोनों का यह प्रयत्न होता है कि उत्पादन कम से कम लागत पर किया जाय, क्योंकि निजी साहसी लाभ म वृद्धि करने के लिये लागत घटाने के लिये प्रयत्नशील रहते है, जबकि सरकार उपभोक्ताओ को सस्ते मूल्य पर वस्तुयें उपलब्ध कराने के लिये प्रयत्न करती है। इस प्रकार, दोनो ही क्षेत्रो म नई तकनीक व विधियो को प्रोत्साहन प्राप्त होना है। इसके साथ ही अनुसधान एव प्रशिक्षण को भी महत्व प्रदान किया जाता है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था म दोनो क्षेत्रो म समन्वय एव सहयोग हमेशा बनाये रखा जाता है, अन्यथा मांग व पूर्ति म असतुलन उत्पन्न होने की सभावनायें बढ़ जाती हैं।

इस व्यवस्था मे निजी क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा परन्तु उनका विशेष महत्व नहीं रहा। का शोषण नहीं हो पाता। सरकार द्वारा नियत्रण होने से सम्बन्धित है। आर्थिक विकास प्रवृत्ति को प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता। है। कुछ अर्थशास्त्रियो ने ने प्रति व्यक्ति

(३) वस्तुओं का उत्पादन किस के लिए किया जाय ?--मिश्रित अर्थ-व्यवस्था प्रकार के का वितरण मूल्य प्रणाली के द्वारा होता है। बाजार मे उन्ही व्यक्तियो द्वारा वस्तु क्रय की जाती हैं जिनके पास क्रय शक्ति होती है, अत वे व्यक्ति अधिक वस्तुओ और सेवाओ को प्राप्त करने मे सफल हो जाते हैं जिनके पास क्रय शक्ति अधिक होती है। सरकार का उद्देश्य अधिकतम कल्याण का होता है, इसलिये सरकार निधन वर्ग को वस्तुऐं उपलब्ध कराने के लिये राशनिंग आदि की व्यवस्था करती है तथा वस्तुओ के मूल्यो पर नियत्रण लगा देती है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग पर कर आदि लगा दिये जाते है जिससे उनके पास क्रय शक्ति कम रह जाती है और निर्धन वर्ग के लिए आवश्यक सुविधायें उपलब्ध करायी जाती हैं, फिर भी इस व्यवस्था मे आय की असमानता के कारण उपभोग की जाने वाली वस्तुओ मे काफी असमानता होती है। मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे सम्पूर्ण समाज की इच्छाओ को प्राथमिकता प्रदान करने के लिये प्रयत्न किये जाते है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. मिश्रित अर्थ-व्यवस्था से क्या अभिप्राय है ? इस व्यवस्था के प्रादुर्भाव एव विकास के कारणो की व्याख्या कीजिये।

२ मिश्रित अर्थ व्यवस्था की परिभाषा दीजिये तथा इसकी प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख कीजिए।

३. "मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पूंजीवाद एव समाजवाद का मिश्रित रूप है।" व्याख्या कीजिये।

४. मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के गुणो व दोषो की व्याख्या कीजिये।

५. किसी एक अर्थ व्यवस्था की मूलभूत आर्थिक समस्यायें क्या है ? मिश्रित अर्थ-व्यवस्था उन समस्याओ को कैसे हल करती है ?

६. मिश्रित अर्थ व्यवस्था की विशेषताओ का उल्लेख कीजिये। क्या यह प्रणाली भारत के योजनाबद्ध विकास के लिये उपयुक्त है ?

———

अध्याय ७

★

आर्थिक विकास की परिभाषा व महत्व

[Definition and Importance of Economic Growth]

★ ★ ★

वर्तमान युग आर्थिक विकास का युग है। प्रत्येक देश की सरकार का उद्देश्य अपने देश के नागरिको का जीवन स्तर ऊंचा उठाना और उनको अधिकतम सुख-सुविधायें उपलब्ध कराना होता है। अर्द्ध विकसित तथा अल्प विकसित देश विकास' को और अधिक महत्व दे रहे हैं, क्योंकि इन देशो का उद्देश्य राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। आर्थिक विकास के महत्व मे वृद्धि के कारण ही अधिकाश अर्थशास्त्रियो के चिन्तन का यह विषय बन गया है। साधारणत विकास से अभिप्राय अर्थ-व्यवस्था मे प्रत्येक क्षेत्र मे उत्पादकता के स्तर को बढाने से होता है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्री इसको अधिक व्यापक मानते है, उनके अनुसार विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय म वृद्धि करके देश के नागरिकों के जीवन-स्तर म वृद्धि करना तथा उनको निर्धनता का दूर करना है।

आर्थिक विकास का अर्थ एवं परिभाषायें[1]

(Meaning and Definition of Economic Growth)

आर्थिक विकास का विचार २०वी शताब्दी की देन है, यद्यपि इसस पूर्व भी कुछ

1 कुछ अर्थशास्त्रियो ने 'आर्थिक विकास' (Economic Development') 'आर्थिक उन्नति' (Economic Growth) तथा 'आर्थिक प्रगति' (Economic Progress) को अलग अलग माना है और उनकी परिभाषायें अलग अलग दी है। प्रो मायर एव बॉल्डविन (Mier and Boldwin) ने इन तीनो शब्दो को एक ही अर्थ म प्रयोग

अर्थशास्त्रियों ने अपने विचार इस सम्बन्ध मे दिये थे, परन्तु उनका विशेष महत्व नही रहा। आज के सभी अर्थशास्त्री किसी न-किसी प्रकार इस विचार से सम्बन्धित हैं। आर्थिक विकास के अर्थ और परिभाषा के बारे म अर्थशास्त्रियो मे काफी मतभेद है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने देश की कुल वास्तविक आय मे सुधार को आर्थिक विकास माना है तो कुछ ने प्रति व्यक्ति वास्तविक आय म वृद्धि को आर्थिक विकास माना है। हम यहा पर दोनो ही प्रकार के विचारो से सम्बन्धित अर्थशास्त्रियो की प्रमुख परिभाषाओ का अध्ययन करेगे।

मायर एव बॉल्डविन (Mier and Boldwin) के अनुसार—"आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसमे कि एक अर्थ व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय म दीर्घकालीन वृद्धि होती है।"[2]

प्रो ए जे यगसन (Prof A J. Youngson) के मतानुसार—'आर्थिक प्रगति से अभिप्राय एक समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त करने की शक्ति मे वृद्धि से है।"[3]

प्रो एच एफ विलियमसन (Prof H F Williamson) के शब्दो म—"आर्थिक विकास या वृद्धि से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश या क्षेत्र के व्यक्ति उपलब्ध साधनो का प्रयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओ और सेवाओ के उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि के लिए करते है।"[4]

प्रो डी ब्राइट सिंह (Prof D Bright Singh) के अनुसार—'आर्थिक वृद्धि से अर्थ एक देश या समाज के उस परिवर्तन से है जो निम्न स्तर (Under develop-

---

किया है। यद्यपि इन तीनो शब्दो मे पर्याप्त अन्तर है, परन्तु व्यावहारिक प्रयोजनो के लिए तीनो को एक ही समझा जाय तो उपयुक्त रहेगा। हमने तीनो शब्दो को समानार्थी मानकर ही अध्ययन किया है तथा इनके अन्तर का अध्ययन अलग से किया है।

2 "Economic development is a process wherbey an economy s real national income increases over a long period of time '
—Mier and Boldwin

3 "Economic progress is a increase of the power to achieve economic aims of the community concerned "
—A J Youngson

4 "Economic development or growth refers to the process whereby the people of the country or region come to utilize the resources available, to bring about a sustained increase in per capita production of goods and services ' —H F Williamson

ment) से उच्च आर्थिक स्तर की ओर अग्रसर होता है ।"[5]

उपर्युक्त परिभाषायें दो भिन्न भिन्न दृष्टिकोणो से सम्बन्धित हैं, फिर भी इन परिभाषाओ मे तीन बातें समान हैं —

(१) प्रक्रिया (Process) ;

(२) वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि ;

(३) दीर्घकालीन या निरन्तर वृद्धि ।

(१) प्रक्रिया (Process) ·

सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है। प्रक्रिया शब्द से अर्थ कुछ शक्तियो के कार्यशील रहने से है। ये शक्तिया कार्यशील रहकर आर्थिक मूल्यो (economic variables) मे परिवर्तन कर देती हैं। शक्तियो की कार्यशीलता के कारण अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो म परिवर्तन होता है जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय म वृद्धि होती है तथा साधनो की माग और उनकी पूर्ति म भी परिवर्तन हो जाते हैं, अर्थात् जनसख्या मे वृद्धि होती है, उत्पादन की नवीनतम विधियों का प्रयोग किया जाता है, कुशलता और तकनीक म सुधार होता है तथा आय के स्तर और उसके वितरण की स्थिति मे परिवर्तन होता है, उपभोक्ताओ की रुचियों और पसन्दगियो में अन्तर आ जाता है तथा सगठन आदि मे भी परिवर्तन हो जाते हैं। माग और पूर्ति के स्वरूप मे होने वाले ये परिवर्तन एक-दूसरे पर निर्भर रहते है। ये परिवर्तन आर्थिक विकास के कारण और परिणाम दोनो हैं। इन परिवर्तनो की सीमा आर्थिक विकास की गति पर निर्भर करती है।

(२) वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि

मायर एव वॉल्डविन के अनुसार आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि से है। वास्तविक राष्ट्रीय आय म वृद्धि से अर्थ वस्तुओ और सेवाओं के उत्पादन म वृद्धि से होता है, न कि मौद्रिक आय (money income) म वृद्धि से। किसी भी देश का आर्थिक विकास तभी सभव है जबकि उस देश म वस्तुआ और सेवाओ के उत्पादन म वृद्धि हो,। इस वृद्धि के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय म भी वृद्धि हो जायेगी। वास्तविक राष्ट्रीय आय को ज्ञात करने के लिए कुल राष्ट्रीय उत्पादन (G N. P) म से अचल सम्पत्ति का घिसावट व्यय (depreciation charges) घटा दिया जाता है।

---

5 "Economic growth means the transformation of society or a country from a state of under-development to a high level of economic achievement" — D Bright Singh

(३) दीर्घकालीन या निरन्तर वृद्धि :

आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि निरन्तर होती रहे, अर्थात् आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से न होकर दीर्घकाल से होता है। यदि किसी देश मे परिस्थिति अनुकूल रहने के कारण एक या दो वर्षों के लिए उत्पादन मे वृद्धि हो जाती है तो यह वृद्धि आर्थिक विकास के अन्तर्गत नही आयेगी। आर्थिक विकास को मापने के लिए १०, १५ या २० वर्षों की लम्बी अवधि होती है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास से अभिप्राय वास्तविक राष्ट्रीय आय मे दीर्घकालीन वृद्धि से है, लेकिन आर्थिक विकास का प्रभाव उस देश के नागरिको के जीवन-स्तर पर भी पडना आवश्यक है, अर्थात् वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे भी वृद्धि होना आवश्यक है, क्योकि यह सभव है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने के बाद भी (यदि जनसख्या मे वृद्धि की दर अधिक है) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे वृद्धि न हो। इसलिए कुछ अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास को प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि से सम्बन्धित किया है।

आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अन्तर
(Difference Between Economic Development and Economic Growth)

सामान्यतः आर्थिक विकास और आर्थिक वृद्धि मे कोई अन्तर नही किया जाता है। इस कथन की पुष्टि अर्थशास्त्रियो द्वारा दी गई परिभाषाओ से होती है। मायर एव बॉल्डविन (Mier and Boldwin) ने आर्थिक विकास, यगसन (Youngson) ने आर्थिक प्रगति और विलियमसन (Williamson) तथा डी ब्राइट सिंह (D. Bright Singh) ने आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियो ने इन शब्दो मे मूलभूत अन्तर स्थापित किया है, जिसमे प्रथम अर्थशास्त्री शुम्पीटर (Schumpeter) है।

प्रो शुम्पीटर के अनुसार 'आर्थिक विकास (economic development) एक स्वत. (spontaneous) तथा रुक रुक कर होने वाला परिवर्तन है जिसके लिए विशेष प्रयत्न किये जाते हैं और प्रयत्नो के द्वारा तथा विकास की भावना से जिसमे गति आती है। आर्थिक वृद्धि वह है जो कि क्रमिक और दीर्घकाल मे नियमित (steady) होती है जिस पर जनसख्या और बचत जैसे साधनो का प्रभाव पडता है।' प्रो. शुम्पीटर ने इसको अधिक स्पष्ट करते हुए बताया है कि—

> "आर्थिक वृद्धि मे 'विकास' परम्परागत और नियमित घटनाओ का परिणाम होता है जिसमे किसी नवीनता का सृजन होना आवश्यक नही है। जबकि आर्थिक विकास म

नवीन शक्तियों का सृजन होता है तथा प्रचलित स्थितियों में निरन्तर सुधार करने के प्रयत्न किये जाते रहते हैं।"

प्रो बोने (Prof Bonne) ने वृद्धि तथा विकास में अन्तर बताते हुए लिखा है—*'आर्थिक वृद्धि के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किये जाते बल्कि वह स्वतः (sponta-*neous) होती है, जबकि आर्थिक विकास के लिए निर्देशन, नियमन तथा मार्गप्रदर्शन की आवश्यकता होती है।"

प्रो बोन के अनुसार आर्थिक विकास का महत्व अर्द्ध-विकसित देशों के लिए अधिक है।

किन्डले बर्जर (Kindley Berger) ने दोनों का अन्तर निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—"आर्थिक वृद्धि का अर्थ अधिक उत्पादन से है जबकि आर्थिक विकास से अर्थ अधिक उत्पादन तथा उन तकनीकी व वैधानिक परिवर्तनों से है जिनके द्वारा यह (अधिक उत्पादन) प्राप्त किया जाता है।"[6]

श्रीमती उर्सला हिक्स (Mrs Ursela Hicks) ने कहा है—"वृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिए करना चाहिए तथा 'विकास' शब्द का प्रयोग उन देशों के लिए करना चाहिए जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।"

प्रो ब्राइट सिंह श्रीमती हिक्स के विचार से सहमत हैं।

यद्यपि उपर्युक्त दृष्टिकोणों से अधिकांश अर्थशास्त्री सहमत हैं फिर भी आज के युग में इन दोनों शब्दों को अधिक विस्तृत रूप में लिया जाता है। आर्थिक विकास मानव के सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित है, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र संघ (U N O) की रिपोर्ट से स्पष्ट होता है —

> विकास मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं बल्कि उनकी सामाजिक दशाओं में सुधार से भी सम्बन्धित है। इस प्रकार विकास केवल आर्थिक वृद्धि ही नहीं है बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तनों को भी सम्मिलित किया जाता है।"[7]

---

6 "Economic growth means more output and economic development implies both more output and changes in the technical and constitutional arrangements by which it is produced "

—Kindley Berger

7 "Development concerns not only man's material needs but also the improvement of the social conditions of his life Development is therefore, not only economic growth, but growth plus change social, cultural, and institutional as well as economic "

—U N N

आर्थिक विकास का महत्व (Importance of Economic Development)

आज हम विश्व के सभी देशों को दो भागों मे बाट सकते है—विकसित एव अर्द्ध विकसित। विकसित देश वे है जो कि विकास की आखिरी सीमा पर पहुच चुके है या पहुचने वाले हैं, जहा पर भोग विलास, सुख सम्पन्न सभी कुछ है। अर्द्ध-विकसित देश आज भी अपने नागरिकों को अच्छा जीवन प्रदान करने के लिए अथक प्रयत्न कर रहे है, लेकिन इन प्रयत्नों के बावजूद भी उन देशो मे गरीबी, बेरोजगारी पू जी का अभाव, निम्न जीवन स्तर आदि भयकर समस्याये है। आर्थिक विकास के मुख्यत अर्द्ध-विकसित देशो से ही सम्बन्धित किया जाता है। आर्थिक विकास मानवीय कल्याण और सुरक्षा के लिए आवश्यक है गरीबी, बेरोजगारी, पू जी का अभाव, निम्न जीवन स्तर, क्षेत्रीय असन्तुलन आदि सभी समस्याओ से छुटकारा पाने के लिए या इन्हे कम करने के लिए आर्थिक विकास अनिवार्य है। आर्थिक विकास करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से प्रयत्न करने होते है, अर्थात् आर्थिक विकास के लिए आर्थिक आयोजन (economic planning) आवश्यक है। आर्थिक आयोजन से राष्ट्रीय आय, रोजगार, पू जी निर्माण तथा सामाजिक कल्याण म वृद्धि होती है और बेरोजगारी, आय की विषमताओं, शोषण, एकाधिकारी प्रवृति, गरीबी आदि मे कमी आती है।

प्रो लुईस (Prof Lewis) ने आर्थिक विकास के निम्नलिखित लाभ बताये है —

(१) आर्थिक विकास से नये क्षेत्रो तथा नये उद्योगो का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को अपनी रुचि व क्षमता के अनुसार कार्य का चुनाव करने की स्वतन्त्रता रहती है।

(२) आर्थिक विकास से मनुष्य को अपने वातावरण पर अधिक नियन्त्रण प्राप्त होता है जिससे उसकी स्वतन्त्रता बढती है।[8]

(३) आर्थिक विकास आयोजित अर्थ व्यवस्था से किया जाता है जहा पर सामाजिक व आर्थिक विषमताओ को दूर करना आवश्यक समझा जाता है।

(४) आयोजित ढग से विकास करने के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय म वृद्धि होती है, पू जी निर्माण की दर म वृद्धि होती है, व्यापार चक्र कम हो जाते है तथा वितरण को अधिक तर्कसगत और न्यायपूर्ण बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त देश मे

---

8 "The case for Economic growth is that it gives man greater control over his environment and there by increases his freedom"
W A Lewis

उपलब्ध साधनो का पूर्ण शोषण (विदोहन) किया जाता है जिससे कि राष्ट्रीय आय म वृद्धि हो तथा जहा तक सम्भव होता है प्रतिस्पर्धा के अपव्ययो पर रोक लगायी जाती है ।

(५) आर्थिक विकास से राष्ट्रीय आय म वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय म भी वृद्धि होती है, प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि व्यक्तियो के जीवन-स्तर म वृद्धि कर देती है और गरीबी से छुटकारा मिलता है ।

(६) आर्थिक विकास अधिक मानवीय व उदार भावना को जन्म देता है । जब व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाती है तो समाज से शोषण, वैमनस्य, लूट खसोट आदि अनैतिक कृत्य स्वत ही काफी कम हो जाते हैं और स्नेह, सहयोग व सद-भावना म वृद्धि होती है ।

लुईस के शब्दो म—"आर्थिक सम्पन्नता मनुष्य के आर्थिक व सामाजिक कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।"

आज के युग मे आर्थिक विकास अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय कारणो से भी आवश्यक माना जाता है । आज की स्थिति म कोई भी राष्ट्र उसी स्थिति म अपनी स्वतन्त्र नीतिया निर्धारित कर पाता है जो कि आर्थिक रूप से विकसित है ।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक विकास के द्वारा ही उत्पादन म वृद्धि की जा सकती है, रोजगार के अधिक अवसर पैदा किये जा सकते हैं तथा बचत की दर म वृद्धि की जा सकती है । इन सब के परिणामस्वरूप व्यक्तियो को खुशहाल बनाया जा सकता है ।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ आर्थिक विकास की परिभाषा दीजिए ।

२ आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि म अन्तर बताइए तथा आर्थिक विकास के महत्व को समझाइए ।

३ आर्थिक विकास से क्या अभिप्राय है ? आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि म क्या अन्तर है ?

अध्याय ८

★

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व

[Determinants of Economic Growth]

★ ★ ★

आर्थिक विकास की दर व उसके स्वरूप पर अनेक तत्वो का प्रभाव पड़ता है। इन तत्वो को हम आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक तथा ऐतिहासिक आदि श्रेणियो मे विभाजित कर सकते हैं। देश म रहने वाले व्यक्तियो के दृष्टिकोण, उनकी आदते, योग्यता व ज्ञान, विकास करने की इच्छा आदि तत्व आर्थिक विकास को काफी सीमा तक प्रभावित करते है। पी. टी बावर (P T Bauer) के अनुसार—

> "आर्थिक प्रगति और उपलब्धि मानवीय गुणो और दृष्टिकोणो तथा इन पर आधारित सामाजिक व राजनैतिक सस्थाओ, प्राकृतिक साधनो तथा ऐतिहासिक अनुभवो और *अनेक तत्वो पर आधारित होती है।"*

इन तत्वो की स्थितियो म अन्तर हाने के कारण ही प्रत्येक देश के आर्थिक विकास मे *अन्तर पाया जाता है। सामान्यत आर्थिक विकास के निर्धारक तत्वो को अर्थशास्त्रियो ने* दो प्रकार से वर्गीकृत किया है —

(१) प्रधान चालक तत्व एव अनुपूरक तत्व (Prime mover and supplementary factors),

(२) आर्थिक एव अनार्थिक तत्व (Economic and non-economic factors)।

प्रधान चालक तत्व एव अनुपूरक तत्व

जो तत्व देश के आर्थिक विकास के कार्य को प्रारम्भ करते है उन्हे प्रधान चालक तत्व कहते हैं तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे जिन तत्वो द्वारा सहयोग दिया जाता है उन्हे अनुपूरक या सहायक तत्व कहते है। सहायक तत्व विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं।

प्रधान मानव तत्वों म निम्नलिखित तत्व सम्मिलित होते हैं —

१ प्राकृतिक साधन
२ मानवीय स धन ,
३ सामाजिक तत्व ,
४ सास्कृतिक व सस्थागत तत्व ।

अनुपूरक या सहायक तत्वो म अर्थशास्त्रियो ने निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया है —

१ जनसख्या की वृद्धि की दर
२ तकनीकी विकास की दर
३ पू जी निमाण की दर ।

प्रधान व सहायक तत्वों के वर्गीकरण के सम्बन्ध म अर्थ शास्त्रियो म मतैक्य नहा पाया जाता है । इसके साथ ही कुछ अथशास्त्री आर्थिक विकास म प्रधान तत्वा को महत्व प्रदान करत हैं तो कुछ सहायक तत्वो को ।

२ **आर्थिक एव अनार्थिक तत्व (Economic and Non economic Factors)**

कुछ अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्वा का आर्थिक व अनार्थिक तत्वा के रूप म वर्गीकृत किया है । उनका वर्गीकरण इस प्रकार है —

आर्थिक तत्व (Economic factors)—इसम निम्नलिखित तत्व सम्मिलित होते हैं —

१. जनसख्या ,
२ प्राकृतिक साधन ,
३. पू जी निर्माण ,
४ वैज्ञानिक प्रगति
५ उद्यमशीलता (Entrepreneurship) ,
६ सगठनात्मक एव व्यावसायिक ढाचा ,
७ विदेशी पू जी ।

अनार्थिक तत्व (Non-economic factors)—आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले अनार्थिक तत्व निम्नलिखित हैं —

१. सामाजिक तत्व ,
२. सास्कृतिक तत्व ,

३. संस्थागत तत्व ,
४. स्थिर तथा कुशल प्रशासन ।

आर्थिक विकास म निर्धारित तत्वो म उपर्युक्त सभी तत्वो को अधिकांश अर्थशास्त्री सही मानते हैं परन्तु इनके वर्गीकरण के सम्बन्ध म एकमत नही है । अत आधुनिक अर्थशास्त्री वर्गीकरण की जटिलता मे न फसकर सामान्य निर्धारक तत्वो को ही महत्व प्रदान करते है । प्रो मायर एव बॉल्डविन का विचार है कि यदि निर्धारक तत्वो की सही सूची बनायी जाय तो एक लम्बी सूची तैयार हो जायेगी । उन्होंने बताया कि वास्तविक रूप म निर्धारक तत्वो को चार श्रेणियो मे रखा जा सकता है —

१ जनसख्या ,
२. प्राकृतिक साधन ,
३ *तकनीकी प्रगति* ,
४ साधनो का लचीलापन (Flexibility of resources) ।

कुछ अर्थशास्त्री इस सक्षिप्त वर्गीकरण स सहमत नही है क्योंकि इसम समाजिक व सस्थागत तत्वो को सम्मिलित नही किया गया है । सक्षेप म, आर्थिक विकास में सर्वमान्य निर्धारक तत्व निम्नलिखित ह —

१ प्राकृतिक साधन ,
२ मानवीय साधन (जनसख्या) ,
३ पूजी निर्माण ,
४ तकनीकी प्रगति ,
५. उद्यमशीलता (Entrepreneurship) ,
६ *सामाजिक एव सस्थागत तत्व*,
७ स्थिर तथा कुशल प्रशासन ,
८. अनुकूल वाह्य परिस्थितिया ।

आर्थिक विकास के उपर्युक्त निर्धारण तत्वो का वर्णन सक्षेप म नीचे दिया जा रहा है ।

(१) प्राकृतिक साधन (Natural resources)—प्राकृतिक साधन वे भौतिक व नैसर्गिक वस्तुयें हैं जो कि प्रकृति से निशुल्क प्राप्त होती है । भूमि, खनिज पदार्थ, वन सम्पदा, जल, जलवायु भौगोलिक स्थिति आदि प्राकृतिक साधनो क अन्तगत आती हैं । प्राकृतिक साधन किसी भी देश के आर्थिक विकास को काफी अधिक प्रभावित करते हैं । प्राकृतिक साधनो के सम्बन्ध म सामान्य धारणा यह है कि जिस

देश म प्राकृतिक सावन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होंगे उस देश का आर्थिक विकास तीव्रता से होगा, लेकिन केवल प्राकृतिक साधनो की उपलब्धता ही आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त नही है। विकास के लिये यह आवश्यक है कि जो साधन उपलब्ध हैं उन साधनो का पूर्ण विकास किया जाय तथा उनका दोहन हो। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नही है कि जहा पर प्राकृतिक साधन अधिक उपलब्ध नहीं है वहा पर विकास भी नही होगा। वास्तविकता यह है कि प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता केवल विकास की क्रिया को सुगम व सरल बना देती है।

(२) **मानवीय साधन** (Human resources)—मानवीय साधन से अभिप्राय जनसख्या से होता है। देश के विकास के लिये अनिवाय है। वास्तविक रूप मे मानवीय श्रम पर ही देश का आर्थिक विकास निभर करता है। प्रो व्हिपिल (Prof Whipple) के शब्दो मे —

"किसी देश का वास्तविक धन उसकी भूमि या पानी, जगलो या खानों, पक्षियों या पशुओ के झुण्डो म नही है और न ही डालरो म है, बल्कि उस देश के स्वस्थ और सम्पन स्त्रियों, पुरुषों और बच्चो म है।"[1]

देश म वस्तुओ और सेवाओ का निर्माण बिना जनसख्या के सभव नही है। देश के उत्पादन म पर्याप्त वृद्धि के लिये, जीवन-स्तर ऊँचा उठाने के लिये व्यक्तियों का शिक्षित होना, रहने की उचित व्यवस्था होना तथा सतुलित भाजन प्राप्त होना आवश्यक है, यदि ये सुविधायें उपलब्ध नहीं हो तो श्रम अकुशल होगा और उसकी कार्यक्षमता कम होगी।

यदि जनसख्या कम है तो अन्य बातें समान रहने पर प्रति व्यक्ति आय अधिक होगी, जनसख्या अधिक होने की स्थिति म प्रति व्यक्ति आय कम हो जायेगी। विकसित देशो के विकास म जनसख्या ने उन्हें सहयोग प्रदान किया है वहो अर्द्ध-विकसित देशा मे जनसख्या की अधिकता के कारण विकास की प्रक्रिया काफी धीमी हो गई है। इसका कारण यह है कि अधिक जनसख्या के कारण देश म उपलब्ध भूमि तथा खेतो पर भार अधिक हो जाता है तथा दूसरी ओर बचत, पूजी निर्माण और प्रति व्यक्ति आय कम हो जाती है,

---

1 "A nation's true wealth is not in its lands and waters, not in its forests and mines, not in its flocks and herds, not in its dollars, but in its wealthy and happy men, women and children"

—Prof Whipple

जिससे कम उत्पादन होता है, बेरोजगारी की मात्रा म वृद्धि हो जाती है और जीवन-स्तर भी गिरने लगता है।

(३) **पूजी निर्माण (Capital formation)**—प्रो नर्कसे (Prof Nurkse) के अनुसार—पूजी निर्माण आर्थिक विकास की पूव आवश्यकता (pre requisite) है। जब तक देश मे पर्याप्त मात्रा मे पूजी व पूजी निर्माण नही होगा तब तक औद्योगीकरण, कृषि का आधुनिकीकरण यातायात के साधनो आदि का विकास सम्भव नही है। पूजी निर्माण के महत्व के कारण ही अर्थशास्त्रियो ने इसे आर्थिक विकास की कुजी कहकर पुकारा है, क्योकि पूजी के द्वारा ही उत्पादन म नवीनतम विधियो और तकनीको का प्रयोग सम्भव है, इसी के द्वारा उत्पादन म वृद्धि करके व्यक्तियो को आय मे वृद्धि की जा सकती है। सक्षेप म, देश के आर्थिक विकास के लिए प्रो कुजनेट्स (Prof Kuznets) के अनुसार पूजी एव पूजी सचय एक अनिवार्य आवश्यकता है। किसी भी देश के आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए पूजी निर्माण की दर अधिक होना आवश्यक है। यही कारण है कि अद्ध विकसित देशो का विकास पूजी निर्माण की धीमी गति के कारण अधिक तेजी से नही हो पा रहा है।

(४) तकनीकी प्रगति (Technological progress)—देश के आर्थिक विकास के लिए पूजी निर्माण के साथ-साथ तकनीकी प्रगति होना भी आवश्यक है। वास्तव मे 'पूजी और प्रविधि (technology) एक प्रक्रिया मे सयुक्त आधार है।'[२] इसका अभिप्राय यह है कि पूजी और तकनीक या प्रविधि आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे साथ साथ रहते है। तकनीकी ज्ञान उत्पादन की विधियो म परिवर्तन लाकर आर्थिक विकास की गति को तेज करता है। अर्द्ध विकसित देशो म विकास की धीमी गति का एक कारण यह भी है कि इन देशो म श्रेष्ठ तकनीकी ज्ञान का अभाव है जिसके कारण उत्पादन की पुरानी विधियो का प्रयोग ही अधिक होता है जबकि विकसित देशो म नयी तकनीक और नवप्रवर्तन के प्रयोग के कारण विकास की दर अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

(५) उद्यमशीलता (Entrepreneurship)—नयी तकनीक तथा नये आविष्कारो को व्यावहारिक रूप प्रदान करन के लिये साहसी या उद्यमी की आवश्यकता होती है। प्रो शुम्पीटर ने आर्थिक विकास के सिद्धात मे उद्यमी को केन्द्रीय स्थान दिया है

---

2 "Capital and technology are joint inputs in one process"
—U N O Report

तथा उद्यमियो के आर्थिक विकास की सचालन शक्ति (driving force) कहा है, क्योंकि प्रो गिल के शब्दो म किसी देश म तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टि से तभी उपयोगी सिद्ध हो सकता है जबकि उसे नवप्रवर्तन (innovations) के रूप म प्रयुक्त किया जाय और जिसकी पहल (initiative) साहसी या उद्यमी द्वारा ही की जाती है । इस प्रकार किसी देश के आर्थिक विकास मे साहसियो की दक्षता और जोखिम उठाने की क्षमता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।

वर्तमान समय म जबकि विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशो मे जहाँ पर विकास *योजनाबद्ध तरीके से सरकार द्वारा किये जाते है, वहा पर साहसियो का महत्व कम* होता जा रहा है, क्योंकि सरकार एक निर्णयकर्त्ता (decision maker) के रूप म कार्य करती है अत सरकार की आर्थिक विकास म मुख्य भूमिका होनी है । आर्थिक विकास की गति बढाने के लिए साहसी की तरह सरकार का दक्ष व कुशल होना आवश्यक है, अन्यथा साधनो का अपव्यय होगा, नवीन तकनीक का प्रयोग नही हो सकेगा, उचित निर्णयो के अभाव मे विकास की गति भी मन्द पड जायेगी ।

(६) सामाजिक एव सस्थागत तत्व (Social and institutional factors)—किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए सामाजिक तथा सस्थागत वातावरण का होना उसी प्रकार आवश्यक होता है जिस प्रकार कि आर्थिक वातावरण । आर्थिक और सामाजिक तथा सस्थागत तत्व परस्पर सम्बन्धित होते हैं, तथा वे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं । आर्थिक विकास को तेज करने के लिए सामाजिक, धार्मिक मनोवैज्ञानिक तथा सस्थागत तत्वो का विकास के अनुकूल होना आवश्यक है । यदि समाज नवीन मूल्यो और सस्थाओ को नहीं अपना पाता तो उस देश का विकास भी तजी से होना सम्भव नहो है । अनार्थिक तत्व (non-economic factors) आर्थिक तत्वो की उत्प्रेरक शक्तियाँ हैं अत अनार्थिक तत्वों का आर्थिक तत्वो से सम्बन्ध काफी घनिष्ठ होता है । प्रो नर्कसे (Prof Nurkse) के शब्दों म—

"आर्थिक विकास का मानवीय मूल्यों (human endowments) सामाजिक अभिरुचियो, राजनैतिक दशाओ तथा ऐतिहासिक घटनाओ से घनिष्ठ सम्बन्ध है।"[3]

अर्द्ध विकसित देशो म नवीन मूल्यो और सस्थाओं को पूर्ण ग्रहण करने की प्रवृत्ति न होने के कारण ही उनकी विकास की गति काफी धीमी है । दूसरी ओर विकसित

3 "Economic development has much to do with human endowments, social attitudes, political conditions and historical accidents" —Ragner Nurkse

देश बिना किसी हिचक के नवीन मूल्यो को अपनाते है, जिससे विकास तीव्र गति से होता है। रिचर्ड गिल (Richard Gill) ने उचित ही कहा है—

> "आर्थिक विकास एक यन्त्रीकृत प्रक्रिया नही बल्कि मानवी उद्यम (human enterprise) है। इसलिए इसका फल अन्तिम रूप से मनुष्य के गुणो उसकी कार्यकुशलता और उसकी मनोवृत्ति पर निर्भर करता है।'[4]

अत हम कह सकते हैं कि किसी देश का विकास तब तक तीव्र गति से सम्भव नही है जब तक कि उस समाज म प्रगति करने की इच्छा, विकास के लिए तत्परता तथा नवीन व अधिक कुशल विधियो को अपनाने की क्षमता न हो।

(७) **स्थिर तथा कुशल प्रशासन** (Stable and efficient administration)—किसी भी देश का आर्थिक विकास उस देश के शासन और उसकी नीतियो से काफी प्रभावित होता है। देश म स्थिर शासन व कुशल प्रशासन विकास की प्रक्रिया को तेज कर देता है, क्योकि आज के युग म आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व शासन पर ही अधिक होता है। स्थिर शासन व कुशल प्रशासन के साथ साथ सरकार की नीतियो के प्रति विश्वास तथा विकास के प्रति रुचि होना भी आवश्यक है। यदि किसी देश म कुशल व सुसगठित प्रशासन व्यवस्था नही है, कर्मचारियो और अधिकारियो म ईमानदारी का अभाव है तथा सरकार मे उत्तरदायित्व की भावना की कमी है, तो उस देश म विकास की प्रक्रिया काफी धीमी हो जायगी। विकास क लिए जन सहयोग आवश्यक होता है। जन सहयोग तभी प्राप्त होगा जबकि शासन तत्र ईमानदार व कुशल हो।

(८) **अनुकूल बाह्य परिस्थितियां** (Favourable external circumstances)—आर्थिक विकास के लिए बाह्य परिस्थितियो का अनुकूल होना आवश्यक है। अर्द्ध-विकसित देशो का विकसित देशो से वित्तीय सहायता, तकनीकी सहयोग तथा सदभावनाओं की आवश्यकता होती है। यह सहयोग व सहायता राजनतिक शांति की स्थिति म ही प्राप्त हो पाते है। विद्वानो का विचार है कि राजनैतिक स्थिति, पडोसी देशो का व्यवहार, विदेशी व्यापार की सभावनायें, विकसित देशो की नीति तथा विदेशी पूजी का प्रवाह आदि किसी देश के आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है।

---

4 "Economic development is not a mechanical process it is a human enterprise And like all human enterprises, its outcome will depend finally on the skill, quality and attitudes of the men who undertake it" —Richard Gill

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी देश का आर्थिक विकास किसी एक तत्व पर निर्भर न करके अनेक तत्वो से प्रभावित होता है। इन विभिन्न निर्धारक तत्वो मे कौन-सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। देश के आर्थिक विकास म इन सभी तत्वो का अपना-अपना महत्व है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ आर्थिक विकास की परिभाषा दीजिए। आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्वो की व्याख्या कीजिए।

२ किसी देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।

३. आर्थिक विकास म आर्थिक तथा अनार्थिक तत्व कौन-से हैं ? ये तत्व आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करत हैं।

अध्याय ९

★

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था

[Under-developed Economy]

★ ★ ★

वर्तमान समय मे विकास की दृष्टि से विश्व की अर्थ-व्यवस्थाओ को दो भागा म टा जाता है—विकसित अर्थ व्यवस्था (developed economy) तथा अद्ध विकसित जर्थ-व्यवस्था (under-developed economy) परन्तु विकसित और अर्द्ध-विकसित की श्रेणी मे देशो को बाटना बहुत कठिन कार्य है, क्योकि अभी तक कोई सवमान्य मापदण्ड नही है जिससे सही-सही विभाजन किया जा सके। एक देश जो अपने से निर्धन देशा के सामने विकसित है वही अत्यधिक विकसित देशो के सामने अर्द्ध-विकसित हो जाता । अर्द्ध-विकसित एक सापेक्षिक शब्द है इसलिए इसकी सर्वमान्य तथा नपे-तुले शब्दा म परिभाषा देना अत्यन्त कठिन कार्य है। इस सम्बन्ध मे प्रो सिगर (Prof H W Singer) का विचार काफी महत्व रखता है। उन्होने बताया है कि अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्था की परिभाषा का कोई भी प्रयास समय व धन का अपव्यय है। उन्ही के शब्दा म

> "एक अर्द्ध-विकसित देश जिराफ के समान है, जिसका वर्णन करना कठिन है लेकिन जैसे हो उसे देखते है समझ जाते है।"[1]

अनेक विद्वानो और अर्थशास्त्रियो ने अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था की परिभाषाय दी है जिनमे से कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित है —

---

1 "An under-developed country is like a giraffe, difficult to describe, but you know when you see one"—Prof H W. Singer

संयुक्त राष्ट्रसंघ (U N O) की एक रिपोर्ट के अनुसार—"अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना म कम हो।[2]

संयुक्त राष्ट्र संघ की यह परिभाषा पूर्ण नही है क्योंकि इसमें केवल एक तथ्य 'गरीबी' को ही सम्मिलित किया है। इसके अतिरिक्त इस परिभाषा म दोष हैं—

(a) यह सम्भव है कि किसी देश म प्रति व्यक्ति आय अधिकतम हो फिर भी वह अर्द्ध-विकसित हो, जैसे कुवेत।

(b) यह सम्भव है कि किसी देश मे प्रति व्यक्ति आय कम हो और फिर भी विकसित हो।

४ **प्रो. जेकब वाइनर** (Prof Jacob viner) ने परिभाषा निम्नलिखित शब्दो म दी है—"एक अर्द्ध विकसित देश वह देश है जिसम अधिक पूजी अथवा अधिक श्रमशक्ति या अधिक उपलब्ध साधनो या इन सब का उपभाग करने की सम्भावनायें है जिससे वर्तमान जनसख्या के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने मे सहायक हो और यदि प्रति व्यक्ति आय का स्तर पहले से ही अधिक ऊँचा है तो अधिक जनसख्या का, रहन-सहन म स्तर म कमी किये बिना, जीवन निर्वाह किया जा सके।"[3]

जेकब वाइनर ने अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था का सम्बन्ध जीवन-स्तर से स्थापित किया है। उनके अनुसार अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमे व्यक्तियों का जीवन-स्तर नीचा हो, तथा इनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए पर्याप्त साधन हो, और उन साधनो का उपभोग किया जा सके।

---

2 "An under-developed country is one in which per capita real income is low when compared with the per capita real income of U S A, Canada, Australia and Western Europe"
—U N O Report

3 "An under-developed country is a country which has good potential prospects for using more capital or more labour or more available resources, or all of these to support its present population of a higher level of living, or if its per capita income level is already very high, to support a larger population on a not lower level of living" —Jacob Viner

यूजीन स्टेनले (Eugene Stanley) ने अर्द्ध-विकसित देश की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में की है—"अर्द्ध-विकसित देश वह है जहा बडे पैमाने पर गरीबी है जो कि अल्पकालीन दुर्भाग्य (misfortune) का परिणाम न होकर स्थायी (chronic) है, तथा परम्परागत पुराने उत्पादन के तरीकों और सामाजिक सगठनो के कारण है। इसका अर्थ यह है कि गरीबी केवल प्राकृतिक साधनो की कमी के कारण नहीं है, अत गरीबी को उन तरीकों से कम किया जा सकता है जो कि दूसरे देशों म अपनाये गये है।"[४]

स्टेनले जेवन्स ने अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था मे केवल तीन बातें सम्मिलित की है (a) गरीबी, (b) सगठित उत्पादन के तरीके व सामाजिक सगठन, तथा (c) प्राकृतिक साधनों की कमी। इस प्रकार यह परिभाषा भी पूर्ण नहीं है।

भारतीय योजना आयोग के प्रथम पचवर्षीय योजना मे अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा इस प्रकार दी है—"एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे एक ओर मानवीय शक्ति का कम प्रयोग या बिल्कुल भी प्रयोग न हुआ हो तथा दूसरी ओर अशोषित (unexploited) प्राकृतिक साधनो का कम या अधिक मात्रा मे सह-अस्तित्व हो।"[५]

यह परिभाषा भी पूर्ण नहीं है क्योंकि इसमे यह नहीं स्पष्ट किया गया है कि प्राकृतिक साधनो का शोषण क्यों नहीं होता।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं मे कोई भी परिभाषा सर्वमान्य नहीं है। आजकल अर्थ शास्त्री अर्द्ध-विकसित व विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं को तकनीकी शब्द (technical word) के रूप मे प्रयुक्त करता है। सामान्यत अर्द्ध-विकसित देश वह है —

---

4 "A country characterised by mass poverty which is chronic and not result of some temporary misfortune, and by absolete methods of production and social organisation, which means that poverty is not entirely due to poor natural resources and hence could presumably be lessened by methods already proved in other countries" —Eugene Stanley

5 "An under-developed country is that which is characterised by the co-existence, in greater or less degree, of utilised or unutilised man power on the one hand, and of unexploited natural resources on the other" —Indian First Five Year Plan

(१) जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम होती है।
(२) जहां पर प्राकृतिक साधन उपलब्ध हो लेकिन उनका पूर्ण उपयोग न हुआ हो।
(३) उत्पादन की विधिया परम्परागत हो, जिससे विकास तेजी से न हो सके।
(४) पूजी निर्माण की गति धीमी हो, जिसके कारण विनियोग कम हो।
(५) जनसख्या की वृद्धि की दर अधिक हो।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषतायें (Characteristic of Under-developed Economy)

अर्द्ध-विकसित देशो म पर्याप्त भिन्नतायें पायी जाती हैं, इसलिए इनकी सर्वमान्य विशेषताओ को बताना अत्यन्त कठिन है। अर्थशास्त्रियों ने अर्द्ध-विकसित देशो की कुछ सामान्य विशेषतायें बताई हैं जो कि अर्द्ध-विकसित देशो मे प्राय पायी जाती हैं, लेकिन इन विशेषताओ का सभी देशो म पाया जाना आवश्यक नहीं होता है।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाओ के स्वभाव को देखते हुए **प्रो हार्वे लिबेन्स्टीन तथा बी हिगिन्स** (Prof Harvey Liebenstien and B Higgins) ने इनकी विशेषताओं का चार भागो म बाटा है —

(१) **आर्थिक विशेषतायें** (Economic characteristics)—इसम उन्होंने कृषि की प्रधानता, प्रति व्यक्ति कम आय कम बचत दर, छिपी हुई बेरोजगारी (disguised unemployment), आय, का अधिकाश भाग भोजन पर व्यय करना, साख व विपणन की कम सुविधायें होना तथा कृषि का पिछडा हुआ होना आदि विशेषतायें बताई हैं।

(२) **जनसख्या सम्बन्धी विशेषतायें** (Demographic characteristics)—इस श्रेणी मे उन्होंने ऊँची जन्म तथा मृत्यु दर का होना, पौष्टिक भोजन का अभाव होना, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी तथा औसत आयु कम होना आदि को सम्मिलित किया है।

(३) **प्राविधिक विशेषतायें** (Technological characteristics)—इस श्रेणी मे उन्होंने उत्पादन की पुरानी तथा परम्परागत विधियो का प्रयोग, वैज्ञानिक व तकनीकी सुविधाओ का कम होना, प्रशिक्षण सुविधाओ की कमी, परिवहन एव सचार की सुविधाओ का कम होना आदि को सम्मिलित किया है।

(४) **सास्कृतिक एव राजनैतिक विशेषतायें** (Cultural and political characteristics)—इस श्रेणी म उन्होंने जनता का अशिक्षित होना, पुरानी परम्पराओ और

रुढियो की प्रधानता, बच्चो का श्रमिक के रूप मे कार्य करना, स्त्रियो का समाज मे उचित स्थान न होना आदि को सम्मिलित किया है।

प्रो मायर एव बॉल्डविन (Prof Mier and Baldwin) ने अर्द्ध-विकसित देशा की छ विशेषतायें बतलाई हैं

(१) प्राथमिक उत्पादन अर्थ-व्यवस्था (Primary producing economy)
(२) जनसख्या का दबाव (Population pressures),
(३) अशोषित या अर्द्ध-शोषित प्राकृतिक साधन (Unutilised or under-utilised natural resorces),
(४) व्यक्तियो की निर्धनता (Poverty of the people),
(५) पूजी का अभाव (Paucity of capital),
(६) विदेशी व्यापार पर निभरता (Foreign trade oriented)।

उपर्युक्त विशेषताओ के आधार पर अर्द्ध-विकसित देशा की प्रमुख विशेषताओ का वर्णन निम्नानुसार है —

(१) **कृषि पर निर्भरता (Dependence on agriculture)**—अविकसित और अर्द्ध-विकसित अथ व्यवस्था मे कृषि की प्रधानता रहती है। अर्थात् इन दोनो देशो की अधिकाश जनता कृषि पर निभर करती है। इसके साथ ही प्राय कृषि म व्यापारिक दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है। कृषि पर निभरता की स्थिति निम्नलिखित सारणी स स्पष्ट होती है।

विकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशो में कृषि

अर्द्ध विकसित देश		विकसित देश	
देश	कृषि पर आश्रित जनसख्या (%)	देश	कृषि पर आश्रित जनसख्या (%)
भारत	७०	कनाडा	१६
लका	५३	आस्ट्रेलिया	१६
मलाया	६४	अमेरिका	६
कोलम्बिया	७२	इग्लैण्ड	४

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि विकसित देशों की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित देशों म कृषि पर आश्रित जनसख्या का प्रतिशत काफी अधिक रहता है। कृषि पर आश्रित जनसख्या होने के कारण राष्ट्रीय आय मे कृषि का योगदान भी अधिक रहता है। सामान्यत सभी अर्द्ध-विकसित देशों म कृषि से प्राप्त होने वाली आय का अनुपात उद्योगों से प्राप्त होने वाली आय की अपेक्षा अधिक होता है। भारत मे राष्ट्रीय आय का ४८ ५.७ % भाग[6] केवल कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है जबकि सयुक्त राज्य अमेरिका म कृषि का राष्ट्रीय आय मे योगदान केवल ४ % है। और कनाडा का ७ %। प्रो बेयर तथा यामे के अनुसार '—

"अर्द्ध-विकसित देशो मे समस्त आर्थिक उत्पादन क्रियाओ मे कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा कृषि जोतों मे निर्माण, सुधार एव विकास मे ही अधिकाश राष्ट्रीय साधन लगा दिये जाते हैं।"

(२) प्रति व्यक्ति कम आय (Low per capita income)—प्रो. कुरिहारा (Prof Kurihara) के अनुसार 'अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की सबसे बडी पहचान प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का कम होना है। प्रो रोस्टोव (Prof Rostow) के अनुसार 'अल्पविकसित देश वह है जिनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय २०० डालर से कम है'। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय की न्यूनता ही अर्द्ध-विकसित देशों की प्रमुख विशेषता है'। इसके साथ ही इन देशों म आय मे वृद्धि की दर काफी धीमी होती है। एक अनुमान के अनुसार विकसित देश अमेरिका, कनाडा तथा स्विटजरलैंड की प्रति व्यक्ति आय २५०० डालर से अधिक है जबकि अर्द्ध-विकसित देश भारत, इन्डोनेशिया, पाकिस्तान, बर्मा, कांगो आदि देशों की आय १०० डालर से भी कम है।

(३) पूजी निर्माण की निम्न दर (Low rates of capital formation)—अर्द्ध-विकसित देशों म पूजी निर्माण की दर प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण नीची रहती है, क्योंकि व्यक्तियों के पास उपभोग करने के बाद आय का बहुत थोडा भाग ही बच पाता है, इसके कारण देश के विकास के लिए (उत्पादन कार्यों के लिये) कम पूजी प्राप्त हो पाती है। विनियोग कम होने के कारण उत्पादन म वृद्धि भी धीमी गति से होती है, अर्थात् विकास कार्य अवरुद्ध हो जाते हैं। प्रो नर्कसे (Nurkse) ने इसे *निर्धनता का दुच्चक्र (Vicious circle of poverty)* कहा है

किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये, प्रो. लुइस (Prof Lewis) के अनुसार पूजी निर्माण की दर १२ से १६ प्रतिशत के बीच होना आवश्यक है'।

---

6 Economic Times, *July 8, 1974*

परन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में यह दर कम रहती है जबकि विकसित देशों में अधिक। यह स्थिति निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होती है —

देश	पूंजी निर्माण की दर (प्रतिशत मे)
कनाडा	२४ ५
जापान	२८ ५
पश्चिमी जर्मनी	२३ ६
अमेरिका	२० ८
भारत	६·२
लंका	११ ०

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि विकसित देशों की अपेक्षा अर्द्ध-विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर कम है, इसके कारण देश का विकास तेजी से नहीं हो पाता।

(४) जनसंख्या में तेजी से वृद्धि (Repid growth in population)—अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि की दर तेज है जिससे अधिकांश देशों में जनाधिक्य की समस्या है। सामान्यतः अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर २·२% से अधिक है जबकि विकसित देशों म यह दर २% से कम है जनसंख्या की अधिकता के कारण गरीबी, बेरोजगारी, कम बचत, कम पूंजी का निर्माण, कम वस्तुओं का उपभोग, स्वास्थ्य में गिरावट आदि समस्यायें उत्पन्न होने लगती है।

अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि का एक प्रमुख कारण ऊँची जन्म दर तथा कम मृत्यु दर का होना है इसके साथ ही अशिक्षा, अन्ध-विश्वास व रूढ़ियों के कारण परिवार म बच्चों की वृद्धि को दायित्व (liability) न मानकर सम्पत्ति (assets) के रूप में लिया जाता है। इस धारणा के फलस्वरूप ही आज अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में 'जनसंख्या विस्फोट' (population explosion) की स्थिति है।

(५) **प्राकृतिक साधनों का पूर्ण शोषण न होना** (Under utilised natural resources)—अर्द्ध-विकसित देशों म जो प्राकृतिक साधन उपलब्ध होते हैं उनका उचित ढग से शोषण या विदोहन (Exploitation) नही हो पाता । पूर्ण विदोहन न होने के कारण विकास की गति मन्द रहती है और अधिकाश उत्पादन कार्य परम्परागत तरीको से होते रहते हैं। एक अनुमान के अनुमार यूरोप के विकसित देशो मे उपलब्ध *जलशक्ति का ६०% भाग उपयोग मे लिया जाता है जबकि एशिया के देशो मे* १३% प्रतिशत और मध्य अमेरिका म केवल ५% भाग ही उपयोग म आता है प्राकृतिक साधनो का पूर्ण शोषण न होने का कारण इन देशो म विद्यमान सस्थागत अवरोध, दोषपूर्ण सामाजिक सगठन तथा सरकार की नीतिया, पूजी का अभाव आदि है।

भारत मे पयाप्त मात्रा म प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं, परन्तु इन साधनो का विकास न होने के कारण देश आज भी औद्योगिक दृष्टि से पिछडा हुआ है, तथा यहा के पक्ष म व्यक्तियो का जीवन-स्तर नीचा है।

(६) **आर्थिक विषमता** (Economic disparities)—अर्द्ध-विकसित देशो में राष्ट्रीय आय का वितरण काफी असमान (inequal) होता है। राष्ट्रीय आय का एक बडा भाग अमीरो के हाथ म केन्द्रित रहता है जबकि निर्धन वर्ग को एक छोटा हिस्सा हो प्राप्त हो पाता है, इसका कारण यह है कि अमीर वर्ग अधिक मात्रा म बचत कर लेता है जिससे उस वग के पास पूजी अधिक मात्रा म सचित हो जाती है। अर्द्ध-विकसित देश में सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा एव कल्याणकारी कार्यों पर कम मात्रा मे व्यय हो पाने के कारण भी निर्धन वर्ग को अधिक लाभ प्राप्त नहीं हो हो पाता। **साइमन कुज्नेट्स** (Simon Kuznets) के *अनुसार 'अर्द्ध-विकसित देशो* मे अमीरो के पास राष्ट्रीय आय का जितना हिस्सा था विकसित देशो मे उनसे कम ही था। इसके विपरीत निर्धन व्यक्तियो के पास राष्ट्रीय आय का कम भाग था जबकि विकसित देशों मे निर्धन व्यक्तियो के पास राष्ट्रीय आय का अपेक्षाकृत अधिक भाग था'।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि *अर्द्ध-विकसित देशों म अमीरो को मिलने वाला* राष्ट्रीय आय का भाग अधिक है जबकि गरीबो को मिलने वाला भाग कम है। **सर यूजीन स्टेनले** (Eugene Stanly) ने ससार के देशो के आय वितरण पर निष्कर्ष निकाला 'ससार की ७०% जनसख्या अर्द्ध-विकसित देशो म रहती है तथा इस जनसख्या को विश्व की कुल आय का २०% भाग प्राप्त होता है'।

साइमन कुजनेट्स के आय वितरण के अनुमान

देश	सम्पूर्ण आय का प्राप्त होने वाला प्रतिशत	
	अमीर (जनसख्या का २०%)	गरीब (जनसख्या का ६०%)
विकसित देश		
सयुक्त राज्य अमेरिका	४४	३४
ब्रिटेन	४५	३५
अर्द्ध-विकसित देश		
भारत	५५	२८
श्रीलंका	५०	३०

प्रो महालनोबिस Prof Mahalanobis) ने भारत म राष्ट्रीय आय के वितरण की प्रवृति का अध्ययन करके बताया कि भारत मे ५% जनसख्या का राष्ट्रीय आय का २३% भाग प्राप्त होता है, १ प्रतिशत जनसख्या को ११% तथा २५% गरीब जनता को राष्ट्रीय आय या केवल १०% भाग ही प्राप्त होता है।

(७) **बेरोजगारी की समस्या** (Problem of unemployment)—अर्द्ध-विकसित देशो के सामने एक भयकर समस्या बेरोजगारी को हल करने की रहती है।

प्रो. गुन्नार मिर्डल (Prof Gunnar Myrdol) के अनुसार—"बेरोजगारी तथा छिपी बेरोजगारी (disguised unemployment) अर्द्ध-विकसित क्षेत्रो का मुख्य आभूषण है।"

प्रो नर्क्से के अनुसार सामान्यतः २० से २५% तक जनसख्या छिपी बेरोजगारी से पीडित होती है। बेकारी के कारण व्यक्तियो को कार्य देने के आवश्यक सहयोगी उत्पादन के साधन अपर्याप्त होते हैं। अर्द्ध-विकसित देशो मे बेरोजगारी तथा छिपी बेरोजगारी के अतिरिक्त अर्द्ध-बेरोजगारी की भी समस्या है। इन देशो को भूमि पर

कार्य करने वाले व्यक्तियो के एक भाग को यदि हटाकर दूसरे व्यवसाय मे लगा दिया जाय तो भी कुल उत्पादन मे कोई कमी नही जायेगी, क्योंकि कृषि पर लगे अतिरिक्त व्यक्तियो की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। भारत तथा कुछ अन्य देशो म यह समस्या काफी जटिल है।

बायर तथा यामे (Bayer and Yamey) के अनुसार सभी अर्द्ध-विकसित देशो की बेरोजगारी या छिपी हुई बेरोजगारी विशेषत नही है। लेटिन अमेरिका तथा अफ्रीका के कुछ देशो मे जहा कम जनसख्या है, वहा अधिक जनसख्या या बेरोजगारी की समस्या नही है।

(८) **प्राविधिक पिछड़ापन** (Technological backwardness)—प्राविधिक या तकनीकी पिछडापन अर्द्ध विकसित देशो की प्रमुख विशेषता है। इन देशो मे कुशल श्रमिको का अभाव तथा तकनीकी प्रगति के अभाव म साधनो का कुशलतापूर्वक प्रयोग न होने के कारण उत्पादन लागत अधिक आती है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक साधनो का पूर्ण व उचित उपयोग नही हो पाता। **साइमन कुजनेट्स** के अनुसार तकनीकी विकास के चार महत्वपूर्ण चरणों—वैज्ञानिक खोज, आविष्कार नवप्रवर्तन (innovation) तथा सुधार का इन देशो म प्राय अभाव पाया जाता है। पूजी के अभाव के कारण विनियोगो म कमी आ जाती है, तकनीकी विकास कम हो पाता है, तथा पूजी का प्रतिस्थापन श्रम से किया जाता है। श्रम का अधिक प्रयोग होने के कारण उत्पादन लागत अधिक रहती है, तथा देशों का विकास भी धीमी गति से हो पाता है।

(९) **विदेशी व्यापार पर निर्भरता** (Dependence on foreign trade)—अर्द्ध-विकसित देश निर्यातो पर काफी निर्भर रहते हैं। सयुक्त राष्ट्र सघ के एक सर्वेक्षण के अनुसार 'अर्द्ध विकसित देशो म राष्ट्रीय आय का ३०% भाग निर्यातो से प्राप्त होता है। कुछ देशो म यह भाग इससे भी अधिक है। इसके अतिरिक्त इन देशो द्वारा निर्यात किय जाने वाला अधिकाश भाग कच्चे माल के रूप म होता है। निर्यातों पर निर्भर रहने के कारण आर्थिक सकट का भय रहता है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे मूल्यो मे उच्चावचन होते रहते हैं।

(१०) **दोषयुक्त आर्थिक सगठन** (Defective economic organisation)—अर्द्ध-विकसित देशो मे आर्थिक इकाइयो का सगठन दोषपूर्ण है। इन देशो म प्राय आवश्यक वित्तीय सस्थाओ तथा साख सुविधाओ का अभाव रहता है। मुद्रा बाजार असगठित होता है। इन देशो म विकसित तथा पिछड़े दोनों प्रकार के क्षेत्र रहते है। प्रो लुईस (Prof Lewis) के शब्दो म 'पिछड़ेपन के समुद्र के बीच विकास के कुछ टापू रहते

हैं। अर्थात् एक क्षेत्र जो कि छोटा होता है विकसित रहता है, तथा दूसरा क्षेत्र (ग्रामीण क्षेत्र) जो कि बड़ा है अविकसित रहता है। विकसित क्षेत्र में विकसित देशों की सभी विशेषतायें रहती है, जबकि ग्रामीण क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ होता है। इस अर्थ-व्यवस्था के दुहरेपन के कारण विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं।

(११) **परम्परावादी समाज (Traditional society)**—अर्द्ध-विकसित देशों की अधिकांश जनसंख्या रूढ़िवादी, परम्परावादी तथा भाग्यवादी होती है, इसका मुख्य कारण लोगों की अधिक धार्मिकता तथा अशिक्षा है। व्यक्तियों की पुरानी परम्पराओं के प्रति आस्था होने के कारण नये मूल्यों को वे जल्दी ही अपना नहीं पाते तथा नयी तकनीक व विधियों के प्रयोग में विशेष रुचि भी नहीं दिखाते। इसके अतिरिक्त पूंजी की कमी के कारण आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रणाली को अपनाने में असमर्थ रहते हैं, इसके परिणामस्वरूप विकास की गति काफी धीमी रह जाती है।

(१२) **सामाजिक व राजनैतिक चेतना का अभाव (Lack of social and political consciousness)**— अर्द्ध-विकसित देशों में अधिकांश व्यक्ति गरीब होते हैं तथा शिक्षा का अभाव पाया जाता है। इन दोनों कारणों से यहां का व्यक्ति सामाजिक व राजनैतिक स्थितियों के प्रति उदासीन हो जाता है। अधिकांश व्यक्तियों की अपनी स्वतंत्र विचारधारा नहीं रहती। सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली नीतियों और कार्यक्रमों को वह अधिक महत्व प्रदान नहीं करते।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त विद्वानों ने अर्द्ध विकसित देशों की कुछ अन्य विशेषतायें भी बतायी है। उनके अनुसार अर्द्ध-विकसित देशों में उद्यमशीलता का अभाव मानवीय पूंजी का अविकसित होना, श्रम की निम्न उत्पादकता, पौष्टिक आहार की कमी, अकुशल प्रशासन, औद्योगीकरण का अभाव तथा निर्धनता का कुचक्र (vicious circle of poverty) आदि विशेषतायें पायी जाती हैं। जैसा कि पूर्व में ही कहा गया है, सभी देशों में उपर्युक्त सभी विशेषतायें पायी जाना सम्भव नहीं है, लेकिन अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों में एक बड़ी मात्रा में उपर्युक्त विशेषतायें पायी जाती है।

आज विश्व के सभी अर्द्ध-विकसित देश अपनी अर्थ व्यवस्था में सुधार करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं, लेकिन विकास की अनेक समस्यायें होने के कारण गति काफी धीमी है।

क्या भारत एक अर्द्ध-विकसित देश है?
(Is India an Under-developed Country ?)

अर्द्ध-विकसित देशों की उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत एक अर्द्ध-विकसित देश है। भारत की अर्थ व्यवस्था में अर्द्ध विकसित देशों की सभी

विशेषतायें पायी जाती हैं। कृषि की प्रधानता, जनसख्या का आधिक्य, पूजी निर्माण की कमी, निम्न जीवन-स्तर, बेरोजगारी की समस्या, तकनीकी पिछडापन, औद्योगीकरण का अभाव, जनता मे अशिक्षा, अधविश्वास व रुढिवादिता, आर्थिक विकास की धीमी दर, कुशल प्रशासन का अभाव आदि सभी विशेषतायें पायी जाती है।

पिछले कुछ समय से भारत मे विकास की गति को तेज करने के लिए तथा पिछडेपन से छुटकारा पाने के लिए प्रभावी कदम उठाये जा रहे हैं। देश मे उद्योगो की स्थापना पर जोर दिया जा रहा है। कृषि के क्षेत्र मे यत्रो के प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया है। पूजी निर्माण की गति मे वृद्धि के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं तथा तकनीकी व वैज्ञानिक क्षेत्र में भी प्रगति हुई है। इनके परिणामस्वरूप भारत विकास की गतिशील (dynamic) अवस्था मे प्रवेश कर गया है। इस स्थिति के परिवर्तन के कारण ही कुछ अर्थशास्त्रियो व विद्वानो का मत है कि हम इसे अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर यदि विकासशील अर्थ व्यवस्था (developing economy) कहे तो उपयुक्त होगा। यह खेद निर्विवाद है कि भारत मे प्रगति होने के बावजूद भी इसे विकसित देशो की श्रेणी मे नही रखा जा सकता।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्था की परिभाषा दीजिए। पिछडी हुई अर्थ-व्यवस्था की विशेषतायें बताइए।

२ अर्द्ध विकसित देशो की प्रमुख विशेषतायें बताइये। क्या ये विशेषतायें सभी देशो मे लागू होती हैं?

३ अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था की विशेषताओ का वर्णन कीजिए। क्या भारतीय अर्थ-व्यवस्था अर्द्ध-विकसित की श्रेणी म आती है?

अध्याय १०

★

विकसित अर्थ-व्यवस्था
[Developed Economy]

★ ★ ★

विकसित अर्थ-व्यवस्था वह है जिसमे विकास 'पूर्णता' को प्राप्त कर चुका होता है। इसमे व्यक्तियो की आय का ऊँचा स्तर, अधिकतम उत्पादन, पूजी निर्माण को ऊँची दर, पूर्ण औद्योगिक व तकनीकी विकास, बचत व विनियोग मे सतुलन तथा रोजगार के उत्तम अवसर आदि विशेषतायें पाई जाती हैं।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की तरह ही विकसित अर्थ व्यवस्था की सक्षिप्त और सर्वमान्य परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। 'विकसित' शब्द भी निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है। यह सम्भव है कि एक देश को किसी दृष्टि से 'विकसित' की श्रेणी मे रखें वही देश दूसरी दृष्टि से अर्द्ध-विकसित की श्रेणी म आ जाता है, जैसे—रूस एक विकसित देश है क्योकि वह सम्पन्न है, उसका औद्योगिक व तकनीकी विकास अन्तिम चरण मे है, लेकिन रूस अभी तक विकास की प्रक्रिया मे है, अत इस श्रेणी मे नही रखा जा सकता। परन्तु इस प्रकार के विचार एक भ्रांति पैदा करते है, क्योकि कोई भी देश विकास के अन्तिम बिन्दु पर पहुचने के बाद भी स्थिर अवस्था मे नही रह पाता। इसका कारण तकनीकी ज्ञान और विज्ञान मे लगातार प्रगति होना है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक देश विकास के लिए सदैव तत्पर रहता है।

सयुक्तराष्ट्र सघ को एक रिपोर्ट मे सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी यूरोपीय देशो को विकसित देश माना है तथा यह मान्यता रखी है कि जिन देशो की प्रति व्यक्ति आय इन देशो से कम होगी वह अर्द्ध विकसित की श्रेणी मे होंगे, परन्तु यह विचार भी तर्क की कसौटी पर सही नही उतरता। इसका कारण यह है कि प्रत्येक देश के विकास की अपनी सीमायें होती है, उस देश के विकास को दूसरे देश से तुलना करना

उचित प्रतीत नहीं होता। जो देश अपने उपलब्ध साधनों का पूर्ण शोषण व विकास करले उसे विकसित देश की श्रेणी म लिया जा सकता है।

विकसित देश की परिभाषा देना कठिन है, परन्तु इसकी विशेषताओ के आधार पर हम निर्णय कर सकते हैं कि कौन-सी अर्थ व्यवस्था विकसित है।

विकसित अर्थ व्यवस्था की विशेषतायें (Characteristics of Developed Economy)

विकसित देशो की सर्वमान्य विशेषताओ को बताना कठिन है, परन्तु अधिकाश देशो मे कुछ सामान्य विशेषतायें पायी जाती हैं, ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

(१) **प्रति व्यक्ति आय का उच्च स्तर (High level of per capita income)** — विकसित देशो म प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय अर्द्ध-विकसित देशो की अपेक्षा काफी अधिक होती है। विकसित देशो म प्रति व्यक्ति आय ५०० डालर से अधिक होती है, परन्तु कुछ विशेषज्ञ १००० डालर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त करने वाले देश को विकसित देशो की श्रेणी मे लेते हैं। विकसित देश अमेरिका, कनाडा तथा स्विटजरलैण्ड की आय एक अनुमान के अनुसार २५०० डालर से भी अधिक है।

विकसित देश विश्व की कुल राष्ट्रीय आय का बहुत बडा भाग प्राप्त करते हैं जबकि गरीब देश बहुत कम। इसकी पुष्टि निम्नांकित तालिका से होती है—

आय का स्तर	विश्व की जनसंख्या का प्रतिशत	विश्व की आय का प्रतिशत
उच्च आय वाले देश	१८	६७
मध्यम आय वाले देश	१५	१८
निम्न आय वाले देश	६७	१५

विकसित देशो म प्रति व्यक्ति अधिक होने के साथ साथ राष्ट्रीय आय भी अधिक होती है, इसका कारण देश म उपलब्ध साधनों का पूर्ण शोषण व व्यक्तियों की कार्यक्षमता का अधिक होना है।

(२) **प्राकृतिक साधनों का पूर्ण शोषण (Fully utilised natural resources)**— विकसित देशों के बारे मे सामान्य धारणा है कि उनके पास प्राकृतिक साधनो का

पर्याप्त भंडार रहता है, लेकिन यह बात हर विकसित देश के लिये लागू होना आवश्यक नहीं है। परन्तु जो भी साधन उपलब्ध होते हैं उन साधनों का पूर्ण शोषण होता है, जिसके परिणामस्वरूप विकास की दर में वृद्धि होती है, और राष्ट्रीय आय बढ़ जाती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार विकसित देशों में उपलब्ध जलशक्ति का ६०% भाग का उपयोग होता है जबकि अर्द्ध-विकसित देशों में ६ से १३ % तक उपलब्ध जलशक्ति का उपयोग होता है। इन साधनों के अधिक शोषण का कारण पूंजी की अधिकता, विकसित उत्पादन प्रणाली तथा कुशल साहसी और प्रशिक्षित श्रमिकों का होना है।

(३) **पूंजी निर्माण की ऊँची दर** (High rate of capital formation)—विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर अर्द्ध-विकसित देशों की अपेक्षा अधिक ऊँची रहती है। पूंजी निर्माण की ऊँची दर का कारण प्रति व्यक्ति आय का अधिक होना है। विकसित देशों में व्यक्ति अपनी आय में से एक भाग आसानी से बचाकर रख लेते हैं, जिससे यह भाग विनियोग कार्यों के लिए उपलब्ध हो जाता है। विकसित देशों की पूंजी निर्माण की दर को निम्नांकित तालिका द्वारा दर्शाया गया है—

देश	पूंजी निर्माण
कनाडा	२४ ५
जापान	२८ ५
संयुक्त राज्य अमेरिका	२३ ६
पश्चिमी जर्मनी	२० ८

पूंजी निर्माण की दर अधिक होने से विनियोग के लिए अधिक पूंजी प्राप्त होती है जिससे अधिक उत्पादन होता है और पुन आय में वृद्धि हो जाती है।

(४) **रहन सहन का उच्च स्तर** (High level of standard of living)—विकसित देशों में रहन सहन का स्तर उच्च होता है, अर्थात् वहां के नागरिक अपनी आवश्यकताओं को आसानी से पूर्ण कर लेते हैं। आवश्यक व आरामदायक के अतिरिक्त विलासिता की आवश्यकताओं की पूर्ति भी सम्भव होती है। परन्तु प्रत्येक नागरिक

की ऐसी स्थिति का होना आवश्यक नहीं है, सम्भव है कुछ नागरिक ऐसे भी हो जिनका जीवन स्तर नीचा है। अत इन देशो मे औसत रूप मे जीवन-स्तर ऊँचा होता है। देश मे स्वास्थ्य सुविधाओं की पर्याप्त व्यवस्था रहती है तथा आवास की समस्या प्राय नही होती। मनोरंजन और सुख सुविधाओं के पर्याप्त साधन उपलब्ध रहते हैं। स्वास्थ्य सुविधाओ, मनोरंजन के साधन तथा पौष्टिक आहार की उपलब्धि के कारण व्यक्तियों की औसत आयु (life expectancy) भी अधिक होती है। विकसित देशों म जीवन प्रत्याशा ६५ से ७३ वर्ष तक है जबकि भारत मे केवल ५० वर्ष।

(५) **औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था** (Industrial economy)—विकसित देशो मे उद्योग-धंधो का प्रमुखता प्राप्त होती है, तथा राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग इसी क्षेत्र से प्राप्त होता है। अर्द्ध-विकसित देशो म कृषि का योगदान अधिक होता है। विकसित देशो म यद्यपि कृषि पर निर्भर रहने वाले व्यक्तियो का अनुपात कम होता है तथा राष्ट्रीय आय म कृषि का योगदान भी कम होता है, फिर भी कृषि का विकसित रूप देखन म आता है। विकसित देशो मे अधिकांश कृषि आधुनिकतम यन्त्रों द्वारा की जाती है। विकसित देशो मे कृषि व उद्योग-धंधो का राष्ट्रीय आय मे योगदान निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है—

राष्ट्रीय आय में योगदान

(प्रतिशत म)

देश	कृषि का योगदान	निर्माण उद्योगों का योगदान
स रा अमेरिका	६	३०
इगलैंड	५	३८
कनाडा	९	२६

विकसित देशो म मूल व भारी उद्योग विकसित अवस्था म होने के साथ-साथ उनकी इकाइयां बहुत होती हैं। अधिकांश उत्पादन कार्य बड़े पैमाने पर बड़े-बड़े यंत्रो द्वारा किये जाते हैं। पूंजीगत वस्तुओ के साथ ही उपभोग वस्तुओं (consumer goods) के उत्पादन को महत्व दिया जाता है।

(६) **तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति** (Technological and scientific progress)—विकसित देशो मे प्रगति की दर अधिक होने का कारण तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति है। विकसित देशो के पास पूंजी का अभाव न होने के कारण तकनीकी व वैज्ञानिक अनुसधानो म काफी धन व्यय करते है। प्रशिक्षण आदि की पर्याप्त सुविधाये उपलब्ध कराते हैं। बचतो के अधिक होने के कारण विनियोग के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध हो जाती है और उस पूंजी को अधिक उत्पादक कार्यों मे लगा दिया जाता है। प्रशिक्षण व अनुसधान कार्य की सुविधाये तथा विकास की प्रेरणायें होने के कारण तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र मे विकास होता चला जाता है।

(७) **प्रभावपूर्ण माग और रोजगार का उच्च स्तर** (Effective demand and high level of employment)—विकसित देशो मे पूंजी निर्माण अधिक होता है, जिससे विनियोग अधिक मात्रा मे होते है। विनियोग अधिक होन के कारण उत्पादन कार्य अधिक होते हैं, जिससे अधिक व्यक्तियो को रोजगार की सुविधायें उपलब्ध होती हैं। रोजगार मे वृद्धि होने के फलस्वरूप व्यक्तियो की प्रभावी माग म वृद्धि होती है और यह पुन रोजगार मे वृद्धि कर देती है।

रोजगार का उच्च स्तर होने का कारण यह भी है कि औद्योगीकरण के द्वारा विकास होता है, तथा देश मे उपलब्ध साधनों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि अधिक व्यापक रूप मे अर्थ-व्यवस्था विकसित हो सके, अत रोजगार की सुविधाये व्यक्तियो को अधिक प्राप्त होती है। सामान्यत अर्द्ध-विकसित देशो मे जो बेरोजगारी की समस्या देखने को मिलती है वह विकसित देशो मे नही रहती।

(८) **विकसित आर्थिक सगठन** (Developed economic organisation)—विकसित देशो मे आर्थिक इकाइया पूर्णत होती है। इन देशो मे वित्तीय सुविधायें तथा साख सुविधाये आवश्यकतानुरूप प्राप्त होती है। ये सुविधायें केवल शहरो तक ही सीमित नही होती अपितु पूरे देश मे फैली होती है। मुद्रा बाजार सगठित होता है, इसके कारण सरकार व केन्द्रीय बैंक की नीतियो का पालन प्रभावपूर्ण ढग से होता है।

(९) **जनसंख्या वृद्धि की निम्न दर** (Slow growth rate of population)—विकसित देशो मे अर्द्ध-विकसित देशो की अपेक्षा जनसंख्या वृद्धि की दर कम होती है। इसका कारण यह है कि शिक्षा का प्रसार अधिक होने के कारण व्यक्ति अन्धविश्वासी व रूढिवादी नही है। स्वास्थ्य सुविधायें और मनोरजन की अधिक सुविधाये उपलब्ध होने के कारण तथा जीवन-स्तर ऊंचा होने के कारण जन्म दर कम होती है।

विकसित देशो म मृत्यु दर भी अर्द्ध-विकसित देशो की अपेक्षा कम होती है, परन्तु जन्म दर कम होने के कारण शुद्ध वृद्धि दर कम रहती है। विकसित देशो म जनसख्या वृद्धि की दर २% से भी कम है।

(१०) **अत्याधिक उपभोग की अर्थ-व्यवस्था** (Economy of mass consumption)—विकसित देशो म व्यक्ति वस्तुओ और सेवाओ का उपभोग काफी अधिक मात्रा म करते हैं। व्यक्तियो का केवल अच्छा भोजन, मकान व वस्त्र ही उपलब्ध नही होने वरन् उपभोग की टिकाऊ वस्तुएँ (रेडियो, टेलीविजन, कार, साज-सामान आदि) भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होती है। व्यक्तियों की आय अधिक होने के कारण वे उपभोग वस्तुओ का आसानी से क्रय कर लेते है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास व तकनीकी प्रगति के कारण वस्तुयें सस्ते मूल्य पर भी उपलब्ध हो जाती हैं। विकसित अर्थ व्यवस्था मे यह आवश्यक नही है कि सभी व्यक्तियो को ये सुविधायें उपलब्ध हो। यह सम्भव है इस अर्थ-व्यवस्था म भी गरीब लोग हो, जिनको इतनी अधिक उपभोग सामग्री प्राप्त न हो, परन्तु अधिकाश व्यक्तियो की स्थिति काफी अच्छी होती है।

(११) **स्वचालित और स्वय स्फूर्त अर्थ व्यवस्था** (Self generating and self-sustained economy)—विकसित देशो म यह विशेषता पाई जाती है कि अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए तथा उसमे गति प्रदान करने के लिए किसी बाहरी दबाव या विशेष नियोजन की आवश्यकता नहीं होती। इस स्थिति मे आधुनिकतम उत्पादन विधियो का प्रयोग होता है, यातायात तथा सचार की पर्याप्त सुविधायें रहती हैं, पर्याप्त वित्तीय व साख सुविधायें उपलब्ध होती हैं, जिनके कारण साहसी भी अधिक रहते हैं। श्रमिक व साहसी दोनो ही कुशल होने के कारण उत्पादन अधिक होता है, और यह उत्पादन बडे पैमाने पर ही होता है। विकसित अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन वृद्धि स्वत ही होती जाती है और यह अर्थ व्यवस्था का एक स्वाभाविक लक्षण बन जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त विकसित अर्थ-व्यवस्था म उच्च पूजी उत्पादन अनुपात (high capital output ratio), पूर्ण सामाजिक सुरक्षा, श्रमिकों की अधिक उत्पादकता, यातायात तथा सचार के विकसित साधन आदि विशेषतायें पायी जाती हैं। परन्तु इन सभी विशेषताओं का सभी विकसित देशो म पाया जाना आवश्यक नही है।

विकसित और अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था मे अन्तर (Difference Between Developed and Under developed Economy)

विकसित व अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्थाओ के अध्ययन करने के उपरान्त इन दोनो मे निम्नलिखित अन्तर प्रतीत होता है

	अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था	विकसित अर्थ-व्यवस्था
१	कृषि-प्रधान अर्थ-व्यवस्था होती है, तथा अधिकांश व्यक्ति कृषि पर आश्रित होते है।	उद्योग प्रधान अर्थ-व्यवस्था होती है, तथा जनसंख्या का छोटा भाग कृषि पर आश्रित होता है।
२	कृषि पुराने तरीको व यंत्रो से होती है। नये यन्त्रो व विधियो का प्रयोग कम होता है।	आधुनिकतम यन्त्रो द्वारा कृषि की जाती है।
३	उद्योग-धन्धो का पर्याप्त विकास नही होता तथा इनका राष्ट्रीय आय मे कम योगदान होता है।	पूर्ण विकसित उद्योग होते है, तथा राष्ट्रीय आय मे महत्वपूर्ण योगदान होता है।
४	निम्न जीवन स्तर होता है तथा निम्न उपभोग का स्तर होता है।	उच्च जीवन स्तर होता है उपभोग का स्तर उच्च होता है।
	प्राकृतिक साधनो का पूर्ण शोषण नही हो पाता।	प्राकृतिक साधनो का पूर्ण शोषण होता है।
६	तकनीको व वैज्ञानिक प्रगति कम होती है तथा श्रम-प्रधान तकनीकी का प्रयोग किया जाता है।	तकनीकी व वैज्ञानिक विकास का स्तर ऊंचा होता है तथा पूंजी-प्रधान तकनीक का प्रयोग होता है।
७	जनसंख्या वृद्धि की दर अधिक होती है।	जनसंख्या वृद्धि की दर कम होती है।
८	पूंजी निर्माण की दर कम होती है, जिससे विनियोग कार्यों को अल्प-पूंजी उपलब्ध हो पाती है।	पूंजी निर्माण की उच्च दर होती है तथा विनियोग कार्यों के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध हो जाती है।
	श्रमिको की कार्यक्षमता कम होती है।	श्रमिको की कार्यक्षमता अधिक होती है।
१०	श्रमिको की कार्यक्षमता कम होने व पूंजी के अभाव के कारण विकास की दर धीमी होती है।	विकास की दर तेज होती है।
११	बेरोजगारी की समस्या रहती है।	उच्च रोजगार का स्तर रहता है।
१२	बहुत अधिक आर्थिक विषमतायें पायी जाती है।	आर्थिक विषमतायें अपेक्षाकृत कम होती है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ विकसित अर्थ-व्यवस्था से क्या अभिप्राय है ? विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषतायें बताइये ।

२ विकसित और अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था की परिभाषा दीजिये तथा इन दोनों का अन्तर समझाइये ।

३ विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

अध्याय ११

★

आर्थिक नियोजन की परिभाषा एवं विशेषतायें

[Definition and Characteristics of Economic Planning]

★ ★ ★

आज के युग मे आर्थिक नियोजन देश के विकास और प्रगति के लिये 'रामबाण' समझा जाता है। प्रत्येक देश चाहे वह पूजीवादी है या समाजवादी या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का समर्थक है, किसी-न-किसी रूप मे आर्थिक नियोजन को अवश्य अपनाता है, इसलिए आज के युग को 'नियोजन का युग' (Age of Planning) कहा जाता है।

आर्थिक नियोजन २०वी शताब्दी की देन है। पूजीवादी व्यवस्था के दोष, रूस की क्राति, विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, एशिया तथा अफ्रीका के देशो के सामने विकास की समस्याओ तथा विश्वयुद्ध से जर्जरित राष्ट्रो की पुन निर्माण की समस्याओ ने इसके महत्व मे अप्रत्याशित वृद्धि की है। सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप मे आर्थिक नियोजन की नीति को रूस द्वारा अपनाया गया पश्चात् अन्य देशो ने भी इसे स्वीकार कर लिया।

आर्थिक नियोजन की परिभाषा विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से प्रस्तुत की है, इसलिए इन परिभाषाओ मे काफी भिन्नता है, अतः आर्थिक नियोजन की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा दे पाना अत्यन्त कठिन है। हम यहा पर कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का ही अध्ययन करेंगे।

स्व. जवाहरलाल नेहरू ने नियोजन की परिभाषा इन शब्दो मे की थी—"नियोजन एक निरन्तर प्रक्रिया है। नियोजन का अर्थ केवल वस्तुओ मे प्राथमिकताओ का निर्माण नहीं है, बल्कि अधिक गहरा और विस्तृत है। नियोजन के बारे मे पहली बात है

कि तस्वीर स्पष्ट होनी चाहिए कि हम कहा जा रहे हैं। किन्तु यह तस्वीर लोचहीन नही होनी चाहिए।"[1]

भारतीय योजना आयोग (Indian Planning Commission) के अनुसार—'आर्थिक नियोजन साधनों के उपयोग और सगठन की एक विधि है जिसम साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। नियोजन के विचार के दो प्रमुख अग हैं—(१) उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु अपनायी गई प्रणाली, और (२) प्राप्त साधनो और उनके अनुकूलतम आवटन (optimum allocation) के बारे म ज्ञान।'[2]

हारमन लेवी (Harman Levy) के अनुसार—'आर्थिक नियोजन से अथ उत्पादन तथा वितरण अथवा दोनो पर एक विचारपूर्ण तथा चेतनापूर्ण नियन्त्रण रखकर माग और पूर्ति म सन्तुलन स्थापित करना है, न कि अदृश्य और अनियमित स्वेच्छापूर्वक कार्य करने के लिए स्वतन्त्र छोड देना।"[3]

श्री एच डी डिकिन्सन (H D Dickinson) ने आर्थिक नियोजन की परिभाषा इन शब्दो म दी है—"आर्थिक नियोजन से अभिप्राय प्रमुख आर्थिक निर्णय करना है। एक केन्द्रीय अधिकारी द्वारा सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार

---

1 "Planning, of course, is a continuous process Planning does not mean merely giving priorities to things It is something wider and deeper, the first thing about planning is to have a difinite picture of where we are going This picture must not be very rigid ' —Jawaharlal

2 ' Economic planning is essentially a way of organising and utilising resources to maximum advantage in terms of defined social ends The two main constituents of the concept of planning are—

(i) a system of ends to be pursued, and

(ii) knowledge as to available resources and their optimum allocation "

—Indian Planning Commission (First Five-Year Plan

3 ' Economic planning means securing a better balance betweer demand and supply by a conscions and thoughtful control eithe of production or of distribution or of both, rather than hav this balance to be effected by autometically working invisib and uncontrolled force " —H Lev

पर यह विचारपूर्ण निर्णय करना कि क्या और कितना उत्पादन करना है तथा किसको इसका वितरण करना है।"[४]

श्रीमती ऊटन (Mrs Wootton) के शब्दों में—"आर्थिक नियोजन एक ऐसी प्रणाली है जिसमें बाजार यंत्र को स्वेच्छापूर्वक कार्य करने के लिए स्वतन्त्र न छोडकर इस प्रकार संगठित किया जाता है कि वह एक आदर्श बन जाय।"[५]

प्रो मॉरिस डॉब (Pro Maurice Dobb) के अनुसार—'नियोजन आर्थिक निर्णयों को समन्वित करने का एक यन्त्र (mechanism) है—योजना वह विधि है जिसमें अर्थ व्यवस्था के लिए संयुक्त निर्णय लिया जाता है जिससे सभी आर्थिक इकाइयां एक साथ समायोजित हो सकें।[६]

प्रो गुन्नार मिर्डल (Prof Gunnar Myrdol) के शब्दों में—"आर्थिक नियोजन राष्ट्रीय सरकार की वह कार्यविधि है जिसमें बाजार की शक्तियों में इस प्रकार हस्तक्षेप करती है जिससे सामाजिक प्रक्रिया को आगे बढाया जा सके।"[७]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्रियों ने नियोजन को विभिन्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। अर्थशास्त्रियों में नियोजन के अर्थ व

---

4 "Economic planning is the making of major economic dicisions —what and how much is to be produced and to whom it is to allocated by the conscious decision of a determinate authority, on the basis of a comprehensive survey of the economic system as a whole" —H D Dickinson

5 "Economic planning is a system in which the market mechanism is deliberately manupulated with the object of producing a pattern other than which would have resulted from its spantaneous activity" —Mrs Woottan

6 "Planning is a mechanism for co ordinating economic decisions .. a plan is a method of taking a combined dicision about all so that all the separate parts harmonise or fit together" —Prof Maurice Dobb

7 "Economic planning is a programme for the strategy of a national government in applying a system of state interference with the play of market forces, thereby conditioning them in such a way as to give an upward push to the social process — Gunnar Myrdal

उद्देश्य के सम्बन्ध म इतना मतभेद है कि सामान्य व्यक्ति नियोजन को सही रूप म समझ नही पाता। इन परिभाषाओ मे कोई परिभाषा ऐसी नहीं है जो कि आर्थिक नियोजन के अर्थ व उद्देश्य को पूर्णत: स्पष्ट कर सके। प्रत्येक देश ने अपनी परिस्थिति के अनुसार इसे अपना लिया है। केवल इस बात से सभी अर्थशास्त्री सहमत हैं कि नियोजन का उद्देश्य व्यक्तियों के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने के लिए देश म उपलब्ध साधनो और शक्तियो का प्राथमिकता के आधार पर समुचित उपयोग करना है। देश का विकास सुसगठित तथा सुसम्बद्ध प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

आर्थिक नियोजन की विशेषतायें (Characteristics of Economic Planning) :

डर्बिन (E F. M Durbin) ने आर्थिक नियोजन की विशेषताओ को निम्नलिखित शब्दो म व्यक्त किया है —

"नियोजन विभिन्न उद्योगो के स्वेच्छापूर्वक कार्य करने वाले दृष्टिकोण को तनिक भी प्रोत्साहित नही करता है। नियोजन भविष्य के सम्बन्ध म कोई निश्चित दृढ सिद्धात नही बताता है। भावी मानवीय इच्छाओ, कलात्मक आविष्कार, सुरुश तथा खुश-हाली का वर्णन विस्तारपूर्वक नही किया जा सकता। इसलिए ऐसी योजनाओ को बनाना मूर्खतापूर्ण है जो कि समाज की आवश्यकताओ तथा परिवर्तनो को ध्यान मे रखकर शीघ्र ही परिवर्तित नही की जा सकती फिर आयोजन की वास्तविक विशेषता क्या और कहा है? सर्वसाधारण की नवीन योजनाओ पर यदि विचार किया जाय तो हम कह सकते हैं कि नियोजन इकाइयो के विस्तार को विस्तृत करन का तथा उसके परिणामस्वरूप उसके क्षेत्र को व्यापक करने का प्रबन्ध है।"[8]

विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा दी गई परिभाषाओ का अवलोकन करन पर नियोजन की प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार प्रतीत होती हैं —

(१) नियोजन आर्थिक सगठन और विकास की एक प्रणाली है।

(२) नियोजन का निश्चित उद्देश्य होता है। नियोजन के उद्देश्य पूर्व निर्धारित होते हैं जिनकी पूर्ति हेतु नियोजन की आवश्यकता होती है। नियोजन के उद्देश्य म समानता होना आवश्यक नही है, ये उद्देश्य प्राय देश की आवश्यकताओ, उपलब्ध साधनो और विकास के स्तर के आधार पर निश्चित किये जाते हैं। लेकिन सभी देशो मे

---

8 प्रो ए बी भट्टाचार्य की पुस्तक 'नियोजन देश और विदेश मे' से उद्धृत।

नियोजन द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि उत्पादन मे कुशलता प्राप्त हो, वितरण मे विषमता कम हो तथा आर्थिक स्थायित्व बना रहे।

(३) नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे केन्द्रीय योजना अधिकारी या केन्द्रीय नियोजन सत्ता (Central Planning Authority) की उपस्थिति होती है। इस सत्ता द्वारा देश के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर आर्थिक विकास के सम्बन्ध म निर्णय लेती है, तथा निर्धारित उद्देश्यो के साथ समन्वय स्थापित करती है। यह अधिकारी या सत्ता स्वय सरकार होती है या सरकार द्वारा मिली सस्था की नियुक्ति की जाती है, जैसे—कि भारत म योजना आयोग (Planning Commission) की नियुक्ति की गई है।

(४) आर्थिक नियोजन मे सम्पूर्ण आर्थिक कार्य योजना के अनुसार सम्पन्न किये जाते है। नियोजन का उद्देश्य किसी एक विशेष पहलू का नियोजन न होकर सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का नियोजन होता है।

(५) आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत कार्य अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति हेतु किये जाते है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनो का विवेकपूर्ण ढग से प्रयोग किया जाता है।

(६) नियोजित अर्थ व्यवस्था म वर्ग-संघर्ष (class-conflict) का अभाव पाया जाता है, क्योंकि नियोजित अर्थ व्यवस्था मे सम्पूर्ण समाज की आवश्यकताओ को महत्व प्रदान किया जाता है।

(७) नियोजन एक दीर्घकालीन तथा निरन्तर (continuous) प्रक्रिया है। इसम अल्पकालीन योजनाओ का दीर्घकालीन योजना के साथ समन्वय स्थापित किया जाता है।

(८) आर्थिक नियोजन के सफल सचालन के लिये जनता का सहयोग आवश्यक है।

(९) नियोजन की सफलता और असफलता का समय-समय पर मूल्याकन करते रहने के लिए मूल्याकन तन्त्र (evaluation machinery) भी रहता है।

आर्थिक नियोजन की आवश्यकता एव लोकप्रियता के कारण (Need of Economic Planning and causes of its popularity)

प्रो रॉबिन्स का विचार है—"हम सब भले ही समाजवादी न हो परन्तु लगभग हम सभी निश्चित रूप से नियोजन के समर्थक हैं।"

आज का युग नियोजन का युग है। सभी देश चाहे वह समाजवादी हैं या पूंजीवादी या मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के समर्थक हैं किसी न-किसी रूप मे नियोजन का सहारा अवश्य लेते हैं। इसका कारण यह है कि देश में उपलब्ध साधनों का विकास करने के लिये, उत्पादन मे वृद्धि करने और बरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए तथा समाज की विषमताओं को दूर करने के लिए नियोजन ही एकमात्र सहारा है। नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे न तो साधनों का अपव्यय होता है और न ही कोई साधन बेकार पडा रहता है। आर्थिक नियोजन के महत्व मे वृद्धि के निम्नलिखित कारण प्रमुख है —

(१) **पूंजीवाद के दोष** (Evils of capitalism)—पूंजीवादी व्यवस्था जिसमे कि अहस्तक्षेप की नीति (Laissez Faire) को अपनाया जाता है, काफी पुरानी व दोषपूर्ण व्यवस्था है। इसमे पूंजी का कुछ ही व्यक्तियों के हाथों मे केन्द्रित होना, श्रमिको और गरीबों का शोषण, धन का अपव्यय, वर्ग-संघर्ष आदि दोष पाये जाते है, इन दोषों को नियोजन द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

डर्बिन (Durbin) के शब्दों में—"केवल नियोजन ही पूंजीवाद के दोषों को दूर करने का एकमात्र साधन और आशा है।"[९]

अत नियोजन द्वारा पूंजीवाद की बुराइयों को दूर किये जाने के कारण इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

(२) **अनियोजित अर्थ-व्यवस्था के दोष** (Evils of unplanned economy)— अनियोजित अर्थ व्यवस्था मे निम्नलिखित दोष पाये जाते है —

(अ) व्यापार चक्रों की उपस्थिति अर्थात् कम उत्पादन व अधिक उत्पादन की समस्या।

(ब) प्राकृतिक साधनों का असन्तुलित शोषण तथा उनका अदूरदर्शी उपयोग।

(स) समाज म उपभोग की वस्तुओं का अभाव।

उपर्युक्त सभी समस्याओं का हल नियोजन प्रस्तुत करता है। क्योंकि इसमे केन्द्रीय सत्ता द्वारा व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर माग व पूर्ति मे सामजस्य स्थापित होता है। आवश्यकतानुसार साधनों का शोषण किया जाता है, तथा उपयोग दीर्घकालीन दृष्टिकोण के आधार पर होता है।

---

9 "Planning alone provides hope and means of remedying the ill-effects of capitalism" — Robbins

(३) **सोवियत रूस की अभूतपूर्व सफलता** (Remarkable achievements of Soviet Russia)—सर्वप्रथम रूस ने पूर्ण आर्थिक नियोजन को १६२८ में अपनाया। रूस ने नियोजित ढग के स्थायी आधार पर स्वीकार कर देश के विकास के लिए योजनाओं का निर्माण किया। रूस की अल्पकाल में अभूतपूर्व आर्थिक प्रगति को देखकर अन्य देश भी इसको अपनाने लगे।

(४) **आर्थिक महामन्दी** (Economic depression)—१६२६ में विश्वव्यापी मन्दी फैलने से विश्व के अधिकांश देशों की स्थिति खराब हो गई तथा आर्थिक क्रियायें काफी सीमित हो गईं। तब विश्व के अर्थशास्त्रियों तथा विद्वानों का ध्यान पूंजीवादी व्यवस्था की बुराइयों की ओर गया तथा नियोजन के पक्ष में अधिकांश अर्थशास्त्री हो गये। उसी अवधि में नियोजित ढग से उत्पादन में वृद्धि की गई तथा आर्थिक सकट से छुटकारा मिला।

(५) **विश्व युद्ध** (World-wars)—दो विश्वयुद्धों के प्रभाव के कारण भी नियोजन के महत्त्व में वृद्धि हुई, क्योंकि युद्ध से पीडित देशों को विकास करने के लिए तथा अपनी अर्थ-व्यवस्था के पुन निर्माण के लिये नियोजन का सहारा लेना पडा। नियोजित ढग से कार्य करने के कारण ही ये देश पुन विकसित अवस्था में पहुंच सके।

(६) **अर्द्ध-विकसित देशों का उदय** (Emergence of under-developed countries)—द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एशिया और अफ्रीका का बहुत-से देशों को राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद उनमें आर्थिक विकास की प्रबल इच्छा जाग्रत हुई। इन देशों ने अपने आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन का सहारा लिया। इन देशों का यह विचार था कि पूंजीवादी व्यवस्था के आधार पर विकास करना सम्भव नहीं है, अत उपलब्ध साधनों का अधिकतम शोषण करने के लिए तथा समाज में व्याप्त समस्याओं के निराकरण के लिए नियोजन पद्धति को अपनाया।

(७) **आधुनिक आर्थिक विचारधारा** (Modern economic ideology)—आधुनिक युग में अधिकांश अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक आयोजन और समाजवाद का समर्थन किया है। अनेक अर्थशास्त्रियों ने सरकारों को नियोजन को स्वीकार करने की सलाह दी है। शुम्पीटर (Schumpeter) टेलर (Taylor), मॉरिस डाब (Mource Dobb) तथा लर्नर (Lerner, आदि प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नियोजन के पक्ष में

आज के युग म नियोजन विश्व की अर्थ-व्यवस्थाओं का अविभाज्य अग बन गया है। आज प्रश्न यह नही है कि नियोजन क्यो हो, बल्कि यह है कि नियोजन क्यों नही? आज प्राय सभी देशो द्वारा आर्थिक विकास के कार्यक्रमो को नियोजित ढग से आगे बढाया जा रहा है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ आर्थिक नियोज़ ा से आप क्या समझते ह ? आधुनिक युग म आर्थिक नियोजन का महत्व क्या बढता जा रहा है ?

२. आर्थिक नियोजन की परिभाषा दीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं का भी उल्लेख कीजिए।

३ नियोजन से क्या अभिप्राय है ? आर्थिक नियोजन की कुछ परिभाषाय दीजिए।

४ आर्थिक नियोजन की परिभाषा दीजिए तथा इसकी लोकप्रियता म वृद्धि के कारणो का उल्लेख कीजिए।

———

अध्याय १२

★

'५),

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
[Objectives of Economic Planning]

★ ★ ★

नियोजन एक सतत प्रयत्न है जिसका उद्देश्य आर्थिक विकास करना तथा सामाजिक स्तर को ऊचा उठाना है। दूसरे शब्दो मे, उपलब्ध साधनो को इस प्रकार प्रयोग मे लाना है जिससे कि उत्पादन समाज की आवश्यकताओ के अनुकूल किया जा सके तथा जीवन-स्तर (standard of life) को ऊचा उठाया जा सके। नियोजन का उद्देश्य केवल आर्थिक ही नही होता बल्कि राजनैतिक व सामाजिक भी होना है। सामान्यत नियोजन का उद्देश्य अधिकतम उत्पादन, उचित वितरण, पूर्ण रोजगार, अवसर की समानता, सामाजिक न्याय, स्वतन्त्रता आदि तत्वो को प्राप्त करना है। सक्षेप म, नियोजन का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है।

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य के सम्बन्ध मे सभी अर्थशास्त्रियो म मतैक्य नही है। *किसी अर्थशास्त्री ने अधिकतम उत्पादन को महत्व दिया है तो किसी ने आर्थिक समानता* को। किसी ने पूर्ण रोजगार को प्राथमिकता प्रदान की है तथा किसी ने सामाजिक न्याय को। ऐसी स्थिति मे अर्थशास्त्रियो द्वारा दिये गये विभिन्न विचारो को समझ लेना उचित होगा।

बी० सी० घोष (B C Ghosh) ने आर्थिक नियोजन के निम्नलिखित उद्देश्य बताये है[1] —

---

1 (a) Planning as we shall understand, means production and distribution with social purpose—not only for a short period but also for a long period

(b) The attainment of full employment as well as the progressive improvement in the standard of living of the people

(c) Industrialisation of the country" —B C Ghosh

(अ) "नियोजन सामाजिक उद्देश्य से उत्पादन तथा वितरण का अल्पकालीन ही नही बल्कि दीर्घकालीन साधन है।

(ब) पूर्ण रोजगार की प्राप्ति, साथ-ही-साथ व्यक्तियो के रहन-सहन के स्तर मे निरन्तर सुधार।

(स) देश का औद्योगीकरण।'

प्रो वी के आर वी. राव (Prof V K R V. Rao) के अनुसार— एक पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था से अभिप्राय आर्थिक क्रियाओ के सम्पूर्ण क्षेत्र— उत्पादन, उपभोग वितरण तथा मुद्रा आदि —पर पूर्ण नियन्त्रण से है।"[2]

(मॉरिस डाब (Mauris Dobb) ने आर्थिक नियोजन के तीन उद्देश्य बताये हैं —

(अ) आर्थिक जीवन मे स्थिरता बनाये रखना,
(ब) उत्पादन के क्षेत्र मे कुशलता प्राप्त करना,
(स) वितरण की समानता।

प्रो ए दलाल (Prof A Dalal) के शब्दो म—'नियोजन का उद्देश्य मुख्य रूप से उत्पादन का अधिकतम सीमा तक विकास करना तथा जनता के जीवन रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाना है।'[3]

भारतीय योजना आयोग के अनुसार भारत म नियोजित विकास के दो उद्देश्य है —

(अ) उत्पादन वृद्धि तथा जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना, तथा
(ब) स्वतन्त्रता एव लोकतन्त्र के मूल्यो के आधार पर ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का विकास करना जिसमे राष्ट्रीय जीवन की सभी सस्थाओं म आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक न्याय प्राप्त हो।

उपर्युक्त विवेचन स यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न दृष्टिकोणो म यद्यपि भिन्नता है फिर भी वे किसी-न-किसी रूप म सम्बन्धित अवश्य हैं। सामान्यत नियोजन के उद्देश्य का निर्धारण उस देश की अर्थ व्यवस्था उसके स्वरूप तथा उसकी आवश्यकताओ

---

2 "A full-fledged planned economy would mean complete control over the entire field of economic activity—production, consumption, distribution, money etc —V K R V Rao

3 "The object of planning is mainy to improve the production to the greatest extent possible and to raise t'e standard of living of the masses" — A. Dalal

के आधार पर होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आर्थिक नियोजन के उद्देश्य को चार भागों म बाटा जा सकता है —

(१) आर्थिक उद्देश्य,
(२) सामाजिक उद्देश्य,
(३) राजनैतिक उद्देश्य,
(४) अन्य उद्देश्य ।

१ आर्थिक उद्देश्य (Economic Objectives)

आर्थिक नियोजन म सबसे अधिक महत्व आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त है । प्रारम्भ से ही नियोजन का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तियो के रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाने और सम्पन्नता म वृद्धि करने का रहा है । आर्थिक उद्देश्य मे निम्नलिखित उद्देश्य सम्मिलित किये जाते है —

(अ) पिछडे हुए क्षेत्रो का विकास,
(ब) पूर्ण रोजगार,
(स) अधिकतम उत्पादन,
(द) आय की समानता,
(य) अवसर की समानता,
(र) आर्थिक सुरक्षा,
(ल) युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण ।

(अ) पिछडे हुए क्षेत्रों का विकास (Development of backward areas)—आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य पिछडे तथा अविकसित क्षेत्रो का विकास करना होता है, उसी के साथ विकसित क्षेत्रो का और अधिक विकास करना होता है, जिससे कि अर्थ व्यवस्था म सभी क्षेत्रो का पर्याप्त विकास हो सके। अर्थ व्यवस्था म सर्वांगीण विकास के लिए पिछडे क्षेत्रो के विकास को प्रधानता प्राप्त होती है, जिससे कि सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन-स्तर मे समानता आ जाय । अर्द्ध-विकसित देशो मे पिछडे क्षेत्रो के विकास को अधिक महत्व दिया जाता है जैसा कि भारत, चीन तथा अन्य देशो की योजनाओ को देखने से स्पष्ट होता है ।

(ब) पूर्ण रोजगार (Full employment)—अर्द्ध-विकसित देशो मे बेरोजगारी की समस्या एक प्रमुख समस्या होती है, इस समस्या से छुटकारा पाने के

लिए तथा सभी प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाओं के विकास के लिए पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करना आवश्यक है। प्रो कीन्स का कथन कि "विकास के लिए पूर्ण रोजगार का होना अत्यन्त आवश्यक है", पूर्णत सत्य है। अत प्रत्येक नियोजित अर्थ व्यवस्था का उद्देश्य पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने के लिए अथक प्रयत्न करना होता है। बिना पूर्ण रोजगार प्राप्त किये अधिकतम उत्पादन तथा आर्थिक समानता के उद्देश्य को प्राप्त करना भी सम्भव नही है।

(स) **अधिकतम उत्पादन** (Maximun production)—प्रत्येक नियोजित अर्थ-व्यवस्था का प्रधान व विशिष्ट उद्देश्य अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना होता है। किसी भी देश के व्यक्तियो के कल्याण म वृद्धि उसी स्थिति म सम्भव है जबकि उत्पादन अधिक मात्रा मे हो। उत्पादन मे वृद्धि करने के लिए अनेक उपाय किये जाते हैं जिनमे से प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं —

(अ) मानव शक्ति एव राष्ट्रीय साधनो का उपयोग उचित प्रकार से किया जाय।

(ब) उत्पत्ति के साधनो का विवेकपूर्ण तथा वैज्ञानिक ढग से पुनर्वितरण।

(स) नवीनतम तकनीकी ज्ञान, कुशल श्रम तथा योग्य साहसिया का प्रयोग करके उत्पादन म वृद्धि करना।

(द) एकाधिकारी प्रतियोगिता को समाप्त करना तथा अनावश्यक प्रतियोगिता पर नियन्त्रण लगाना।

(इ) श्रमिको व मालिको मे सघर्ष को कम करना तथा पारस्परिक सहयोग म वृद्धि करना।

(फ) बचतो को प्रोत्साहित कर अधिक मात्रा म पू जी विनोयोग करना तथा आर्थिक स्थिरता बनाये रखना।

इन विभिन्न उपाया के द्वारा उत्पादन म वृद्धि की जाती है, जिससे कि व्यक्तिया की आय म वृद्धि हो और रहन सहन का स्तर ऊँचा हो सके।

(द) **आय की समानता** (Equality of income)—आधुनिक विश्व म प्रत्येक देश की सरकार का उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों की आय की असमानता को कम करना हो गया है। नियोजित अर्थ व्यवस्था म इसका महत्व और अधिक बढ जाता है। अधिकतम सामाजिक कल्याण तभी सम्भव है जबकि

आय की असमानतायें कम हो, अत आधुनिक सरकार अनेक प्रकार के उपायों द्वारा वितरण की असमानता को कम करने का प्रयत्न करती है। व्यवहार मे पूर्ण समानता स्थापित होना सम्भव नहीं है इसलिए कार्य के अनुसार आय-वितरण को समान बनाने का प्रयास किया जाता है। आय-वितरण की असमानता को कम करने के लिए सरकार की नीति—श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी निर्धारण, मूल्य नियन्त्रण, राशनिंग व्यवस्था, अधिकतम सम्पत्ति की सीमा निर्धारण आदि उपाय करती है।

(द) **अवसर की समानता** (Equality of opportunity)—अवसर की समानता स्थापित करना नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अवसर की समानता का अर्थ देश के समस्त नागरिको को आय करने, विकास करने और जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करना है। अवसर की समानता न होने के कारण समाज का एक वर्ग अधिक आय प्राप्त करता है जबकि दूसरा वर्ग कम, इससे समाज दो वर्गों मे विभक्त हो जाता है अत सभी व्यक्तियो को शिक्षण, प्रशिक्षण व विकास के समान अवसर प्रदान कर असमानता को कम करना होता है।

(र) **आर्थिक सुरक्षा** (Economic security)—आर्थिक सुरक्षा से अभिप्राय उत्पादन कार्य म लगे सभी साधनो को उचित पारश्रमिक देना तथा ऐसी व्यवस्था करना होता है जिससे कि एक साधन द्वारा दूसरे साधनो का शोषण न हो सके। नियोजन द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था की जाती है कि साधनो का शोषण न हो सके। इसके द्वारा श्रमिको को उचित मजदूरी, साहसियो के लिए उचित लाभ, पूंजीपतियो के लिए उचित ब्याज व भूमिपति के लिए उचित लगान दिलाने के लिए नीतियां निर्धारित की जाती है।

(ल) **युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण** (Post war reconstruction)—युद्ध से अर्थ व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है, यातायात व सचार के साधनो, उद्योग-धन्धो आदि को अपार क्षति होती है। युद्ध की समाप्ति के बाद अर्थ व्यवस्था के पुनर्निर्माण की आवश्यकता होती है। प्राय सभी देशो द्वारा पुनर्निर्माण कार्य नियोजन के माध्यम से ही किए जाये है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप के अधिकाश देशो ने अर्थ-व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए नियोजन का ही सहारा लिया। आज युद्ध से प्रभावित सभी देश अपने नागरिको के जीवन को सुधारने के लिये उद्योग-धन्धो की पुनर्स्थापना के लिए तथा अपने साधनों को विकसित करने के लिए नियोजन का ही माध्यम अपनाते हैं।

२ **सामाजिक उद्देश्य** (Social Objectives)

आर्थिक उद्देश्यों के साथ साथ नियोजन के अन्तर्गत सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति का भी लक्ष्य रखा जाता है। सामाजिक उद्देश्य से अभिप्राय 'अधिकतम जनता का अधिकतम कल्याण' से होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति नियोजन द्वारा ही सम्भव है। सामान्यत सामाजिक उद्देश्यों म दो तत्व सम्मिलित किये जाते हैं

(अ सामाजिक सुरक्षा,

(ब) सामाजिक समानता।

(अ) **सामाजिक सुरक्षा** (Social security)—सामाजिक सुरक्षा से तात्पर्य जन समूह के लिए ऐसी सुविधाओं की उपलब्धि से होता है जिससे कि जनता आकस्मिक विपत्तियों से सुरक्षित रह सके। आकस्मिक विपत्तियों म बीमारी, बेकारी, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि को रखा जाता है। इन विपत्तियों से सुरक्षा, प्रदान करना सामाजिक उद्देश्यों के अन्तगत आता है। सामाजिक सुरक्षा सामाजिक बीमा (social insurance) तथा सामाजिक सहायता (social assistance) के द्वारा प्रदान की जाती है। समाजवादी देश रूस क अतिरिक्त अन्य विकसित देशों—अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि मे इस उद्देश्य को आजकल प्रधानता प्राप्त है। अर्द्ध-विकसित देशा मे पूजी के अभाव के कारण अभी इस उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है, यद्यपि सभी देश इस ओर प्रयत्नशील हैं तथा अपने नागरिकों को अधिक-से-अधिक सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना चाहते हैं।

(ब) **सामाजिक समानता** (Social equality)—सामाजिक उद्देश्य के अन्तगत सामाजिक सुरक्षा के साथ-साथ सामाजिक समानता को भी महत्व प्रदान किया जाता है। सामाजिक समानता के अन्तर्गत समाज के सभी वर्गों को उचित आदर, सम्मान व स्थान दिलाया जाता है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार समाज के सर्वांगीण विकास के लिये सामाजिक समानता आवश्यक है। समाजवादी देशों म इस प्रकार की समस्या ही नहीं रहती है, जबकि पूजीवादी देशों म इस उद्देश्य की प्राप्ति क लिये प्रयत्न किये जाते हैं। भारत म इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पचवर्षीय योजनाओं म महत्व प्रदान किया गया है।

३ **राजनैतिक उद्देश्य** (Political Objectives)

आर्थिक नियोजन के विकास क प्रारम्भिक अवस्था मे बहुत-से देशों ने योजनायें राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनायी थी। रूस की प्रथम योजना तथा जर्मनी म नाजियों

की नियोजित अर्थ-व्यवस्था की शुरुआत राजनैतिक उद्देश्यों को लेकर हुई थी। आज भी अनेक देशों द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु योजनायें बनायी जाती हैं। राजनैतिक उद्देश्य प्रमुख रूप से दो है —

(१) सुरक्षा,

(२) शान्ति।

(१) सुरक्षा (Security)—किसी भी देश के सामने देश की सुरक्षा करना प्रथम उद्देश्य होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व रूस, जर्मनी आदि देशों की योजनायें सुरक्षा-प्रधान योजनायें थी। रूस की तृतीय योजना में सुरक्षा को और अधिक महत्व प्रदान किया गया। आज अधिकांश देश अपनी योजनाओं में सुरक्षा को प्राथमिकता प्रदान करते है। भारत में १९६२ में चीनी आक्रमण तथा १९६५ और १९७१ के पाकिस्तानी आक्रमणों से पंचवर्षीय योजनाओं में सुरक्षा को पर्याप्त महत्व दिया गया है, जिससे कि राष्ट्र को विदेशी आक्रमणकारी शक्तियों से सुरक्षित रखा जा सके।

(२) शान्ति (Piece,—सामाजिक सुरक्षा के अतिरिक्त नियोजन में आंतरिक शांति को बनाये रखने को भी महत्व दिया जाता है। देश के विकास के लिये आन्तरिक शान्ति रहना परमावश्यक है, इसलिए आजकल 'शान्ति के लिए नियोजन' (Planning for piece) को महत्व दिया जाता है। शान्ति के महत्व में वृद्धि के कारण ही रूस, अमेरिका, भारत आदि देश विश्वशांति के लिए प्रयत्नशील हैं।

कुछ लोग आक्रमण को भी नियोजन के अन्तर्गत सम्मिलित करते है, परन्तु आज के युग में इसका महत्व नहीं है। इसका कारण यह कि अब साम्राज्यवाद का युग समाप्त हो चुका है, विश्व में पहले से अधिक जाग्रति है अतः शान्ति के लिए अधिक प्रयत्न किए जाते हैं।

४. अन्य उद्देश्य (Other Objectives):

उपर्युक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त नियोजन के अन्य अनेक उद्देश्य होते है, ये उद्देश्य उस देश की स्थिति, वातावरण व साधनों से विशेष रूप से सम्बन्धित होते है। इन उद्देश्यों में प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :—

(१) जिन देशों में अधिक जनसंख्या है वे जनसंख्या की वृद्धि की दर को कम करने के लिए तथा जिन देशों में कम जनसंख्या है वे जनसंख्या वृद्धि के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाते हैं।

(२) देश के स्वयं के साधनों का विकास करके आत्मनिर्भर एवं शक्तिशाली बनने के लिए नियोजन अपनाया जाता है।

(३) देश के सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर को विकसित करने व आधुनिक बनाने के लिए नियोजन को अपनाया जाता है।

(४) देश में उपलब्ध साधनों के दूरदर्शी उपयोग व उनके सतुलित विकास के लिए नियोजन अपनाया जाता है।

(५) देश के नागरिकों की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन करने तथा भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप राष्ट्र का विकास करने के लिये नियोजन अपनाया जाता है।

इस प्रकार आर्थिक नियोजन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य अनेक उद्देश्य होते हैं। प्रत्येक देश अपनी शक्ति व साधनों के अनुरूप उनको प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करता है, जिससे कि उनके नागरिकों के कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो सके।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ आर्थिक नियोजन से क्या अभिप्राय है? आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को समझाइये।

२ आर्थिक नियोजन में आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों की व्याख्या कीजिये।

३ *आर्थिक नियोजन का उद्देश्य मात्र आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति न होकर सामाजिक व राजनैतिक उद्देश्यों को भी प्राप्त करना है।*

४ *आर्थिक नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।*

———

अध्याय १३

★

आर्थिक नियोजन के प्रकार एवं तकनीक

[Types and Techniques of Economic Planning]

★ ★ ★ ★

आज का युग नियोजन का युग है। प्रत्येक देश अपना आर्थिक विकास करने तथा उपलब्ध साधनों के अनुकूलतम प्रयोग के लिए नियोजन को अपनाता है। अर्थ-व्यवस्थाओं की भिन्नता तथा आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि में अन्तर होने के कारण विभिन्न देशों ने नियोजन के विभिन्न स्वरूपों को अपनाया है। रॉबिन्स ने कहा है कि 'आज समस्या इस बात की नहीं है कि नियोजन हो या न हो, बल्कि नियोजन के विभिन्न रूपों के सम्बन्ध में है'।[1] वास्तविकता यह है कि प्रत्येक देश ने अपनी परिस्थिति व आवश्यकतानुसार नियोजन को अपना लिया है जिससे इसके रूप बहुत से हो गये हैं।

वर्तमान समय में आर्थिक नियोजन के वर्गीकरण का कोई सर्वमान्य व वैज्ञानिक आधार नहीं है। किस अर्थ-व्यवस्था के लिए कौन-सा प्रकार सर्वोत्तम होगा, इस सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है, इसका कारण है यह है कि प्रत्येक देश ने नियोजन का चुनाव अपनी सुविधानुसार तथा अपनी आवश्यकतानुसार किया है। इस प्रकार सर्वमान्य वर्गीकरण के अभाव में अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण को ले रहे हैं।

डॉ तेला, प्रो मेहता एवं जैन ने आर्थिक नियोजन को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है :—

---

1 "The issue is not between a plan and no plan, it is between different kinds of plans" —L. Robbins

१ आर्थिक कार्य क्षेत्र के अनुसार —आर्थिक कार्य क्षेत्र के अनुसार नियोजन चार प्रकार का होता है—

(अ) सामान्य एव आशिक नियोजन,
(ब) क्रियात्मक एव सरचनात्मक नियोजन,
(स) सुधारवादी एव विकासवादी नियोजन,
(द) क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एव अन्तराष्ट्रीय नियोजन।

२ आर्थिक सगठन की प्रकृति के अनुसार (According to nature of economic organisation)—आर्थिक सगठन की प्रकृति के आधार पर भी नियोजन को चार भागो म बाटा है—

(अ) पूजीवादी नियोजन,
(ब) समाजवादी नियोजन
(स) प्रजातन्त्रीय नियोजन,
(द) *सर्वोदयी या गाधीवादी नियोजन।*

३ आर्थिक निर्णयों के सचालन के अनुसार (According to implementation of economic dicisions)—इसके अन्तर्गत नियोजन को तीन भागो म बाटा है—

(अ) आज्ञामूलक एव प्रोत्साहन मूलक नियोजन,
(ब) केन्द्रित एव विकेन्द्रित नियोजन,
(स) 'ऊपर' स नियोजन एव 'नीचे' से नियोजन।

४ कार्यक्रमों को निर्धारित करने के अनुसार—कार्यक्रमो को निर्धारित करने के अनुसार नियोजन को एक वर्ग म बाटा है

भौतिक एव वित्तीय नियोजन।

५ नियोजन काल की अवधि के अनुसार (According to planning period)—इस आधार पर नियोजन को दो भागो म बाटा है—

(अ) अल्पकालीन एव दीर्घकालीन नियोजन,
(ब) स्थायी एव आपतकालीन नियोजन।

उपयुक्त वर्गीकरण सर्वमान्य वर्गीकरण नही है केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि स ही लिया गया है। विभिन्न विद्वानो और अर्थशास्त्रियो ने वर्गीकरण के अनेक आधार

दिय है। नियोजन के उपर्युक्त विभिन्न प्रकारो (types) का अब अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

१ आर्थिक कार्य क्षेत्र के अनुसार

(अ) **सामान्य एव आशिक नियोजन** (General and partial planning)—सामान्य नियोजन सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिए अपनाये गये नियोजन को कहते है जबकि आशिक नियोजन किसी क्षेत्र या समस्या विशेष के लिये किया जाता है। दूसरे शब्दो मे, अर्थ-व्यवस्था के सभी क्षेत्रो और अगो के विकास के लिए किया जाने वाला नियोजन सामान्य नियोजन है तथा विशिष्ट क्षेत्र के विकास के लिए किया जाने वाला नियोजन आशिक नियोजन कहा जाता है। प्रो लेविस (Lewis) ने आशिक नियोजन को खण्डित नियोजन (piece-meal planning) कहा है। अधिकाश अर्थशास्त्री आशिक नियोजन को 'अधूरा' मानते है तथा देश म विकास के लिए इसे पर्याप्त नही मानते।

प्रो रॉबिन्स (L Robbins) के शब्दो मे—"आशिक नियोजन की स्थिति, नियोजन के अभाव की स्थिति से भी खराब होती है।"[2]

अत सामान्य नियोजन को ही वास्तविक नियोजन मानते हैं।

व्यवहार म सामान्य नियोजन रूस, चीन, भारत आदि देशो ने अपनाया है, जबकि आशिक नियोजन अमेरिका (न्यू डील पालिसी), जर्मनी आदि ने अपनाया।

(ब) **क्रियात्मक एव सरचनात्मक नियोजन** (Functional and structural planning)—क्रियात्मक नियोजन वह नियोजन है जिसम प्रचलित अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत ही विकास कार्यक्रम तैयार किये जाते है। सरचनात्मक नियोजन म अर्थ व्यवस्था मे आधारभूत परिवर्तन करके नये विकास कायक्रम बनाये जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, क्रियात्मक नियोजन म अर्थ व्यवस्था को सरचना मे कोई परिवर्तन नही किया जाता जबकि सरचनात्मक नियोजन म अर्थ-व्यवस्था की सरचना म परिवर्तन किया जाता है।

क्रियात्मक नियोजन के सम्बन्ध म डा ज्विग (Dr Zweig) का विचार है—*क्रियात्मक नियोजन केवल सुधार ला सकता है एक नया रूप नहीं दे सकता,*

2 "Where there is a partial planning, the position is warse than it would be with no planning at all" —L Robbins

यह केवल विद्यमान अर्थ-व्यवस्था को सुधार सकता है न कि उसे आगे बढा सकता है।"[3]

किसी भी देश के सम्पूर्ण आर्थिक विकास के लिए सरचनात्मक नियोजन आवश्यक है। भारत द्वारा इसी को अपनाया गया है। पूजीवादी देशो म कही-कही क्रियात्मक नियोजन को अपनाया गया है। अथशास्त्रियो का विचार है कि एक सीमा के बाद क्रियात्मक और सरचनात्मक नियोजन का अन्तर समाप्त हो जाता है। यह प्राय उस अवस्था मे होता है जबकि एक देश विकास मे उच्च स्तर को प्राप्त कर लेता है, जैसे—रूस म वर्तमान मे इन दोनो रूपो म अ तर नही किया जाता।

(स) **सुधारवादी एव विकासवादी नियोजन**—(Corrective planning and developmental planning)—सुधारवादी नियोजन विकसित पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था म अपनाया जाता है जबकि विकासवादी नियोजन उन देशो म जहा पर प्रति व्यक्ति आय कम है। सुधारवादी नियोजन अस्थायी प्रवृति का होता है, इसका प्रयोग किसी समस्या विशेष से छुटकारा पाने के लिए या अर्थ-व्यवस्था के दोष को दूर करने के लिए किया जाता है, इसलिए हिगीन्स (Higgins) ने इसे 'बाधा निवारक नियोजन' (trouble shooting planning) कहा है। विकासवादी नियोजन अर्द्ध-विकसित अथ-व्यवस्थाओ म अपनाया जाता है जहा पर प्रत्येक क्षेत्र के विकास की तीव्र आवश्यकता महसूस की जाती है।

(द) **क्षेत्रीय राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन** (Regional national & international planning)—क्षेत्रीय नियोजन से अभिप्राय उस नियोजन से है 'जो कि किसी क्षेत्र विशेष की विशिष्ट आवश्यक्ताओ को पूरा करने के लिए एक राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत किया जाता है।' कभी कभी क्षेत्रीय नियोजन से अभिप्राय एक क्षत्र के लिए पूर्णत स्वतत्र आर्थिक नियोजन से होता है।

राष्ट्रीय नियोजन से अभिप्राय सम्पूर्ण देश के समस्त क्षेत्रों के विकास से होता है। सामान्यत नियोजन से अभिप्राय राष्ट्रीय नियोजन से होता है। इसके अन्तर्गत उपलब्ध साधनो का अनुकूलतम उपयोग करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना होता है।

---

3 "Functional planning will only repair not build a new, it will improve the work of the existing order, but not supercede it"
—Dr Zweig

अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन से अभिप्राय उस नियोजन से है जिसमें एक से अधिक राष्ट्रों की सम्पत्ति व साधनों को सम्मिलित सम्पत्ति व साधन मानकर उनके विकास की योजनायें बनायी जाती हैं। इस प्रकार नियोजन का क्षेत्र एक राष्ट्र से बढ़कर अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। परन्तु इसका केवल सैद्धान्तिक महत्व ही है, व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन सम्भव नहीं है।

२ आर्थिक संगठन की प्रकृति के अनुसार

(अ) पूंजीवादी नियोजन (Capitalist planning)—पूंजीवादी नियोजन वह है जो कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत किया जाता है। पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था जो कि आर्थिक स्वतन्त्रता, अहस्तक्षेप की नीति तथा स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित होती है, और आर्थिक नियोजन को परस्पर एक-दूसरे का विरोधी माना जाता है। इसका कारण यह है कि नियोजन में हस्तक्षेप व नियन्त्रण आवश्यक है जबकि पूंजीवाद में इनको कोई स्थान प्राप्त नहीं होता। परन्तु अनुभव इस बात को सिद्ध करता है कि पूंजीवाद व नियोजन का सह-अस्तित्व सम्भव है। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में नियोजन क्रियात्मक (functional) तथा सुधारवादी (corrective) ही होता है। जैसे—अमेरिका द्वारा १९३० व १९४६ में मन्दी निवारक नियोजन तथा बेरोजगारी निवारक नियोजन अपनाया गया। इंगलैंड द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना (१९६५-७०) की घोषणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूंजीवाद व नियोजन साथ-साथ चल सकते हैं। नियोजन द्वारा सर्वांगीण विकास के लिये अर्थ-व्यवस्था में कुछ परिवर्तन होना आवश्यक है।

(ब) समाजवादी नियोजन (Socialist planning)—समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन के महत्वपूर्ण साधनों पर सरकार का नियन्त्रण होता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र का पर्याप्त विस्तार होता है। उपभोक्ताओं की स्वतन्त्रता सीमित कर दी जाती है और निजी क्षेत्र का महत्व काफी कम हो जाता है। इस अवस्था में नियोजन जनता के अधिकतम कल्याण के लिए किया जाता है तथा आर्थिक गतिविधियों का संचालन सरकारी नियन्त्रण में होता है।

साम्यवादी नियोजन (Communist planning)- साम्यवादी नियोजन समाजवादी नियोजन का कठोर रूप है। इसके अन्तर्गत उत्पादन के सभी साधन सरकारी नियन्त्रण में होते हैं तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया जाता है। व्यक्तियों को निजी सम्पत्ति रखने की छूट नहीं होती है। इस प्रकार समस्त आर्थिक क्रियाओं पर नियन्त्रण सरकार द्वारा होता है, साथ ही सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन भी नियमित व निर्देशित होता है। रूस साम्यवादी नियोजन का

श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इसम समस्त साधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि देश का विकास शीघ्र हो सके और व्यक्तियो का जीवन स्तर ऊचा उठ सके।

डिकिन्सन सम्यवादी नियोजन को श्रेष्ठ मानत हैं क्योंकि उनके अनुसार इसमें साधनों पर समाज का एकाधिकार हो जाता है और इन साधनों को निश्चित उद्देश्यो की पूर्ति हेतु प्रयोग म लाया जाता है।

पीगू के शब्दो मे—"यदि समाजवादी नियोजन पद्धति का सगठन प्रभावपूर्ण है तो यह वर्तमान प्रणाली से कई अर्थों म अधिक पसन्द की जायेगी।"[४]

(स) **प्रजातन्त्रीय नियोजन (Democratic planning)**—पूजीवादी व समाजवादी नियोजन का मिश्रित रूप प्रजातन्त्रीय नियोजन है। प्रजातन्त्रीय नियोजन प्राय मिश्रित अर्थ-व्यवस्था वाले देशो म अपनाया जाता है। इसम व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण नही लगाये जाते और न ही दबाव का प्रयोग होता है। सरकार या केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण उद्योग-धन्धों और व्यवसायों को सरकार अपने नियन्त्रण म ले लेती है। निजी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के साथ सहयोग करता है।

प्रजातन्त्रीय नियोजन मे नियोजन के उद्देश्य, लक्ष्यो आदि का निर्धारण ऊपर से न किया जाकर जनता की राय से व जनता द्वारा किया जाता है। उद्देश्यो की पूर्ति के लिए पूर्णत प्रजातन्त्रीय तरीको का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोगो का विचार है कि प्रजातन्त्र म नियोजन सम्भव नहीं है, परन्तु यह विचार उचित प्रतीत नही होता। आज विश्व के अधिकाश मिश्रित अर्थ व्यवस्था वाले देश जो कि प्रजातन्त्र पर आस्था रखते हैं, आर्थिक नियोजन को अपनाये हुए हैं, और अपने देश का विकास नियोजन के माध्यम से ही कर रहे हैं। यहा श्री गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal) का कथन उल्लेखनीय है, उन्ही के शब्दो म—

"मैंने इतिहास म ऐसा कोई उदाहरण नही देखा है जहा पर अत्यधिक नियोजन और राज्य हस्तक्षेप के द्वारा प्रजातन्त्र नष्ट हुआ हो लेकिन इसके विपरीत अनेक उदाहरण है।"[५]

---

4 'The system of socialist control planning, if it could be effectively organised, would in many respects be preferable to our existing system" —*Prof* Pigou

5 "I find no example in history where democracy has been lost because of too much planning and State intervention, but plenty of examples of the contrary" —Gunnar Myrdal

(द) **सर्वोदयी या गांधीवादी नियोजन** (Servodaya or Gandhian planning)— सर्वोदयी या गांधीवादी नियोजन भारत की देन है। गांधीवादी विचारों पर आधारित नियोजन को गांधीवादी या सर्वोदयी नियोजन कहते हैं। यह नियोजन आर्थिक तथा आध्यात्मिक दर्शन पर आधारित है। आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण, धन का समान वितरण, वर्गहीन समाज, राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि, आत्मनिर्भरता इस नियोजन के प्रमुख उद्देश्य हैं। इस उद्देश्यों को सत्य, अहिंसा, श्रम की महत्ता, सहयोग आदि सिद्धांतों के आधार पर प्राप्त किया जाता है। सर्वोदयी नियोजन में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक महत्व दिया जाता है, जिससे प्रत्येक ग्राम आत्मनिर्भर हो और देश का सन्तुलित विकास हो सके।

३ **आर्थिक निर्णयों के संचालन के अनुसार**

(अ) **आज्ञामूलक एवं प्रोत्साहन मूलक नियोजन** (Planning by direction and planning by inducement)—प्रो लेविस के अनुसार नियोजन दो प्रकार से हो सकता है—आज्ञामूलक नियोजन तथा प्रोत्साहनमूलक नियोजन। आज्ञामूलक नियोजन में सरकार प्रत्यक्ष रूप से नियोजन का कार्यान्वयन करती है जबकि प्रोत्साहनमूलक नियोजन में सरकार अप्रत्यक्ष रूप से नियोजन के उद्देश्यों को पूरती है।

आज्ञामूलक नियोजन को 'निर्देशन द्वारा नियोजन (planning by direction) भी कहते हैं। इसमें केन्द्रीय नियोजन सत्ता (central planning authority) द्वारा लक्ष्य व उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं, जिनकी पूर्ति के लिए आदेश प्रसारित किये जाते हैं। इस प्रकार के नियोजन में व्यक्तियों की स्वतन्त्र इच्छा समाप्त हो जाती है। व्यवसाय का चुनाव, साधनों का वितरण आदि केन्द्रीय सत्ता द्वारा ही निर्धारित होता है। किस वस्तु का कितना उत्पादन होगा और उसका वितरण किस प्रकार होगा, यह नियोजन सत्ता पर ही निर्भर करता है। वास्तव में इस प्रकार के नियोजन में आदेश प्रसारित कर दिये जाते हैं, तथा लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की पूर्ति बलपूर्वक (by force) कराई जाती है।

प्रोत्साहनमूलक नियोजन सहयोग, प्रोत्साहन एवं प्रलोभन पर आधारित होता है। इसमें भी उद्देश्य एवं लक्ष्य केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा निर्धारित होते हैं, परन्तु इनकी पूर्ति हेतु आदेश या बल का प्रयोग नहीं होता। प्रोत्साहन एवं प्रलोभन द्वारा जनता या साहसियों को उस दिशा में कार्य करने को प्रेरित किया जाता है। इसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन नहीं होता। सत्ता उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मौद्रिक व प्रशुल्क नीतियों तथा अन्य क्रियाओं का सहारा लेती है। इसमें बाजार

व्यवस्था को प्राय स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने दिया जाता है। सामान्यत आज्ञामूलक नियोजन साम्यवादी देशो मे अपनाया जाता है तथा प्रोत्साहनमूलक नियोजन पूजीवादी व मिश्रित अर्थ व्यवस्था वाले देशो मे।

आज्ञामूलक नियोजन की विशेषतायें

आज्ञामूलक नियोजन की प्रमुख विशेषताये निम्नलिखित है :—

(क) नियोजन का कार्य जनता की स्वतन्त्र इच्छा पर नही छोडा जाता बल्कि आदेशो द्वारा लक्ष्यो की पूर्ति हेतु कार्य कराया जाता है।

(ख) केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा कार्य कराया जाता है।

(ग) प्रारम्भ म नियोजन की रूपरेखा तैयार करते समय जनता की राय प्राप्त की जाती है, परन्तु क्रियान्वयन म जनता की उपेक्षा की जाती है।

(घ) इसमे विकास की गति अधिक तज रहती है।

(ङ) यह साम्यवादी व समाजवादी देशो द्वारा अपनाया जाता है।

आज्ञामूलक नियोजन के दोष

प्रो लेविस के अनुसार इसम निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं जिसके कारण इसकी सफलता पर सन्देह होता है —

(क) आज्ञामूलक नियोजन के अन्तर्गत यथार्थ व पूर्णत ठीक निर्णयो का लिया जाना आवश्यक है। परन्तु व्यवहार म इस प्रकार के निर्णय करना अत्यन्त कठिन है।

(ख) इस नियोजन म पुनर्विचार व सशोधन का अभाव पाया जाता है, जिससे लोचहीन हो जाता है।

(ग) आज्ञामूलक नियोजन का क्रियान्वयन केन्द्रीय सत्ता द्वारा नियुक्त बडी सख्या म अधिकारियो और कर्मचारियो द्वारा किया जाता है। अतएव नौकरशाही का बोलबाला होता है और यह व्यवस्था महगी पडती है।

(घ) इस नियोजन म व्यक्ति की उपभोग की स्वतत्रता समाप्त हो जाती है तथा व्यवसाय के चुनाव आदि की स्वतत्रता भी नियन्त्रित होती है। इसम तानाशाही प्रवृत्ति के कारण सफलता की कम सम्भावना रहती है।

(ङ) आज्ञामूलक नियोजन म विकास की गति हमेशा तेज नही होती। यह सम्भव है कि कठोर नियन्त्रण क परिणामस्वरूप विकास की गति प्रोत्साहनमूलक नियोजन की अपेक्षा धीमी हो।

प्रोत्साहनमूलक नियोजन की विशेषतायें :

प्रोत्साहनमूलक नियोजन की विशेषतायें निम्नलिखित है —

(क) इसमे केन्द्रीय सत्ता उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित कर दिये जाते हैं तथा उनकी पूर्ति हेतु अप्रत्यक्ष तरीकों का प्रयोग किया जाता है।

(ख) इस नियोजन मे नियन्त्रण लगाये जाते है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन नही होता।

(ग) उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु जनसहयोग प्राप्त किया जाता है तथा यह सहयोग प्रलोभन तथा प्रोत्साहन के आधार पर लिया जाता है।

(घ) प्रोत्साहनमूलक नियोजन पूंजीवादी व मिश्रित अर्थ-व्यवस्था वाले देशो मे अपनाया जाता है। साम्यवादी देशो मे जहा पर कठोर नियन्त्रण रहता है, वहा यह सम्भव नही है।

प्रोत्साहन मूलक नियोजन के दोष

प्रोत्साहन मूलक नियोजन मे अनेक दोष पाये जाते है, जिनमे प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं :

(क) प्रोत्साहन मूलक नियोजन मे प्राय माग व पूर्ति के मध्य ठीक सन्तुलन स्थापित नही हो पाता जिससे कम या अधिक उत्पादन की समस्या रहती है।

(ख) इसके साधनो में कम गतिशीलता की समस्या पाई जाती है। यह समस्या भावनात्मक, भौतिक एव भौगोलिक कठिनाइयो के कारण रहती है, जिसे प्रोत्साहन के द्वारा हल किया जा सकता है।

(ग) जनता पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण के अभाव मे सफलता की सम्भावना कम रहती है।

दोनों मे कौन-सी प्रणाली श्रेष्ठ है?

आज्ञामूलक नियोजन श्रेष्ठ है या प्रोत्साहनमूलक नियोजन, इस सम्बन्ध मे निश्चित मत नही दिया जा सकता। साम्यवादी देश आज्ञामूलक को अपनाते है और श्रेष्ठ मानते है जबकि पूंजीवादी प्रोत्साहनमूलक को श्रेष्ठ समझते हैं। वास्तविकता यह है कि दानो की अपनी-अपनी विशेषतायें है, दोनो म कुछ गुण हैं तथा कुछ दोष। प्रजातन्त्रीय व्यवस्था म प्रोत्साहनमूलक नियोजन श्रेष्ठ होगा क्योकि इसमे व्यक्ति की उपभोग व उत्पादन की स्वतन्त्रता बनी रहती है। इसम अधिक दबाव नही होते व्यक्ति अपनी इच्छानुसार व्यवसाय

का चुनाव कर सकता है। उपभोक्ता की स्वतन्त्रता की रक्षा तथा चुनाव की स्वतन्त्रता के कारण प्रोत्साहनमूलक प्रणाली को श्रेष्ठ माना जाता है।

वास्तव मे कोई भी देश न तो पूर्ण आज्ञामूलक नियोजन को अपना सकता है और न ही पूर्ण प्रोत्साहनमूलक नियोजन को। वांछित उद्देश्यो की प्राप्ति और पर्याप्त सफलता के लिए दोनो का समिश्रण आवश्यक है। प्रोत्साहनमूलक नियोजन आंशिक नियोजन है जबकि आज्ञामूलक कठोर नियन्त्रण, अत व्यवहार मे आवश्यकतानुसार इन दोनो का प्रयोग होना चाहिए भारत मे प्रथम पचवर्षीय योजना प्रोत्साहन मूलक थी, लेकिन द्वितीय योजना से सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ आज्ञामूलक नियोजन का प्रारम्भ हुआ। आज का नियोजन दोनो का सम्मिलित रूप है।

केन्द्रित नियोजन एव विकेन्द्रित नियोजन (Centralised planning and decentralised planning)—केन्द्रीय नियोजन से अभिप्राय उस नियोजन से है जिसम मुख्य निर्णय केन्द्रीय सत्ता द्वारा लिये जाते हैं। विकेन्द्रित नियोजन मे कुछ निर्णय केन्द्रीय सत्ता द्वारा लिए जाते हैं तथा शेष निर्णय सरकार व निजी व्यक्तियों द्वारा लिए जाते हैं। केन्द्रित नियोजन उन देशो म अपनाया जाता है जहा उत्पत्ति के साधनो पर सरकार का नियत्रण रहता है, जबकि विकेन्द्रित नियोजन प्रजातत्रीय देशो म जहा मिश्रित अर्थ-व्यवस्था पायी जाती है, अपनाया जाता है। मॉरिस डाब विकेन्द्रित नियोजन को नियोजन का शुद्ध स्वरूप नहीं मानत हैं। वर्तमान युग म शुद्ध केन्द्रित या विकेन्द्रित नियोजन का पाया जाना कठिन है। आज अधिकाश देश अपनी अर्थ-व्यवस्थानुसार केन्द्रित व विकेन्द्रित नियोजन को स्वीकार करत हैं।

(स) **ऊपर' से नियोजन एव 'नीचे' से नियोजन** (Planning from abore and planning from below)—'ऊपर' के नियोजन से अभिप्राय उस नियोजन से है जो कि सगठित और अर्द्ध-सगठित आर्थिक क्षेत्रों को और अधिक विकसित करने के लिये किया जाता है। 'नीचे' से नियोजन स अभिप्राय उस नियोजन है जो कि पिछडे क्षेत्रो के विकास के लिए किया जाता है। ऊपर से नियोजन म सम्पन्न वर्ग को अधिक लाभ प्राप्त होते हैं, जबकि नीचे से नियोजन म निर्धन वग को अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। नीचे से नियोजन वास्तव म विकेन्द्रित नियोजन होता है। 'नीचे स नियोजन' 'ऊपर से नियोजन' की अपेक्षा श्रेष्ठ समझा जाना है, क्योंकि ऊपर से नियोजन इस प्रकार से होता है कि "The first will get first and the last will get or not, it is always uncertain" जबकि नीचे से नियोजन म "The last will get first" का सिद्धात स्वीकार किया जाता है।

भारत म चार पचवर्षीय योजनाओ के पश्चात् भी सामान्य आदमी को स्थिति अच्छी नही हुई है, इसलिए कुछ विद्वानो व अर्थशास्त्रियों का विचार है कि भारत म 'नीचे से नियोजन' के सिद्धान्त म स्वीकार किया जाना चाहिये । महात्मा गाधी का विचार भी इसी प्रकार का रहा है।

४ कार्यक्रमो को निर्धारित करने के अनुसार

भौतिक नियोजन एव वित्तीय नियोजन (Physical planning and financial planning)—जब नियोजन करते समय नियोजन अधिकारी भौतिक साधनो को ध्यान मे रखता है तो उसे भौतिक नियोजन कहते हैं, तथा जब वित्तीय साधनो को ध्यान म रखता है तो उसे वित्तीय नियोजन कहते है। भौतिक नियोजन मे देश के भौतिक साधन सम्बन्धी आवश्यकताओ तथा उपलब्धियो के अध्ययन के आधार पर नियोजन कायक्रम निर्धारित होते है। इसमे देश को वित्तीय स्थिति को ध्यान मे न रखकर श्रम, औजार, वस्तुयें और मशीनो को ध्यान मे रखा जाता है।

वित्तीय नियोजन मे वित्तीय साधनो पर अधिक जोर दिया जाता है। इसके अनुसार नियोजन सत्ता को नियोजन की वित्तीय आवश्यकता को देखकर ही व्यवस्था की जाती है। **योजना आयोग के शब्दो मे**

> "वित्तीय नियाजन का सार इस बात मे है कि माग व पूर्ति को इस प्रकार समयोजित किया जाय कि मूल्य ढाचे (price structure) मे बिना किसी बडे तथा अनियोजित परिवर्तन के भौतिक साधनो का पूर्ण उपयोग हो सके।'[६]

आर्थिक विकास तभी सम्भव है जबकि अधिक मात्रा मे वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन किया जाय। केवल मुद्रा को मात्रा मे वृद्धि से विकास होना सम्भव नही है, क्योकि यदि मुद्रा को मात्रा बढ जाय और वस्तुओ का उत्पादन नही बढे तो यह केवल मुद्रा प्रसार को ही जन्म देगा। परन्तु मुद्रा का महत्व यह कि उत्पादन मे सहयोग देने वाले विभिन्न साधनो को इसी के माध्यम से उत्पादन कार्य मे लगाया जा सकता है।

देश के विकास के लिए कुछ विद्वान भौतिक नियोजन पर जोर देते हैं तथा कुछ वित्तीय नियोजन पर। सामान्यत पूजीवादी व्यवस्था मे वित्तीय नियोजन को प्राथमिकता

6 "The essence of finance planning is to ensure that the demand and supplies are matched in a manner which exploits physical potentialities as fully as possible without major and unplanned change in the price structure" —Planning Commission

प्राप्त है जबकि समाजवादी मे भौतिक नियोजन को। भारत मे भी अर्थशास्त्री दो वर्गों म बटे हैं—**प्रो बी आर शिनाय** (Prof B R Shenoy) वित्तीय नियोजन का उचित बताते हैं, जबकि **प्रो पी सी महालनबोस** भौतिक नियोजन को। स्व. पडित नेहरू ने भौतिक नियोजन को अधिक महत्व दिया यद्यपि उन्होने वित्तीय पहलू को नजरअन्दाज नही किया। आज अधिकांश देश वित्तीय व भौतिक दोनो को ही आवश्यक्तानुसार महत्व देते हैं, क्योकि दोनो ही विकास की सही स्थिति का पता लगाने और विकास को गति देने के लिए आवश्यक है। वास्तव मे, भौतिक व वित्तीय नियोजन का विवाद भी निरर्थक है। दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं। अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए दोनो म सतुलन रखना आवश्यक है। **डा बालकृष्णन** (Dr Balkrishnan) का कथन इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है। उन्ही के शब्दो म

> "भौतिक व वित्तीय नियोजन का विवाद आवश्यक है क्योकि दोनों एक-दूसरे के विरोधी नही हैं। भौतिक नियोजन अपने प्रयत्नो म शुद्धता लाने के लिये परमावश्यक है। लेकिन भौतिक नियोजन को गति देने वाला वित्त है। दोनो मे से किसी एक के द्वारा वस्तुएँ ठीक नही की जा सकती जब तक कि दोनो में समन्वय न हो।"[७]

नियोजन काल की अवधि के अनुसार

(**अ**) **अल्पकालीन एव दीर्घ कालीन नियोजन** (Prospective and perspective planning)—प्रो लेविस ने योजना काल के अनुसार तीन प्रकार की योजनायें बताई हैं—अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन। अल्पकालीन नियोजन की अवधि एक वर्ष की होती है, मध्यकालीन नियोजन तीन से सात वर्ष तक तथा दीर्घकालीन नियोजन १० से २० वर्ष तक का होता है। अल्पकालीन योजनायें प्राय तात्कालिक समस्याओ के निवारण हेतु बनाई जाती हैं तथा इनमे कार्यक्रम इस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं कि वे दीर्घकालीन लक्ष्यो की पूर्ति मे सहायक सिद्ध हो सकें। दीर्घकालीन योजनायें व्यापक विकास कार्यक्रमों को ध्यान मे रखकर बनाई जाती हैं। सामान्यत प्रारम्भ मे अधिकाश देश तीन से पाच वर्षीय योजनायें

"The controversy between financial and physical planning is needless as the two are not really contradictory Physic il planning is absolutely essential for giving correctness to effort But finance is the mobilser of physical planning Neither financial nor physical planning by itself can set things going without an integration between them" —Dr Balkrishnan

बनाते हैं, क्योंकि इसमें योजना के आधार पर विकास की प्रगति का सही लेखा-जोखा हो जाता है। इसके अतिरिक्त साधनों की कमी के कारण भी दीर्घकालीन योजनायें बनाना सम्भव नहीं हो पाता।

(व) स्थायी एवं आपत्कालीन नियोजन (Permanent and emergency planning)—स्थायी नियोजन वह नियोजन है जो कि किसी देश के सर्वांगीण विकास को दृष्टि में रखकर किया जाता है यह नियोजन बाद में अर्थ-व्यवस्था का एक अंग बन जाता है। सामान्यतः दीर्घकालीन नियोजन ही स्थायी नियोजन में परिणित हो जाता है।

आपत्कालीन नियोजन अल्पकालीन नियोजन होता है जो कि किसी समस्या विशेष का निराकरण करने के लिये अपनाया जाता है। इस प्रकार के नियोजन प्राय अस्थायी प्रकार के होते हैं। आपत्कालीन नियोजन उन देशों के द्वारा अपनाये जाते हैं जिनका नियोजन पर विश्वास नहीं होता है। स्थायी नियोजन संरचनात्मक नियोजन (structural planning के सिद्धान्त पर आधारित हैं, और आपतकालीन नियोजन सुधारवादी नियोजन (corrective planning) पर आधारित है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ आर्थिक नियोजन की परिभाषा दीजिए तथा इसके विभिन्न प्रकार बताइये।

२ आर्थिक नियोजन के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

३ आज्ञामूलक नियोजन एवं प्रोत्साहन मूलक नियोजन में से आप किसे अच्छा समझते हैं, और क्यों ?

४ आज्ञामूलक नियोजन एवं प्रोत्साहन मूलक नियोजन में क्या अन्तर है ? इन दोनों के गुणों व दोषों की व्याख्या कीजिये।

५ भौतिक नियोजन तथा वित्तीय नियोजन में क्या अन्तर है।

६ निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये —

(अ) क्रियात्मक एवं संरचनात्मक नियोजन (Functional and structural planning),

(ब) सुधारवादी एव विकासवादी नियोजन (Corrective and developmental planning),

(स) पू जीवादी एव समाजवादी नियोजन (Capitalist and socialist planning),

(द) केन्द्रित एव विकेन्द्रित नियोजन (Centralised and decentralised planning),

(य) अल्पकालीन एव दीर्घकालीन नियोजन (*Prospective and perspective planning*) ।

अध्याय १४

*

प्रथम पंचवर्षीय योजना
[First Five Year Plan]

* * *

भारत एक अर्द्ध-विकसित देश है। यहा पर प्राकृतिक, भौतिक एव मानवीय साधन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है, फिर भी राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। व्यक्तियों का उत्पादन तथा उपभोग का स्तर नीचा है। बेरोजगारी, अशिक्षा, निर्धनता, धन के वितरण की असमानता, असतुलित आर्थिक विकास आदि की समस्यायें है। इन समस्याओं को दूर करने तथा देश व व्यक्ति की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए नियोजन एक आवश्यक शर्त है, अत भारत मे इन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिये नियोजन का सहारा लिया गया। तृतीय पचवर्षीय योजना के प्रारूप म कहा गया है—

"एक अर्द्ध-विकसित देश के सामने केवल वर्तमान आर्थिक और सामाजिक सस्थाओ के ढाचे के भीतर और अधिक परिणाम प्राप्त करने का ही प्रश्न नही होता, बल्कि उन्हे इस तरह ढालने और बनाने की समस्या होती है जिससे वे और अधिक विस्तृत और गहरे सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति मे प्रभावशाली ढग से योगदान कर सके। इन उद्देश्यो की पूर्ति आर्थिक नियोजन के माध्यम से ही सम्भव है।

भारत में स्वतन्त्रता-पूर्व किए गए आर्थिक नियोजन सम्बन्धी प्रयत्न
(Pre-Independance Attempts of Economic Planning in India)

भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा था, अत उस समय अनेक विद्वानो, राजनीतिज्ञो और अर्थशास्त्रियो ने इस ओर प्रयत्न किये, परन्तु उन प्रयत्नो मे सफलता प्राप्त नही हुई।

सर्वप्रथम १६३४ मे भारतीय इन्जीनियर एवं राजनीतिज्ञ विश्वेश्वरैया ने नियोजन की आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाया। उन्होंने अपनी पुस्तक **'नियोजित अर्थ व्यवस्था'** (Planned Economy) म आर्थिक विकास के सम्बन्ध म योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की और यह बताया कि देश का आर्थिक विकास नियोजित ढग से ही किया जा सकता है। १६३४-३५ मे भारतीय आर्थिक सभा (Indian Economic Conference) की वार्षिक बैठक मे इस पुस्तक म दिये गए आर्थिक सुझावो पर खुलकर चर्चा हुई, परन्तु परिस्थितियो की प्रतिकूलता के कारण कुछ समय के लिये यह विचार स्थगित हो गया।

२ अक्टूबर १६३८ को काग्रेस अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता मे यह निर्णय लिया गया कि गरीबी, बेरोजगारी आर्थिक पुन निर्माण तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये औद्योगीकरण आवश्यक है। अत बडे पैमाने के उद्योगो के विकास को महत्व दिया गया तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के लिए भी प्रोत्साहन की नीति अपनायी गई। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्व पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) की स्थापना की गई। इस समिति ने आर्थिक नियोजन को व्यवहार रूप देने तथा देश के आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए अनेक कार्यक्रम बनाये। परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने के कारण इस समिति के कार्यक्रमों को क्रियान्वित नही किया जा सका।

जनवरी सन् १६४४ म भारत के प्रमुख आठ उद्योगपतियो ने १५ वर्षीय आर्थिक विकास की योजना तैयार की। इसे **'बम्बई योजना'** के नाम से पुकारते है। बम्बई योजना मे जो कि १५ वर्ष के लिए बनाई गई थी, इसे तीन चरणो म पूरा करना था। इस योजना म १०,००० करोड रुपये के व्यय का प्रावधान था। यह योजना मुख्यत पूजीवादी योजना थी, इसका उद्देश्य औद्योगीकरण द्वारा सतुलित अर्थ व्यवस्था स्थापित करना था। परन्तु यह योजना भी व्यवस्थित रूप से कार्य नही कर सकी।

अप्रैल १६४४ म एम एन राय ने एक दस वर्षीय योजना प्रस्तुत की। इस योजना का **'जन योजना'** (The People's Plan) का नाम दिया गया। इस योजना म १५,००० करोड रुपये के व्यय का प्रावधान रखा गया।

सन् १६४४ मे ही श्रीमन्नारायण द्वारा **'गाधीवादी योजना'** (The Gandhian Plan) प्रस्तुत की गई। यह योजना एक आदर्शवादी योजना थी जो कि विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था, कुटीर-उद्योग एव गावों को स्वावलम्बी बनाने पर अधिक जोर देती थी। यह योजना दस वर्षीय थी जिसमे ३५०० करोड रुपये के व्यय का प्रावधान था।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में आर्थिक नियोजन

(Economic Planning in India after Independence)

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तीनों योजनाओं—बम्बई योजना, जन-योजना एवं गांधीवादी योजना—में से कोई भी योजना, योजना-स्तर की मांगों को पूरा नहीं करती थी, किन्तु इन योजनाओं ने एक दिशा अवश्य दी, जो कि आगे नीति निर्धारित करने में काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

दिसम्बर १९४६ में 'सलाहकार योजना मण्डल' (Advisory Planning Board) ने 'योजना आयोग' (Planning Commission) तथा सलाहकार समिति (Consultative Body) की स्थापना का सुझाव दिया। तत्पश्चात् भारत सरकार द्वारा मार्च १९५० में योजना आयोग की स्थापना की गई। योजना आयोग की स्थापना के साथ ही भारत में वास्तविक रूप से आर्थिक नियोजन का युग प्रारम्भ हुआ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

(First Five Year Plan)

भारत में देश के आर्थिक विकास के लिए योजना आयोग द्वारा प्रथम योजना पांच वर्ष के लिए प्रस्तुत की गई। यह योजना १ अप्रेल १९५१ से ३१ मार्च १९५६ तक के लिए थी। यद्यपि यह योजना १ अप्रेल १९५१ से प्रारम्भ हो गई परन्तु इस योजना को अन्तिम रूप दिसम्बर १९५२ में दिया गया।

सरकार का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का था, अतः प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मिश्रित अर्थ-व्यवस्था (mixed economy) अपनायी गई, जिससे कि सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों में उपलब्ध भौतिक व मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग कर उत्पादन में वृद्धि की जाय। तथा व्यक्तियों की आय में वृद्धि के साथ-साथ जीवन-स्तर भी ऊँचा उठ सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में परस्पर सहयोग एवं समन्वय का विशेष ध्यान रखा गया।

उद्देश्य (Objectives)

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये —

(अ) युद्ध एवं देश के विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन को दूर करना।

(ब) अर्थ-व्यवस्था को इस प्रकार विकसित करना जिसमें कि आर्थिक असन्तुलन दूर किया जा सके, राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तथा जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठ सके।

(स) प्रथम योजना से पूर्व की योजनाओ के कार्य क्रमो को पूरा करना ।

इस योजना म तात्कालिक समस्याओ को हल करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया ।

योजना की प्राथमिकतायें (Priorities in the Plan) ·

प्रथम योजना म निर्धारित प्राथमिकताओ का क्रम निम्न प्रकार था —

(अ) इस योजना म कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई । इसके अन्तर्गत भूमि सुधार, सिचाई की सुविधायें, आधुनिक उपकरण, उन्नतशील बीज, खाद आदि सम्मिलित किया गया ।

(ब) दूसरा स्थान विद्युत को दिया गया । इसके साथ ही औद्योगिक विकास को भी आवश्यक समझा गया ।

(स) ग्रामीण श्रम शक्ति का पूर्ण उपयोग करने के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम (community development programme) को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । ग्रामीण क्षेत्रों में सडको के निर्माण पर बल दिया तथा रेलो का विकास भी आवश्यक समझा गया ।

(द) मानवीय कल्याण मे वृद्धि करने के उद्देश्य से शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा आदि कार्यों को महत्व प्रदान किया गया ।

प्रथम पचवर्षीय योजना के उद्देश्य के सम्बन्ध म स्पष्ट रूप से कहा गया—
"प्रथम पचवर्षीय योजना के दो उद्देश्य थे—पहला, युद्ध और विभाजन के कारण अर्थ-व्यवस्था मे उत्पन्न हुए असतुलन को ठीक करना । दूसरा, सभी क्षेत्रो का सतुलित विकास करना जिसमे कि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हो और जीवन-स्तर म सुधार हो ।"[1]

---

1 "The First Five Year Plan had a twofold objectives Firstly, it aimed at correcting the disequilibrium in the economy caused by the war and the partition of the country Secondly, it proposed to initiate simultaneously a process of all round balanced development which would ensure a rising national income and a steady improvement in living standards over a period"

—Review of the First Five Year Plan

प्रथम योजना में व्यय (Allocation of Resources)

प्रथम योजनाकाल में देश का आर्थिक विकास करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय करने के लिये २०६६ करोड़ रुपये रखे गये परन्तु बाद में यह राशि बढ़ाकर २३७६ करोड़ रुपये कर दी गई। इस योजना में वास्तविक व्यय केवल १९६० करोड़ रुपये ही हुआ। वास्तविक व्यय विनियोग विभिन्न मदों पर निम्न प्रकार से हुआ —

प्रथम योजना में वास्तविक व्यय

व्यय की मद	कुल व्यय (करोड़ रु० में)	प्रतिशत (कुल व्यय का)
१ कृषि तथा सामुदायिक विकास	२९१	१५
२ सिंचाई एवं बिजली	५७०	२९
३ यातायात और संचार	५२३	२७
४ उद्योग एवं खनिज	११७	६
५ सामाजिक सेवायें	४१२	२१
६ अन्य	४७	२
योग	१९६०	१००

इस योजना में उद्योग धंधों का विकास मुख्य रूप से निजी उद्योगपतियों पर छोड़ दिया गया। निजी उद्योगपतियों ने १६०० करोड़ रुपये के विनियोग की योजना बनाई जो कि बाद में विनियोग बढ़कर १८०० करोड़ रुपये हुआ। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग १५६० करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र में १८०० करोड़ रुपये हुआ। प्रथम योजना में कुल विनियोग ३३६० करोड़ रुपये हुआ।

प्रथम योजना की वित्त व्यवस्था (Financial Resources of the Plan)

इस योजना में वास्तविक व्यय १९६० करोड़ रुपए हुआ, जिसकी वित्त व्यवस्था निम्न प्रकार से की गई —

योजना की वित्त-व्यवस्था

वित्तीय साधन	राशि (करोड रु० म)	प्रतिशत
१ करारोपण एव रेलो से बचत (सार्वजनिक बचत)	७५२	३८
२ अल्प बचत तथा अन्य ऋण	३०४	१६
३ जनता से ऋण	२०५	१०
४ पूजीगत खाते से प्राप्ति	९१	५
५ विदेशी सहायता	१८८	१०
६ घाटे की अर्थव्यवस्था	४२०	२१
योग	१९६०	१००

सार्वजनिक क्षेत्र म इस योजना म १९५१–५२ म २५९ करोड रु, १९५२-५३ म २७३ करोड रु, १९५३-५४ म ३४० करोड १९५४-५५ मे ४७६ करोड तथा १९५५-५६ म ६१२ करोड रुपये खर्च हुए। इस प्रकार पाच वर्षों म कुल व्यय १९६० करोड रु हुआ।

योजना के वित्तीय साधनो को हम तीन भागो म बाट सकते हैं —

(अ) बजट के साधन (Budgetory resources) ,

(ब) विदेशी साधन (External resources) ,

(स) घाटे की अर्थ-व्यवस्था (Deficit financing)।

(अ) बजट के साधन (Budgetory resources)–सरकार को प्रथम योजनामे करोंसे कुल १७५ करोड रु प्राप्त हुए इसम नियात करो से प्राप्त होने वाली आय सम्मिलित नहीथी। अतिरिक्त करो से ८० करोड रु प्राप्त हुए तथा राज्य सरकारो से केन्द्र सरकार को २६९ करोड रु प्राप्त हुये। इस योजना म अल्पबचत स सरकार को २३७ करोड रु प्राप्त हुये। इस प्रकार इस योजना म वित्तीय स्रोत के सम्बन्ध म कुछ सफलता हासिल हुई।

(ब) विदेशी साधन (External resources)—इस योजना म भारत सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I M F), विश्व बैंक, (World Bank) तथा अमेरिका,

कनाडा, इंगलैंड आदि देशो से वित्तीय सहायता प्राप्त हुई । इसके अतिरिक्त कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड आदि देशो से वित्तीय और प्राविधिक (technical) सहायता प्राप्त हुई । इस योजना मे कुल विदेशी सहायता ३७८ करोड रु की प्राप्त हुई । परन्तु योजनाकाल मे केवल १६७ करोड रु ही व्यय किये गये, शेष राशि १८१ करोड रु द्वितीय योजना के लिये सुरक्षित रख दी गई । विदेशी सहायता का एक बडा भाग गेहूँ तथा विकास योजनाओ के लिए सामान खरीदने मे व्यय किया गया ।

(स) **घाटे की अर्थ-व्यवस्था** (Deficit financing देश मे पहली बार घाटे की अर्थ-व्यवस्था का प्रयोग प्रथम योजना मे प्रारम्भ हुआ । इस योजना मे प्रारभमे २८० करोड रु के घाटे की अर्थव्यवस्था का लक्ष्य रखा गया, परन्तु योजना के अन्त तक घाटे की अर्थ-व्यवस्था ४२० करोड रु तक पहुँच गई जो कि कुल योजना व्यय की २१% थी । लेकिन इतनी घाटे की अर्थ-व्यवस्था होने पर भी मूल्यो मे वृद्धि नही हुई, इसका कारण देश मे उत्पादन की मात्रा मे आशातीत वृद्धि होना था ।

प्रथम योजना की उपलब्धिया (Achievements of First Five Year Plan)

प्रथम योजना स्वतत्रता प्राप्ति के थोडे समय पश्चात् ही प्रारम्भ हो गई थी, अत उस समय की आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितिया अच्छी नही थी । इस कारण योजना निर्माताओं के सामने एक गम्भीर चुनौती थी, अत सरकार ने इस ओर काफी सतर्कता रखी । प्रथम योजना मे जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे उनका प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त हुई । यह सफलता भविष्य की योजनाओ के लिये एक शुभ सकेत था, तथा योजना निर्माताओ के लिए आत्मविश्वास पैदा करने वाली महत्वपूर्ण बात । इस योजना मे विभिन्न क्षेत्रो मे उपलब्धिया तथा सफलतायें इस प्रकार रही —

(१) **राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय** (National income and per-capita income)—इस योजना मे राष्ट्रीय मे वृद्धि का लक्ष्य ११ % रखा गया था, लेकिन वास्तविक वृद्धि १७ ५ % हुई । लेकिन यह वृद्धि विभिन्न क्षेत्रो मे तथा विभिन्न वर्षों मे समान रूप से नही हुई । प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि १० ५ % हुई इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय २५० रुपये से बढकर २६८ रुपये हो गई । प्रति व्यक्ति उपभोग के स्तर म ८ % वृद्धि हुई ।

(२) **कृषि एव सामुदायिक विकास** (Agriculture and community development)—योजना के प्रारम्भ मे खाद्यानो का उत्पादन ५४० लाख टन था, जिसे बढाकर १९५५-५६ म ६१६ लाख टन करना था । योजना के अन्त मे यह उत्पादन

बढकर ६४६ लाख टन हो गया, अर्थात् लक्ष्य से ३३ लाख टन अधिक। इस योजना मे कृषि उत्पादन मे १६ % वृद्धि हुई। सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास किया गया। सिंचित क्षेत्र १९५०-५१ मे ५१ मिलियन एकड था जो योजना के अन्त म बढकर ६५ मिलियनहो गया, लेकिन यह लक्ष्य से कम था।

इस योजना मे अच्छे बीज व खाद का प्रयोग, ट्रैक्टरो का उपयोग तथा जमीदारी और जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन, किसानो के लिए ऋण व्यवस्था, चकबन्दी, भूमिहीनो को भूमि दिलाने आदि के अनेक महत्वपूर्ण प्रयत्न किये गये। इसी योजना म सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देने की भी योजनायें बनायी गई।

(३) **यातायात एव शक्ति** (Transport and power)—योजना मे कृषि व सिंचाई के बाद यातायात व शक्ति को स्थान दिया गया, क्योकि तीव्र आर्थिक विकास के लिए इन क्षेत्रो का विकास आवश्यक है। रेलो मे सुधार, सडको का विकास, जल यातायात के लिए जहाजो का निर्माण किया गया। इसके साथ ही हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया, तथा दो निगमो (Corperations) की स्थापना की गई।

इस योजना मे बिजली की कुल क्षमता म ११ लाख किलोवाट की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य १३ लाख किलोवाट का था।

(४) **सामाजिक सेवाएं** (Social services)—योजना व्यय का २३% सामाजिक सेवाओ पर व्यय किया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि कल्याणकारी कार्यों का विकास किया गया। इसम करीब ४५६ करोड रु० व्यय किये गये।

(५) **औद्योगिक विकास** (Industrial development)—*इस योजना म औद्योगिक* विकास को कृषि की अपेक्षा बहुत कम महत्व दिया गया। औद्योगिक क्षेत्र मे कुल व्यय ११७ करोड रु० हुआ जो कि योजना व्यय का करीब ६ प्र. श था। निजी क्षेत्र (private secter) मे २३६ करोड रु० की पूजी लगाई गई।

इस योजना मे औद्योगिक उत्पादन मे ४० प्र श वृद्धि हुई। मिलो द्वारा उत्पादित कपडे का उत्पादन ३७ अरब गज से बढकर योजना के अन्त मे ५ ५ अरब गज हो गया, *जो कि निर्धारित लक्ष्य से अधिक था।* जूट का माल, सीमेंट, कागज, सिलाई मशीनें, साइकिल, इस्पात, खाद आदि के उत्पादन मे संतोषजनक प्रगति हुई। सार्वजनिक क्षेत्र मे अनेक नये कारखाने—चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, सिंदरी का खाद का कारखाना,

हिन्दुस्तान शिपयार्ड, हिन्दुस्तान केबल्स फैक्ट्री, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स आदि खोले गये तथा इनमें उत्पादन कार्य प्रारम्भ हुआ।

(६) **मुद्रास्फीति एवं मूल्य स्तर (Inflation and price level)**—योजनाकाल में मुद्रा की मात्रा में १०% की वृद्धि हुई। परन्तु उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के कारण मूल्य स्तर में वृद्धि नहीं हुई। योजना के अन्त तक मूल्य स्तर योजना के प्रारम्भ की तुलना में १३ प्र. श. कम था।

(७) **रोजगार (Employment)**—प्रथम योजना के मूल्य उद्देश्यों में से एक उद्देश्य रोजगार की सुविधाओं का विस्तार करना तथा नागरिकों का जीवन-स्तर ऊंचा उठाना भी था। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या अधिक गम्भीर होने के कारण इन क्षेत्रों पर अधिक बल दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में समस्या के हल के लिए छोटे बड़े सिंचाई के साधनों के विकास पर जोर दिया गया तथा शहरी क्षेत्रों के लिए औद्योगीकरण, नये रोजगारों का निर्माण आदि के प्रयत्न किये गये। इसके अतिरिक्त रोजगार की अधिक सुविधायें जुटाने के लिए कुटीर उद्योग-धन्धों के विकास को महत्व दिया गया।

योजना के प्रारम्भ में लगभग ४० लाख व्यक्तियों के बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया, और यह आशा व्यक्त की गई कि योजना के अन्त तक अधिकांश बेरोजगारों को काम पर लगाया जा सकेगा, परन्तु यह आशा पूरी नहीं हो सकी। १९५३ में शहरी क्षेत्रों में स्थिति में काफी गिरावट आयी। सरकार ने स्थिति पर नियन्त्रण रखने और रोजगार की अधिक सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए ३०० करोड़ रुपये के अतिरिक्त व्यय की व्यवस्था की, परन्तु इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई। योजना के अन्त में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो गई। कुल बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या १९५६ के अन्त तक ५३ लाख थी, जिसमें २५ लाख शहरों में तथा २८ लाख गांवों में व्यक्ति बेरोजगार थे। इसका कारण श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होने के अनुपात में नये रोजगार के अवसरों में कम वृद्धि होना था।

प्रथम योजना की आलोचना (Criticism) :

प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किए गए थे, उनमें अधिकांश लक्ष्यों को योजना के अन्त तक प्राप्त कर लिया गया। इस दृष्टि से यह योजना सफल योजना रही। इस योजना से देश के विकास को एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ। फिर भी इस योजना में कुछ कमियां रह गयी, जो कि निम्नलिखित हैं —

(१) **योजना का सीमित आकार**—प्रथम योजना का आकार देश की आवश्यकताओं को देखते हुए काफी छोटा था, जिससे कि उस समय की समस्याओं को ठीक प्रकार से

सुलझाया नही जा सका। इसके अतिरिक्त जो व्यय लक्ष्य पूर्व मे २३७८ करोड रु० का निर्धारित किया गया था, वास्तविक व्यय उससे भी कम हुआ, अत विकास की आवश्यकताओ को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया।

(२) **पूंजी निर्माण की धीमी गति**—प्रथम योजना में यह अनुमान लगाया गया था कि अतिरिक्त आय का करीब ३०% भाग पूजी निर्माण के लिए उपलब्ध होगा, परन्तु राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने के उपरात भी बचत और नियोजन मे वृद्धि नही हुई।

(३) **औद्योगिक विकास को कम महत्व**—प्रथम योजना मे देश की आवश्यक्ताओ को देखते हुए औद्योगिक विकास को कम महत्व दिया गया। इसके कारण आधारभूत उद्योगो का विकास नही हो पाया जिससे औद्योगिक व आर्थिक विकास तीव्र गति से करने के लिए ठोस आधार प्राप्त नही हुआ।

(४) **बेरोजगारी की समस्या**—इस योजना म यह लक्ष्य रखा गया था कि रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध होगे तथा अधिकाश व्यक्तियो को रोजगार की सुविधायें उपलब्ध होगी। परन्तु योजना काल मे अतिरिक्त व्यय करने के उपरात भी बेरोजगारो की सख्या मे वृद्धि हो गई। योजना के अन्त म बेरोजगारो की सख्या ५३ लाख थी जबकि योजना के प्रारम्भ में ४० लाख, इस प्रकार योजना रोजगार की सुविधाएं उपलब्ध कराने म असफल रही।

(५) **सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति न होना**—इस योजनाकाल में सामान्य नागरिकों की स्थित मे विशेष सुधार नही हो पाया। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने के बावजूद आर्थिक विषमताओ मे और अधिक वृद्धि हो गई तथा धन के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति मे वृद्धि दृष्टिगोचर हुई।

(६) **प्रशासकीय कुशलता एव अनुभव का अभाव**—इस योजनाकाल मे सरकार का प्रशासकीय पहलू काफी कमजोर रहा। इस योजना म वित्तीय साधनो को अधिक महत्व दिया गया तथा मानवीय और भौतिक साधनो को उपेक्षित छोड दिया। इस प्रकार समन्वय के अभाव मे साधनो का उचित विकास नही हो सका। इस सब का प्रमुख कारण सरकार का नियोजन एव प्रशासन सम्बन्धी अनुभवो का अभाव था।

प्रथम योजना मे नियोजन सम्बन्धी अनुभव के अभाव के कारण कुछ प्रमुख एव आधारभूत बातो को पर्याप्त महत्व नही दिया जा सका। परन्तु यह योजना अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने मे सफल रही तथा आगे के विकास के लिए एक सुदृढ आधार भी इसने प्रदान किया। इस प्रकार अर्थ-व्यवस्था को उस स्थान पर लाकर खडा कर दिया। जहा से कि विकास कार्यक्रम आसानी से अपनाये जा सकें।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ प्रथम पचवर्षीय योजना पर एक लेख लिखिये।

२. प्रथम योजना के उद्देश्य क्या थे ? उद्देश्यो के सदर्भ मे प्रथम योजना की सफलता तथा असफलता को समझाइये।

३ प्रथम योजना के वित्तीय साधनो और रोजगार की स्थितियो पर एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए।

अध्याय १५

★

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

[Second Five Year Plan]

★ ★ ★

प्रथम पचवर्षीय याजना की समाप्ति के पश्चात द्वितीय पचवर्षीय योजना १ अप्रैल १९५६ से ३१ मार्च १९६१ तक के लिए बनाई गई। द्वितीय योजना के निर्माण का भार प्रो पी सी महालनोबिस (Prof P C Mahalonobis) को सौपा गया। प्रथम योजना ने नियोजित आर्थिक विकास को एक ठोस आधार को प्रदान किया। द्वितीय योजना मे इस आधार को और अधिक मजबूत बनाने के लिए प्रयास किये गये। प्रथम योजना की सफलताओ से प्रभावित होकर द्वितीय योजना को महत्वाकाक्षी होना स्वाभाविक था। इस योजना म व्यय का लक्ष्य प्रथम योजना की अपेक्षा दुगुना कर दिया गया तथा ऐसी सम्भावना प्रकट की गई कि १९६७ तक भारतीय अर्थ व्यवस्था स्वय-स्फूर्ति अवस्था (take off stage) को प्राप्त कर लेगी।

१९५४ म अखिल भारतीय काग्रेस समिति के सम्मेलन म समाजवादी ढग से समाज (Socialistic Pattern of Society) की स्थापना का लक्ष्य रखा गया तथा भारतीय ससद द्वारा आर्थिक नीति की घोषणा की गई। इससे सार्वजनिक क्षेत्र म वृद्धि होना स्वभाविक था इन सब घटनाओ से द्वितीय याजना के उद्देश्या म परिवर्तन हुआ। स्व० प जवाहरलाल नेहरू ने द्वितीय योजना मे उद्देश्यो के सम्बन्ध म कहा

> "हमारी दूसरी पचवर्षीय योजना का उद्देश्य ग्रामीण भारत का पुन निर्माण करना, भारत की औद्योगिक प्रगति की नीव रखना, जनता के कमजोर तथा अपेक्षाकृत अधिकारहीन वर्ग की उन्नति के अवसर प्रदान करना व देश के सभी भागो का सतुलित विकास करना है।"

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए द्वितीय योजना म कृषि के स्थान पर आधारभूत उद्योगो के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई।

द्वितीय योजना के उद्देश्य (Objectives of the Second Five Year Plan) :

योजना आयोग के अनुसार—"द्वितीय योजना का मुख्य उद्देश्य पाँच वर्षों में राष्ट्रीय आय मे २५% वृद्धि करना, रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करना जिससे बढती हुई जनसख्या व श्रम-शक्ति को खपाया जा सके तथा औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करना है जिससे कि आगे की योजनाओ के तीव्र विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार हो सके।"[1]

द्वितीय योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे :—

(१) **राष्ट्रीय आय मे वृद्धि**—द्वितीय योजना मे राष्ट्रीय आय मे वृद्धि का लक्ष्य २५ निर्धारित किया गया जिससे कि प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि होकर नागरिक जीवन-स्तर ऊँचा उठ सके।

(२) **औद्योगीकरण**—*द्वितीय योजना मे औद्योगीकरण को प्राथमिकता प्रदान की गई। इस योजना का उद्देश्य तीव्र औद्योगिक विकास करना था, जिससे कि मूल व भारी उद्योगो का विकास हो तथा औद्योगिक प्रगति को एक ठोस आधार प्राप्त हो।*

(३) **रोजगार के अवसरो मे वृद्धि**—प्रथम योजना मे रोजगार के साधनो मे आवश्यकतानुसार वृद्धि न हो पाने के कारण बेरोजगारो की सख्या मे काफी वृद्धि हो गई, अत द्वितीय योजना म रोजगार देने वाले साधनो मे विकास करने का लक्ष्य रखा गया जिससे कि बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सके। इस योजना मे कृषि के अतिरिक्त अन्य उद्योगो मे ८० लाख अतिरिक्त व्यक्तियो को रोजगार की सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था का लक्ष्य रखा गया।

(४) **आर्थिक असमानता दूर करना**—*समाजवादी ढग के समाज की स्थापना के लिये द्वितीय योजना मे आय तथा धन की असमानता को कम करने तथा उनके उचित वितरण की व्यवस्था का लक्ष्य रखा गया।*

इस प्रकार द्वितीय योजना का प्रमुख उद्देश्य देश मे तीव्र गति से औद्योगिक विकास

---

1 "The main task is to secure an increase of about 25% over the five years, to enlarge employment opportunities at a rate sufficient to absorb the increase in labour force consequent on the increase in population and to take a major stride forward in the direction of industrialisation so as to prepare the ground for more rapid advance in the plan periods to come"

—Planning Commission

विकास करना तथा जनता को अधिकाधिक रोजगार की सुविधायें उपलब्ध कराकर समाज को सामाजिक व आर्थिक न्याय की दिशा म आगे बढ़ना था।

द्वितीय योजना मे प्राथमिकतायें (Priorities in the Second Plan)

द्वितीय योजना मे उद्योगो पर सबसे अधिक महत्व दिया गया जबकि प्रथम योजना म कृषि को यह स्थान प्राप्त था। दूसरा स्थान सिंचाई व शक्ति क विकास को दिया गया, तीसरा तथा चौथा स्थान क्रमश परिवहन, संचार तथा सामाजिक सेवाओ को दिया गया।

इस योजना म उद्योगों को महत्व प्रदान करने के कई कारण थ —

(a) प्रथम योजना मे कृषि को अधिक महत्व दिया गया था।

(b) सतुलित विकास के लिये उद्योगो का विकास करना अनिवार्य था।

(c) देश क तीव्र विकास के लिये औद्योगीकरण आवश्यक था।

(d) देश म उद्योग धन्धे पिछडी हुई अवस्था म थे।

इस प्रकार द्वितीय योजना एक भौतिक योजना (physical plan थी जिसम वस्तुओं की प्राप्ति पर अधिक बल दिया गया।

द्वितीय योजना में व्यय (Expenditure in the Second Plan)

द्वितीय योजना म प्रारम्भ म ७२०० करोड रु० व्यय करने का प्रावधान रखा गया था, जिसम से ४८०० करोड रु सार्वजनिक क्षेत्र और २४०० करोड रु० निजी क्षेत्र म व्यय करने की व्यवस्था थी। सावजनिक क्षेत्र के ४८०० करोड रुपये म से ३८०० करोड रु० उत्पादक सम्पत्ति (productive assets) के रूप म व्यय करन थे तथा १००० करोड रुपये चालू विकास कार्यों पर व्यय किये जाने थे। परन्तु इस योजनाकाल म मूल्य-स्तर म वृद्धि, स्वेज सकट आदि कारणो से मूल योजना मे कुछ संशोधन किये गये। इस योजना को बाद म दो भागो में बांटा गया, प्रथम भाग में उन कार्यों को सम्मिलित किया गया जिनकी पूर्ति करना आवश्यक था। द्वितीय भाग मे उन कार्यों को सम्मिलित किया गया जिनकी पूर्ति उसी अवस्था में की जानी थी जबकि वित्तीय साधन उपलब्ध हो। इस प्रकार प्रथम भाग मे ४५०० करोड रु तथा द्वितीय भाग में ३०० करोड रु रखे गये। बाद में सरकार ने प्रथम भाग पर राशि ब ाकर ४६५० करोड रु कर दी।

परन्तु इस योजना में वास्तविक व्यय सार्वजनिक क्षेत्र में ४६०० करोड रु० हुआ तथा निजी क्षेत्र में ३३०० करोड रु हुआ।

योजना में व्यय [सार्वजनिक क्षेत्र में]

(करोड रु० म)

व्यय की मद	प्रस्तावित व्यय		वास्तविक व्यय	
	कुल व्यय	प्रतिशत	कुल व्यय	प्रतिशत
१ कृषि एव सामुदायिक विकास	५६८	११ ८	५३०	११ ०
२ सिंचाई एव बिजली	६१३	१६ ०	६५८	१६ ०
३ उद्योग एव खनिज	८६०	१८ ५	१०७५	२४ ०
४ परिवहन एव सचार	१३८५	२८ ६	१३००	२८ ०
५ सामाजिक सेवायें	६४५	१६ ७	२३०	१८
६ विविध	६६	२ १		
योग	४८००	१०० ०	४६००	१०० ०

द्वितीय योजना में निजी क्षेत्र में व्यय विनियोग

(करोड रु० म)

व्यय की मदें	प्रस्तावित व्यय	वास्तविक व्यय
१ सगठित उद्योग एव खान	५७५	७००
२. कृषि एव सिंचाई	२७५	६७५
३ यातायात (रेलो को छोडकर)	८५	१३५
४ शक्ति	४०	४०
५ ग्रामीण लघु उद्योग	१००	२२५
६ भवन निर्माण एव अन्य निर्माण	६२५	१,०००
७ भण्डार	४००	५२५
योग	२४००	३३००

उपर्युक्त व्यय एव विनियोग के आकडो से स्पष्ट होता है कि द्वितीय योजना मे उद्योग एव खनिज पर सर्वाधिक बल दिया गया। सचार एव यातायात को भी प्राथमिकता प्रदान की गई। कृषि पर किया जाने वाला व्यय अपेक्षाकृत कम था, अत द्वितीय योजना का व्यय नम प्रथम योजना की अपेक्षा बदला हुआ था। प्रथम एव द्वितीय योजना मे सावजनिक क्षेत्र मे किए गए व्यय का अन्तर निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है —

प्रथम एवं द्वितीय योजना में व्यय

वास्तविक व्यय (करोड रु० मे)

व्यय की मदें	प्रथम योजना		द्वितीय योजना	
	व्यय	प्रतिशत	व्यय	प्रतिशत
१ कृषि एव सामुदायिक विकास	२६१	१५	५३०	११
२. सिचाई और बिजली	५७०	२६	८६५	१६
३ उद्योग एव खनिज	११७	०६	१०७५	२४
४ परिवहन एव सचार	५२३	२७	१३००	२८
५ सामाजिक सेवायें तथा विविध	४५६	२३	८३०	१८
योग	१६६०	१००	४६००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रथम योजना म कृषि एव सामुदायिक विकास पर १५ प्र श व्यय था जबकि द्वितीय योजना मे केवल ११ प्र. श। सिंचाई एव बिजली पर प्रथम योजना मे २६ प्र श व्यय किया गया जबकि द्वितीय योजना मे केवल ११ प्र श। इस प्रकार कृषि एव सिचाई पर प्रथम योजना की तुलना म द्वितीय योजना में बहुत कम व्यय किया गया। उद्योग एव खनिज पर प्रथम योजना म ६ प्र श व्यय हुआ जबकि द्वितीय योजना म इस मद म २४ प्र श व्यय किया गया। इस प्रकार द्वितीय योजना मे औद्योगिक विकास पर काफी व्यय किया गया। अत द्वितीय योजना औद्योगीकरण को महत्व प्रदान कर देश के विकास मे तेजी से विकास करने का लक्ष्य रखा गया।

योजना के वित्तीय साधन (Financial Resources of Second Plan)

द्वितीय योजना प्रथम योजना की अपेक्षा अधिक महत्वाकांक्षी थी। इस योजना मे भौतिक लक्ष्यो की प्राप्ति को महत्व दिया गया, वित्तीय साधनो के लिए 'जहा कही से प्राप्त हो' की नीति का सहारा लिया गया। इस योजना के वित्तीय साधनो को दो भागो म बाटा जा सकता है—सार्वजनिक एव निजी। द्वितीय योजना म सार्वजनिक क्षेत्र मे वित्तीय व्यवस्था निम्न प्रकार थी —

द्वितीय योजना के सार्वजनिक क्षेत्रों में वित्तीय साधन

(करोड रु० म)

साधन	प्रस्तावित प्राप्ति	वास्तविक प्राप्ति
१ चालू आय खाता	३५०	—५०
२. अतिरिक्त करारोपण	८५०	१०५२
३ जनता से ऋण	—	—
(अ) बाजार ऋण	७००	७८०
(ब) लघु बचत	५००	४००
४ रेलवे अशदान	१५०	१५०
५ प्रोवीडेण्ड फन्ड तथा अन्य जमा	२५०	२३०
६. विदेशी सहायता	८००	१०६०
७. घाटे की अर्थ-व्यवस्था	१२००	६४८
योग	४८००	४६००

वित्तीय व्यवस्था मे तीन प्रमुख साधनो का हम अलग से अध्ययन करेंगे

(१) **बजट के साधन (Budgetory resources)**—द्वितीय योजना मे ८०० करोड रुपये करो से प्राप्त होने का अनुमान था तथा ४०० करोड रुपये अपूर्णता की मद से

पूरे होने थे। इस योजना मे करो से प्राप्त होने वाली राशि लक्ष्य से कही अधिक थी। जनता स प्राप्त ऋण और बचतें लक्ष्य के लगभग बराबर थी। इस मद म ११०० करोड रुपये प्राप्त हुए। रेलो से १५० करोड रुपये प्राप्त हुए तथा प्रावीडेन्ट फण्ड से २३० करोड रुपये प्राप्त हुए।

२ **विदशी सहायता** (External resources)—इस योजना म विदेशी सहायता ८०० करोड रु का प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। वास्तविक सहायता १०६० करोड रु की प्राप्त हुई। इस प्रकार विदेशी सहायता लक्ष्य से अधिक प्राप्त हुई।

३ **घाटे की अथ व्यवस्था** (Deficit financing)—घाटे की अथ व्यवस्था के सम्बन्ध मे द्वितीय योजना के अनुमान गलत साबित हुए। इस योजना म १२०० करोड रु की घाटे की व्यवस्था का प्रावधान था जबकि इस मद स ९४८ करोड रु की व्यवस्था की गई। यह राशि कुल योजना व्यय की २५% थी जबकि प्रथम योजना म घाटे की व्यवस्था कुल व्यय का २१% थी।

द्वितीय योजना मे रोजगार (Employment in Second Plan)

प्रथम योजना के अन्त म ५३ लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। द्वितीय योजनाकाल म ३८ लाख ग्रामीण क्षेत्र मे तथा ६२ लाख शहरी क्षेत्र म। रोजगार चाहने वाले नये व्यक्तियो की वृद्धि का अनुमान था। इस प्रकार बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए १५३ *लाख व्यक्तियो को रोजगार की सुविधायें उपलब्ध कराने की आवश्यकता* थी। इस योजना मे करीब एक करोड व्यक्तियो को रोजगार दिलाने का प्रावधान रखा गया, जिसमे ८० लाख व्यक्तियो का कृषि क्षेत्र स बाहर रोजगार की सुविधा उपलब्ध कराना था। इस प्रकार योजना का उद्देश्य पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने का नही रखा गया।

इस सम्बन्ध म **योजना आयोग** ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा—'पूर्ण रोजगार के उद्देश्य की पूर्ति आयोजित प्रयत्नो की एक लम्बी प्रक्रिया द्वारा ही की जा सकती है, जिसकी अवधि दूसरी योजना से अधिक लम्बी होगी।

द्वितीय योजना म शिक्षित बेरोजगारो की समस्या को सुलझाने को महत्त्व प्रदान किया गया। इस योजना म १४ ५ लाख शिक्षित व्यक्तियो को रोजगार दिलाने की व्यवस्था की गई। फिर भी करीब ५ ५ लाख शिक्षित व्यक्तियो की समस्या थी।

योजना के अन्त मे ६५ लाख व्यक्तियो को ही कृषि के अतिरिक्त रोजगार प्राप्त हुआ, इस प्रकार योजना के अन्त म रोजगार चाहने वाले व्यक्तियो की संख्या करीब ९० लाख थी।

योजना की उपलब्धिया (Achievements of the Plan)

द्वितीय योजना की विभिन्न क्षेत्रो मे सफलताय एव उपलब्धिया निम्नानुसार हैं —

१ **औद्योगिक क्षेत्र (Industrial field)**– द्वितीय योजना मे औद्योगिक प्रगति सतोष जनक रही। इस योजना के अन्त म औद्योगिक उत्पादन का निर्देशाङ्क १६४ (सन् १६५०-५१=१०० पहुच गया जबकि प्रथम योजना के अ त म निर्देशाङ्क १३६ था। इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन मे ७ प्र श की दर से वृद्धि हुई। इस योजना म तीन इस्पात के कारखाने (भिलाई, रूरकेला, दुर्गापुर) सावजनिक क्षेत्र म स्थापित किये गये। निजी क्षेत्र के दो इस्पात कारखानो का विस्तार किया गया। इस्पात का उत्पादन १३ लाख टन से २२ लाख टन हो गया। सीमट का उत्पादन ४० लाख टन से बढकर ८५ लाख टन हो गया तथा मशीन टूल्स का उत्पादन ३ ४ करोड रुपये से बढकर ५ ५ करोड रु का हो गया। खाद, कागज, सूती वस्त्र रसायन आदि क्षेत्रो मे प्रगति सतोषजनक रही।

२ **राष्ट्रीय आय (National income)**—द्वितीय योजना म राष्ट्रीय आय म वृद्धि २० प्र श की हुई जबकि लक्ष्य २५ प्र श वृद्धि का था। प्रति व्यक्ति आय मे लग भग ६ प्र श वृद्धि हुई। बचत की दर ७ प्र श से बढकर ८ ५७ प्र श हो गई तथा विनियोग की दर ७ ३ प्र श से बढकर ११ प्र श हो गई। इस प्रकार इस दिशा मे भी सफलता सतोषजनक रही।

३ **कृषि (Agriculture)**—इस योजना के अन्त म खाद्यानो का उत्पादन ६८ ८ मिलियन टन से बढकर ७६ मिलियन टन[२] हो गया। उत्पादन लक्ष्य ८४ लाख मिलियन टन का था। इस वृद्धि से प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का उपभोग १७ २ औस से बढकर १८ ३ औस हो गया। योजनाकाल के दो वष १६५७ ५८ १६५६ ६० खाद्यानो के उत्पादन की दृष्टि से खराब रहे। इस योजना म पी एल ४८० के अन्तगत खाद्यान के आयात का समझौता किया गया। कपास, जूट, गन्ना, तिलहन के उत्पादन मे यद्यपि वृद्धि हुई, परन्तु लक्ष्य से कम रही।

४ **ग्रामीण एव लघु उद्योग (Village and small industries)**—द्वितीय योजना म ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास को महत्व दिया गया। इसके परिणाम

---

२ सशोधित आकडो (Economic Survey, 1972 73) के अनुसार योजना के अन्त म खाद्यान्न का उत्पादन ८२ २ मिलियन टन था।

स्वरूप विभिन्न उद्योगों में २५ से ५० प्र श तक वृद्धि हुई। हाथ करघा वस्त्र का उत्पादन तथा खादी का उत्पादन काफी बढ़ा। इस योजना में इस मद में १७५ करोड़ रुपये व्यय किये गये जबकि २०० करोड़ रु के व्यय का प्रावधान था। १९५५ में स्थापित कर्वे समिति की सिफारिशों के आधार पर लघु उद्योगों के विकास हेतु ५३ विस्तार केन्द्र तथा ६० औद्योगिक बस्तियों की स्थापना की गई।

५ सिंचाई एवं शक्ति (Irrigation and power)—इस योजना में नलकूप, नहर, तालाब तथा बाँधों द्वारा सिंचित क्षेत्र में वृद्धि की गई। इस योजनाकाल में भाखड़ा नांगल, रिहन्द, हीराकुण्ड, मातातीला आदि बाँधों के पूर्ण हो जाने से सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि हुई तथा जल विद्युत का विस्तार भी हुआ। इस काल में विद्युत का उत्पादन ५७ लाख किलोवाट हुआ जो कि उत्पादन लक्ष्य ६९ लाख किलोवाट से कम था। इस काल में गाँवों तथा कस्बों में बिजली पहुँचाई गई।

६ यातायात और संचार (Transport and communication)—इस योजना में रेल, सड़क एवं जहाजरानी के विकास के लिए अनेक कार्यक्रम अपनाये गये। अकेले रेलों के विकास पर ११२१५ करोड़ रुपये व्यय किये गये। देश रेल के इंजिन, डिब्बे तथा अन्य सामान की दृष्टि से आत्म निर्भर हो गया। नई रेल लाइनों का निर्माण किया गया, ८००० मील रेल लाइन को सुधारा गया तथा १३०० मील लम्बी लाइन का दुहरा किया गया। सड़कों के विकास के लिए २० वर्षीय योजना स्वीकार की गई। इन सभी कार्यों में सुरक्षात्मक विकास मार्गों को प्राथमिकता प्रदान की गई।

७ सामाजिक सेवायें (Social services)—इस योजना में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण पर विशेष ध्यान दिया गया परन्तु उपलब्धियाँ सीमित ही रहीं। इस योजना के अन्त में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या ४.३५ करोड़ हो गई तथा करीब १३६०० तकनीकी शिक्षा में रहीं। चिकित्सा व स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार किया गया तथा परिवार नियोजन कार्यक्रमों के लिए करीब ४ करोड़ रु व्यय किये गये।

द्वितीय योजना की आलोचना (Criticism of Second Plan)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियों को देखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इस योजना में आशातीत सफलतायें प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि यह योजना काफी

सोचपूर्ण थी। परिस्थितियों मे परिवर्तन होने पर लक्ष्यो एव साधनो मे संशोधन भी किये गये, परन्तु अनेक विद्वानो एव अर्थशास्त्रियो ने इसकी आलोचना की। इस योजना की प्रमुख असफलतायें एव आलोचनायें निम्नलिखित हैं —

१. **अधिक महत्वाकांक्षी** (Over-ambitious) – द्वितीय योजना के निर्माण के समय ही अनेक विद्वान अर्थशास्त्रियो ने इसकी अव्यावहारिकता की ओर सकेत किया था। वास्तव म इस योजना म भौतिक लक्ष्यो की ओर विशेष ध्यान दिया गया। वित्तीय साधनो की ओर अधिक ध्यान नही दिया। जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक सकट उत्पन्न हो गया। अत भौतिक लक्ष्यो की प्राप्ति नही हो सकी। योजना आयोग के सदस्य श्री के सं. नियोगी (K C Neogi ने उसी समय कहा था '

   "दूसरी योजना अव्यावहारिक एव अधिक महत्वाकांक्षी है, और इसका भव्य भवन कमजोर नीव पर खडा है।"[3]

   वास्तविकता यह है कि साधनो के अभाव के कारण यह योजना महत्वाकांक्षी थी, परन्तु देश की आवश्यकताओ को देखते हुए अ यावहारिक नही थी।

२. **कृषि के उत्पादन मे कमी** (Less production in agricultural sector)— इस योजना मे कृषि को कम महत्व दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन मे कम वृद्धि हुई तथा कृषि का विकास भी अधिक नही हो सका। प्रथम दो वर्षो मे उत्पादन मे वृद्धि हुई परन्तु बाद के तीन वर्षों म प्रगति सतोषजनक नही रही।

३ **उद्योग धन्धो के विकास पर अधिक बल** (More emphasis on industrial development)—द्वितीय योजना मे बडे उद्योगो तथा कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास को अत्यधिक महत्व दिया। अत पूजी का विनियोग काफी अधिक हुआ परन्तु उत्पादन मे अधिक वृद्धि नही हो सकी, जिसके परिणामस्वरूप अनेक कठिनाईया उत्पन्न हो गइ।

४ **बेरोजगारी मे वृद्धि** (Problem of unemployment)—द्वितीय योजना मे बेरोजगारी की सख्या मे कमी होने के स्थान पर वृद्धि हो गई। द्वितीय योजना के

---

3 "The Second Plan is unrealistic and over ambitious and its massive super-structure is raised on precarious foundation"

—K C Neogi

प्रारम्भ म ५३ लाख व्यक्ति वेरोजगार थे, जबकि योजना के अन्त मे इनकी सख्या बढकर करीब ६० लाख हो गई। इस प्रकार यह योजना रोजगार की पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध कराने म असफल रही।

(५) विदशी विनिमय सकट (Crisis of foreign exchangd)—योजना के प्रारम्भ म ही आयातो की मात्रा म काफी वृद्धि होगई जबकि निर्यातों से वृद्धि का अनुपात धीमा रहा। इससे भुगतान सतुलन की प्रतिकूलता बढ गई और विदेशी विनिमय का सकट उत्पन्न हो गया। योजना के पाच वर्षों म भुगतान सतुलन की प्रतिकूलता का अनुमान ११०० करोड रु० लगाया गया था, परन्तु प्रथम दो वर्षों में ही भुगतान प्रतिकूलता ५०२६ करोड रु० थी। पौन्ड पावनो की राशि जो पाच वर्षों तक चलनी चाहिए थी लेकिन १½ वर्ष म ही समाप्त हो गई। इस सबके कारण विनिमय सकट गम्भीर हो गया।

(६) धन के वितरण की असमानता (Unequal distribution of wealth)—इस योजना मे समाजवादी ढग के समाज की स्थापना का उद्देश्य रखा गया, परन्तु मूल्यो म अधिक वृद्धि एव सरकार के कुशल क्रियान्वयन के अभाव के कारण केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। गरीब वर्ग की स्थिति पहले से अधिक खराब हो गई जबकि अमीर और अधिक अमीर हो गये। इसके कारण कल्याणकारी कार्यों मे भी अधिक वृद्धि नही हो पायी।

(७) घाटे की अर्थ-व्यवस्था (Deficit financing)—इस योजना मे घाटे की अर्थ-व्यवस्था को अधिक महत्व दिया। आर्थिक साधनों के अभाव के कारण अनेक भौतिक लक्ष्यों का प्राप्त करने म असफलता ही हाथ लगी तथा कुल व्यय का २५% घाटे की अर्थ-व्यवस्था द्वारा पूरा किया जाने के कारण मूल्यो म वृद्धि को भी प्रोत्साहन मिला।

(८) समन्वय का अभाव (Lack of co-ordination)—इस योजना मे केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो म समन्वय एव सहयोग का अभाव रहा। इसके अतिरिक्त प्रचार की सुव्यवस्था न होने से जनता का अपेक्षित सहयोग भी प्राप्त नही हुआ। इसके अतिरिक्त कुशल प्रशासको एव प्रबन्धको के अभाव के कारण योजना के कार्यक्रमो का क्रियान्वयन भी सफलतापूर्वक नही हो सका। जिसके परिणामस्वरूप योजना मे पूर्ण नियत्रण नहीं हो सका और पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

द्वितीय योजना म मूल्यो म वृद्धि, खाद्यान्न की समस्या, भुगतान मे असन्तुलन की समस्या आदि कारणो स देश म गम्भीर सकट उत्पन्न हो गया। इन समस्याओ के उत्पन्न

होने के कारण जनता का विश्वास नियोजित अर्थ व्यवस्था के प्रति कम होने लगा। इन सब समस्याओ के बावजूद भी द्वितीय योजना मे औद्योगिक क्षेत्र म काफी प्रगति हुई और औद्योगिक विकास का आधार दृढ हुआ। द्वितीय योजना भी समस्याओ और कमियो को ध्यान मे रखते हुए योजना आयोग ने देश की प्रगति के लिए तीसरी पचवर्षीय योजना का निर्माण किया।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ द्वितीय पचवर्षीय योजना पर एक लेख लिखिए।

२ "द्वितीय योजना के अधिकाश लक्ष्यो को प्राप्त करने मे असफल रही है।" इस कथन को दृष्टिगत रखते हुए अपने विचार व्यक्त कीजिए।

३. द्वितीय योजना म वित्तीय साधन और रोजगार की स्थिति पर एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए।

अध्याय १६

*

तृतीय पंचवर्षीय योजना
[Third Five Year Plan]

* * *

प्रथम दो योजनाओ ने देश म आर्थिक नियोजन क लिय उपयुक्त वातावरण तैयार कर दिया। तृतीय योजना मे इन योजनाओ के अनुभव से लाभ उठाकर वतमान की समस्याओ को दूर करने और भविष्य की आवश्यकताओ को पूरा करन के लिए ठोस कायक्रम अपनाये गये। यह योजना १ अप्रल १६६१ से प्रारम्भ होकर ३१ मार्च १६६६ को समाप्त हो गई।

तृतीय योजना का आकार द्वितीय योजना की अपेक्षा काफी बडा था। इस योजना म सावजनिक क्षेत्र म ७५०० करोड रु का व्यय करने का प्रावधान रखा गया। इस योजना म स्वय-स्फूत अथ व्यवस्था (Self generating economy) की ओर एक कदम रखा गया।

योजना के उद्देश्य
(Objectives)

तृतीय योजना स्वय स्फूत अथ व्यवस्था की प्राप्ति हेतु एक कदम था अत इसम दीघकालीन विकास तथा विकास क लिय अधिक शक्तिशाली प्रयत्नो पर जोर दिया गया। अत इस योजना म कृषि क विकास औद्योगिक प्रगति यातायात तथा शक्ति का विकास और बेरोजगारी की समस्या को दूर करन क लिए महत्वपूण कदम उठाय गय। जिससे कि सतुलित आर्थिक विकास हो सके और समाजवादी समाज की स्थापना की जा सके। इस योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये —

(१) *राष्ट्रीय आय में वृद्धि*—इस योजना म राष्ट्रीय आय म ५ प्र श वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। विनियोग इस प्रकार करना जिसम कि राष्ट्रीय आय म वृद्धि का क्रम आगे भी जारी रह सके।

(२) **कृषि उत्पादन मे आत्मनिर्भरता**—इस योजना मे खाद्यान्न के उत्पादन मे आत्म-निर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। यह निर्धारित किया गया कि कृषि उत्पादन मे इतनी वृद्धि की जाय कि उद्योगो की आवश्यकताओ को पूरा किया जाय तथा निर्यात किया जाय।

(३) **आधारभूत उद्योगो का विस्तार**—आधारभूत उद्योगो, जैसे—इस्पात, ईधन, रासायनिक उद्योग का विकास करना तथा मशीन निर्माण क्षमता का इतना विस्तार करना जिससे कि आगे के दस वर्षो म देश के औद्योगीकरण की आवश्यकताये देश के साधनो मे ही पूर्ण की जा सकें।

(४) **देश की श्रम-शक्ति का पूर्ण उपयोग तथा रोजगार के अवसरो में वृद्धि**—योजना मे देश की श्रम-शक्ति का पूर्ण उपयोग करने तथा रोजगार के अधिक से अधिक अवसरो म वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

(५) **धन व सम्पत्ति के असमान वितरण मे कमी करना**—योजना मे धन व सम्पत्ति के वितरण मे असमानता को कम करना, तथा अवसरो की समानता स्थापित करने का लक्ष्य रख गया।

तीसरी पचवर्षीय योजना के उद्देश्य के सम्बन्ध मे कहा गया

"तीसरी योजना दीर्घकालीन विकास के कार्यक्रम का पहला सोपान है। यह कार्यक्रम अगले पन्द्रह वर्ष या उससे अधिक अवधि का होगा। इस अवधि म भारत की अर्थ-व्यवस्था का केवल तेजी से विस्तार ही नही करना है, बल्कि साथ ही साथ उसे आत्मनिर्भर और आत्मवाहक भी बनाना है। इस दीर्घकालीन मार्ग निर्धारण का उद्देश्य देश के प्राकृतिक साधनो के विकास, कृषि तथा उद्योगो की उन्नति और सामाजिक ढाचे म परिवर्तन का खाका खीचना है और यह प्रादेशिक और राष्ट्रीय विकास को एकीकृत योजना पेश करता है।"[1]

योजना मे प्राथमिकताये (Priorities in the Plan) ·

तृतीय योजना मे प्राथमिकताओ का क्रम निम्न प्रकार रहा ·

(१) कृषि के विकास को प्रथम स्थान दिया गया। कृषि के विकास पर कुल व्यय का १४ प्र श व्यय करने का लक्ष्य रखा गया।

(२) दूसरा स्थान श्रम-शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग को दिया गया, जिससे कि उनको कार्य के अधिक से अधिक अवसर प्राप्त हो सके।

---

1 सक्षिप्त तीसरी पचवर्षीय योजना, पृष्ठ-२

(३) तीसरा स्थान आधारभूत उद्योगो के विकास तथा मशीनो के निर्माण को दिया गया ।

(४) चौथा स्थान लघु व कुटीर उद्योग-धन्धो के विकास को दिया गया ।

इस योजना म इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि सभी क्षेत्रों का विकास हो जिससे कि भविष्य मे देश के विकास की गति को तीव्र किया जा सके ।

योजना मे व्यय (Expenditure in the Plan)

तृतीय योजना का आकार प्रथम व द्वितीय योजना की अपक्षा बहुत बडा था । इस योजना म सावजनिक क्षेत्र म ७५०० करोड रु व्यय का प्रावधान था जबकि प्रथम योजना मे सावजनिक क्षेत्र म १६६० करोड रु व द्वितीय योजना म ४६०० करोड रु व्यय किये गये । इस योजना म निजी क्षेत्र मे ४१०० करोड रु व्यय करने का लक्ष्य रखा गया । इस प्रकार योजनाकाल मे ११६०० करोड रु के व्यय के कायक्रम निश्चित किये गये । सावजनिक क्षत्र के व्यय ७५०० करोड रु म स १२०० करोड रु चालू व्यय क लिय थ, अत वास्तविक रूप म विनियोग के लिये ६३०० करोड रु ही उपलब्ध होने थे । इस प्रकार योजनाकाल म कुल विनियोग १०४०० करोड रु का लक्ष्य रखा गया ।

तृतीय योजना म सार्वजनिक क्षेत्र म वास्तविक व्यय ८५७७ करोड रु का हुआ । व्यय का ब्यौरा निम्नलिखित तालिका म िया गया है

तीसरी योजना मे व्यय (सार्वजनिक क्षेत्र मे)

(करोड रु म)

	मदें	प्रस्तावित व्यय	प्रतिशत	वास्तविक व्यय	प्रतिशत
१	कृषि एव सामुदायिक विकास	१०६८	१४	१०१६	१३
२	सिचाई	६५०	६	६६३ ७	६
३	बिजली	१०१२	१३	१२५२ ३	१३
४	ग्रामीण एव लघु उद्योग	२६४	४	२४० ८	३
५	उद्योग एव खनिज	१५२०	२०	१७२६ ३	२०
६	परिवहन एव सचार	१४१६	२०	२१११ ७	२५
७	सामाजिक सेवायें तथा विविध	१५००	२०	१४६३ ४	१७
	योग	१७५००	१००	८५७७ २	१००

उपर्युक्त ब्यौरे से स्पष्ट है कि कृषि एव सिचाई को पर्याप्त महत्व दिया गया तथा सगठित उद्योगो एव लघु उद्योगो को भी महत्व प्राप्त हुआ। इस योजना के व्यय मे वृद्धि का कारण वस्तुओ के मूल्यो मे अत्यधिक वृद्धि का होना था।

तृतीय योजना के निजी क्षेत्र मे विनियोग ४१०० करोड का होना था, इसका ब्यौरा निम्न प्रकार है —

निजी क्षेत्र में विनियोग

(करोड रु मे)

मदें	प्रस्तावित व्यय
१ कृषि एव सामुदायिक विकास	८००
२. बिजली	५०
३ ग्रामीण लघु-उद्योग	२७५
४ उद्योग एव खनिज	१०५०
५ यातायात एव सचार	२५०
६ समाज सेवाये एव विविध	१६७५
योग	४१००

तृतीय योजना के वित्तीय साधन (Financial Resources of Third Plan)

तृतीय योजना म सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय को पूरा करने के लिये निम्नलिखित साधनो से प्राप्त करने की व्यवस्था की गई —

(करोड रु मे)

	साधन	प्रस्तावित	वास्तविक
१	चालू राजस्व से बचत (अतिरिक्त कराधान को छोड़कर)	५५०	४१६
२	रेलवे अंशदान	१००	६२
३	सरकारी उद्योगो से बचत	४५०	३७३
४	जनता स ऋण	८००	८२३
५	अल्पबचते	६००	५६५
६	प्रोविडेण्ड फन्ड	२६५	३३६
७	अनिवार्य जमा योजना	—	११७
८	इस्पात समानीकरण कोष	१०५	३४
९	पूंजीगत प्राप्तिया	१७०	२३८
१०.	अतिरिक्त करारोपण	३७१०	२८९२
११	विदेशी सहायता	२२००	२४२३
१२	घाट की अर्थ व्यवस्था	५५०	११३३
	योग	७५००	८५७७

वित्तीय साधनो को हम तीन भागो म बाटकर अध्ययन करेंगे —

(१) **बजट के साधन** (Budgetory resources)—इस योजना म राजस्व खाते मे ५५० करोड रु के आधिक्य का अनुमान लगाया गया था, परन्तु राजस्व खाते मे आधिक्य के स्थान पर ४१६ करोड रु का घाटा रहा। रेलवे का अंशदान अनुमान की अपेक्षा कम रहा। जनता से ८२३ करोड रु के ऋण प्राप्त हुए जबकि अनुमान केवल ८०० करोड रु प्राप्त होने का था

इस योजना म अतिरिक्त करारोपण से १७१० करोड रु प्राप्त होने का अनुमान था जिसम से केन्द्र द्वारा ११०० करोड रु तथा राज्य सरकारो द्वारा ६१० करोड र एकत्रित किय जाने थे। करारोपण की यह राशि द्वितीय योजना की तुलना म बहुत अधिक थी, फिर भी सरकार का करारोपण से प्राप्त राशि २८९२ करोड रु थी, जो कि अनुमान से ११८२ करोड रु अधिक थी।

(२) विदेशी सहायता (External resources)—तृतीय योजना में २२०० करोड़ रु की विदेशी सहायता प्राप्त होने का अनुमान था, परन्तु वास्तविक प्राप्ति २४२३ करोड़ रु. की हुई।

(३) घाटे की अर्थ व्यवस्था (Deficit financing)—द्वितीय योजना में घाटे की अर्थ-व्यवस्था को अपनाये जाने के कारण मूल्यों में काफी वृद्धि हो गई थी। अतः तृतीय योजना में इससे न्यूनतम राशि प्राप्त करने की बात सोची गई। इस योजना में ५५० करोड़ रु. की घाटे की अर्थ व्यवस्था अपनाये जाने का प्रावधान रखा परन्तु वास्तविक रूप में घाटे की अर्थ-व्यवस्था करीब ११३३ करोड़ रु. की हुई।

तृतीय योजना में रोजगार (Employment in Third Plan)

द्वितीय योजना के अन्त में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या करीब ९० लाख थी। तृतीय योजना में रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों की संख्या में १७५ लाख की वृद्धि होने का अनुमान था। अतः बेरोजगारी की समस्या को एक गम्भीर रूप में लिया गया तथा इसको सुलझाने में आवश्यक कदम उठाए गए। इस योजना में करीब १४५ लाख व्यक्तियों को रोजगार की सुविधायें उपलब्ध कराई गई। इसमें से १०५ लाख व्यक्तियों को गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर प्राप्त हुए तथा ४० लाख व्यक्तियों को कृषि क्षेत्र में रोजगार की सुविधा प्राप्त हुई। इस प्रकार योजना के अन्त में रोजगार चाहने वालों की संख्या करीब १२० लाख थी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और अधिक खराब थी, इन क्षेत्रों में छिपी हुई बेरोजगारी की भयंकर समस्या थी। बेरोजगार व्यक्तियों में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में लगातार वृद्धि होती गई।

इस दृष्टि से तृतीय योजना अधिक सफल नहीं रही क्योंकि इसमें रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों की संख्या में कमी होने के स्थान पर वृद्धि और अधिक हुई।

तृतीय योजना की उपलब्धियां (Achievements of Third Plan)

तृतीय योजना की शुरुआत यद्यपि अच्छे वातावरण में हुई परन्तु योजनाकाल में अनेक अप्रत्याशित कठिनाइयां सामने आयीं। इसी अवधि में दो बार विदेशी आक्रमण (चीन व पाकिस्तान) हुआ, प्राकृतिक प्रकोप हुए, मूल्यों में लगातार वृद्धि होती रही तथा विदेशी सहायता में भी अनिश्चितता बनी रही। इसके अतिरिक्त जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई। इन सब कारणों से अर्थ-व्यवस्था को अपार हानि हुई और विकास की प्रक्रिया धीमी पड़ गई। अतः इस योजना में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सका, फिर भी अनेक क्षेत्रों में काफी प्रगति हुई।

(१) राष्ट्रीय आय (National income)—वार्षिक तृतीय योजना में राष्ट्रीय आय में ५ प्र. श. वृद्धि का लक्ष्य रखा गया परन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा

सका। योजना काल मे औसत वृद्धि २ ५ प्र श रही। प्रथम वर्ष मे २ ५ प्र श द्वितीय मे १ ७, तृतीय मे ४ ६ प्र श तथा चौथे वर्ष मे ७ ६ प्र श. वृद्धि हुई परन्तु योजना के अन्तिम वर्ष म ४ २ प्र. श की गिरावट आयी। इस प्रकार राष्ट्रीय आय १९६०-६१ मे १४१४० करोड रुपये से बढकर १९६४-६५ मे १६,६३० करोड हो गई तथा १९६५-६६ मे १५६३० करोड रु० (१९६०-६१ के मूल्यो के आधार पर) रह गई।

प्रति व्यक्ति आय १९६०-६१ के मूल्यो के आधार पर) ३२६ रु० थी जो कि १९६४-६५ म बढकर ३४६ रु० हो गई, योजना के अन्तिम वर्ष मे घटकर ३२५ र० रह गई।

(२) **औद्योगिक क्षेत्र** (Industrial field)—योजना के प्रारम्भिक दो वर्षो म प्रगति सतोषजनक रही परन्तु आगे इसे जारी नही रखा जा सका, इसका प्रमुख कारण चीन व पाकिस्तान का आक्रमण रहा। इस योजना की अवधि मे मशीनरी, रसायन आदि मे १५६० वार्षिक वृधि की दर रही। चीनी, सीमेंट, पैट्रोल, जूट की बनी वस्तुओं के उत्पादन म काफी वृद्धि हुई।

औद्योगिक क्षेत्र मे विकास की दर ७ ६ प्र श रही जबकि लक्ष्य ११ प्र श वृद्धि का था।

(३) **कृषि** (Agricultural field)—तृतीय योजना मे कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। इस योजना म कृषि उत्पादन का लक्ष्य १०० मिलियन टन रखा गया। कृषि के विकास के लिये अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋणो की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त रासायनिक खाद मे उत्पादन में १६ लाख टन तथा आर्गेनिक खाद म १५४ मि० टन की वृद्धि करना था। ३ ६ मि० एकड भूमि को कृषि योग्य बनाया था।

कृषि क्षेत्र म तृतीय योजना अधिक सफल नही रही। योजना के अन्तिम वर्ष मे कृषि का उत्पादन केवल ७२ ३ मि० टन था जबकि १९६४-६५ मे उत्पादन ८९ मि० टन था जूट का लक्ष्य ६ २ मिलियन गाठ था जबकि उत्पादन ५ मिलियन गाठो का हुआ। कपास का उत्पादन ५२ मिलियन गाठे हुआ जबकि लक्ष्य ७ १ मिलियन गाठें था। उत्पादन म कमी क कारण ही २५ मिलियन टन खाद्यान, ३ ६ मि० गाठ कपास तथा १ ५ मि० गाठें जूट का आयात किया। रसायनिक खाद का उत्पादन भी लक्ष्य से कम हुआ।

(४) **सिंचाई तथा बिजली** (Irrigation and Power)—तृतीय योजना मे २५ ६ मिलियन एकड भूमि पर सिंचाई की सुविधायें प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। योजनाकाल म ५ ५ मि० एकड भूमि पर बडी सिंचाई याजनाओ द्वारा १३ १ मि० एकड भूमि पर लघु सिंचाई योजनाओ द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान की गई।

विद्युत उत्पादन की क्षमता मे करीब ४६ लाख किलोवाट की वृद्धि हुई। इस क्षेत्र म योजना कुछ सीमा तक सफल रही।

(५) **सामाजिक सेवायें** (Social services)—सामाजिक सेवाओ म वृद्धि करने के उद्देश्य से इस योजना मे १६६७ करोड रु व्यय किये गये। इस योजना मे समाज कल्याण व शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमो मे काफी सफलता प्राप्त हुई। इस अवधि म स्कूल जाने वाले छात्रो की सख्या मे ४४५ लाख तथा कॉलेज जाने वाले छात्रा की सख्या मे ११ लाख की वृद्धि हुई।

देश मे चिकित्सालयो की सख्या ८६०० से बढकर १४६०० हो गई। चिकित्सा सुविधाओ म वृद्धि के कारण औसत आयु ३२ वर्ष से बढकर ५० वर्ष हो गई।

तृतीय योजना की असफलतायें (Failures of Third Plan)

तृतीय योजना का निर्माण करते समय यह कहा गया था कि यह योजना स्वय-स्फूर्त अर्थ-व्यवस्था की प्राप्ति के लिये महत्वपूर्ण है। परन्तु यह योजना विशेष उपलब्धिया प्राप्त करने मे असमर्थ रही। इस योजना की कुछ कमिया या असफलतायें निम्नलिखित है —

(१) **विकास की धीमी गति** (Slow rate of growth)—इस योजना मे विकास काफी धीमी गति से हुआ। *योजना मे लक्ष्य ५ प्र श वार्षिक वृद्धि का था,* जबकि वास्तविक विकास की दर केवल २ ५ प्र श रही।

(२) **कृषि मे आत्मनिर्भरता का अभाव** (Lack of self-sufficiency in agriculture)– इस योजना म कृषि क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था, परन्तु इसमे सफलता प्राप्त नही हुई। योजना के अन्तिम वर्ष म उत्पादन मे और गिरावट आ गई। इसके कारण खाद्यान्न का बडी मात्रा मे आयात करना पडा जिससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का एक बडा भाग इस मद मे खर्च हो गया। उत्पादन मे कमी के कारण कृषि की अन्य वस्तुओ के मूल्यो मे लगातार वृद्धि होती गई जिससे दूसरे लक्ष्यो को प्राप्त करने म भी बाधा उत्पन्न हुई।

(३) **मूल्यो मे वृद्धि** (Rise in prices)—तृतीय योजना म वस्तुओ के मूल्यो म काफी वृद्धि हुई और यह वृद्धि एक क्षेत्र तक ही समिति नही रही। मूल्य वृद्धि से विनियोग प्रभावित हुये तथा प्रस्तावित कार्यों को पूरा करने मे अधिक व्यय करना पडा। इस योजना विधि मे खाद्यान्नो मे ४८ ४ प्र श, औद्योगिक कच्चे माल मे ३२ ६ प्र श, निर्मित माल मे २२ १ प्र श मूल्यो मे वृद्धि हुई। इस प्रकार कुल वृद्धि ३६ ४ हुई। इस वृद्धि के कारण सामान्य जीवन कष्टप्रद हो गया।

(४) **जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि** (Rapid increase in population)—इस योजना मे जनसख्या में २ ५ प्र श की दर से वृद्धि हुई। यह वृद्धि जनसख्या नियन्त्रण के उपाय अपनाने के बावजूद हुई। जनसख्या की इस वृद्धि के कारण विकास की गति धीमी पड गई।

(५) **बेरोजगारी** (Unemployment)—द्वितीय योजना के अन्त में बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या करीब १० लाख थी जबकि तृतीय योजना के अन्त में यह बढकर १२० लाख हो गई। इस प्रकार यह योजना रोजगार की सुविधायें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने म असमर्थ रही।

(६) **धन के वितरण की असमानता** (Unequal distribution of wealth)—इस योजना म धन एव सम्पत्ति के वितरण म असफलता को कम करने का लक्ष्य रखा गया था, परन्तु इस योजना मे इस ओर कोई प्रभावी कदम नही उठाया गया। अन याजना अवधि मे गरीब व अमीर के बीच की खाई और चौडी हो गई।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह पूर्णत स्पष्ट है कि तृतीय पचवर्षीय योजना अपन उद्देश्यो की प्राप्ति म असफल रही ह। **प्रो अलक घोष** (Prof Alak Ghosh) न तृतीय याजना की समीक्षा करते हुए लिखा है

> "साधारण और असाधारण तत्वो के दबाव के उपरान्त भी तृतीय योजना उद्योग, यातायात एव सचार तथा शिक्षा एव चिकित्सा मे महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने म सफल रही है। परन्तु कृषि, सिचाई और शक्ति के क्षेत्र म उपलब्धि असतोषजनक रही।"[2]

तृतीय योजना की धीमी प्रगति के कारण (Reasons of its Slow Progress)

तृतीय पचवर्षीय योजना की धीमी प्रगति का कारण योजनाकाल म आयी अप्रत्याशित कठिनाईयां और बाधाये थी जिनके लिये अर्थ व्यवस्था तैयार नही थी। प्रमुख बाधायें व कठिनाईया निम्नलिखित थी—

(१) **प्राकृतिक बाधायें** (Natural obstacles)—इस योजना के पाच वर्षों म से तीन वर्ष अनावृष्टि के कारण सूखे की स्थिति रही तथा कुछ क्षेत्रो म अतिवृष्टि के कारण उत्पादन को काफी नुकसान हुआ। इस प्रकार जलवायु व वर्षा की प्रतिकूल स्थितियो के कारण लक्ष्यो को प्राप्त नही किया जा सका।

---

2 "Inspite of the pulls and pressures exerted by the ordinary and extra ordinary sector during the Third Plan period, we were generally successfull in fulfilling some of the important targets in the field of industry, transport and communication, health and education Our performances were, however, unsatisfactory in the field of agriculture, irrigation and power" —Alok Ghosh

(२) विदेशी आक्रमण (Foreign attack)—तीसरी योजना की अवधि म १९६२ म चीन तथा १९६५ में पाकिस्तान ने आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप सुरक्षात्मक कार्यों पर अधिक व्यय करना पडा। अत उत्पादक कार्यों से हटाकर सुरक्षात्मक कार्यों पर व्यय करने से उत्पादन मे गिरावट आयी तथा अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई।

(३) विदेशी विनिमय की कठिनाई (Crisis of foreign exchange)—तृतीय योजना म विदेशी मुद्रा प्राप्त करने म कठिनाई आयी तथा अपेक्षित विदेशी विनिमय प्राप्त नही हो सका। योजना के अन्तिम वर्ष मे विदेशी सहायता बहुत ही कम प्राप्त हुई जिससे विकास कार्यक्रमो म बाधा उत्पन्न हुई।

(४) सहयोग एव समन्वय का अभाव (Lack of co operation and co-ordination)—तृतीय योजना म जनता से अपेक्षित सहयोग प्राप्त नही हुआ। इसका कारण जनता मे नियोजन के प्रति उत्साह कम था क्योकि इससे पूर्व की योजनाओ से विशेष सफलता प्राप्त नही हुई थी। इसके अतिरिक्त केन्द्र एव राज्य सरकारो मे समन्वय का भी अभाव रहा। इसका प्रमुख कारण अधिकारियो की कार्य पद्धति का दोषपूर्ण होना था।

इसके अतिरिक्त मूल्यो म लगातार वृद्धि और जनसख्या मे तीव्र वृद्धि के कारण योजना के अधिकांश कार्यक्रमो को पूरा नही किया जा सका।

तीन वार्षिक योजनायें
(Three Annual Plans)

तृतीय पचवर्षीय योजना की अवधि ३१ मार्च १९६६ को समाप्त हो गई। इसके पश्चात् चतुर्थ पचवर्षीय योजना प्रारम्भ की जानी थी। इसके लिये १९६२ से ही निर्माण कार्य आरम्भ हो चुका था परन्तु १९६६ तक इसको अन्तिम रूप नही दिया जा सका, बाद में चतुर्थ योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई। परन्तु विदेशी सहायता की अनिश्चितता, मूल्यो मे लगातार वृद्धि, विदेशी आक्रमण के प्रभाव तथा आन्तरिक साधनो की कमी आदि कठिनाईयो के कारण चतुर्थ योजना १ अप्रैल १९६६ से लागू नही की जा सकी।

उपर्युक्त स्थिति मे योजना निर्माणकर्त्ताओ ने चतुर्थ योजना को कुछ समय के लिये स्थगित करने का निर्णय लिया। योजना क्रम को बनाये रखने के उद्देश्य से वार्षिक योजनाओ का निर्माण किया गया। ये वार्षिक योजनायें १९६६-६७, १९६७-६८ तथा १९६८-६९ के लिये बनायी गई।

वार्षिक योजनाओं के अन्तर्गत व्यय (Total outlay of Annual Plans)

१९६६ ६७ १९६७ ६८ तथा १९६८ ६९ म तीन वार्षिक योजनायें बनी जिनम कुल व्यय क्रमश २१६५ करोड रु २० ५ करोड रु तथा २३७६ करोड रु था। इन वार्षिक योजनाओ पर किया जाने वाला व्यय चतुथ योजना के प्रारूप म प्रस्तावित व्यय स काफी कम था। इसका कारण आन्तरिक साधनो की कमी तथा विदेशी सहायता की कमी थी। इसके अतिरिक्त अवमूल्यन के कारण भी कुछ समय के लिये अनिश्चितता का वातावरण बन गया था। अत ये तीन एकवर्षीय योजनायें आन्तरिक साधनो के आधार पर ही तयार की गई। इन वार्षिक योजनाओ म व्यय का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित तालिका म प्रस्तुत किया जा रहा है —

वार्षिक योजना मे व्यय[3]

	मदें	१९६६ ६७	१९६७ ६८	१९६८ ६९
१	कृषि एव सामुदायिक विकास	३३४	३१८	४८९
२	बडी एव मध्य सिचाई	१४९	१८४	१७५
३	विद्युत	४०४	३९२	४ [illegible]
४	ग्रामीण एव लघु उद्योग	४३	४४	४१
५	सगठित उद्योग एव खनिज	५१४	४७१	५ ६
६	यातायात एव सचार	४२४	३९४	४०१
७	सामाजिक सवाय एव विविध	२९५	३२२	२६१
	कुल योग	२१६५	२०८५	२३७६

इन तीन वार्षिक योजनाओ म कुल व्यय ६६२६ करोड रु हुआ।

वार्षिक योजनाओं की उपलब्धिया (Achievements of Annual Plans)

१९६६ ६७ की वार्षिक योजना—इस वर्ष देश म सूखे व अकाल की स्थिति रही जिससे उत्पादन म कमी और अर्थ-व्यवस्था म मन्दी की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस अवधि

3 Economic Survey—1970 71

म खाद्यान्न का उत्पादन ७४ २३ मि टन हुआ जबकि लक्ष्य ६७ मि टन का था। औद्योगिक उत्पादन मे केवल ३ % की वृद्धि हुई।

राष्ट्रीय आय मे वृद्धि १ ६ प्र श हुई जबकि प्रति व्यक्ति आय १९६५ ६६ के वष से ० ५ प्र श कम थी। राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय का स्तर १९६४ ६५ की अपेक्षा नीचा था। इस योजना म मूल्यो मे १६ प्र श की वृद्धि हुई।

१९६७ ६८ की वार्षिक योजना—इस वार्षिक योजना से आर्थिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इस अवधि मे खाद्यान्न का उत्पादन ९५ मि टन हुआ जो कि १९६६ ६७ की अपेक्षा २८ प्र श अधिक था। सिंचाई व खादो का विस्तार किया गया। औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि केवल २ प्र श हुई। परन्तु इस योजना मे मन्दी को दूर करने के प्रभावशाली कदम उठाये गये जिनका सुप्रभाव १९६८ ६९ म देखने को मिला।

राष्ट्रीय आय मे ९ ३ प्र श की वृद्धि हुई। परन्तु विनियोग की दर केवल ११ ५ प्र श ही रही जबकि १९६६ ६७ म विनियोग दर १२ प्र श थी। इस वष मूल्यो मे ११ प्र श वृद्धि हुई।

१९६८ ६९ की वार्षिक योजना—इस योजना मे खाद्यान्न का उत्पादन ९९ मि टन हुआ जबकि लक्ष्य १०२ मि टन का था। औद्योगिक उत्पादन मे ६ प्र श की वृद्धि हुई परन्तु इस्पात तथा रासायनिक खाद के उत्पादन म कमी आई। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि केवल ० ७ प्र श हुई जबकि लक्ष्य ५ प्र श वृद्धि का था। इस अवधि म खाद्यान्नो के मूल्यो मे गिरावट आयी परन्तु मूल्य स्तर मे वृद्धि हुई। बचत एव विनियोग की दर भी कम रही।

वार्षिक योजनायें केवल चतुर्थ योजना म विकल्प के रूप मे बनायी गई थी इसलिये इनमे ठोस कार्यक्रमो का अभाव था। इन योजनाओ म लक्ष्यो का निर्धारण प्राथमिकताओ का निर्धारण तथा वित्तीय साधनो की व्यवस्था के लिये कोई वैज्ञानिक आधार नही था। ये वार्षिक योजनायें बेरोजगारी की समस्या मूल्य वृद्धि तथा आर्थिक स्थिरता को प्राप्त करने म असफल रही तथा उत्पादन के लक्ष्यो को प्राप्त करने मे भी असमर्थ रही।

यद्यपि ये वार्षिक योजनायें असफल रही फिर भी इन योजनाओ ने नियोजित विकास के क्रम को बनाये रखा तथा चतुर्थ योजना के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. भारत की तृतीय पचवर्षीय योजना की मुख्य उपलब्धियो को बताइए ।

२. *"तृतीय योजना अधिकाश लक्ष्यो को प्राप्त करने मे असफल रही ।"* इस कथन की धीमी प्रगति के कारण बताइए ।

३ तृतीय योजना के उद्देश्यो और प्राथमिकताओ का वर्णन कीजिए तथा इसकी उपलब्धियो को बताइये ।

४. तृतीय योजना की वित्तीय व्यवस्था पर एक सक्षिप्त नोट लिखिए ।

५. तीनो वार्षिक योजनाओ (१९६६-६७, १९६७-६८ तथा १९६८-६९) के मुख्य तत्वो की व्याख्या कीजिये ।

———

अध्याय १७

★

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

[Fourth Five Year Plan]

★ ★ ★

प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ तथा तीन वार्षिक योजनाओ मे देश के आर्थिक विकास के लिये मार्ग तो प्रशस्त हुआ परन्तु बेरोजगारी, गरीबी, वितरण की असमानता आदि समस्याओ का निराकरण नही हो सका। अत चतुर्थ योजना इसी उद्देश्य को लेकर बनाई गई। इन समस्याओ के निराकरण के लिये एक बडी राशि की आवश्यकता थी, अत देश की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए चतुर्थ योजना मे २४३९८ करोड रु के व्यय का प्रावधान रखा गया। परन्तु कुछ कारणो से चतुर्थ योजना की सशोधित रूपरेखा प्रस्तुत की गई जिसमे कुल व्यय बढाकर २४८८२ करोड रु कर दिया। इसमे सार्वजनिक क्षेत्र के लिए १५९०२ करोड रु की राशि निर्धारित की गई तथा निजी क्षेत्र के लिये ८९८० करोड रु व्यय का प्रावधान रखा गया। यह योजना १ अप्रैल १९६९ से प्रारम्भ होकर ३१ मार्च १९७४ तक के लिए बनाई गई।

योजना के उद्देश्य (Objectives of the Plan) ·

चतुर्थ योजना का उद्देश्य लोगो के जीवन-स्तर मे उन उपायो से वृद्धि करना है जो कि समानता और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करते हैं। इस योजना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए चतुर्थ योजना की रूपरेखा म कहा गया।

> "इस योजना का आधारभूत उद्देश्य समानता तथा सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाले उपायो के माध्यम से जनसाधारण के जीवन-स्तर को तेजी के साथ ऊँचा उठाना है। निर्बल वर्गों तथा कम आय वाले वर्गो के बहुमुखी उत्थान के लिये हर सम्भव प्रयत्न करना होगा। अर्थ-व्यवस्था को सक्रिय करने हेतु प्रत्येक प्रयास को गतिशील किया जावेगा ताकि स्थिरता के साथ तीव्र विकास किया जा सके। भारतीय अर्थ व्यवस्था स्वावलम्बी हो सके इसके लिये उपलब्ध क्षमता और

जुटाये जानेवाले अतिरिक्त साधनो से निर्मित क्षमता का अधिकतम उपयोग करने की व्यवस्था की जायगी ।

संक्षेप में चतुर्थ योजना का उद्देश्य स्थिरता के साथ विकास (growth w th stabi l ty) करना तथा धन आय और आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करना है ।

इस योजना के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं —

(१ राष्ट्रीय आय म ५ ५ प्र श वार्षिक की दर से वृद्धि करना तथा कृषि उत्पादन म ५ प्र श और औद्योगिक उत्पादन म ८ से १०प्र श वार्षिक की दर से वृद्धि करना ।

(२) आत्मनिर्भरता प्राप्त करना ।

(३) विदेशी सहायता पर निर्भरता म कमी करना तथा P L ४८० के अन्तगत आयातो को न्यूनतम करना ।

(४) निर्यातो म वृद्धि ७ प्र श वार्षिक की दर से करना तथा आयातो को न्यूनतम करना ।

(५) आर्थिक स्थायित्व स्थापित करना ।

(६) आय तथा धन के वितरण की विषमता म कमी करना ।

(७) रोजगार के अवसरो म वृद्धि करना ।

(८) जनसंख्या की वृद्धि को नियन्त्रित करना ।

विकास कार्यक्रमो म ग्रामीण जनता का सहयोग प्राप्त करना तथा उनको विकास से प्राप्त लाभो से हिस्सा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना ।

इस प्रकार चतुर्थ योजना का उद्देश्य तेजी से आर्थिक विकास के साथ साथ समानता और सामाजिक न्याय म निरन्तर प्रगति करना है ।

चतुर्थ योजना में व्यय (Total Outlay of the Plan

चतुर्थ पचवर्षीय योजना म कुल २४८८२ करोड रु के व्यय का प्रावधान रखा गया इसमे से सार्वजनिक क्षेत्र म १५९०२ करोड रु तथा निजी क्षेत्र म ८९८० करोड रु व्यय का प्रावधान रखा । सार्वजनिक क्षेत्र के १५९०२ करोड रु म से २२४७ करोड रु चालू व्यय के लिये तथा शेष १३६६५ करोड रु का विनियोग कार्यों पर व्यय करने के लिये रखे गये । चतुर्थ योजना म सार्वजनिक क्षेत्र म व्यय का ब्योरा निम्न प्रकार है —

व्यय का विवरण (सार्वजनिक क्षेत्र में)

(करोड रु. मे)

मदें	चालू व्यय	विनियोग	योग	प्रतिशत
१. कृषि एव सहायक क्षेत्र	६१०	२११८	२७२८	१७ १
२. सिचाई एव बाढ नियत्रण	१४	१०७३	१०८७	६ ८
३. शक्ति	—	२४४८	२४४८	१५ ४
४ कुटीर एव लघु उद्योग	१०७	१८६	२९३	१ ८
५ उद्योग एव खनिज	४०	३२९८	३३३८	२१ ०
६. परिवहन एव सचार	४०	३१९७	३२३७	२० ३
७ शिक्षा	५४५	२७८	८२३	५ २
८. विविध	१०५७	१०५७	१९४८	१२ ४
योग	२२४७	१३६५५	१५९०२	१००

तृतीय पचवर्षीय योजना तथा चतुर्थ योजना में किये जाने वाले व्यय का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि तृतीय योजना मे उद्योग एव सामाजिक सेवाओ पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय किया गया जबकि चतुर्थ योजना मे कृषि एव सहायक क्षेत्रो पर अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया गया। इसका प्रमुख कारण कृषि क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है। यद्यपि दोनो योजनाओ के व्यय प्रतिशत मे अधिक अन्तर नही है, जो कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है।

विनियोग का स्वरुप : तृतीय एवं चतुर्थ योजना

(करोड रु म)

मदें	तृतीय योजना		चतुर्थ योजना	
	विनियोग	प्रतिशत	विनियोग	प्रतिशत
१. कृषि	१४६०	१४ ०	३७१८	१६.४
२. सिचाई एव बाढ नियत्रण	६५०	६·३	१०७३	४ ७
३. शक्ति	१०६२	१० २	२५२३	११·२
४. ग्रामीण एव लघु उद्योग	४२५	४·१	७४६	३ ३

५	उद्योग एवं खनिज	२,५७०	२४ ७	५,२६८	२३ ४
६	यातायात एवं संचार	१,७१६	१६ ७	४,११७	१८ २
७	सामाजिक सेवाएं	१,६६७	१६ ३	३,५६०	१५ ७
८	इन्वेंट्रीज	८००	७ ७	१,६००	७ १
	योग	१०,४००	१००	२२ ६३५	१००

चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र में व्यय (Outlay in Private Sector)

चतुर्थ योजना में निजी क्षेत्र में ८९८० करोड़ रु० के विनियोग की व्यवस्था की गई। इस योजना में विभिन्न मदों में निम्नानुसार व्यय का प्रावधान रखा गया।

निजी क्षेत्र में विनियोग[1]

(करोड़ रु० में)

मदें		विनियोग	प्रतिशत
१	कृषि एवं अन्य क्षेत्र	१६००	१७ ८
२	ग्रामीण एवं लघु उद्योग	५६०	६ २
३	शक्ति	७५	० ८
४	उद्योग एवं खनिज	२,०००	२० ३
५	यातायात एवं संचार	६२०	१० २
६	शिक्षा	५०	० ६
७	आवास एवं क्षेत्रीय विकास	२ ७५	२४ ३
८	इन्वेन्ट्रीज (Inventories)	१ ६००	१७ ८
	योग	८९८०	१००

चतुर्थ योजना के व्यय एवं विनियोग से स्पष्ट होता है कि इस योजना में किये जाने वाले व्यय व विनियोग प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में किये गये कुल व्यय से अधिक हैं। इतने बड़े आकार को देखकर ही कुछ अर्थशास्त्रियों व राजनीतिज्ञों ने इसका आकार

---

1 India 1973, p 191

छोटा करने का सुझाव दिया था। परन्तु देश की आवश्यकताओं और समस्याओं को देखते हुए यह आकार अधिक बडा नही है।

योजना की वित्त-व्यवस्था (Resource Mobilisation) ·

सार्वजनिक क्षेत्र मे १५०६२ करोड रु० की व्यवस्था करनी थी, इसमे से केन्द्र सरकार को १२७६६ करोड रु० और राज्य सरकारों को अपनी योजनाओ के लिये ३१०६ करोड रु० की व्यवस्था करनी थी। चतुर्थ योजना का मध्यावधि मूल्याकन (Mid-term appraisal) दिसम्बर १६७१ मे ससद म पेश किया गया, इसमे वित्तीय साधनो की प्राप्ति मे थोडा-सा परिवर्तन किया गया। मध्यावधि मूल्यावन के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र मे १५६६८ करोड रु० की व्यवस्था करनी होगी। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो द्वारा साधनो की गतिशीलता (वित्तीय व्यवस्था) का ब्यौरा निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है

वित्तीय व्यवस्था[2]

(करोड रु० म)

साधन	केन्द्र	राज्य	योग
१ चालू राजस्व स्रोत से बचत	१,६२५	४८	१,६७३
२. सार्वजनिक सस्थानो से अशदान	१,५३४	४६५	२,०२६
३ रिजर्व बैंक के लाभ	१६५	३७	२०२
४. बाजार से ऋण	६००	५१५	१,४१५
५ खाद्य निगम तथा अन्य सस्थाओ द्वारा प्राप्त ऋण	४०५	—	४०५
६. अल्प बचतें	२४७	४६५	७६६
७. वार्षिक जमा योजनायें आदि	१०४	—	—१०४
८ प्रोवीडेण्ड फण्ड	३४३	३१७	६६०
६. पूजीगत प्राप्तियां	२,०८०	—४०५	१,६-४
१०. अतिरिक्त वित्तीय साधन	२,१००	१,०६८	३,१६८
११. जीवन बीमा निगम तथा अन्य से ऋण	—	५०६	५०६
१२. विदेशी सहायता	२,६१४	—	२,६१४
१३. घाटे की अर्थ-व्यवस्था	८५०	—	८५०
कुल साधन	१२,७६६	३,१०६	१५,६०२
राज्यों को केन्द्रीय सहायता	—३,५००	३,५००	—
योजना के कुल साधन	६,२६६	६,६०६	१५,६०२

2 India 1973, p. 192

चतुथ योजना ने १५६०२ करोड रु० के वित्तीय साधनो म ७८% बजटरी साधनो (Budgetory resocurces) से प्राप्त होगा विदेशी सहायता से १७% और घाटे की अथ-व्यवस्था से ५ प्र श प्राप्त होगा। तृतीय एव चतुर्थ योजना की वित्तीय व्यवस्था को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है

वित्त व्यवस्था [सार्वजनिक क्षेत्र]

(करोड रु० म)

मदें	तृतीय योजना		चतुथ योजना	
	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत
१ घरेलू बजटरी साधन	५,०२१	५८ ५	१२,४३८	७८ २
२ विदेशी सहायता	२,४२३	२८ ३	२,६१४	१६ ५
३ घाटे की अथ-व्यवस्था	१,१३३	१३ २	८५०	५ ३
योग	८,५७७	१००	१५,६०२	१००

निजी क्षेत्र (Private Sector) में वित्त व्यवस्था

निजी क्षेत्र मे वित्त व्यवस्था के लिए यह अनुमान लगाया गया कि निजी क्षेत्र म योजनाकाल म १४,१६० करोड रु० की बचत होगी। इस बचत म से केन्द्र व राज्य सरकारो द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के लिए ५६६५ करोड रु० प्राप्त किए जायेंगे। इस प्रकार निजी क्षेत्र म विनियोग के लिए शेष राशि ८४६५ करोड रु० (१४,१६०—५६६५=८४९५) प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त ३०० करोड रु० की विदेशी सहायता प्राप्त होगी जिसम से २७० करोड रु० पुराने ऋणो के भुगतान के रूप म वापिस देने होंगे। अत शुद्ध विदेशी सहायता ३० करोड रु० की प्राप्त होगी। इस प्रकार निजी क्षेत्र मे विनियोग के लिए कुल ८४९५ करोड रु० प्राप्त होगे। मध्यावधि मूल्यांकन म कुछ सशोधन किए गए जोकि निम्न तालिका से स्पष्ट होते है

निजी क्षेत्र में वित्तीय व्यवस्था

(करोड रु० मे)

मदें	चतुर्थ योजना	
	मूल	सशोधन
१ निजी क्षेत्र मे बचतें	१४,१६०	१६,२३५
२ सार्वजनिक क्षेत्र को दी जाने वाली राशि	−५,४६५	—६७३२
३ निजी क्षेत्र की प्राप्त बचतें	८,४६५	६५०३
४ शुद्ध विदेशी सहायता	३०	—२५७
५. निजी विनियोग के लिए प्राप्त साधन	८,४६५	६२४६

चतुर्थ योजना के प्रमुख लक्ष्य
[Main Targets of Fourth Plan]

योजना के उद्देश्यों को ध्यान मे रखकर चतुर्थ योजना के लक्ष्य निर्धारित किए गए। इस योजना मे राष्ट्रीय आय म ५.५ प्र श की दर से वार्षिक वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति आय म ३ प्र श वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। आतरिक बचत की दर को ९ प्र. श से बढाकर १३ २ प्र श तथा विनियोग की दर को ११ ३ प्र श से बढाकर १४ ५ प्र श करने का प्रावधान रखा गया। खाद्यान्न के आयात को समाप्त करने तथा और खाद्यान्न *वस्तुओं का आयात ५ प्र श तक सीमित रखने का आयोजन किया गया।* इस योजना का लक्ष्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तथा स्थिरता के साथ विकास करना रखा गया। प्रमुख लक्ष्यों को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है —

मदें	१९६८-६९	१९७३-७४
१ राष्ट्रीय आय (करोड रु०)	२८,८००	३७,९००
२ जनसख्या (करोड मे)	५२ ७	५९ ७
३ प्रति व्यक्ति आय (रु० मे)	५४६	६३६
४ बचत (राष्ट्रीय आय का प्रतिशत)	९	१३ २
५ शुद्ध विनियोग (राष्ट्रीय आय का प्रतिशत)	११ ३	१४ ५

) **योजना मे कृषि** (Agriculture in the Plan)—चतुर्थ योजना मे कृषि को *सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई । इस योजना का उद्देश्य खाद्यानो म आत्मनिर्भरता* प्राप्त करना तथा मूल्यो म स्थिरता बनाये रखने का उद्देश्य रखा गया । कृषि मे निरन्तर वृद्धि करने के लिए तथा छोटे कृषको, खेतिहर मजदूरो आदि को कृषि के विकास मे हिस्सा लेने के लिए अनेक कायक्रम अपनाने की योजना बनाई गई । इस योजना म कृषि के विकास कार्यक्रमो को दो श्रेणियो म रखा जा सकता है —

(अ) उत्पादन को अधिकतम करना,

(ब) कृषि म असतुलन को दूर करना ।

उत्पादन मे वृद्धि करने तथा असतुलन को दूर करने के लिए नई नीति का निर्माण रने की आवश्यकता हुई । इस नई नीति की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं —

(अ) सिचाई की सुविधाओ का विस्तार तथा विकास ।

(ब) रासायनिक खाद, फसल के बचाव की सामग्री, कृषि उपकरण आदि की व्यवस्था तथा साख की सुविधा ।

(स) *अधिक उपज देन वाली किस्मो का विस्तार ।*

(द) सग्रह व बिक्री की सुविधाओं म सुधार तथा कृषि पदार्थों के लिए न्यूनतम मूल्य-निर्धारण ।

(य) *चुने हुए क्षेत्रो मे व्यापारिक फसलो के विकास के लिए गहन प्रयत्न ।*

चतुर्थ योजना म कृषि के विकास के लिये चतुर्मुखी योजना बनाई गई । इस योजना म विकास कायक्रम के लक्ष्य विकास की सम्भावना का अध्ययन करके निर्धारित किए गए है । कुछ चुने हुए विकास *कार्यक्रमो के लक्ष्य निम्नलिखित हैं —*

विकास कार्यक्रम के लक्ष्य

	कायक्रम	अतिरिक्त लक्ष्य (मिलियन हेक्टर)
१	बहुफसल कायक्रम	९ ०
२	भू-सरक्षण	५ ६
३	नई भूमि म खेती	१ ०
४	बडी मध्यम व लघु सिचाई	४ २
५	लघु सिचाई नया क्षत्र	३ २
६	„ „ घटिया श्रेणी के क्षेत्र का पुनर्स्थापन	१ ६
७	पूरक सिचाई—स्थिरीकरण	२ ४

इस योजना मे उत्पादन मे वृद्धि के लिए अधिक उपज देने वाली फ
२४ मि० हेक्टर भूमि मे बोया जायेगा तथा छोटे कृषकों के लिए साख की विशेष
की जायेगी। कृषि मे उत्पादन के भौतिक लक्ष्य निम्न प्रकार से निर्धारित किये गये है

कृषि विकास के लक्ष्य

मदें	१९६८-६९	१९७
१ खाद्यान्न (मि० टन)	९८	१
२ कपास (मि० टन)	६	
३ जूट (मि० टन)	६ २	
४ गन्ना (गुड) (मि० टन)	१२	
५ पौध सरक्षण (मि० टन)	४०	
६ नाइट्रोजन का प्रयोग (मि० हेक्टर)	११ ४	
७. सहकारी ऋण (करोड रु०)	४५०	७
८ कुल सिंचित क्षेत्र (मि० हेक्टर)	३५ ६	

निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए योजनाकाल मे ३८१५ करोड रु व्य
का प्रावधान रखा गया है। इस योजना म सहकारिता एव सामुदायिक विकास क
को भी महत्व दिया गया है जिस पर क्रमश १७९ व ११६ करोड र व्यय क
प्रस्ताव किया गया।

इस योजना मे भूमि सुधार कार्यक्रमो पर महत्व दिया गया है। क्योकि योजन
वालो की यह मान्यता रही कि उत्पादन मे वृद्धि के लिए भूमि सुधार अनिवार्य है
चकबन्दी, भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण, भूमि जोतन वालो की सुरक्षा सम्बन्धी
नियम बनाये जाने की व्यवस्था की।

गहन कृषि कार्यक्रमो को प्रमुखता दिये जाने के कारण तथा उत्पादन मे वृद्धि
के लिए इस योजना मे सिंचाई के विकास के लिए लघु सिंचाई योजनाओ पर ५१६
रु तथा बडी एव मध्यम सिंचाई योजनाओ तथा बाढ नियन्त्रण पर १०८७ करोड र
करने का प्रावधान रखा गया।

(२) चतुर्थ योजना मे उद्योग (*Industries in Fourth Plan*)—चतुर्थ योज
औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि का लक्ष्य ८ प्र श से १०% वार्षिक का रखा गय

उत्पादन मे वृद्धि तथा विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र मे ३३३८ करोड रु तथा निजी व सहकारी क्षेत्र मे २२५० करोड रु के विनियोग का अनुमान लगाया गया। इस योजना म विनियोग का उद्देश्य निम्न प्रकार रखा गया :

(अ) पहले से स्वीकृति प्राप्त उद्योगो म विनियोग पूरा किया जायेगा।

(ब) वर्तमान एव भविष्य के विकास की आवश्यकतानुसार वर्तमान क्षमता मे वृद्धि की जायेगी।

(स) आन्तरिक विकास से लाभ प्राप्त किया जायेगा।

इस योजना मे वडे उद्योगों का विकास छोटे उद्योगो के विकास के साथ-साथ किया जायेगा जिससे कि प्रतिस्पर्धा न हो। देश के सन्तुलित विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे भारी व आधारभूत उद्योगो को स्थापित करने का निर्णय लिया गया। इस योजना का लक्ष्य औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि के साथ सभी क्षेत्रो मे सन्तुलन स्थापित करने का रखा गया।

चतुर्थ योजना मे औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन के लक्ष्य निम्नानुसार निर्धारित किये गये हैं

औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य

मदें	१९३८-६९ मे उत्पादन	१९७३-७४
१ इस्पात पिंड (मि० टन)	६ ५	१० ८
२. एल्यूमिनियम (हजार टनों म)	१२५ ३	२२० ०
३ मशीन उपकरण करोड रु)	२००	६५ ०
४. पैट्रोलियम (कच्चा) (मि० टन)	६ ०६	८ ६
५ कागज (हजार टन)	६४७ ०	८५० ०
६ सीमेंट (मि० टन)	१२ २	१८ ०
७ कच्चा लोहा (मि० टन)	२८ १	५१
८ कोयला (मि० टन)	६९ ५	९३ ५

इस योजना म गैर कृषि क्षेत्रो म अधिक रोजगार की सुविधा प्रदान करने के लिए उद्योगो के विकेन्द्रीकरण को आवश्यक माना। इसके अतिरिक्त उन उद्योगो के विकास को

भी मन्त्र दिया जो कि अधिक रोजगार प्रदान कर सकते है। वास्तविकता यह है कि उद्योगो से अधिक म अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करने की नीति का पालन किया गया है। इसके साथ ही उन उद्योगो के विकास को पर्याप्त महत्व दिया जो कि देश के विकास के लिए आवश्यक हैं। अत इस योजना म लोहा एव इस्पात, कोयला, पैट्रोलियम, खाद एव उवरक, कीडे मारने की दवा, सीमेंट, कागज, तथा औद्योगिक यन्त्र आदि उद्योगो के विकास को महत्व दिया गया है। इस अवधि मे उद्योगो की वतमान उत्पादन क्षमता म विस्तार की योजनाय बनाने पर जोर दिया तथा आवश्यकतानुसार नये-नये उद्योग स्थापित करने का आयोजन किया गया।

(३) ग्रामीण एव लघु उद्योग (Village and small industries)—चतुर्थ योजना मे ग्रामीण एव लघु उद्योगो के विकास को पर्याप्त महत्व दिया गया है। इस योजना-काल म कुल विनियोग ७४६ करोड रु का होगा, जिसमे से १८६ करोड रु सार्व-जनिक क्षेत्र म तथा ५६० करोड रु निजी क्षेत्र मे व्यय किये जायेंगे। इस अवधि म ग्रामीण एव लघु उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चो सामग्री को उपलब्ध कराने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। प्रशिक्षण की सुविधा के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना तथा औद्योगिक बस्तियो की स्थापना को प्राथमिकता प्राप्त होगी। सभी प्रकार के कपडे का उत्पादन ३४० करोड मीटर से बढाकर ४२५ करोड मीटर करने का लक्ष्य रखा गया।

(४) यातायात व सचार (Transport and communication)—चतुर्थ योजना म यातायात व सचार के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई है। इस योजना म यातायात व सचार के साधनो का विकास करने के लिए सावजनिक क्षेत्र म ३२४५ करोड रु व्यय करने का प्रावधान रखा गया है जबकि तीसरी योजना म यह राशि २११३ करोड रु थी। इस योजना मे रेलो के विकास पर १०५० करोड रु सडक व सडक यातायात पर क्रमश ८७६ व ६४ करोड रु, बन्दरगाह एव जहाजरानी पर ३३६ करोड रु वायु यातायात पर २०३ करोड रु तथा सचार व्यवस्था पर ५२० करोड रु व्यय का प्रावधान रखा गया। देश के विकास के लिए यातायात व सचार सुविधाओ का विकास एक अनिवार्यता है। इस योजना के विभिन्न लक्ष्य इस प्रकार है

यातायात एवं संचार सम्बन्धी लक्ष्य

	मदें	१९६८-६९	१९७३-७४
१	रलवे द्वारा ढोया गया माल (मि० टन)	२०४	२६५
२	सड़कें (हजार मि० मी०)	३२५	३८५
३	व्यापारिक गाड़ियाँ (हजार में)	२८६	४६५
४	कारगो (cargo) (हजार जी आर टी.)	२,१४०	३,५००

(५) शक्ति (Power)—आर्थिक विकास में शक्ति का विकास अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चतुर्थ योजना में इस मद में २४५६ करोड़ रु व्यय करने की व्यवस्था की गई है। इस अवधि में पुरानी परियोजनाओं के विकास की व्यवस्था की जायेगी तथा नयी परियोजनाओं को शुरू किया जायेगा। विद्युत की उत्पादन क्षमता १४ ३ मिलियन किलोवाट से बढ़ाकर २२ मि० कि० करने का लक्ष्य रखा गया।

(६) सामाजिक सेवायें Social services)—चतुर्थ योजना म सामाजिक सेवाओं पर ३२८० करोड़ रु व्यय का आयोजन किया गया है। इसमें से शिक्षा व्यवस्था पर ८२३ करोड़ रु व्यय होगा। इसमें प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार को अधिक महत्व प्राप्त होगा। योजना के अन्त तक विद्यार्थियों की संख्या १६ ३ करोड़ होगी। मेडीकल कालेज में १०३ हो जायेंगी तथा तकनीकी शिक्षा के लिए स्नातक स्तर पर २५,००० तथा डिप्लोमा स्तर पर ४८,६०० विद्यार्थी प्रवेश पा सकेंगे। वैज्ञानिक अनुसंधान पर १४० करोड़ रु व्यय की व्यवस्था है।

सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के लिए ४१ करोड़ रु के व्यय की व्यवस्था का आयोजन है तथा स्वास्थ्य कार्यों पर ४३५ करोड़ रु व्यय किये जायेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में जलपूर्ति कार्यक्रमों पर व्यवस्था हो सके, जहाँ पानी का अत्यन्त अभाव है। इसके अतिरिक्त पिछड़ी जातियों के विकास के लिए अलग से कार्यक्रम बनाये गये है जिन पर करीब १४२ करोड़ रु व्यय करने का प्रावधान है।

(७) परिवार नियोजन (Family planning)—चतुर्थ योजना में जनसंख्या की वृद्धि की दर को कम करने के उद्देश्य से परिवार नियोजन कार्यक्रमों को विशेष महत्व

दिया गया है। इस अवधि में परिवार नियोजन के लिए ३१५ करोड़ रु का प्रावधान है, जबकि तृतीय योजना में केवल २५ करोड़ रु ही व्यय किये गये थे। इस योजना में जन्म दर को ३९ प्रति हजार से घटाकर ३२ प्रति हजार करने का लक्ष्य रखा गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विशाल पैमाने पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में परिवार नियोजन केन्द्र स्थापित करने का लक्ष्य है, जिसमें कि अधिकांश सुविधायें मुफ्त प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त व्यापक रूप से प्रचार एवं प्रसार की व्यवस्था की गई है।

(८) रोजगार (Employment)—चतुर्थ योजना में रोजगार उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में कोई संख्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस योजना में यह व्यवस्था की गई है कि कृषि, ग्रामीण क्षेत्रों का विकास व निर्माण कार्य, कुटीर उद्योग, यातायात, विद्युतीकरण आदि मदों में विनियोग किया जाकर श्रम-प्रधान परियोजनाओं का विस्तार किया जायेगा। इससे केन्द्रीय व राज्य स्तर पर रोजगार की दशाओं में वृद्धि होगी।

(९) आयात, निर्यात एवं भुगतान सन्तुलन (Import, export and balance of payments)—चतुर्थ योजना में ७% वार्षिक दर से निर्यातों में वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है। इससे निर्यात १३०० करोड़ रु से बढ़कर योजना के अन्त तक १९०० करोड़ रु हो जायेंगे। दूसरी ओर आयातों पर निर्भरता को कम करने का निश्चय किया गया है। इस योजना में अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन देश में ही करने का लक्ष्य रखा गया है, फिर भी योजनावधि में ९७३० करोड़ रु के आयात का अनुमान लगाया गया है। इन लक्ष्यों के प्राप्त होने से चतुर्थ योजना के अन्त तक भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता काफी कम हो जायेगी तथा यह विश्वास किया गया है कि इस क्रम से पांचवीं योजना के अन्त तक प्रतिकूलता पूर्णत समाप्त हो जायेगी।

चतुर्थ योजना की आलोचना (Criticism of Fourth Five Year Plan)

चतुर्थ योजना का निर्माण देश की वर्तमान की समस्याओं और भविष्य की आवश्यकताओं को देखकर किया गया है। इस कारण यह योजना अधिक महत्वकारी हो गई है। जिस समय योजना का प्रारूप बनकर तैयार हुआ, उसी समय कुछ अर्थशास्त्रियों व विद्वानों ने इसकी सफलता के प्रति आशंका व्यक्त की इसकी अधिकांश आलोचनायें इसमें निर्धारित लक्ष्यों को लेकर ही की गई है। प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है:

(१) राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर अवास्तविक है—इस योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर ५·५ प्र. श. निर्धारित की है जो कि पिछले १८ वर्षों के नियोजन के

अनुभव के आधार पर व्यावहारिक प्रतीत नहीं होती। आलोचकों के अनुसार अपेक्षित वित्तीय व्यवस्था होने पर भी इस लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन है।

(२) **नीति निर्देश का अभाव**—आलोचकों के अनुसार इस योजना में बचत की दर, निर्यात वृद्धि, सार्वजनिक संस्थानों की बचत आदि के नीति सम्बन्धी परिणाम सही नहीं निकाले गये है। इससे नीति निर्देश का अभाव इस योजना में भी पाया जाता है।

(३) **कृषि उत्पादन मे ५ प्र श विकास की दर प्राप्त करना कठिन है**—आलोचकों के अनुसार कृषि में ५ प्र श की दर से वृद्धि होना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि यह उसी समय सभव होगा जबकि अधिक उपज देने वाली किस्मों का विकास किया जाय। परन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण ऐसा होना सभी क्षेत्रों म सम्भव नहीं है।

(४) **योजना रोजगार प्रधान नहीं है**—चतुर्थ योजना में यह कहा गया है कि अधिकाधिक व्यक्तियों को रोजगार की सुविधा उपलब्ध होगी परन्तु इसमें संख्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं किया गया है अर्थात् कितने व्यक्तियों को वास्तव में रोजगार प्राप्त होगा। चतुर्थ योजना के प्रारम्भ में रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों की संख्या करीब १ करोड ६० लाख थी तथा योजनाकाल में करीब २ करोड ३० लाख नय व्यक्ति रोजगार प्राप्त करने के लिये बढ जायेंगे। इस प्रकार कुल तीन करोड ६० लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने होंगे। इस योजना की रूपरेखा को देखते हुए इतने अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना असम्भव सा प्रतीत होता है।

(५) ***निर्यात सम्बन्धी नीति अवास्तविक है***—इस योजना म निर्यातों म वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है निर्यातों में इतनी वृद्धि होना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि अभी तक निर्यात सम्बन्धी उद्योगों के उत्पादन मे पर्याप्त सुधार व वृद्धि देखन को नहीं मिलती है।

(६) **क्रांति कारीकार्यक्रमो का अभाव**—चतुर्थ योजना मे आर्थिक विषमता और प्रादेशिक असन्तुलन को दूर करने के लिये ऐसे कोई कदम उठाने का प्रस्ताव नहीं है जिन्हें क्रान्तिकारी कहा जाय। अत यह योजना भी प्रथम तीन योजनाओं की तरह सामान्य कार्यक्रमों के आधार पर 'गरीबी हटाने' का सकल्प करती है जो कि सम्भव नहीं है। वास्तविकता यह है कि गरीबी हटाने या आर्थिक विषमताओं को दूर करन के लिये क्रान्तिकारी नीतियों का अपनाया जाना अनिवार्य है।

उपर्युक्त आलोचनाओं को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह योजना भी अन्य योजनाओं की तरह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेगी।

परन्तु देश की समस्याओं के निराकरण व आर्थिक प्रगति के लिए योजनाओं का निर्माण आवश्यक प्रतीत होता है।

चतुर्थ योजना की प्रगति (Progress of Fourth Plan)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन दिसम्बर १९७१ में संसद में पेश किया गया। इसमें योजना के प्रथम दो वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में हुई आर्थिक प्रगति की समीक्षा प्रस्तुत की गई। इस योजना में हुई प्रगति का वर्णन नीचे किया जा रहा है :

(१) विकास की दर (Rate of growth)—चतुर्थ योजना में ५·७ प्र. श. वार्षिक वृद्धि की दर का अनुमान लगाया गया था। अब तक प्राप्त अनुमानों के अनुसार सन् १९६९-७० में विकास की वास्तविक दर ५.२ प्र. श., १९७०-७१ में ४.२ प्र. श., १९७१-७२ में १·७ प्र. श. तथा १९७२-७३ में ०.६ प्र. श. रही। इस प्रकार विकास की दर निर्धारित लक्ष्य से काफी नीची रही।

(२) कृषि (Agriculture)—चतुर्थ योजना में कृषि क्षेत्र में ५ प्र. श. वार्षिक वृद्धि की दर का लक्ष्य रखा गया। वास्तविक वृद्धि की दर सन् १९६९-७० में ५·१ प्र. श., १९७०-७१ में ४.७ प्र. श. रही। इसके बाद मौसम की प्रतिकूलता के कारण वृद्धि के स्थान पर कमी आयी। १९७१-७२ में १·७ प्र. श. तथा १९७२-७३ में ५.५ प्र. श. की कमी आयी।

खाद्यानों के उत्पादन का लक्ष्य १२९ मिलियन टन रखा गया था। खाद्यानों का उत्पादन १९६९-७० में ९९.५ मि. टन, १९७०-७१ में १०८.४ मि. टन, १९७१-७२ में १०५.२ मि. टन, तथा १९७२-७३ में ९५.२ मि. टन हुआ। १९७३-७४ में उत्पादन ११४ मि. ट. होने का अनुमान है।[3]

(३) उद्योग (Industries)—चतुर्थ योजना में औद्योगिक विकास में वृद्धि का लक्ष्य ८ से १० प्र. श. का रखा गया। औद्योगिक क्षेत्र में विकास की दर लक्ष्य से काफी नीची रही है। सन् १९६९-७० में औद्योगिक विकास की दर ६.८ प्र. श. रही जो सन् १९७०-७१ में ३·० प्र. श. रह गई। १९७१-७२ में विकास की दर बढ़कर ४.५ प्र. श. हो गई तथा १९७२-७३ में ५ प्र. श.। अब तक प्राप्त अनुमानों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि १९७३-७४ में विकास की दर १ प्र. श. से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में विकास की दर निर्धारित लक्ष्य से

---

३ वित्तमंत्री द्वारा बजट (१९७४-७५) से पूर्व प्रस्तुत आर्थिक सर्वेक्षण में खाद्यानों के उत्पादन का अनुमान ११० मि. टन लगाया है, जबकि खाद्य मंत्री ने ११५ मि. टन बताया है।

काफी कम रही है, जिससे राष्ट्रीय आय मे भी पर्याप्त वृद्धि सम्भव नही हो सकी।

(४) **यातायात एव सचार** (Transport and communication)—चतुर्थ योजना मे यातायात एव सचार मे ६ ४ प्र श वार्षिक वृद्धि की दर का लक्ष्य रखा गया। योजना के प्रथम दो वर्षों मे ४ ६ प्र श की दर से की दर से वृद्धि हुई। १६-६-७० मे वृद्धि की दर ५ ६ प्र श. तथा ७०-७१ में ४ ६ प्र. श. रही तथा १६७१ ७२ मे ५ प्र श और १६७२-७- मे ३·८ प्र श. रही।

(५) **बैंकिंग और बीमा** (Banking and Insurance)—इस क्षेत्र में चतुर्थ योजना में ४ ७ प्र श वार्षिक वृद्धि की दर का लक्ष्य रखा गया जबकि वास्तविक वृद्धि इससे अधिक हुई १६६६-७० में ६ २ प्र श तथा १६७०-७१ मे ६ ६ प्र. श की वृद्धि हुई। १६७१-७२ और १६७२-७३ में भी क्रमश १० ७ प्र श तथा १२ ४ प्र श की वृद्धि हुई।

(६) **सिचाई** (Irrigation)—चतुर्थ योजना में मध्यम व बडी सिंचाई योजनाओ द्वारा ४ ८ मि हेक्टर भूमि म अतिरिक्त सिंचाई सुविधायें प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया जिस पर ६५१ करोड रु. व्यय करने का प्रावधान था। चतुर्थ योजना के अन्त में केवल ३·३ मि हेक्टर भूमि पर इन योजनाओ द्वारा सिचाई सम्भव हो सकेगी, जिसमें करीब ११७० करोड र व्यय होने का अनुमान है।

लघु सिंचाई योजनाओ द्वारा ३ २ मि हेक्टर भूमि पर सिचाई की सुविधा का लक्ष्य रखा गया जोकि योजना के अन्त तक प्राप्त कर लिया जाने का अनुमान है।

(७) **मूल्य वृद्धि** (Price rise)—चतुर्थ योजना में मूल्यों की स्थिरता बनाये रखने पर काफी जोर दिया गया, परन्तु इस क्षेत्र में असफलता ही प्राप्त हुई योजना के प्रथम तीन वर्षों म मूल्यो में वृद्धि का अनुपात कम रहा। परन्तु १६७२-७३ और १६७३ ७४ में मूल्यो में वृद्धि का एक नया रिकार्ड स्थापित हुआ। १६७२-७३ में १३ ६ प्र. श तथा १६७३-७४ में २६ ५ प्र श की वृद्धि हुई।[४] यह वृद्धि कृषि, उद्योग सभी क्षेत्रो में हुई। इस वृद्धि के कारण चतुर्थ योजना के लक्ष्यो को प्राप्त नहीं किया जा सका तथा अर्थ व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हो गई।

चतुर्थ योजना म हुई प्रगति की जानकारी निम्नांकित तालिका से स्पष्टत प्राप्त हो जाती है

---

4 Facts and Figuares, April 1974

चतुर्थ योजना में विभिन्न क्षेत्रों में विकास की दरें[5]
(Sectoral Rates of Growth)

(१९६९-७० से १९७२-७३ तक)

(प्रतिशत)

क्षेत्र । उपक्षेत्र	चतुर्थ योजना का लक्ष्य	१९६९-७०	१९७०-७१	१९७१-७२	१९७२-७३
०	१	२	३	४	५
(१) कृषि	५ ०	५ १	४ ,	–१ ७	–५ ५
(a) कृषि उत्पादन	५ ०	५ २	५ २	–१ ९	–६ १
(२) उद्योग	८से१० ०	६ ८	३ ७	४ ५	५ ०
(३) खान एवं निर्माण	७ ३	५ ०	१ ८	२ ९	४ २
(४) बिजली, गैस व जलपूर्ति	९ ३	९ ४	४ ८	६ ६	७ २
(५) यातायात एवं संचार	६ ४	५ ८	४ ९	५ ०	३ ८
(a) रेलवे	४ ९	५ २	१ ६	३ ६	३ ०
(b) अन्य यातायात	७ ०	६ ८	७ १	६ ०	४ २
(c) संचार	७ ९	४ ४	७ ६	५ ५	५ २
(६) बैंकिंग एवं बीमा	४ ७	९ २	९ ९	१० ७	११ ४
(७) अन्य सेवायें	४ ७	३ ३	१ ०	३ ८	४ १
(८) निर्यात	७ ०	४ २	८ ६	४ ५	२२ १

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना में बैंकिंग एवं बीमा तथा निर्यात को छोड़कर किसी भी क्षेत्र में प्रस्तावित वृद्धि की दर को प्राप्त नहीं किया जा सका है। इस तथ्य को निम्नांकित तालिका से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। इस तालिका में भौतिक लक्ष्य और प्राप्तियों को दर्शाया गया है

5 Draft Fifth Five Year Plan, Volume I, p 26

प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन लक्ष्य और प्राप्ति[6]
(Selected Output Projections and Achievements)

मदें	लक्ष्य	१९७१-७२	१९७२-७३	१९७३-७४ (सम्भावित प्राप्त)
	१	२	३	
१ खाद्यान्न (मि टन)	१२९	१०५.२	९५.२	११४०
२ चावल (,, ,,)	५२	४३.१	३८.६	४४०
३ गेहूं (,, ,,)	२४	२६.४	२४.९	३००
४ गन्ना (गुड़) (,, ,,)	१५	११.६	१२.६	१३.६
५ शक्कर (,, ,,)	४.७	३.११	३.९	४.३
६ वनस्पति (हजार टन)	६२५	५६४	५८१	५७५
७ मिल का कपड़ा (विकेन्द्रित क्षेत्र सहित)	९३५०	७४८३	८०५०	७८००
८ मनुष्य निर्मित कपड़ा	१५००	९६८	—	१५००
९ जूट निर्मित वस्तुयें (हजार टन)	१४००	११२९	१२११	१२२०
१० पेपर व पेपर बोर्ड (,,)	८५०	८०३	८८३	८३०
११ न्यूजप्रिंट (,, ,,)	१५०	४० ०	४२	४३
१२ कच्चा लोहा (मि टन)	५१.४	३३.९	३५	३७
१३ पेट्रोलियम (,, ,,) (कच्चा)	८.५	७.४	७.४	७.७
१४ पेट्रोलियम वस्तुयें (,,)	२६	१८.६	१९.६	२१
१५ उर्वरक (हजार टन)	५४००	१२३०	१३८६	१५१२
१६ सीमेंट (मि टन)	१८	१५०	१५.५४	१६०
१७ बिजली (मि किलोवाट)	८६	—	—	७२०
१८ व्यापारिक गाड़िया (हजार (Commercial vehicles, म)	८५	३९.७	३६	४८
१९ रेलवे वैगन (हजार)	२१.५	८५	१०.९	१३

उपर्युक्त तालिका म स्पष्ट होता है कि चतुर्थ योजना निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने म असफल रही है।

---

6 Source—*Droft Fifth Five Year Plan, Volume I*

चतुर्थ योजना की असफलता के कारण (Reasons of its Failure)

चतुर्थ योजना भी तीसरी याजना की भांति असफल रही है। इस याजना की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित है —

(१) मूल्य स्तर मे वृद्धि (Rise in price level) इस योजनावधि म मूल्यो म अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। योजना के अतिम दो वर्षों १९७२ ७३ तथा १९७३-७४ म वृद्धि क्रमश १३ ६ % तथा २६ ५ % हुई, जिसके कारण योजना कार्यक्रमो को पूरा करना सम्भव नही हो सका। मूल्य वृद्धि का कारण कृषि व औद्योगिक उत्पादन म कमी तथा घाटे की अर्थ-व्यवस्था को अपनाया जाना है। योजना के प्रथम तीन वर्षों म ही ९०० करोड रु की घाटे की अर्थ व्यवस्था अपनायी गई।

(२) योजना का महत्वाकांक्षी होना (Over ambitious)—योजना के प्रारम्भ म ही कुछ अर्थशास्त्रियो का विचार था कि देश की अर्थ व्यवस्था को देखते हुए इतने व्यापक लक्ष्यो को प्राप्त करना सम्भव नही हो सका।

(३) पाकिस्तान द्वारा आक्रमण (Attack by Pakistan)—चतुर्थ याजनाकाल म पाकिस्तान द्वारा देश पर आक्रमण कर दिये जाने के कारण बहुत से साधनो को सुरक्षात्मक कार्यों म लगाना पडा। इसके साथ ही बगला देश से आये शरणार्थियो पर भी भारी खर्च उठाना पडा तथा बगला देश को आर्थिक सहायता देनी पडी जिससे उत्पादन कार्य प्रभावित हुए।

(४) जनता के सहयोग का अभाव (Lack of people's co-operation —किसी भी योजना की सफलता के लिये जनता का सहयोग होना अनिवार्य होना है। परन्तु योजनाकारो की अकुशलता के कारण जनता से अपेक्षित सहयोग प्राप्त नही किया जा सका। जनता से सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि 'ग्रामीण जनसख्या को विकास कार्यों मे सक्रिय रूप से साझेदार बनाया जाय तथा विकास के लाभ समान रूप से वितरित किये जायें।"

योजनाओ की लगातार असफलताओ के कारण जनता का इन योजनाओ से विश्वास टूटता जा रहा है, अत आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के कार्यक्रम अपनाये जायें जिससे व्यक्तियो के रहन सहन के स्तर म सुधार हो, आर्थिक असमानतायें कम हो और सभी को समान काय के अवसर प्राप्त हो। इसके लिए क्रांतिकारी कार्यक्रम, कुशल व ईमानदार प्रशासन तथा जनता के सहयोग की आवश्यकता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१. भारत की चतुर्थ पचवर्षीय योजना की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

२ चतुर्थ पचवर्षीय योजना के लक्ष्यों और उपलब्धियों (targets and achievements) को बताइये । क्या आप इन उपलब्धियों से सन्तुष्ट हैं ?

३. तृतीय एव चतुर्थ योजना के अन्तर्गत कृषि एव औद्योगिक क्षेत्र मे हुई उपलब्धियो पर प्रकाश डालिए ।

४ तृतीय एव चतुर्थ योजना की वित्तीय व्यवस्था का तुलनात्मक वर्णन दीजिए ।

५ चतुर्थ पचवर्षीय योजना पर एक लेख लिखिये ।

अध्याय १८

★

पांचवीं पंचवर्षीय योजना

[Fifth Five Year Plan]

★ ★ ★

श्रीमती इन्दिरा गांधी के शब्दों में, "हमारा प्रयास आगामी एक पीढ़ी के दौरान गरीबी और असमानता पर विजय प्राप्त करने के लिये समुचित रूप से सुनियोजित एवं सन्तुलित विकास गति देना है। इस संदर्भ में हमारी 'पांचवीं पंचवर्षीय योजना' रचनात्मक भूमिका निभायेगी।"

देश के सन्तुलित एवं योजनाबद्ध विकास के लिए पांचवीं पंचवर्षीय योजना महत्त्वपूर्ण है। देश में विद्यमान आर्थिक समस्याओं के निराकरण तथा व्यक्तियों के जीवन-स्तर में सुधार करने के उद्देश्य से पांचवीं योजना में कुल व्यय पहली चार पंचवर्षीय योजनाओं के कुल व्यय से अधिक रखा गया है। इस योजना की रूपरेखा राष्ट्रीय विकास परिषद के अनुमोदन के पश्चात् दिसम्बर १९७३ में संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत की गई। पांचवीं योजना में कुल ५३,४११ करोड़ रु. के व्यय का प्रावधान रखा गया है। इस व्यय में से ३७,२५० करोड़ रु. सार्वजनिक क्षेत्र में तथा १६,१६१ करोड़ रु. निजी क्षेत्र में व्यय होने का प्रावधान है।

योजना के उद्देश्य
(Objectives of the Plan)

पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रमुख उद्देश्य है— (१) गरीबी हटाना, तथा (२) आत्मनिर्भरता प्राप्त करना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के साथ विकास की ऊँची दर, आय का उचित वितरण तथा घरेलू बचतों में वृद्धि आवश्यक है।[1]

---

1 "Removal of poverty and attainment of self reliance are two major objectives that the country has set out to accomplish in

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये उपलब्ध साधनो का अनुकूलतम उपयोग तथा सभी क्षेत्रो मे समन्वय स्थापित करना आवश्यक है ।

योजना की व्यूह रचना (Strategy of Fifth Plan)[2]

'गरीबी हटाने' एव 'आत्म निभरता प्राप्त करने' के लिए पाचवी योजना म व्यूह रचना की गई है जिसमे निम्नलिखित बातो का समावेश है —

(अ) राष्ट्रीय आय म ५ ५ प्र श की वार्षिक दर से वृद्धि ।

(ब) उत्पादक रोजगार के अवसरो का विस्तार ।

(स) न्यूनतम आवश्यक्ताओ के लिये राष्ट्रीय कायक्रम, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा, पीने का पानी, ग्रामीण क्षेत्रो म चिकित्सा की सुविधा, पोष्टिक आहार, भूमिहीनो की आवास की व्यवस्था, ग्रामीण सडकें, ग्रामीण विद्युतीकरण तथा गन्दी बस्तियो (slums) मे सुधार तथा सफाई की व्यवस्था है ।

(द) सामाजिक कल्याण के कायक्रमो का विस्तार ।

(य) कृषि, आधारभूत उद्योगो तथा व्यापक उपभोग वस्तुयें उत्पादित करने वाले उदयोगो पर विशेष बल देना ।

(र) गरीबो के लिये उचित मूल्यो पर अनिवार्य उपभोग वस्तुओ के वितरण एव प्राप्ति की व्यवस्था ।

(ल) निर्यातो म तजी स वृद्धि और आयात प्रतिस्थापन ।

(व) अन वश्यक वस्तुओ के उपभोग पर कडा नियत्रण ।

(श) कीमतो, मजदूरी दरो और आयो म न्यायोचित सतुलन ।

(स) आर्थिक, सामाजिक और क्षेत्रीय असमानताओ को कम करन के लिये सस्थागत, राजकोषीय तथा अन्य उपाय करना ।

---

the Fifth Plan As necessary corollaries, they require high growth, better distribution of incomes and a very significant step up in the domestic rate of saving '

—Draft Fifth Five Year Plan, Vol I, p. 15

2 Ibid, p 27

इस प्रकार पाचवी योजना मे ऐसी व्यूह रचना की गई है जिससे कि योजना म निर्धारित उद्देश्यो को सहज प्राप्त किया जा सके तथा "स्थायित्व के साथ विकास" किया जा सके।

पाचवी योजना मे व्यय या विकास परिव्यय (Development Outlays in Fifth Plan)[3] .

पाचवीं योजना मे कुल ५३,४११ करोड रु की राशि व्यय हेतु रखी गई है। इसम से सार्वजनिक क्षेत्र मे ३७,२५० करोड रु. तथा निजी क्षत्र म १६,१६१ करोड रु के व्यय का प्रावधान है। सार्वजनिक क्षेत्र के कुल व्यय मे से ५,८५० करोड रु चालू व्यय (current outlay) के लिए रखे गये हैं, शष ३१,४०० करोड रु विनियोग कार्यों के लिये है। इस प्रकार पाचवी योजना म उत्पादक कार्यों के लिए (विनियोग) कुल ४७,५६१ करोड रु का प्रावधान है। इस याजना म व्ययो का क्षेत्रवार (sector wise) ब्यौरा निम्न प्रकार है —

सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय

(करोड रु मे)

विकास की मद	चौथी योजना	पाचवी योजना	कुल व्यय का प्रतिशत	
			चौथी योजना	पाचवी योजना
	१	२	३	४
१ कृपि	३,४६६	४,७३०		
२. सिचाई		२,६८१	२० ७	२० १
३ शक्ति	२,४४८	६,१९०	१४ ६	१६ ३
४ खनन एव उद्योग	३,७२९	८,९३९	२२ २	२४ ०
५ निर्माण (construction)	—	२५	—	० १
६ यातायात एव सचार	३,८८७	७,११५	२३ २	१९ २
७ व्यापार एव भडार	३३९	२०५	२ ०	० ६
८ आवास तथा वास्तविक सम्पदा	२५१	६००	१ ५	१ ६
९ बैंकिग तथा बीमा	—	९०	—	० २
१० सार्वजनिक प्रशासन एव सुरक्षा	३१	९८	० २	० ३
११ अन्य सेवाये,	२,४७३	५,७९०	१४ ८	१५ ५
(अ) शिक्षा	८५३	१,७२६	५ १	४ ६
(ब) स्वास्थ्य	४३४	७९८	२ ६	२·१
(स) परिवार नियोजन	३१५	५१६	१ ९	१ ४

3 Source—Draft Fifth Five Year Plan

०	१	२	३	
(द) पाष्टाहार (Nutrition)	—	४००	—	११
(य) शहरी विकास	५२६	५८३	३२	१५
(र) जल आपूर्ति		१०८२	—	२८
(ल) समाज कल्याण	—	२२६	—	०६
(व) पिछडे वर्गों का कल्याण	१६३	२२६	११	०६
(श) श्रम कल्याण	—	५७	—	०१
(स) विविध	१४६	२७५	१६	०७
१२ विज्ञान एव तकनीक	१४०	४१६	०८	११
१३ पर्वतीय एव आदिवासी क्षेत्र	—	५००	—	१३
कुल	१६,७७४	३७ २५०†	१०० ०	१०० ०

इस योजना म कुल उपलब्ध साधनो के अन्तर्गत ही क्षेत्रवार साधनो का वितरण किया गया है जिससे कि विभिन्न क्षेत्रो म निर्धारित लक्ष्यो तक पहुचने के लिए साधनो का अधिकतम उपयोग सम्भव हो सके । इस योजना मे निम्नलिखित **मार्गदर्शी सिद्धान्तो** (guiding principles) को ध्यान म रखा गया है —

(अ) उन परियोजनाओ और कार्यक्रमो को तेजी से पूरा करना जिन पर कि पहले से ही कार्य चल रहा है ।

(ब) पहले से अर्जित क्षमताओ का पूर्ण उपयोग करना जिससे कि उनम लगी हुई पूजी से अधिक लाभ प्राप्त हो सकें ।

(स) उन मूल क्षेत्रो (care sectors) की अतिरिक्त क्षमता से न्यूनतम लक्ष्य प्राप्त करना जिन पर कि आगामी वर्षो के विकास की गति निर्भर करती है ।

(द) आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए न्यूनतम विकास का स्तर प्राप्त करना ।

निजी क्षेत्र मे व्यय (Private Sector Outlay)

पाचवी योजना म निजी क्षेत्र मे १६ १६१ करोड रु के व्यय का प्रावधान है जबकि

---

† क्षेत्रीय आधार पर कुल व्यय ३७,३८२ करोड रु होता है। अत कुल व्यय ३७ २५० करोड रु बनाये रखने के लिए १३२ करोड रु की कटौती करनी पडेगी या इतनी मात्रा मे अतिरिक्त साधन (additional resources) जुटाने होगे ।

चतुर्थ योजना मे ८,९८० करोड रु. ही व्यय किये गये। पाचवी योजना मे निजी क्षेत्र मे व्यय का क्षेत्रवार ब्योरा निम्नलिखित तालिक द्वारा दर्शाया गया है —

निजी क्षेत्र में विनियोग

(करोड रु० म)

विकास की मद	विनियोग	प्रतिशत
१ कृषि	२,९५०	१८ ३
२ सिचाई	—	—
३. शक्ति	१००	० ६
४. खनन एव उद्योग (Mining and manufacturing)	६,२५०	३८ ६
५. निर्माण	७५	० ५
६. यातायात एव सचार	१,८७०	११ ६
७. व्यापार एव भडारण	१,१५०	७·१
८. आवास एव स्थल (sites)	३,६३६	२२ ५
९. बैंकिंग व बीमा	१०	० १
१०. सार्वजनिक प्रशासन तथा सुरक्षा	—	—
११. अन्य सेवाये	१२०	०·७
(अ) शिक्षा	१००	० २
(ब) विज्ञान एव तकनीक	—	—
(स) स्वास्थ्य	२०	० १
कुल योग	१६,१६१	१००

निजी एव सहकारी क्षेत्र मे विनियोग की विशेषता यह है कि इस क्षेत्र मे मुख्यत· खनन एव उद्योग, आवास, कृषि एव यातायात तथा सचार पर ही विनियोग किया जायेगा। निजी एव सहकारी क्षेत्र मे ग्रामीण एव लघु उद्योगो पर कुल १०५० करोड रु. का विनियोग होगा जबकि सार्वजनिक क्षेत्र मे इस मद मे केवल ६१० करोड रु का प्रावधान है। इस मद मे अधिक विनियोग से रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होगे तथा व्यापक उपभोग की वस्तुओ का अधिक उत्पादन सम्भव होगा।

पाचवी योजना मे सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र मे प्रमुख विकास कार्यों पर व्यय का ब्योरा निम्न प्रकार है :—

(करोड़ रु)

विकास की मद	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल व्यय
१ कृषि और सम्बन्धित क्षेत्र	७,४११	२,९५०	१०,३२१
२ उद्योग, शक्ति एव यातायात	२४,२४४	८२२०	३२,४६४
३. समाज सेवा व अन्य कार्यक्रम	५,५९५	४,९९१	१० ५८६
योग	३७,२५०	१६,१६१	५३,४११

पाँचवी योजना म सार्वजनिक क्षेत्र म करीब ७० प्र श तथा निजी क्षेत्र में करीब ३० प्र श विनियोग व व्यय होगा।

योजना की वित्त व्यवस्था (Financial Resources of the Plan)

पाचवी योजना म विशाल पैमाने पर वित्तीय साधन जुटाने का कार्यक्रम तैयार किया गया। साधनो को जुटाते समय इस बात को ध्यान मे रखा गया है कि देश का तजी से आर्थिक विकास हो सके और स्थिरता के साथ विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

योजना के लिए विभिन्न वित्तीय साधनो का सक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है

योजना के अनुमानित वित्तीय साधन[4]

(Estimated Financial Resources for the Fifth Plan)

साधन	करोड़ र (१९७२-७३ के मूल्यो के आधार पर)
१ चालू विकास व्यय के लिये वजट व्यवस्था	५ ८५०
२ घरेलू बचतें	४५,१३०
(a) सार्वजनिक क्षेत्र	१४,३३६
(i) केन्द्र व राज्यो के वजट से अतिरिक्त	८,३४८
(ii) केन्द्र व राज्यो के गैर वित्तीय उपक्रम	५,९८८

4 Source—Draft Fifth Five Year Plan

(b) वित्तीय सस्थान	७३९
(i) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया	४६१
(ii) अन्य साधन	२७८
(c) निजी क्षेत्र	३०,०५५
(i) निजी कारपोरेट गैर वित्तीय क्षेत्र	४,१३९
(ii) सहकारी गैर साख सस्थायें	१६९
(iii) घरेलू क्षेत्र	२५,७४७
(३) विदेशी बचतो से शुद्ध प्राप्तिया	२,४३१
कुल	५३,४११

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस योजना मे ५,८५० करोड रु बजट प्रस्तावो से, ४५,१३० करोड रु घरेलू बचतो से तथा २,४३१ करोड रु विदेशी सहायता से प्राप्त किये जायेगे। इस योजना मे घरेलू बचतो से अधिक से अधिक साधन जुटाने का प्रयत्न किया गया है जिससे मुद्रास्फीति से बचा जा सके। विदेशी सहायता कुल विनियोग की केवल ३ १% ही प्राप्त करने का अनुमान है।

पांचवीं योजना के लक्ष्य (Targets of Fifth Plan) :

पाचवी योजना का उद्देश्य योजनाकाल मे मानवीय एव प्राकृतिक साधनो का अनुकूलतम उपयोग करके देश का ५ ५% की दर से आर्थिक विकास करना है जिससे १९८५-८६ तक आत्मनिर्भरता प्राप्त हो जाय तथा नीचे की ३० प्र श. जनसख्या का उपभोग स्तर बढ सके। योजना के उद्देश्यो की पूर्ति हेतु विभिन्न क्षेत्रो में लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, कुल प्रमुख क्षेत्रो के लक्ष्यो का विवरण इस प्रकार है —

(१) **राष्ट्रीय आय विनियोग एवं बचत**—पाचवी योजना मे राष्ट्रीय विकास की दर ५ ५ प्र. श. निर्धारित की गई है। इस विकास की दर के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पूजी निर्माण व विनियोग की दर १३ ७ प्र. श. से बढाकर योजना के अन्त तक १८·३ प्र. श करने का लक्ष्य है। इसके साथ ही बचत की दर १९७३-७४ म १२·२ प्र. श. से बढाकर योजना के अन्त तक (१९७८-७९) १५ ७ प्र. श करने का लक्ष्य है।

(२) कृषि विकास एव सहयोगी क्षेत्र के लक्ष्य—कृषि एव सम्बन्धित क्षेत्र के विकास पर इस योजना मे कुल ७ ६८० करोड रु का व्यय होगा जिसमे से सावजनिक क्षेत्र मे ४,७३० करोड रु तथा निजी क्षेत्र म २,९५० करोड रु व्यय होगे। इस योजना म खाद्यान का उत्पादन ११४ मि० टन से बढाकर १४० मि० टन करने का लक्ष्य है।

(३) सिंचाई एव शक्ति—पाचवी योजना म सावजनिक क्षेत्र म सिंचाई एव बिजली के विकास पर क्रमश २,६८१ करोड तथा ६,१९० करोड रु व्यय किये जायेंगे। इसके अतिरिक्त बिजली पर निजी क्षेत्र म १०० करोड रु व्यय का प्रावधान है। इसम सिंचित क्षेत्र ४५३ लाख हेक्टर स बढाकर ५७५ लाख हेक्टर करने का लक्ष्य है। सावजनिक क्षेत्र म बडी व लघु सिंचाई योजनाओ के विस्तार को महत्व दिया जायेगा। इस योजनावधि म १६ ५५ मि० किलोवाट बिजली क्षमता मे वृद्धि करने का लक्ष्य है। इसी अवधि म १,१०,००० गावो म बिजली पहुचाने तथा १५,००,००० बिजली से चलने वाले पम्प सेट (pump sets) लगाने का लक्ष्य है।

(४) उद्योग एव खनिज—पाचवी योजना मे उद्योग एव खनिज क्षेत्र म विकास की दर ८ १ प्र श निर्धारित की है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु योजना म १३,५२८ करोड रु के व्यय का प्रावधान है। इसमे स ८,३२८ करोड रु सावजनिक क्षेत्र म व्यय होगे तथा ५,२०० करोड रु निजी क्षेत्र म। इस योजना म आधारभूत उद्योगो, निर्यात की जान वाली वस्तुओं के उत्पादन तथा व्यापक उपभोग की वस्तुओ के उत्पादन स सम्बन्धित उद्योगो के विकास को अधिक महत्व प्राप्त होगा।

बडे उद्योगो के विकास के साथ ही लघु एव कुटीर उद्योगो को भी इस योजना म पर्याप्त महत्व दिया गया है। इस मद म सावजनिक क्षेत्र मे ६११ करोड रु के व्यय का प्रावधान है। इसमे करीब ६० लाख नये व्यक्तियो को रोजगार देने का लक्ष्य है।

(५) रोजगार—पाचवी योजना मे रोजगार के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है, इसम कोई सख्यात्मक लक्ष्य निर्धारित नही किया है। योजना आयोग ने रोजगार को दो भागो म बाटा है—(१) मजदूरी रोजगार (wage employment) तथा (२) स्वय रोजगार (self employment) आयोग का विचार है कि योजना म व्यापक पैमाने पर होन वाले विनियोग से बडी सख्या म

रोजगार के अवसार प्राप्त होगे। लेकिन यह अकेला समस्या सुलझाने मे समर्थ नही है, अत स्वय रोजगार के अवसरो का विस्तार करने के प्रयत्न किये जाने चाहिए। कृषि, लघु उद्योग, सेवायें, वाणिज्य एव व्यापार सभी क्षेत्रो मे रोजगार विस्तार के प्रयत्न होने चाहिए तथा विनियोग करते समय इस बात को महत्व दिया जाय कि श्रम प्रधान उद्योगो व व्यवसायो का अधिक विकास हो।

इस योजना मे निर्धारित प्रमुख लक्ष्यो को निम्नलिखित तालिका से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है —

पांचवी योजना के प्रमुख लक्ष्य
(Main Targets of Fifth Plan)

	मदें	इकाई	चतुथ योजना मे अनुमानित उपलब्धि	पाचवी योजना के लक्ष्य
१	खाद्यान्न	मि० टन	११४ २	१४० ०
२	तिलहन	मि० टन	९ ४	१२ ५
३	गन्ना ' गुड)	" "	१३ ४	१७ ०
४	कपास	मि० गाठ	६ ५	८ ०
५	जूट	" "	५ ६	६ ५
६	चीनी	मि० टन	४ ३	५ ७
७	वनस्पति	हजार टन	५७५ ०	७४० ०
८	पेपर एव पेपर बोर्ड	" "	८३० ०	१२०० ०
९	न्यूजप्रिंट	" "	४३ ०	१५१ ०
१०	उवरक	हजार टन	१ ५१२ ०	१२५० ०
११	कच्चा लोहा	मि० टन	३७ ०	५८ ०
१२	पेट्रोलियम (क्रूड)	"	७ ७	१२ ०
१३	कोयला	" "	७९ ०	१३५ ०
१४	पेंट्रोलियम उत्पाद	" "	२१ ५	३४ ६
१५	इस्पात	" "	५ ४	९ ४
१६	सीमेंट	" "	१६ ०	२८ ०
१७	ट्रेक्टर	हजार	४० ०	८० ०
१८	कपड़ा	मि० मीटर	७८०० ०	१०,००० ०
१९	रेलवे वैगन	हजार	१३ ०	४० ०
२०	मशीनें व औजार	करोड रु० मूल्य	६८ ०	१३५ ०

सक्षेप मे, पाचवी योजना म औद्योगिक एव कृषि उत्पादन म वृद्धि करन, वेरोजगारो कम करने, मूल्य वृद्धि को रोकन तथा निम्न वर्ग म जोवन स्तर को ऊचा उठाने के लक्ष्य रखे गए हे। इन लक्ष्यो की पूर्ति उसी स्थिति म सम्भव है जबकि उपलब्ध साधनो का कुशलतम उपयोग किया जाय, प्रशासन म व्याप्त भ्रष्टाचार समाप्त किया जाय, तथा जनता अनुशासित तथा एकबद्ध होकर विकास कार्यों म जुट जाय।

पाचवीं योजना की आलोचना (Criticism of Fifth Plan) '

पाचवी पचवर्षीय योजना म गरीबी हटाने और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति आदि उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु व्यापक कार्यक्रम बनाए गये हैं तथा ५३,४११ करोड रु० व्यय करने का प्रावधान रखा गया है। परन्तु पाचवी योजना के प्रारम्भ से ही इसकी आलोचना अर्थशास्त्रियो, विद्वानो और राजनीतिज्ञो द्वारा की जा रही है। अधिकाश आलोचको न इसके लक्ष्यो को महत्वाकाक्षी बताया है तथा बढते हुये मूल्यो और साधनो की अनिश्चितता के कारण इसकी सफलता म सन्देह व्यक्त किया है। इसकी प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित है —

(१) **अधिक महत्वाकाक्षी योजना**—पाचवी योजना का आकार बहुत बडा है तथा इसमे निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करना बहुत कठिन है। योजना आयोग के सदस्य डॉ बी एस मिन्हास ने लक्ष्यो के निर्धारण प मतभेद होन के कारण ही आयोग की सहायता से त्याग-पत्र दे दिया। डॉ० मिन्हास का विचार है कि ५ ५ प्र श वार्षिक वृद्धि की दर तभी प्राप्त की जा सकती है जबकि ६१,००० करोड रु० की योजना हो। वतमान योजना के आकार व स्वरूप के अन्तर्गत ४ प्र श से ४½ प्र श तक वार्षिक विकास की दर ही प्राप्त की जा सकती है।

डॉ एस टी ओ मिन्हास (Dr B S Minhas) के शब्दो म— 'यदि योजना आयोग म देवदूत बैठा दिए जायें तब भी ५ ५ प्र श वार्षिक विकास की दर प्राप्त नही की जा सकेगी।"[5]

(२) **आर्थिक उद्देश्यो की अपेक्षा राजनीतिज्ञ उद्देश्यो से प्रेरित**—पाचवी योजना म देश की आर्थिक स्थिति तथा उपलब्ध साधनो की ओर ध्यान नही दिया है बल्कि

5 "Even if the mythical angels were ordered into the Yajana Bhawan, the nobness of the 5·5 percent real growth rate plan will not be capable of being preserved"

—Dr B S Minhas

अपने राजनैनिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु जनता को भ्रम मे डालने के लिए 'गरीबी हटाओ' और आत्मनिर्भरता प्राप्ति का नारा लगाया है।

(३) **योजना मे रोजगार के लिए ठोस कार्यक्रम का अभाव**—पाचवी योजना मे यह स्पष्ट नही किया गया ह कि कितने व्यक्तियो को वास्तव म रोजगार की सुविधा प्राप्त होगी। आलोचको का विचार है कि इस योजना मे भी अन्य योजनाओ के समान बेरोजगारी *की सख्या मे वृद्धि होगी। इस प्रकार बडे आकार के बावजूद भी* यह योजना रोजगार के ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत करने मे असफल रही है।

(४) **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का अभाव**—इस योजना मे भी आर्थिक विषमताओ को समाप्त करने तथा केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को रोकने के लिए क्रान्तिकारी कार्यक्रम नही बनाये गए हैं। अन्य योजनाओ की तरह इसमे सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया गया है तथा गरीबी हटाने का सकल्प किया है। परन्तु योजनाओ के २३-२४ वर्ष के अनुभव से यह स्पष्ट होता है कि इस योजना म भी अमीर और अधिक अमीर होंगे जबकि गरीब की स्थिति और अधिक खराब ही होगी।

(५) **वित्तीय साधनों की कठिनाई**—वर्तमान मे मूल्य वृद्धि और जनता मे असन्तोष के वातावरण को देखते हुए घरेलू क्षेत्र से ४५,१३० करोड रु० *की वित्तीय व्यवस्था* करना काफी कठिन प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म विनिमय सकट के कारण अपेक्षित विदेशी सहायता भी प्राप्त करना काफी कठिन है।

श्री एच० वी० आर० आयगर (H V R Iynger) ने इस योजना को अवास्तविक तथा अव्यावहारिक बताया है। उन्ही के शब्दो मे

'We have mistaken paper plans for achievements and targets for accomplishment "

'कुछ अर्थशास्त्रियो का विचार है कि 'यह योजना भी अन्य योजनाओ के समान लक्ष्यो को पूरा करने मे असफल रहेगी और नियोजन की साख को समाप्त कर देगी।"[6]

यद्यपि इस योजना को महत्वाकाक्षी एव अव्यावहारिक बताया जाता है परन्तु भारत जैसे देश के लिए जहा पर ४० प्र श से अधिक जनसख्या गरीबी रेखा (poverty line)

6 "The built in contradictions in the draft outline of the Fifth Plan would mean a repetition of the failures of target achievement and destroy the very credibility of planning"

से नीचे है, इतने व्यापक विकास कार्यक्रम बनाना आवश्यक है। अत गरीबी हटान और आत्मनिभरता प्राप्त करने जैसे लक्ष्यो के लिए यह बहुत बडा आकार नही है। योजना मे निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए प्रशासन म ईमानदारी व कुशलता, जनसहयोग, कठोर परिश्रम व त्याग की आवश्यकता है।

अध्याय से सम्बन्धित प्रश्न

१ पाचवी पचवर्षीय योजना के लक्ष्यो और विकास कार्यों की व्याख्या कीजिए।

२ "पाचवी योजना 'अधिक महत्वाकाक्षी' योजना है।" विवेचना कीजिए।

३ पाचवी योजना पर एक लेख लिखिए।